भारतीय राष्ट्रवाद
की
सामाजिक पृष्ठभूमि

दि मकमिलन कपनी आफ इडिया लिमिटेड
नई दिल्ली ववई कलक्त्ता मद्रास
समस्त विश्व म सहयोगी कपनिया

अनुवाद प्रयागदत्त त्रिपाठी

प्रथम हिंदी सस्करण 1976

मूल्य 36 00

भारतीय इतिहास अनुसधान परिषद द्वारा प्रवर्तित

एस० जी० वमानी द्वारा दि मकमिलन कपनी आफ इडिया लिमिटेड
के लिए प्रकाशित तथा प्रगति प्रिटस, दिल्ली 110032 मे मुद्रित।

A R Desai Bhartiya Rashtrawad Ki Samajik Prishthabhumi

अनुसंधान परिषद की ओर से

भारतीय इतिहास अनुसधान परिपद के अनक उद्देश्यो म एक है शोध की उपलब्धियो को उस पाठक वग तक पहुचाना जो हमसे यह अपक्षा रखता है कि हम भारतीय भापाओ मे इतिहास सबधी रचनाए तैयार तथा प्रकाशित करें। अग्रेजी भापा के माध्यम से भारतीय इतिहासविद अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र म पहुच सकत है नाम और प्रतिष्ठा अजित कर सकत है, किंतु भारतीय पाठकवग का एक छोटा अश ही इमसे लाभ उठा पाता है। शिक्षण और अनुसधान के माध्यम के रूप मे हिंदी तथा अय भारतीय भापाओ के प्रयाग की प्रवृत्ति बल पकड रही है। ऐसी स्थिति मे इतिहास की स्तरीय पुस्तको की कमी गभीर रूप से अनुभव की जा रही है। सबसे पहले हम भारतीय इतिहास की ओर ध्यान देना है। अत भा० इ० अ० प० ने कुछ गौरवग्रथो (क्लासिक्स) तथा इतिहास विपयक शोध की निर्दोप पद्धतियो पर आद्दृत और इतिहास की समकालीन प्रवत्तियो को प्रतिबिंबित करन वाली कुछ अय पुस्तको का अनुवाद करान का निश्चय किया है।

प्रस्तुत पुस्तक म, सामाजिक दृष्टिकोण से, रजनी पामदत्त की 'आज का भारत' की विचारधारा का अनुसरण किया गया है। इसमे भारतीय राष्ट्रवाद के उद्‌भव को खोजा गया है तथा यह बताया गया है कि औपनिवेशिक अथव्यवस्था ने किस प्रकार अतर्विरोधो से आक्रात सामाजिक व्यवस्था को जम दिया। लेखक ने भारत मे ब्रिटिश शासन के प्रभाव का विश्लेपण किया है तथा भारतीय राष्ट्रवाद के विकास म सामाजिक शक्तियो तथा सामाजिक और धार्मिक सुधार आदोलन की भूमिका का मूल्याकन किया है। पुस्तक के विपय मे सर्वाधिक महत्वपूण बात यह है कि भारत के राष्ट्रीय आदोलन के नेतृत्व के वगचरित्र की विवेचना पहली बार हमे यही प्राप्त हाती है।

पुस्तक का प्रकाशन पटना यूनिट के प्रयासो का परिणाम है जिसके लिए अनुवादक प्रयागदत्त त्रिपाठी, डा० नगेंद्र प्रसाद वमा तथा अय सभी सहयोगियो के प्रति हम धयवाद ज्ञापन करते हैं।

नई दिल्ली
28 फरवरी 1976

रामशरण शर्मा
अध्यक्ष
भारतीय इतिहास अनुसधान परिपद

कठोर एव हास्यप्रिय मनस्वी जिसने दारुण नियति
की निमम मार को बरसो सहा एव बुद्धि और
तक की गरिमा मानवतावाद के ऐश्वय तथा
जीवन के आनदातिरेक से मुझे परिचित कराया—
ऐसे पितामह की पुण्य स्मृति को।

चतुर्थ सस्करण की भूमिका

'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि' के चतुथ मस्करण की भूमिका लिखत हुए लेखक को बडी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। जैसा कि पुस्तक के प्रथम सस्करण की भूमिका मे बताया जा चुका है, 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि' म भारतीय राष्ट्रवाद के उदय की जटिल और बहुरगी प्रक्रिया और उसके विभिन्न रूपों का सम्मिश्रित शब्द चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस अन्वेपण का काल क्षेत्र अग्रेजो के भारत आगमन से द्वितीय महायुद्ध की शुरूआत तक सीमित है। युद्ध और युद्धोत्तरकाल के भारतीय राष्ट्रवाद पर लेखक का अध्ययन उसके सपूरक ग्रथ 'रीसट ट्रेंडस इन इडियन नेशनलिज्म' मे उपलब्ध है। ये दो ग्रथ इस रोचक विषय की अविच्छिन्न गाथा प्रस्तुत करते है। इन ग्रथो से यह भी सिद्ध है कम से कम लेखक के लिए, कि पिछली दो शताब्दिया मे भारतीय समाज म जो परिवतन हुए है, उनका ऐतिहासिक भौतिकवाद की पद्धति से बडा सफल सायक अध्ययन हो सकता है। यह सचमुच उत्साहवद्धक है कि 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि' अभी भी दुनिया के विभिन्न भागा मे समादृत है और इसके चतुथ मस्करण की आवश्यकता है।

मैं पुन डा० जी० एस० घुर्ये के प्रति अपने गहर कृतज्ञता बोध को स्वीकार करता हू। उन्होने ही मुझे इस अध्ययन की प्रेरणा दी और इस जटिल विपय के अन्वेषण मे बहुमूल्य वात्सल्यपूण माग दशन किया। मैं बावे युनिवर्सिटी का भी आभारी हू, जिसने अपने समाजशास्त्र सिरीज मे इस पुस्तक का प्रथम सस्करण प्रकाशित किया।

मैं हृदय से अपने युवा दोस्त श्री उदय मेहता, रिसच असिस्टेंट, को धन्यवाद देता हू, जिन्होने इस पुस्तक के प्रकाशन मे मदद की और इसकी अनुक्रमणिका तैयार की।

श्री रामदास भटवल और पापुलर प्रकाशन के उनके सहयोगियो का भी आभारी हू कि उन्होने इतना अच्छा सस्करण निकाला है। मुझे विश्वास है कि इस ग्रथ और इसके सपूरक पर वाद विवाद और विचार विमश हाते रहगे।

डिपाटमट आफ सोशिआलजी
युनिवर्सिटी आफ बावे
बबई, माच 1966

ए० आर० देसाई

तृतीय सस्करण की भूमिका

'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पष्ठभूमि' के तीसरे सस्करण की भूमिका लिखते हुए मुझे खुशी हो रही है।

जैसा कि द्वितीय सस्करण की भूमिका मे कहा जा चुका है, द्वितीय विश्व युद्ध और युद्धोत्तर वष भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास म महत्वपूण और निर्णायक थे। वस्तुत, सारे विश्व पर इस काल का वातचक्र का सा प्रभाव पडा। इन वर्षो मे इतिहास तूफानी तेजी से आगे बढा है, यद्यपि इसकी प्रगति मनमानी या मनमौजी नही रही है।

मेरे प्रकाशको ने भारतीय राष्ट्रवाद की युद्धकालीन और युद्धोत्तरकालीन प्रवृत्तियो पर अलग से एक अध्याय लिखने का अनुरोध किया। मैंने छोटा सा पुनश्च लिखने का प्रयास किया। लेकिन सामग्री की जटिलता और सपन्नता के कारण इस अध्याय ने एक अलग पुस्तक का रूप ले लिया और यह ग्रथ इसी के साथ अलग से 'रीसट ट्रेंडस इन इडियन नेशनलिज्म' नाम से छप रहा है।

यह जानकर मुझे बडा सतोष है कि दुनिया के विभिन्न भागो म इस ग्रथ का स्वागत हुआ है।

मैं फिर डा० जी० एस० घुर्ये के प्रति अपना गहरा आभार प्रकट करता हू। प्रस्तुत अध्ययन उनके बहुमूल्य अनुरागपूण मागदशन म सपन्न हुआ है।

मैं बबे युनिवर्सिटी का आभारी हू जिसने अपने सोशिआलजी सिरीज मे इस ग्रथ का पहला सस्करण प्रकाशित किया।

डिपाटमेट आफ सोशिआलजी
युनिवर्सिटी आफ बबे
बबई, अक्तूबर 1959

ए० आर० देसाई

द्वितीय सस्करण की भूमिका

'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि' का पहला सस्करण बाम्बे युनिवर्सिटी की सोशिआलजी सिरीज मे 1948 मे प्रकाशित हुआ। डा० जी० एस० घुर्ये प्रोफेसर एव हड, डिपार्टमेट आफ सोशिआलजी, इस सिरीज के सामान्य सपादक थे। विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक विचारधाराओ को माननेवाले कई समीक्षको ने इसकी काफी प्रशसा की। राष्ट्रवाद आधुनिक भारत के विकास का अत्यत महत्वपूर्ण तथ्य है और यह ग्रथ भारत मे इसके उदय का सागोपाग और बहुपक्षीय विवरण है।

इस ग्रथ पर जब काम शुरू हुआ था उसके बाद दस से अधिक साल गुजर गए ह। भारत और विश्व म इस अवधि मे अनक महत्वपूर्ण और तूफानी घटनाए घटी है। दुनिया इस बीच बहुत बेतरह बदली है। कई अतर्निहित तथ्य सुनिश्चित और सुव्यक्त हो चुके है। विश्व के मानव समाज की रूपाकृति तेजी से और गुणात्मक तौर पर बदली है। भारत म भी देशी और अतर्राष्ट्रीय शक्तियो के प्रभाव क फलस्वरूप अनेक दूरगामी परिवतन हुए है। कई दशको का परिवतन प्रक्रिया कुछ ही बरसो की अवधि मे सिमटी आ रही है।

इस ग्रथ का मूल अभिप्राय भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि का अभिचित्रित करना है। इसलिए पिछले दशक की महत्वपूर्ण घटनाओ पर द्वितीय सस्करण के अत मे महज एक अध्याय जोड देना काफी नही हाता। मुझे लगा कि हाल की घटनाओ पर वतमान पुस्तक की उत्तरकथा के रूप मे स्वतत्र, अलग ग्रथ की रचना आवश्यक है।

इसीलिए गवेषणा का क्षेत्र प्रथम सस्करण के काल क्षेत्र से आगे नही बढाया गया है। मैं अन्य ग्रथ म पिछले दशक के भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि का अलग से अध्ययन करने की आशा करता हू।

लेकिन इस द्वितीय सस्करण मे निम्नलिखित परिवतन किए गए हैं—

1 प्रथम सस्करण मे आ गई पुनरुक्तियो को हटा दिया गया है।

2 प्रथम सस्करण की पाडुलिपी तैयार करने के समय भारत मे अभी अग्रेजी शासन था ही, इसलिए रचना मे जो काल सबधी असगतिया आ गई थी, उनका भी निराकरण कर दिया गया है।

3 पिछले संस्करण में जो विचार कुछ अस्पष्ट रह गए थे, उन्हें स्पष्ट कर दिया गया है।

4 ग्रंथ के अध्ययन में सहायता हेतु उप शीर्षक दे दिए गए हैं।

वर्तमान अध्ययन डा० जी० एस० घुर्ये के बहुमूल्य एवं वात्सल्यपूर्ण मार्गदर्शन में संपन्न हुआ और मैं फिर एक बार उनके प्रति अपने अगाध कृतज्ञता बोध का ज्ञापन करता हूं।

अपने सोशिओलजी सिरीज में इस ग्रंथ के प्रथम संस्करण को प्रकाशित करने के लिए मैं बाम्बे युनिवर्सिटी का भी आभारी हूं।

डिपार्टमेंट आफ सोशिओलजी
युनिवर्सिटी आफ बाम्बे
बम्बई, अगस्त 1954

ए० आर० देसाई

प्रथम संस्करण की भूमिका

पिछले डेढ सौ वरसो मे भारतीय समाज का मध्ययुग से आधुनिक आधार पर जो रूपातरण हुआ है और उसके फलस्वरूप राष्ट्रवाद और सामाजिक, धार्मिक आर्थिक, राजनीतिक एव सास्कृतिक आदि अपन विभिन्न रूपो म राष्ट्रीय आदोलन का जो उदय हुआ है, वह भारतीय इतिहास और समाजशास्त्र के विद्यार्थिया के लिए अत्यत रोचक विषय है। मानव जाति के लगभग पाचवें भाग का यह सशक्त आदोलन महान और नाटकीय तो है ही, यह मानवता के भविष्य के लिए अत्यत महत्वपूण भी है। इस रोचक विषय की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था।

फिर, छात्र, मजदूर, किसान और राजनीतिक राष्ट्रीय आदोलन से विद्यार्थी जीवन के अपने सीमित सपर्क के समय म इस निष्कर्ष पर पहुचा कि इन आदोलनो की सही समझदारी और उनम सार्थक सहयोग के लिए यह आवश्यक है कि ब्रिटिश शासनकाल मे हुए भारतीय समाज के सरचनात्मक परिवतन नई सामाजिक शक्तिया के उद्भव और उनकी भूमिका और राष्ट्रीय आदोलन एव भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के सामाजिक कारणो को ठीक और सम्यक रूप मे समझा जाए। नई सामाजिक शक्तियो की प्रकृति और भारतीय समाज के विकास के नियम को समझने की आवश्यकता है। इसलिए इस विषय के विशेष अध्ययन की मेरी इच्छा और तीव्र हुई।

जहा तक मुझे मालूम है, अभी तक कोई एक ऐसी अकेली पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है, जिसम भारतीय राष्ट्रवाद के जन्म का ऐतिहासिक, सश्लेषिक और क्रमबद्ध विवरण हो, या जिन विविध नई सामाजिक ऐतिहासिक शक्तिया से राष्ट्रीय चेतना का जन्म हुआ, उनके विशिष्ट भार और पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया का चित्रण एव मूल्याकन हो। प्रस्तुत ग्रथ, जो बाबे यूनिवर्सिटी की पी एच० डी० की उपाधि के लिए लिखे गए मेरे शोधप्रबध से जन्मा है उपयुक्त आवश्यकता की पूर्ति की दिशा मे किया गया प्रयास है। मैंने इस विषय के अध्ययन के लिए, जिन विभिन्न सामाजिक शक्तियो से भारतीय राष्ट्रवाद के उदय और विकास की सामाजिक पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ था उनके विशिष्ट भार के

अवस्थापन और मूल्याकन के लिए ऐतिहासिक भौतिकवाद की पद्धति का उपयोग करने का प्रयास किया है।

मैं डा० जी० एस० घुर्ये, प्राफेसर एव अध्यक्ष, सोशिआलजी डिपाटमट, बाव युनिर्वसिटी का अनुगहित हू जिन्हाने शोध प्रवध की रचना मे मेरा वात्सल्यपूण और बहुमूल्य मागदशन किया।

यह अध्ययन भारतीय राष्ट्रवाद के उदय की जटिल और बहुमुखी प्रक्रिया और उसके विभिन्न रूपो का अभिचित्रित करन का प्रयास है। लेखक को स्वय इस ग्रथ की अनेक त्रुटियो का अहसास है। फिर भी, अगर इस ग्रथ के कारण इस विपय मे लोगो की रुचि बढती है और अधिक मपन्न तथ्यो के आधार पर अधिक ठोस और सही निष्कप निकालने वाली पुस्तकें लिखी जाती है तो लेखक अपना श्रम साथक मानेगा।

अप्रल 1946 — ए० आर० देसाई

अनुक्रम

प्राक्कथन

राष्ट्रवाद ऐतिहासिक तथ्य

अन्य सामाजिक तथ्यों की तरह राष्ट्रवाद भी ऐतिहासिक तथ्य है। लोक जीवन के विकास क्रम म वस्तुनिष्ठ और भावनिष्ठ दोना प्रकार के ऐतिहासिक तत्वो की परिपक्वता के पश्चात राष्ट्रवाद का उदभव हुआ। जैसा ई० एच० कार ने लिखा है 'सही अर्थों मे राष्ट्रो का उदय मध्ययुग की समाप्ति पर ही हुआ।'[1] व्यापक राष्ट्रीयता के आधार पर समाज, राज्य और सस्कृति के उदभव के पूव ससार के विभिन्न भागा का जन जीवन, मोटे तौर पर इन स्थितिया से गुजरा कबीला की जिंदगी, दास प्रथा सामतवाद। सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक विकास के खास तौर म राष्ट्रो का ज म हुआ। सामाजिक अस्तित्व के पूववर्ती काला के अराष्ट्रिक जन समुदाया से आधुनिक युग के राष्ट्र अपन निम्नलिखित गुणो के कारण भिन्न है, राष्ट के सार सदस्य किसी निश्चित भूभाग म एक ही अथतन्त्र के अतगत परस्पर जविक रूप से सपृक्त होन है, जिसके फलस्वरूप उनम सम्मिलित आर्थिक अस्तित्व का भाव होता है, वे प्राय एक ही भाषा का प्रयोग करते है, उनकी एक सी मनोवैज्ञानिक सरचना और उससे विकसित सावजनिक लोक सस्कृति होती है। ऐसा आदश राष्ट जा पूणत विकसित हो और जिसम ये सब गुण विद्यमान हो भावात्मक कल्पना मात्र है क्योकि प्रत्येक राष्ट्र के अथतन्त्र सामाजिक सगठन, चिंतन प्रकृति और सस्कृति मे अतीत के तत्व विभिन्न अशो म उत्तरजीवी रह है। फिर भी सोलहवी सदी से ही मानव इतिहास के विशाल रगमच पर राष्ट्रगत समेकन की विभि न अवस्थाओ म राष्ट्रीय जन समुदायों का आविर्भाव होता रहा है।

ई० एच० कार द्वारा दी गई राष्ट्र की परिभाषा

जो विशिष्ट गुण किसी राष्ट्र को अराष्ट्रिक जन समुदायो से पृथक करते है, उनके बारे म ई० एच० कार न कहा है ' राष्ट्र शब्द से जैसे मानव समूह का बोध होता है उसके लक्षण है

(क) अतीत और वतमान म वास्तविक्ता, अथवा भविष्य के लिए आकाक्षा के रूप मे सवनिष्ठ सरकार की धारणा,
(ख) अपना अलग विशिष्ट आकार और सदस्यो का पारस्परिक सपक्य-सामीप्य,
(ग) न्यूनाधिक निर्धारित भूभाग,
(घ) ऐसी चरित्रगत विशेषताए (भाषा इनम सर्वाधिक बहुल है) जो किसी राष्ट्र को अन्य राष्ट्रो और अराष्ट्रिक समुदायो से अलग करती हैं,
(ङ) सदस्यो के सम्मिलित स्वाथ,
(च) सदस्यो के मन मे राष्ट्र की जो छवि है उससे सबधित समवेत भाव या इच्छाशक्ति।'

विभिन्न देशो मे राष्ट्रवाद का विकास

राष्ट्रो के रूप मे जन समुदायो का एकीकरण दीघकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया की परिणति है। अपनी प्रगति को अवरुद्ध करने वाले अनकानेक विघ्न बाधाओ के विरुद्ध नवजात राष्ट्रो को सघष करना पडा। उदाहरणाथ, इग्लैंड मे सामतवादी राज्य व्यवस्था के खिलाफ लडाई हुई। यह राज्य तत्र एक एसी अथव्यवस्था का समथक और पोषक था जिसके कारण लोग आर्थिक तौर पर एक दूसरे से अलग रहे और आर्थिक समन्वय के मूल उत्तोलक उद्योग एव व्यापार की प्रगति अवरुद्ध रही। आर्थिक और सामाजिक अलगाव पर आधारित सामती समाज और राज्य को पवित्रता प्रदान करनेवाल रोमन चच की सत्ता के विरुद्ध भी नवजात राष्ट्र इग्लैंड को घोर सघष करना पडा और राष्ट्रीय प्राटेस्टेंट चच की स्थापना हुई, सुधारवादी एव क्रातिकारी दानो प्रकार के दीघकालीन राजनीतिक सघर्षो के बाद ही सामती राज्य की जगह राष्ट्रवादी राज्य को प्रतिष्ठापित किया जा सका। राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक जीवन, अथव्यवस्था और सस्कृति को और अधिक सुसगठित करने के लिए अग्रेजो ने इस नई राज्य व्यवस्था का भरपूर उपयोग भी किया।[3]

इग्लड मे राष्ट्रवाद का जन्म अन्य अनेक देशो के पहले हुआ। इसके अनेक कारण हैं। यहा और देशो की तुलना म व्यापार और उद्योग का विकास पहले हुआ। इसके फलस्वरूप लोग विनिमय सबधो से अधिकाधिक बधते गए। इस तरह राष्ट्रीय अथतत्र के विकास का रास्ता साफ हुआ और गणतान्त्रिक एव राष्ट्रवादी विचारो का उदय हुआ जिन्होने राज्य, समाज और व्यक्ति के पद और प्रतिष्ठा सबधी सामती सिद्धातो पर आघात किया।

कालक्रम से आतरिक एव बाहरी शक्तियो के फलस्वरूप अन्य देशो मे भी राष्ट्रवाद के उदय के ऐतिहासिक कारण परिपक्व हुए। प्रत्येक देश मे राष्टवाद का विकास अलग अलग रास्ता से हुआ। किस देश ने कौन सा रास्ता अपनाया यह उस देश के सामाजिक और सास्कृतिक इतिहास, राजनीतिक और आर्थिक

सरचना के अतीतकालीन अवशेष और उन देशो मे राष्ट्रीय आदोलन की अगुआई करने वाले वर्गो की विशिष्ट भावधारा द्वारा निश्चित हुआ। प्रत्येक राष्ट्र का जन्म और विकास अपने आप मे अद्वितीय रहा है।

सत्तरहवी, अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दियो मे ससार के अधिकाधिक क्षेत्रो मे राष्ट्रो का निर्माण हुआ पूर्ण विकसित होने के लिए नवजात राष्ट्र भीतरी और बाहरी अवरोधो के विरुद्ध सघर्षशील रहे, और आत्मरक्षा एव आत्म-विवर्धन के लिए राष्ट्रो के बीच घमासान लडाइया लडी गइ। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया बीसवी सदी म भी जारी रही, जब एशिया, अफ्रीका और अन्य गैर यूरोपीय महादेशो के नवजागृत लोक समुदायो ने स्वाधीन राष्ट्र के रूप मे अपने विकास के रास्ते मे देशी सामतवाद और विदेशी साम्राज्यवाद द्वारा लाई गई रुकावटो को दूर करने के लिए आदोलन किए। राष्ट्रीय आधार पर आर्थिक और सास्कृतिक जीवन के स्वतत्र और अनवरुद्ध विकास की लालसा इन आदोलनो के रूप मे प्रतिफलित हुई। एशिया ही नही, यूरोप म भी, प्रथम विश्व युद्ध (1914 18) की समाप्ति पर बहुत सारी राष्ट्र जातियो ने अपनी स्वाधीनता के लिए सघर्ष किए। जैसे, मगयार, हगेरियन, चेक आदि जातियो ने बहुराष्ट्रीय आस्ट्रो हगेरियन साम्राज्य की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह किया।[4]

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरात राष्ट्रसघ और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सयुक्त राष्ट्रसघ की स्थापना इस बात का सबूत है कि आज का मानव समाज मूलत राष्ट्र निर्मित है, विभिन्न राष्ट्रो की सगुटिका है। आधुनिक युग मे राष्ट्र ही लोक जीवन का सवमान्य, सवप्रचलित रूप है। समाज से वैमनस्य समाप्त करने और मानव की रचनात्मक प्रतिभा की स्वतत्र और अक्षुण्ण अभिव्यक्ति के लिए आधुनिक समाजशास्त्रियो, राजनेताओ और राजनीतिज्ञो ने जो विभिन्न योजनाए बनाई है, वे वस्तुत राष्ट्रवाद के सिद्धात से ही सर्वाधिक प्रभावित है। सोवियत सघ ने इतिहास के विकास क्रम की दृष्टि से पूजीवाद की अपेक्षा उच्चस्तरीय समाजवादी आधार पर अपने यहा की अर्थव्यवस्था का परिशोधन किया। लेकिन इसने भी राष्ट्रवादी सिद्धातो को मान्यता दी है यह स्वय राष्ट्रीय गणतत्रो का सघ है। अत्यत साहसिक विचार वाले मानववादियो ने भी विश्व समाज के भविष्य के बारे मे यही सोचा है कि यह समाजवादी राष्ट्रो का सघ होगा।

आधुनिक युग मे राष्ट्रवादी भावो की प्रधानता

इस तरह राष्ट्र ही आज का युग सत्य है, और राष्ट्रीयता मानवमात्र की मूल भावना। विज्ञान और औद्योगिकी जसे वस्तुनिष्ठ शास्त्रो के परे अथ, राजनीति और सस्कृति के अन्यान्य क्षेत्रो मे इधर जो आदोलन हुए हैं वे सजग राष्ट्रीयता की भावना से ही उत्प्रेरित हुए है, चाहे इन आदोलनो का सगठन राष्ट्रो ने अपनी स्वतत्रता और सस्कृति की रक्षा और पुष्टि के लिए किया हो, या दूसरे राष्ट्रो की स्वतत्रता और सस्कृति के अपहरण के लिए। समाजवादी या पजीवादी आधार

पर मानवता के एकीकरण और सारे संसार के नवनिर्माण आदि के आधुनिक कार्यक्रमों के लिए भी राष्ट्रों को ही सर्वप्रधान इकाई माना गया है।

शोध का विशिष्ट क्षेत्र राष्ट्रवाद

मानव जीवन में राष्ट्रवाद की भूमिका के निर्णायक महत्व के कारण संसार के कुछ सर्वश्रेष्ठ चिंतकों ने, पिछले वर्षों में राष्ट्रवाद को अपना अन्वेषण और अध्ययन का विशिष्ट क्षेत्र बनाया है। राष्ट्र किन तत्वों से बना है, किन सामाजिक ऐतिहासिक स्थितियों में राष्ट्र का उद्भव हुआ, मानव प्रगति की दिशा में राष्ट्रवाद का क्या अनुदान है, मानव के अंतर्राष्ट्रीय एवं विश्वजनीन एकीकरण की आकांक्षा से इसका क्या संबंध है, इन सारी समस्याओं के विवेचन और समाधान की चेष्टा हुई है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में राष्ट्रवादी भावनाओं के प्रतिफलन और उनकी अभिव्यक्ति की मीमांसा की गई है। विद्वानों ने विभिन्न देशों में राष्ट्रवाद के उद्भव और प्रसार का अध्ययन किया है और अलग-अलग देशों में इसके विकास के आनुवंशिक कारकों की गवेषणा की है, उन्हें समझने की कोशिश की है। राष्ट्रवाद पर लिखा गया अभिनव साहित्य राष्ट्रों के रूप निरूपण की जटिल बहुविध प्रक्रिया, उनके लक्षण, संघर्ष और आत्माभिव्यक्ति की रीति आदि विभिन्न विषयों पर प्रचुर प्रकाश डालता है। प्रत्येक देश में राष्ट्रवाद का अपना विशिष्ट, अनन्य रूप है। अतः किसी भी देश की राष्ट्रीयता का अध्ययन अपने आप में पृथक कार्य है।

भारतीय राष्ट्रवाद के उद्भव और विकास का अध्ययन

भारतीय राष्ट्रवाद अर्वाचीन तथ्य है। ब्रिटिश शासन और विश्व शक्तियों के कारण तथा भारतीय समाज में उत्पन्न और विकसित अनेक भावनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ कारकों की क्रिया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ब्रिटिश काल में भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।

राष्ट्रवाद के सामान्य अध्ययन की दृष्टि से भारतीय राष्ट्रवाद के आविर्भाव और उत्थान का अपना विशिष्ट स्थान है। भारत में राष्ट्रीयता के विकास की प्रक्रिया बड़ी जटिल और बहुअंगी है। उसके अनेक कारण हैं। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारत की सामाजिक संरचना कई अर्थों में अद्वितीय थी। यहाँ की अर्थ व्यवस्था का आधार यूरोपीय देशों के मध्ययुगीन प्राक्पूंजीवादी समाजों से भिन्न था। भारत विभिन्न भाषाओं, विभिन्न धर्मों और बड़ी आबादी वाला बहुत बड़ा देश है। आबादी का लगभग दो तिहाई भाग हिंदू है और हिंदू समाज विभिन्न जातियों उपजातियों में विभक्त है। फिर हिंदुत्व कोई समशील धर्म भी नहीं, वरन बहुत सारी उपासना पद्धतियों की समुष्टिका है, जिसने इसे अलग-अलग संप्रदायों में बाँट रखा है। भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की पृष्ठभूमि की यह खासियत है कि विशेषतः हिंदू समाज और सामान्यतः सारा भारतीय समाज खंडित और

विभाजित रहा है। किसी भी अय देश म राष्ट्रवाद का उदय ऐसी नितात शक्तिशाली परपराओ और सस्थाओ के सदभ म नही हुआ। भिन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सरचना एव धार्मिक परपरा, अत्यत विस्तृत भूभाग, बढती हुई जनसख्या इन कारणो से भारतीय राष्ट्रवाद के उदभव और उत्थान का अध्ययन काफी कष्टसाध्य है लेकिन इसीलिए रोचक और उपयोगी भी। ससार के किसी भी अय देश की अपक्षा भारत म भूतकालीन सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक सरचना की आत्मरक्षात्मक इच्छाशक्ति अधिक प्रबल रही है। भारत के राष्ट्रीय आदोलन का महत्व मानव इतिहास के वत्तमान और भविष्य के लिए यो भी बहुत अधिक है। राष्ट्रीयता का आदोलन मानव समाज के बहुत बडे अश का आदोलन है और दिन प्रतिदिन अधिक गतिशील और गत्यात्मक होता जा रहा ह।

भारतीय राष्ट्रवाद के बारे मे एक अय रोचक तथ्य यह है कि इसका आविर्भाव राजनीतिक पराधीनता के दिनो म हुआ। पूववर्ती राष्ट्र ब्रिटेन न अपने स्वय के हित मे भारतीय समाज के आर्थिक ढाचे का आमूल परिवतन किया, केद्रीभूत राज्य व्यवस्था की स्थापना की आधुनिक शिक्षापद्धति की नीव डाली, आवागमन के नए साधन और ऐसी अय सस्थाओ का निर्माण किया। इसके फलस्वरूप नए सामाजिक वर्गो का जम हुआ और अपने आप म अद्वितीय नई सामाजिक शक्तियो का उमोचन सभव हो सका।[5] य नए सामाजिक तत्व अपनी अपरिहार्य प्रकृति के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टकराए और भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की आधारशिला ही नही, उसके लिए प्रेरणा स्रोत भी सिद्ध हुए। इस तरह भारतीय राष्ट्रवाद जटिल और विशिष्ट सामाजिक पृष्ठभूमि मे जमा और सयाना हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक इस सामाजिक सदभ का निर्माण करनवाले विभिन तत्वो की भूमिका को समझने और उनका मूल्याकन करने एव राष्ट्रवाद के उत्थान की प्रक्रिया को अभिचित्रित करने का प्रयासमात्र है।

सदभ

1 ई० एच० कार प० 7।
2 वही प० 20।
3 देख बीजवोड लास्की।
4 देखें मकाटनी हाग काहन स्टालिन।
5 देखें बीजवाड कार।

1

प्राक् ब्रिटिश भारत की अर्थव्यवस्था और सस्कृति

भारत म राष्ट्रवादी भावनाओ के उदय का इतिहास एकीकृत राष्ट्रीय अथव्यवस्था के विकास से सबद्ध है। और यहा की अथव्यवस्था का एकीकरण उत्पादन के प्राक्पूजीवादी रूपो के विघटन और उनके स्थान पर नए पूजीवादी प्रकारो की स्थापना के बाद हुआ। यह आर्थिक परिवतन अग्रेजो की भारतविजय के कारण ही सभव हो सका। हम इस समग्र प्रक्रिया का विभिन्न स्थितियो मे, ठोस रूप से और विस्तार म, अध्ययन करेगे। फिलहाल सक्षेप मे हम प्राक्ब्रिटिश भारत की अथव्यवस्था के मूलभूत लक्षणो का आकलन करें।

आत्मनिभर ग्राम समुदाय

आदिम हल और बैल से खेती और साधारण औजार की मदद से दस्तकारी की भित्ति पर टिका आत्मनिभर गाव, यही अग्रेजो के आने के पहले की भारतीय अथव्यवस्था का मूल सत्य है। ये स्व पर्याप्त गाव सदियो स भारतीय जीवन की मूल आर्थिक इकाई थे। इनमे न्यूनाधिक परिशोधन हुए थे लकिन राजनीतिक हलचल, धार्मिक उथल पुथल और विनाशकारी युद्धो के बावजूद अग्रेजो के आगमन के पहले तक गावो की चिरतन प्रकृति लगभग अक्षुण्ण रही। विदेशी आक्रमण हुए राजवश बदले, आपसी लडाइयो के बाद विभिन्न राज्यो के भूभागो का नया बटवारा हुआ, नए राज्य बने और बिगडे लेकिन आर्थिक इकाई के रूप मे गावो की हैसियत ज्यो की त्यो रही। 'ग्राम समुदाय छोटे-छोटे गणतत्र हैं। अपनी जरूरत की सारी चीजें इन्ह अपने यहा प्राप्त हैं और विदेशी सबधो स य लगभग मुक्त हैं। जहा कुछ भी स्थाई नही वहा ये जस अकेले अमर है। राजकुल लुढकते रहे, क्रातिया होती रही, हिंदू, पठान, मुगल, मराठा, सिक्ख, अग्रेज क्रमश मालिक बने, लेकिन ग्राम समुदाय यथापूव बने रहे।[1]

गावो मे अक्सर किसान रहते थे और सारा गाव गाव की जमीन का मालिक होता था। ग्राम पचायत गाव की पूरी आबादी का प्रतिनिधित्व करती थी, और जोत खड० के रूप मे जमीन को किसान परिवारो के बीच बाट देती थी। परिवार के सभी सदस्यो के सहयोग और आदिम हल-बल की मदद से प्रत्येक जोत-खड म

खेती होती थी। किसान परिवार को परपरा से अपने जोत खडो पर पैतृक अधिकार था।

इन परिवारो के पारस्परिक सबध के बारे मे शेलवकर का कहना है 'इन्हे बहुत सारे सामूहिक प्रतिबध मानने पडते थे, और इन्हे बहुत सारी सामूहिक सेवाए प्राप्त थी। नगरपालिका जैसी सेवाए, पहरा, निगरानी आदि, सावजनिक चरागाहो और जगलो मे समानाधिकार, भूसिंचन और जलापूर्ति आदि के लिए आवश्यक सहयोग, लुटेरो के विरुद्ध सुरक्षा सगठन, जगली जानवर और लावारिस गाय बैल इत्यादि से खेत और फसल को बचाने का प्रबध ग्राम जीवन की इन लाक्षणिक एव अनिवाय आवश्यकताओ के कारण किसानो पर एक ऐसा सहयोग शासन लागू था जिसके चलते तीव्र प्रतिरोधी एव असमाधेय वैयक्तिक दावो का प्रसरण सभव नही था। सारी समस्याओ के ऊपर थी गाव के अधिस्वामी को, चाहे वह स्वय शासक हो या मात्र मध्यवर्ती, मालगुजारी देने की सवदा प्रस्तुत आवश्यकता। लगान की राशि नियमत सारे ग्राम समुदाय की ओर से चुकाई जाती थी।'[2]

भारतीय और यूरोपीय सामतवाद

यूरोपीय सामतवाद से भारतीय सामतवाद यो भिन्न था कि भारत मे भूमिगत वैयक्तिक सपत्ति नही थी। 'हिंदू काल म भूमि सपूण ग्राम समुदाय की होती थी, इसे कभी राजा की सपत्ति नही माना गया।'[3] जमीन की पदावार के अशमात्र पर ही राजा या उसके प्रतिनिधि का अधिकार था, और यह अश सारे गाव की ओर से गाव की पचायत देती थी। 'राज्य का हक अश भाग तक ही सीमित था, और यह भाग उसे पदाथ (फसल) के रूप मे ही मिलता था। मुसलमानो न पुरानी कर प्रथा और पटटेदारी को थोडे सशोधन के बाद अपना लिया।'[4]

राजा और उसकी प्रजा के बीच कई प्रकार के मध्यस्थ थे, जसे, जमीदार या तहसीलदार या अभिजातवर्गीय ऐसे लोग जिन्हे राजा ने अनुग्रहवश क्षेत्र विशेष से कर वसूलने और उसे पूरा का पूरा या अशत स्वय रख लेने का अधिकार दे रखा था, कुछ धार्मिक, दातव्य और शिक्षण सस्थाओ को भी राजा से ऐसे ही अधिकार प्राप्त थे। लेकिन वास्तविक भूस्वामी न तो राजा स्वय था और न ये मध्यस्थ ही। फलत शासको मे परस्पर या मध्यस्थो अथवा ग्राम समुदायो से उनके जो सघष हुए प्राय उनका विषय यह होता था कि गाव की फसल और पैदावार का कितना हिस्सा कौन लेगा। परपरागत व्यवहार और विश्वास के कारण भूमि पर ग्राम समुदाय के अधिकार और नियत्रण को न तो राजा ने और न मध्यवर्ती सत्ताधारियो ने ही कभी खतम करने की कोशिश की। लेकिन अगर इन लोगो ने भूमि पर अपना हक जमाने की कोशिश नही की, तो कृषि की उन्नति की ओर भी ध्यान नही दिया।

वस्तुत भारतीय इतिहास के महान सघर्षो मे किसी एक का भी उद्देश्य यह नही था कि गावो मे सत्ता का उपयोग कैसे हो, वरन यह कि गावो पर सत्ता का

उपयोग कैसे हो। विभिन्न स्तर के अधिस्वामियों के बीच ये संघर्ष भूमि पर अधिकार के लिए नहीं वरन उससे लगान वसूलने के अधिकार के लिए होते थे। इसके विपरीत, यूरोपीय इतिहास में किसानों और भूपतियों के संघर्ष हुए हैं, जिनका कारण यह था कि भूपति फसल में हिस्सा तो मांगता ही था, लेकिन साथ ही बेगार से खेती जैसे पुराने तरीके भी बनाए रखना चाहता था या फिर बाड़ा लगाना और बड़े पैमाने पर खेती करने जैसे नए तरीके चालू करना चाहता था। भारत में लड़ाइयां ऐसे भूपतियों के बीच हुई जिन्हें खेती के तरीकों से कोई मतलब नहीं था और जो किसानों से मात्र आय अर्जन चाहते थे। लड़ाई तलवार के धनी लोगों के बीच होती थी। गांव और किसान इन संघर्षों के मूक, निष्क्रिय विषय होते थे, लूट की वस्तु जिसके लिए प्रतिद्वंद्वी शक्तियां परस्पर लड़ती रहती थी।[5]

प्राक् ब्रिटिश भारत का ग्रामीण अर्थतंत्र

भारतीय गांवों के कृषि उत्पादन की संरचना सदियों में ज्यों की त्यों रही। भूमि पर गांव की जनता के परंपरागत स्वत्व को न तो किसी सम्राट ने और न उसके किसी प्रतिनिधि ने ही कभी चुनौती दी। गांव के लोगों की जरूरतों को पूरा करना ही ग्रामीण कृषि का चरम उद्देश्य था। किसी निश्चित काल में क्षेत्र विशेष का जो अधिस्वामी होता था, कभी दिल्ली के शाहंशाह का सूबेदार, कभी पूना के पेशवा का सरदार, उसे पैदावार में हिस्सा देना पड़ता था, शेष लगभग सारी उपज गांव की कृषक और गैर कृषक जनसंख्या के काम आती थी।

गांवों में किसानों के अतिरिक्त बढ़ई, लोहार, कुम्हार, जुलाहा, मोची, धोबी, तेली, हज्जाम जैसे मजदूर किस्म के लोग भी रहते थे। लेकिन ये भी गांव की ही जरूरतों को पूरा करने के लिए खटते थे। ग्राम समुदाय में 'कमकरों' का भी वर्ग होता था जो हरखोर का काम करते थे और अछूत समझे जाते थे। इनमें अधिकांश देश के उन आदिम निवासियों के वंशज थे, जिनको समूल विनष्ट करने के बदले, प्राचीन काल के हिंदू समाज ने आत्मसात कर लिया था।[6]

गांव में जिन वस्तुओं का उत्पादन हुआ उनका विनिमय गांव की जनता तक ही सीमित था। गांव के लगभग संपूर्ण उत्पादन का उपभोग गांव की ही जनता करती थी। गांव के उत्पादन संबंधों के बारे में शेरावकर ने कहा है

> यह कहना कदाचित सही नहीं कि व्यक्तियों के बीच परस्पर विनिमय संबंध थे। जरूरत पड़ने पर किसान कारीगरों के यहां अपनी निजी हैसियत में ही जाते थे लेकिन जो भुगतान होता था वह अलग-अलग काम के हिसाब से नहीं जोड़ा जाता था और न प्रत्येक गृहस्थ से अलग-अलग मिलता था। भुगतान सारे गांव की एकत्र जिम्मेवारी थी और प्रत्येक कारीगर को सारे समुदाय की ओर से गांव की जमीन का कुछ अंश स्थाई तौर पर जोतने-काटने के लिए मिला रहता था, या फसल काटने पर उस अनाज की निश्चित राशि दे दी जाती थी। कई जगह दोनों तरह की व्यवस्थाएं लागू थीं। गांव के

विनिमय व्यापार का दूसरा साझीदार गाव का सामूहिक संगठन भी उतना ही था, जितना अलग अलग किसान। गाव का कारीगर स्वतत्र उत्पादक न होकर समुदाय द्वारा नियुक्त जनसेवक जैसा था।[8]

इस तरह भारतीय गावो का बाहर की दुनिया से तो कोई विनिमय सबध नही था, गावो के अदर भी बाजार जैसी चीज नही थी। प्रोफेसर गाडगिल ने कहा है, 'गावो का पृथक्त्व स्वत उल्लख्य नही है और न यही कोई विशिष्ट तथ्य है कि सभी कारीगर गाव मे ही रहते थे। भारतीय गावो की विशिष्टता यह थी कि अधिकाश कारीगर सारे गाव के सेवक होते थे।'[9]

गावो के आर्थिक जीवन के बारे म यह भी ज्ञातव्य है कि कृपि और उद्योग के अपर्याप्त विशिष्टीकरण के चलते श्रम विभाजन बहुत नहीं हो सका था। मुख्यत कृपि केंद्रित होने पर भी किसान परिवार घर पर सूत कातने का काम करते थे। साथ ही कारीगरो को ग्राम पचायत से खेत प्राप्त था, और साल के कुछ दिनो वे मूलत खेती म ही सलग्न रहते थे।

ग्रामीण कारीगरो को गाव से ही अपने शिल्प के लिए आवश्यक कच्चे माल, जैसे लकडी, मिट्टी और चमडे का प्रबध करना पडता था। बगल के जगलो मे लकडी मिल जाती थी, मरे हुए जानवरो की लाश से मोची अपने काम के लिए चमडा निकाल लेता था देश के प्राय प्रत्येक भाग म रुई की खेती होती थी। केवल लोहा बाहर से लाना पडता था। कारीगर उद्योग के हेतु आवश्यक कच्चे माल के लिए गाव लगभग स्वपर्याप्त थे।

इस तरह आर्थिक रूप से गाव आत्मनिर्भर थे। स्थानीय श्रम और साधन प्रसूत स्थानीय उत्पादन का स्थानीय उपभोग होता था। गाव और बाहर की दुनिया के बीच विनिमय सबध लगभग शून्य थे। अक्सर सप्ताह म किसी एक दिन किसी बडे गाव के बाजार म कई केंद्रो से आए कई तरह के सामानो की बिक्री होती थी। उन दिनो जो थोडा बहुत व्यापार होता था वह इसी रूप मे सभव था।

> गाव सपूर्णत स्वपर्याप्त थे कच्चा माल भी समीप ही प्राप्त था। गाव के अपने ही क्षेत्र मे उगे हुए जगल की लकडी को औजारो और मकान बनाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता था। रूई देश के कई भागो म प्राप्त थी। जिन वस्तुओ का उत्पादन होता था, उनमे अधिकाश की खपत गाव म ही हो जाती थी, जो बचता वह सप्ताह म एक बार होने वाले ग्रामीण मेलो म बेचा जा सकता था। हस्तशिल्पियो की काय निपुणता सदियो की वशगत परपरा का परिणाम थी और उनके विभिन्न व्यवसाय धर्म सगत थे।'[10]

गावो के कृपि और उद्योग की तकनीक निम्न स्तर की थी। कृपि और विनिर्माण के लिए मात्र हस्तचालित औजारो की ही जानकारी थी। वायु और जलचालित चक्कियो का भी शायद ही कभी इस्तेमाल हुआ हो। हसिया और हल, छेनी और आरा, चरखा और गत करघा कम समय म कम सामान मे तैयार हो जाते थे, लेकिन पीढियो तक उनसे काम चलता था।[11]

इस अल्प शक्तिशील तकनीक से चलने वाले कृषि और उद्योग पर आधारित गावो का आर्थिक जीवन सदियो तक अपरिवर्तनशील रहा। बाहर की दुनिया से लगभग स्वतत्र और साथक सामाजिक विनिमय से अछूता आत्मनिभर गाव शताब्दिया तक स्थिर, अचल, रूढिगत सामाजिक अस्तित्व का अविच्छेद्य, अविजेय दुग बना रहा। 'गाव के एकरस जीवन मे एकमात्र क्रमभग आकस्मिक विपत्ति, पहाडो के पार मे भूभक्षी जातियो के आक्रमण या सूखा द्वारा उत्पन्न बाधा-विघ्न द्वारा हुआ।'[1] कालमाक्स ने स्पष्ट और चित्रात्मक शली मे इस अपरिवर्तनशील सामाजिक जैव विधान का वणन किया है

ये छोटे और बडे पुराने भारतीय जन समुदाय भूमि के सयुक्त अधिकार, कृषि और हस्तशिल्प के सयोजन और अपरिवर्तनशील श्रम विभाजन पर आधारित है। इनमे प्रत्यक स्वय एक सपूण इकाई है जो आवश्यक वस्तुआ का खुद उत्पादन करता है। उत्पादन के बडे भाग का समुदाय स्वय उपभोग करता है और वह विक्रयशील पण्य का रूप नही लेता। भारतीय समाज की समग्रता मे पण्य विनिमय द्वारा उत्पन्न श्रम विभाजन से उत्पादन मुक्त है। उत्पादन के अधिशष का अशमात्र ही पण्य का रूप लेता है जब वह राज्य शासन के पास पहुचता है। प्राचीन काल से उत्पादना का कुछ हिस्सा भूमिकर के रूप मे राज्य को मिलता रहा है। इन समुदाया का वैधानिक सगठन भारत के विभिन्न भागा म अलग अलग है। जो सबसे सरल रूप है उसमे सब सम्मिलित रूप से खेत की जुताई करत है, और फसल समुदाय के सब लोगा म बाट दी जाती है। साथ ही हर परिवार सहायक उद्योग के तौर पर कताई और बुनाई भी करता है। ग्राम प्रमुख न्यायाधीश, पुलिस और तहसीलदार का समन्वित रूप है, वही खाता रखने वाला जुताई का हिसाब रखता है, एक पदाधिकारी विशेष अपराधिया का चालान करना है, गाव से गुजरने वाले यात्रियो की रक्षा करता है और दूसरे गाव की सीमा तक पहुचा देता है, सीमा रक्षक पडोसी समुदाया से गाव की चौहद्दी की रक्षा करता है पानी का ओवरसियर सामूहिक जलाशयो से सिंचाई के लिए पानी का बटवारा करता है, ब्राह्मण धार्मिक कार्यों की देखभाल करता है, अध्यापक बच्चो को लिखना-पढना सिखाता है, पचाग ब्राह्मण या ज्योतिषी बीजारोपण और फसल की कटाई के लिए अच्छी और बुरी साइत बताता है, बढई और लोहार खेती के औजार बनाते है और उनकी मरम्मत करते है कुम्हार गाव के लिए आवश्यक मिट्टी के सारे बतन बनाता है नाई, धोबी और सोनार अपने पेशे के कामकरते है, जहा तहा कवि (या भाट) भी मिलते है जो कुछ ग्राम समुदाया म सोनार और कुछ मे अध्यापक का भी काम करते है। इस तरह के दजन भर किस्म के लोग समूचे समुदाय के खच पर पलते है। आबादी बढ जाने पर नई अनधिकत धरती पर पुराने ढर्रे पर नया समुदाय कायम होता है समुदाय म श्रम विभाजन का नियाजन करने वाले कानून प्राकृतिक

नियमो की दृढ़ता से काम करते है ये स्वपर्याप्त समुदाय सदा अपने चिरतन रूप म ही फिर फिर आविर्भूत होते रह है, अगर दुर्योगवश नष्ट हो गए तो उसी स्थान पर उसी नाम से फिर उदित हो जात है। इन समुदायो म उत्पादन का सगठन वडा सरल रहा है और यह सादगी ही एशियाई समाजो की अपरिवर्तनशीलता के रहस्य की कुजी है। एशियाई राज्यो के निरतर विघटन पुनरुत्थान और राजवशो मे हरदम होते रहने वाले परिवतन से सामाजिक सगठनो की अपरिवर्तनशीलता का मेल नही बठा। राजनीतिक आकाश के बादल बवडर से समाज के आर्थिक तत्वो की सरचना अछूती रही।'[13]

ग्राम समुदाय की यह भी चारित्रिक विशेषता रही है कि लोगो का व्यवसाय उनकी जाति पर पूणत निभर था। जातियो की तरह व्यवसाय भी आनुवशिकता के सिद्धात पर आधारित थे। आर्थिक जीवन एव विनिमय गावो की सीमा मे ही सकुचित था, अत शादी ब्याह या तीर्थाटन के अतिरिक्त यात्रा का न तो कोई औचित्य था और न आवागमन के साधनो के विकास के लिए कोई उद्दीपन। अग्रेजो के आगमन के पूव बैलगाडी ही आवागमन का प्रमुख साधन थी। ग्रामीण जीवन के सामाजिक एव अन्य पहलुओ के बारे मे ओ'मेली का कहना है

गावो की मुख्य सामाजिक सस्थाए अपनी समष्टि म व्यक्तिवादी नही वरन समुदायवादी थी। मूल सामाजिक इकाई व्यक्ति न होकर परिवार था। परिवार ही समाज के सारे सदस्यो के पारस्परिक सबधो को व्यवस्थापित करता था, और विभिन्न परिवारो के आतरिक सबधो पर ग्राम समुदाय और जाति व्यवस्था का नियत्रण था। ग्राम समुदाय सामुदायिक स्वशासन के लिए सगठित परिवारो का समूह था, जाति शादी-ब्याह खान पान, पेशा, ग्राम समुदाय के अन्य सदस्यो से व्यवहार-विचार सबधी समरूप विधानो द्वारा शासित परिवारो की सगुटिका थी, यद्यपि जाति ग्राम समुदाय की तरह स्थानीय सस्था नही थी। व्यक्ति पर परिवार, जाति और ग्राम समुदाय का वैचारिक नियत्रण था और उसे इनके द्वारा स्थापित आदर्शों को मानकर चलना पडता था। समष्टि की सदस्यता के अतिरिक्त जैसे व्यक्ति का कोई अस्तित्व ही नही था। समूह द्वारा निर्धारित सीमाओ के भीतर ही आत्म-सकल्प भी सभव था ग्राम समुदाय की सामाजिक हैसियत नगण्य थी। यह अधिकाशत आर्थिक और प्रशासनिक सगठन था और इस पर राज्य को नियत्रण रखने का भी हक था, यद्यपि इस हक का इस्तेमाल कम ही होता था। परतु जातीय एव पारिवारिक प्रश्नो से राज्य को कोई सीधा सरोकार नही था। लोगो के जातीय और पारिवारिक सबध हिंदू धम और परपरागत नियमो पर आधारित थे।[14]

प्राक ब्रिटिश भारतीय समाज के दीघ अस्तित्व काल म व्यक्ति सदा जाति, परिवार और ग्राम पचायत के अधीनस्थ रहा। अट्ठारहवी सदी के अत म भी भारतीय समाज, मूलत देहाती इलाको म परिवार जाति और ग्राम पचायत के

प्रति एवं शहरी इलाकों में व्यापार जय निगमों और कमकर संगठनों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना पर आधारित था।[1]

प्राक् ब्रिटिश भारत मे नागरिक अर्थव्यवस्था

प्राचीन भारत मे छोटे-छोटे गावो के बीच कुछ शहर भी थे जिनका राजनीतिक धार्मिक या व्यापारिक महत्व था।[16] राजनीतिक महत्व वाले नगर राज्यो या साम्राज्यो की राजधानी थे। यही से शासन के काय परिचालित होते थे, ये सम्राटो और राजकुमारो के मुख्यालय थे। विभिन्न राज्याधिकारी और सेनाध्यक्ष, अभिजातवर्ग के लोग और उनके पिछलगुए भी यही रहते थे। सेना की छावनी भी राजधानी मे ही होती थी। शासक एव अभिजात वर्ग की दैहिक या कलात्मक, स्वस्थ या अस्वस्थ आवश्यकताओ तथा मनतरगो की पूर्ति के लिए वारागनाए सगीतज्ञ स्थापत्य कला विशारद, चित्रकार कवि आदि भी इन्ही शहरो मे रहते थे।

बनारस मथुरा पुरी नासिक जैसे दूसरे प्रकार के भी शहर थे जो मुख्यत उपासना केंद्र या तीर्थस्थल थे। हजारो तीर्थ यात्रियो की जरूरतो का ख्याल रखनेवाले लोगो की इन शहरो मे एक निश्चित आबादी होती थी। इनके अतिरिक्त व्यापारिक महत्व के वे शहर भी थे जो आवागमन के उपयुक्त नदियो के किनारे या प्रसिद्ध वाणिज्यिक मार्गों के सगम पर या समुद्र तट पर बसे थे। इन नगरो मे विविध हस्तशिल्प उद्योग पल्लवित हुए। कैलवटन ने लिखा है

> तीव्र बुद्धि सूक्ष्म योग्यता और सर्जनात्मक प्रतिभा के फलस्वरूप भारतीय उद्योग पाश्चात्य देशो से अपेक्षाकृत आगे बढे हुए थे। शुरू की उन शताब्दियो मे जब पाश्चात्य नौपरिवहन सवथा अविकसित था, भारत ने भारी बोझ ढोने वाले समुद्री जहाज बनाए थे
>
> वस्त्र निर्माण हिंदुस्तान का प्रमुख उद्योग था और यहा के सूती और रेशमी कपडो की सारी दुनिया मे तारीफ और माग थी। तेरहवी, चौदहवी और पद्रहवी शताब्दियो मे धातु काय प्रस्तरशिल्प, शक्कर नील और कागज के भी उद्योग विकसित थे। कुछ भागो मे काष्ठकर्म मृत्तिका पात्र और चम काय आदि उद्योग भी पल्लवित हुए। देश के कई हिस्सो मे रगाई प्रमुख उद्योग थी, कुछ भागो मे सोने के तार और कसीदाकारी का काम पूर्णता के चरमबिंदु तक विकसित था
>
> खानो से रागा पारा और कुछ हद तक लोहा निकालने और शीशे के निर्माण के काय भी महत्वपूर्ण और विकसित उद्योग थे। बहुत सारे यात्रियो ने भारत मे निर्मित लोह और यहा के रासायनिक उद्योग की प्रशसा की है। चीन की तरह भारत मे भी चीनी मिट्टी के बर्तनो का उद्योग काफी विकसित था। गजदत से भुजदड, अगूठी, पासे मनके पलग और अन्य अनेक चीजे बनती थी और सारी दुनिया मे, खासकर यूरोप मे, इनकी बडी माग थी।

बेशकीमती पत्थरों पर किए गए काम में भी बड़ी कुशलता का परिचय मिलता है।[1]

नगर उद्योग संपन्न वणिक और कुलीन परिवारों के लिए विलासिता के सामान, कुट्टित इस्पात से लड़ाई के हथियार तथा सेना के अन्य सरजाम, सैनिक दुर्ग, विशाल मंदिर, भव्य राजप्रासाद, ताजमहल और कुतुबमीनार जैसे अभियंत्रण कला के विरल स्मारक, और खेतों की सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण करता था।

प्राक ब्रिटिश भारत का नागरिक हस्तशिल्प अत्यंत विकसित था। यहां की उच्चकला गुणसंपन्न विविध कृतियां सारी दुनिया में मशहूर थीं और सब जगह उनकी मांग और खपत थी। कैलवर्टन ने लिखा है, प्राचीन काल में जब रोम के निजी और सार्वजनिक भवनों में भारतीय कपड़ों, दीवारदरी, तामचीनी, मोजेक, हीरे-जवाहरात आदि का उपयोग होता था, उस वक्त से औद्योगिक क्रांति के प्रारंभ तक आवश्यक और उद्दीपक वस्तुओं के लिए सारा संसार भारत का मोहताज रहा।[18]

विभिन्न जनसमुदायों की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला यह नगर उद्योग मूलत तीन भागों में विभाज्य है। शहरों के सारे औद्योगिक रोजगार का बहुत बड़ा हिस्सा भारत और विदेशों के कुलीन और संपन्न लोगों के लिए विलासिता एवं अर्द्धविलासिता के सामान तैयार करता था। इसके बाद उन रोजगारों का नंबर आता है जो राज्य या अन्य सार्वजनिक संस्थाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। उद्योगों की जो तीसरी किस्म थी उसमें लोहा गलाने, कलमीशोरा तैयार करने या चूड़ी बनाने जैसे काम थे। ये प्रायः स्थानीय उद्योग थे और देश के कुछ ही हिस्सों में प्रचलित थे।[19]

नागरिक उद्योगों में काम करनेवाले लोग मूलत दो प्रकार के थे, वे जो स्वतंत्र रूप से काम करते थे और वे जो राज्य या निगम या दूसरे लोगों की नौकरी करते थे।

स्वतंत्र उत्पादक की हैसियत रखनेवाले हस्तशिल्प कारीगर उत्पादन के लिए आवश्यक औजार और कच्चे माल के मालिक होते थे, अपने खुद के मकान में काम करते थे और बाजार में स्वयं अपना सामान बेचते थे। शहरों के जो मजदूर कारीगर रोजी पर काम करते थे, उन्हें कच्चा माल अपने मालिक से मिलता था, निश्चित स्थान पर काम के लिए हाजिर होना पड़ता था, और जिन वस्तुओं का वे निर्माण करते थे वे उनके नियोक्ताओं के लिए होती थीं, न कि बाजार में बिक्री के लिए।

नगर उद्योगों के विषय में संभवत सर्वाधिक उल्लेख्य तथ्य यह है कि उनका बाजार अत्यंत सीमित था। इन उद्योगों में साधारण लोगों के दैनिक इस्तेमाल की चीजों के बदले शीर्षस्थ व्यक्तियों एवं संस्थानों के लिए आवश्यक उपकरण तैयार होते थे। फिर गांववालों की जरूरतें तो स्थानीय कारीगर उद्योग से

ही पूरी हो जाती थी। इस तरह नगर उद्योगों का बाजार इने गिने इलाकों में सीमित रहा।

आर्थिक और सामाजिक संरचना के पूंजीवादी रूप परिवर्तन के लिए जरूरी शर्तें प्राक् ब्रिटिश भारत में मौजूद थीं, लेकिन इनमें इतनी ताकत नहीं आ सकी थी कि ऐसा परिवर्तन हो सके। वाणिज्यिक पूंजी और नगर उद्योग जैसी देशज सामाजिक शक्तियों के बल पर भारत में बुर्जुआ समाज का विकास नहीं हो सका, और इसकी वजह थी कि अंग्रेज पूर्व भारत की राजनीति एवं अर्थतंत्र की कुछ अपनी विशेषता थी, जैसे गांवों की आत्मनिर्भरता जो देश की पूंजीवादी प्रगति की दिशा में सबसे बड़ी बाधा थी।

> गृह शिल्प और कृषि के सहज सरल संयोजन एवं तज्जन्य अर्थतंत्र के कारण गांव अपना संतुलन सुरक्षित रख सकता था और विघटन की प्रक्रिया का सबल प्रतिरोध प्रस्तुत कर सका।[20]
>
> गांवों में साधारणतः (यूरोपीय) कृषक दासता या बेगारी द्वारा किए गए शोषण के लिए स्थान नहीं था। इसीलिए भारतीय गांवों की आर्थिक संरचना काफी मुखर रही और वे अपना प्रभिन्न चरित्र बनाए रखने में सफल रहे यद्यपि इस काम में (यूरोपीय) मेनर असफल रहे थे। उन्नीसवीं सदी में जब बहुत बड़े पैमाने पर चीजों का उत्पादन होने लगा, तब इस नई परिस्थिति का संघात गांवों ने बर्दाश्त कर लिया और अंत में राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के सम्मिलित आघात से ये समाप्त हुए। अगर हम इन बातों पर दृष्टिपात करें तो इनके दीर्घकालीन अस्तित्व पर अचरज की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।[1]

शहर के औद्योगिक एवं वाणिज्यिक वर्ग गांवों में वहां की संतुलित अर्थव्यवस्था के कारण व्यापारिक क्रियाकलाप का विस्तार नहीं कर पाए। इस तरह प्राक् ब्रिटिश भारत में व्यापार और उद्योग का विकास तो सीमित रहा ही ये वर्ग सामंती राजाओं और उनके कुलीन सहचरों पर आश्रित बने रहे। वे न तो गांवों पर अपना आर्थिक प्रभुत्व कायम कर सके और न सामंतवाद के विरुद्ध ग्रामीण जनता का समर्थन ही प्राप्त कर सके, और इस तरह सत्तासीन होने से वंचित रहे।

शेलवंकर के अनुसार एक और कारण से भी प्रारंभिक भारतीय बुर्जुआजी सामंती राजतंत्र को समाप्त न कर सकी और सक्षम पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना में असफल रही। भारत की कृषि व्यवस्था के लिए लोक निर्माण और सिंचाई के कार्य आवश्यक थे और इन्हें ऐसा कोई संगठन ही पूरा कर सकता था जिन्हें राज्य के सारे साधन एवं अधिकार प्राप्त हों। इस तरह भूमिकर की वसूली एवं जनकार्य के नियंत्रण, नियमन और पर्यवेक्षण के लिए राज्य को विभिन्न स्थानीय केंद्रों, अर्थात शहरों में अपने प्रतिनिधि रखने को बाध्य होना पड़ा। इस तरह यद्यपि राज्यों की नियति भूमि पर आश्रित थी, फिर भी भारत में राज्यों ने शहर

को अपने क्रियाकलाप का केंद्र रखा और उन पर अपनी पकड ढीली नही होने दी।'[23]

सभवत इन्ही कारणो से भारतीय बुर्जुआजी राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र मे शीर्षस्थ नही हो सकी और भारत में पूजीवाद प्रबल आर्थिक व्यवस्था के रूप मे नही पनप सका। 'गावो की अभेद्य दृढता और बुर्जुआजी की राजनीतिक नपुसकता के कारण भारतीय अर्थतत्र का विकास अवरुद्ध रहा और पूजीवादी व्यवस्था का स्वत स्फुरण असभव हो गया।'[24]

बाद म इग्लैड की अग्रवर्त्ती बुर्जुआजी ने भारत के सामती रजवाडो की राजनीतिक शक्ति का उन्मोचन किया, देश पर अपना राजनीतिक स्वत्व स्थापित किया और यहा की ग्रामीण एव नागरिक अर्थव्यवस्था का दूर तक पूजीवादी रूपातरण किया। मार्क्स के अनुसार भारतीय इतिहास की यह एकमात्र विशुद्ध सामाजिक क्राति है।

प्राक् ब्रिटिश भारत मे ग्राम सस्कृति का रूप

अब हम प्राक्-ब्रिटिश भारत के लोगो की सामाजिक और सास्कृतिक स्थिति का सर्वेक्षण करें। भारत का सारा मानव समाज अनेकानेक गावो मे फैला बटा था। इन गावो का बाहर की दुनिया से कोई सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक सपर्क नही था। इसलिए गावो के अधिकाश लोगो का मस्तिष्क पूर्णत विकसित नही हो सका।[25] बाहर की दुनिया से गावो का आर्थिक विनिमय नही के बराबर था और बैलगाडी आवागमन का एकमात्र साधन थी। फलस्वरूप गाव की आबादी एक छोटी इकाई बनकर रह गई जिसकी अपनी अलग जिन्दगी थी। केवल देहाती मेला, तीर्थयात्रा या शादी-ब्याह जसे मौको पर ही गाव वाले बाहर जाते थे, और वह भी महज कुछ दिनो के लिए।

गावो के अदर आदिम कृषि और उद्योग पर आधारित आर्थिक जीवन निम्न-स्तरीय और स्थिरप्राय रहा। युगो तक आदिम हल-बैल और कारीगर के अनगढ औजारो से उत्पादन का काम होता रहा। फलस्वरूप श्रम की उत्पादक शक्ति भी सीमित रही और क्रूर एव लोभी सरकारो को लगान देने और रोजमर्रे की आवश्यकताओ की पूर्ति के बाद जनसाधारण के पास न तो उत्पादन का कोई अधिशेष ही बचता था और न भौतिक एव सास्कृतिक जीवन के उच्चस्तरीय विकास के लिए समय ही।

गावो के लोगो का वैज्ञानिक ज्ञान और भौतिक उत्पादन सबधी उनकी तकनीक दोनो अत्यन्त तुच्छ और नगण्य थे। आवागमन के साधनो और बाहर की दुनिया से विनिमय सबधो के अभाव के अलावा उपरोक्त कारणो से भी गावो के लोगो की जिंदगी अनिश्चित रही। फसल की बर्बादी या बाढ के वक्त तो सारे गाव के अस्तित्व पर ही खतरा आ जाता था क्योकि बाहर से किसी की मदद नही मिल सकती थी।

अनिश्चित आर्थिक जीवन और प्राकृतिक विपत्तियों के सामने निस्सहायता आदि के कारण गाव वालो की विचार पद्धति अधविश्वास, धार्मिक रहस्यवाद और प्राकृतिक शक्तियो की अपरिष्कृत उपासना के रास्ते विकसित हुआ। उनके जीवनदशन म पराजय और नैराश्य की भावना बलवती रही।

विभिन्न जातियो म बटे होने के कारण गावो म व्यक्तिगत पहलशक्ति दुस्साहस की भावना और नए रास्ते की खोज करने की आकाक्षा को कोई प्रश्रय नही मिल सका। जाति प्रथा का दैवी विधान मानकर इसके सारे प्रतिबधो और प्रतिरोधो के सामने गाववाले आज्ञाकारी की तरह नतमस्तक थे और ग्रामीण जीवन की सामाजिक और आर्थिक सरचना म इश्वरकृत जाति प्रथा उनका जो स्थान और कम नियत कर देती थी उसे निश्चेष्ट रूप स मान लेते थे। गावो का आदमी जीवन की धार्मिक रहस्यवादी व्याख्याओ से पूणतया अभिभूत था और उस शायद ही कभी यह इच्छा हुई हो कि वह तत्कालीन सामाजिक सरचना और उसकी आधारभूत विचारपद्धति पर किसी प्रकार का अन्वेषण अनुसधान या विचार विमश करे। गावो का पथक और सवत्त सामाजिक जीवन बाढ या सूखा जसी प्राकृतिक शक्तियो द्वारा मानवीय प्रयास पर तुषारापात जाति प्रथा और एकतत्रवादी सयुक्त परिवार और धार्मिक रहस्यवादी दशन जिनस सारी पोगा पथी शक्तियो को बल मिला य सब मिलकर बौद्धिक अभिक्रमशीलता, प्रयोग एव अन्वेषण की भावना और विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का गला घोटते रहे।

सदियो तक गावो की सामाजिक और बौद्धिक स्थिति अनुवर, अधविश्वास पूण सकुचित और रूढ बनी रही। ये गाव आर्थिक प्रवाहहीनता, सामाजिक प्रतिक्रियावाद और सास्कृतिक अधेपन के अलग अलग दुग थे, लगभग सारा भारतीय समाज इन्ही स्वायत्तशासी स्वपर्याप्त स्वमत गावो मे केंद्रीभूत था और यह मानव समाज एक ही प्रकार के अधविश्वासो प्राचीन देव देवियो, सकुचित ग्रामीण एव जातीय चेतना और एक स्थाइ दृष्टिकोण के शिकजे म युगो तक पडा रहा।

यदाकदा जैसे समुद्रगुप्त या अकबर के शासनकाल मे, भारत के बहुत बडे भूभाग म एकछत्र राज्य स्थापित हुआ लेकिन उन दिनो भी स्वायत्तशासी गावो की मूलभूत जीवन प्रक्रिया अक्षुण्ण रही। गावो के जीवन म एसी घटनाओ का केवल इतना ही असर पडता था कि लगान अब पुराने के बदले नए सम्राट को दिया जाना था। लेकिन गाव स्वपर्याप्त बने रहे, पुरानी समितिया और पुराने विधानो द्वारा उनका शासन चलता रहा, सामाजिक और आर्थिक पिछडेपन के कारण बौद्धिक एव मानसिक जडता बनी रही। भारतीय इतिहास म लगातार जो गतिक, राजनीतिक और धार्मिक उथल पुथल होती रही उसके बावजूद रूढिवादी, अपरिवतनशील, आत्मनिभर गावो की असली तस्वीर लगभग ज्यो की त्यो बना रहा।

राष्ट्रीय चेतना के उदभव के लिए आवश्यक है सम्मिलित और एकतापूण

राजनीतिक और आर्थिक जीवन, और इसके अभाव मे भारत म राष्ट्रबोध का जागरण नही हो सका। एकीकृत राष्ट्रीय जीवन तभी सभव है जब उत्पादक शक्तिया काफी विकसित हो, श्रम विभाजन सावजनीन हो और व्यापक आर्थिक विनिमय क्रियाशील हो। इसके लिए यातायात और सचार क साधनो का विकास आवश्यक है, इनसे आर्थिक जीवन और अधिक सपुष्ट होता है लोगो का इधर-उधर आना जाना बढता ह, बडे पैमान पर सामाजिक और बौद्धिक विनिमय सभव हो पाता है और इस तरह सारे देश मे एकता की भावना बढती है।

आत्मनिर्भर गावो के युग मे देश मे सम्मिलित आर्थिक जीवन नही के बराबर था और इसलिए सम्मिलित आर्थिक जीवन की चेतना आविर्भूत न हो सकी।

इसी तरह सम्मिलित राजनीतिक अस्तित्व की चेतना का भी अभाव था, क्योकि गावो के सामाजिक वचारिक, आर्थिक और प्रशासनिक जीवन पर राज्य का कोई प्रभाव नही था। यदा कदा योग्य और विजयी राजा देश म जो राजनीतिक और प्रशासनिक एकता कायम कर सके वह मात्र ऊपरी एकता थी। राजनीतिक परिवतनो का गावो की आर्थिक व्यवस्था पर तो कोई असर नही ही पडा उनका सामाजिक और नैयायिक जीवन भी पहले की तरह पचायत समितियो और पुरानी सहिताओ द्वारा शासित रहा।

इसका यह अथ नही कि अपने दीघकालीन इतिहास मे गावो को या गावो म कुछ हुआ ही नही। अपनी स्वपर्याप्तता और स्थय के बावजूद गाव जटिल आतरिक सामाजिक क्रियाकलाप की रगभूमि रहे। उनके अपन सामाजिक त्योहार, रामलीला के रूप मे अपना अनगढ सा रगमच, कथाओ के रूप म धार्मिक सभाए, और ऐसे अ य सामुदायिक आयोजन थे। हिंदू धम मे ही नई प्रवत्तियो का ज म होता रहा और फिर बौद्ध धम जैसे नए धर्मो का भी उदय हुआ। धार्मिक उथल पुथल के ऐसे दिनो मे लोगो के नए धम या सप्रदाय मे दीक्षित करने के लिए धम के उपदेशक गावो मे गए या फिर शकराचाय वल्लभाचाय चत य, रामानुज आदि लोगो ने सनातन धम की ही नई व्याख्याए प्रस्तुत की और गावो म अपने सप्रदाय और अपने दल की शाखाए स्थापित की। इस तरह के धार्मिक प्रचारात्मक काय के कारण कभी-कभी सारा का सारा गाव हिंदू से बौद्ध हो गया या वष्णव से शैव हो गया। लकिन धार्मिक दृष्टिकोण मे एसे परिवतनो के बावजूद गाव के लोगो की चेतना का कोई विस्तार न हो सका और न उनमे राष्ट्रीय चेतना का ही उदभव हुआ। उनका दृष्टिबोध पहले जसा ही सकीण बना रहा। हिंदू के बदले वे अब अपने को बौद्ध मानन लगे, या वैष्णव के बदले शव लकिन भारतीय होने की राष्ट्रीय चेतना उनके दिमाग म नही आई। भारत की एकता की बात सूझी भी तो धार्मिक अथ म, भारत उनके लिए, धम के सूत्र म बधे हुए हिंदुओ का देश था। उनके दिमाग मे यह बात नही भारत भारतीयो का देश है उन सब लोगो का देश है जो भारतीय भूमि

है और आर्थिक राजनीतिक इकाई के अंग हैं। उनकी चेतना धार्मिक वैचारिक एकता की चेतना थी, न कि राजनीतिक आर्थिक एकता (राष्ट्रवाद) की।*

प्राक् ब्रिटिश भारत में नागरिक संस्कृति का रूप

आत्मनिर्भर गांवों का आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन रूढ़, अनुर्वर, (लगभग) अपरिवर्तनशील, और अपनी चौहद्दी में ही सीमित था। इसके विपरीत नगरों का जीवन गतिशील, संपन्न अपेक्षाकृत अग्रगामी और बाह्य जगत के निरंतर संपर्क में रहा। शहर प्रशासनिक केंद्र थे, शाहंशाह और उनके राजदरबारियों के निवास स्थल थे, या वाणिज्य के केंद्र के रूप में अन्य शहरों और विदेशों से उनके जीवित संबंध होते थे, या धर्म स्थल होने के कारण बाहर से यात्रियों का अविरत आवागमन चलता रहता था। शहरों को राजा और अभिजात वर्ग, संपन्न वणिक समुदाय और उच्च पदाधिकारी धार्मिक सभ्रांतजन की जटिल एवं विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती थी, इसलिए उनकी अर्थव्यवस्था अधिक अग्रवर्ती और अवकलित थी। राज्य द्वारा गांवों से एकत्र भूमिकर का बहुलांश नगरों में खर्च होता था। वणिक समाज अपने लाभ का उपभोग शहरों में ही करता था। इस तरह शहरों की आर्थिक व्यवस्था को प्रश्रय मिला और वहां की उत्पादन प्रक्रिया निर्धारित हुई। अच्छे किस्म के सूती और रेशमी कपड़े, कलात्मक धातुकर्म और संगमरमर के सामान, दुष्प्राप्य अभिजात और वणिक वर्ग के लिए विलास के साधन और उपकरण, युद्ध के अस्त्र शस्त्र, ऐसे सारे उद्योगों का वहां जन्म हुआ।

राज्य के भूभाग की संपत्ति का अधिकांश शहरों में आया और वहीं खर्च हुआ, और इस तरह वहां के लोगों का आर्थिक जीवन अपेक्षाकृत उन्नतिशील रहा। देश के धन के बहुत बड़े भाग को जो हथिया लेते थे वे धनी वर्ग भी शहरों में ही रहते थे। राजा महाराजा, अभिजात वर्ग, वणिक समाज, इनके पास धन

---

*बौद्ध धर्म का उत्थान, सनातन धर्म को फिर से प्रतिष्ठित करने के लिए शंकराचार्य का अभियान, रामानुज का भक्ति आन्दोलन, हिंदू धर्म और इस्लाम के समन्वय की दिशा में कबीर और नानक जैसे लोगों के सत्प्रयास, इनसे भारतीयों के बीच न तो राष्ट्रीय भावना का जन्म हो सकता था और न हुआ। रहस्यवादी क्रांतियों ने भारतीयों की धार्मिक वैचारिक प्रवृत्तियों में कुछ परिवर्तन अवश्य किए लेकिन राष्ट्रीय दृष्टिकोण विकसित नहीं कर सके। राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास हो, इसके लिए वस्तुनिष्ठ आधार के रूप में समन्वित अर्थव्यवस्था, विस्तृत आर्थिक और सामाजिक विनिमय के लिए आवागमन के सर्वतगामी तीव्र साधन और अंग्रेजों द्वारा लाए गए सम्मिलित राजतंत्र का अस्तित्व आवश्यक है। भारतीय सामाजिक अधिरचना में आमूल परिवर्तन के बिना रहस्यवादी क्रांति स्पष्ण क्रांति होकर रह गई। ब्रिटिश शासन के चलते भारतीय सामाजिक अर्थव्यवस्था का आधार ही बदल गया है।

—डी० पी० मुखर्जी पृ० 28

का जो अधिशेष होता था उससे वे कलाकारो, दार्शनिको, कवियो, चित्रकारो, सगीतज्ञो, मूर्तिकारो, भव्य स्मारको का निर्माण करनेवाले वास्तुशिल्पियो विशाल प्रासादो के अभियन्तो ज्योतिषियो वैद्यो और अन्य वैज्ञानिको को अपने यहा रख सकते थे और उनका भरण पोषण कर सकते थे।

इस तरह गावो के सीमित, सकुचित एव निम्नकोटि के जीवन के विपरीत शहरो म समृद्ध सास्कृतिक और आर्थिक जीवन विकसित हुआ। वस्तुत शहरो म महान दार्शनिक और कलात्मक आदोलन बढे और जीवत हुए। अभिजात और वणिक वग इन आदोलनो के सरक्षक थे।

सैनिक, राजनीतिक, व्यापारिक या सास्कृतिक कारणो से शहरो के बीच लोगो का आवागमन भी लगातार बडे पैमाने पर होता रहा। इन शहरो म देश के अन्य शहरो से ही नही, उन अन्य देशो से भी लोग आते रहे जिनसे भारत युगो से सबध रखता बढाता आया था। बाहर के दोस्त देशो से लोग राजदूत, यात्री, वणिक दार्शनिक कलाकार और धम प्रचारको के रूप मे आए। देश के भीतर के शहरो मे ही नही वरन दूर दूर के देशो मे भी इन शहरो के प्राय आर्थिक और सास्कृतिक विनिमय सबध थे।

उन दिनो की सारी वैज्ञानिक दार्शनिक कलात्मक और धार्मिक सस्कृति शहरो म ही केंद्रित थी। गावो म अधविश्वास और प्रकृति एव देवो की उपासना के अपरिष्कृत रूप प्रचलित थे। लेकिन प्रबुद्ध नागर समुदायो मे सूक्ष्म जटिल, सुविवेचित और व्यापक आदशवादी एव आध्यात्मवादी दशन पल्लवित पुष्पित हुए। अपने युग की समग्र सस्कृति के विविध रूपो का प्रतिनिधित्व करने वाले कलाकारो दार्शनिको, साहित्यिको और वैज्ञानिको का हिंदू बौद्ध मुस्लिम सम्राटो न राज्य के सरक्षण मे भरण-पोषण किया। यह राजकीय सरक्षक अपने दरबार मे सतो और कलाकारो से घिरा रहता था, जो भारतीय इतिहास म नव रत्न के नाम से मान्य रहे नवरत्न अर्थात सस्कृति के नौ प्रमुख रूपो के प्रतिनिधि।

अशोक, विक्रमादित्य, भोज एव अन्य बौद्ध और हिंदू सम्राटो के दरबार मे, और वैसे ही अकबर, शाहजहा और दूसरे मुगल शाहशाहो के दरबार म भी कलाकारो, वैज्ञानिको, विचारको की भीड लगी रहती थी। कालिदास, बाण एव हिंदू साहित्य के अन्य प्रभासमान नक्षत्र राजदरबारो के ही आकाश म चमके। मध्यकालीन भारत का सवश्रेष्ठ सगीतज्ञ और सगीत म नई प्रवृत्तियो का प्रतिष्ठाता अकबर के सरक्षण म रहता था। ज्योतिर्विदो का राजा प्रोत्साहन और सबल प्रदान करते थे और उनके लिए वेधशालाओ का निर्माण भी करते थे, जैसा राजा जयसिंह न किया। उन युगो का जो कुछ इतिहास हम उपलब्ध है उसे राजदरबार के इतिहास कारो न ही लिखा।

हिंदू और मुस्लिम भारतीय सस्कृति प्रथमत और मूलत धार्मिक थी। इनक बौद्धिक और कलात्मक कृतित्व म धम की प्रधानता थी। श्रा सेली न कहा है

हिंदू सस्कृति धार्मिकता से ओत प्रोत थी और धम इस सस्कृति का विशिष्ट

लक्षण था। हिंदू न्यायशास्त्र धर्म से संलग्न था, न्याय की पुस्तकें दैवी प्रेरणा से प्रसूत मानी जाती थीं। धर्म और साहित्य का संबंध इतना घनिष्ठ था कि विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखे गए साहित्य का अधिकांश भक्तिवादी है। कला (सामान्यत) लोगों की सौंदर्यवादी संवेदनशीलता की प्रतिच्छवि है लेकिन वह भी धर्म से संबद्ध और अनुशासित रही। स्थापत्य की अभिव्यक्ति मंदिरों के निर्माण में हुई और मूर्तिकला की, जो धार्मिक विबवाद से प्रभावित रही अभिव्यक्ति मंदिरों की दीवारों पर की गई नक्काशी में हुई।[6]

यही बात मुस्लिम संस्कृति के बारे में भी सत्य है उसकी भी प्रकृति मूलत धार्मिक थी। युगों की घनिष्ठता के फलस्वरूप जब हिंदू और मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय की दिशा में प्रयास शुरू हुए तब भी दोनों संस्कृतियों का मूल धार्मिक स्वर इस सांस्कृतिक समन्वय में परिव्याप्त रहा।

भारतीय संस्कृति की धार्मिक वैचारिक एकता

प्राक् ब्रिटिश भारतीय सामंतवादी कृषि प्रधान समाज की संस्कृति (दार्शनिक, धार्मिक इत्यादि) प्रबलत रहस्यवादी थी। इसका कारण यह था कि यह समाज निश्चल और दुर्गम्य था एवं इसका आर्थिक विकास निम्न स्तर का था। इस समाज में जो परिवर्तन हुए वे परिमाणात्मक थे गुणात्मक नहीं। मूलत यह शताब्दियों तक एकरूप रहा। ऐसे सामाजिक भौतिक अस्तित्व के कारण अनिवार्यत रहस्यवादी जीवन दर्शन का जन्म हुआ। दर्शन कला और संगठन के क्षेत्र में इस समाज की उपलब्धियों का रूप निर्धारण इस रहस्यवादी दृष्टिकोण ने ही किया।

अगर यह मान भी लें कि भारतीय समाज स्थिर नहीं था, तब भी सब मिलाकर यह आवर्त्ती तो अवश्य था। और जब युगों तक यह ऐसा ही बना रहा तो स्वाभाविक था कि, जैसा पी० सोरोकिन ने कहा है इसमें संस्कृति के आदर्शवादी, भावप्रधान लक्षण आ जाएं। फलस्वरूप सामाजिक क्रिया कलाप अर्थात आत्मतोष के लिए आवश्यक साधन और साध्य की प्रकृति के बारे में न्यूनाधिक परिभाषित विचारों का जन्म हुआ, सौंदर्य, नीति और समाज संबंधी समान मूल्यों और व्यवस्थाओं एवं सत्य ज्ञान, आत्मा और चरम वास्तविकता के बारे में समान धारणाओं की उत्पत्ति हुई। दूसरे शब्दों में कहें तो हिंदुओं, बौद्धों और मुसलमानों ने सम्मिलित तौर पर ब्रह्मांड की ऐसी धारणा बना ली थी जिसके अनुसार आत्मा का अस्तित्व चिरंतन सत्य था क्षणिक और इंद्रियजन्य के प्रति विरक्ति ही काम्य थी, और जिन प्रक्रियाओं से आत्मा चरम सत्य के अधीनस्थ रह सकती थी और अंतत उसमें विलीन हो जाती उन प्रक्रियाओं के प्रति आसक्ति ही जीवन का आदर्श थी। व्यवहारत व्यक्ति के लिए इसका अर्थ था कि रहन सहन और उपासना पद्धति के कारण वह अपने आंतरिक जीवन पर नियंत्रण के लिए मुक्त हो

गया। समाज मे इस चिंतन शैली के फलस्वरूप ऐसी पद श्रृखला का निर्माण हुआ जहा केवल वे मूल्य शाश्वत और महत्वपूर्ण थे जिनसे आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति की सभावना होती इस श्रृखलाबद्ध समाज का नेतृत्व जिन लोगो के हाथो मे था, आध्यात्मिक सस्कार उनका एकमात्र जीवन व्यापार नही तो उनकी चरम उपलब्धि तो अवश्य था। पाश्चात्य वाणिज्य के प्रादुर्भाव के पहले भारत की मूल विचार पद्धति ऐसी ही थी। [7]

हिंदू और मुस्लिम दोनो सस्कृतिया धमप्रधान थी, और शहरा मे ही राजाओ, अभिजातवर्गीय लोगा और सपन्न वणिक समुदाय के सरक्षण म फली फूली। बनारस, पुरी मदुरा, नासिक, मथुरा, सोमनाथ पाटन जसे धार्मिक उपासना के अनेकानेक केंद्रो के विशाल हिंदू मदिरा का हिंदू सम्राटो, अभिजात वग और धनी व्यापारियो ने बनवाए। वस्तुपाल और तजपाल नामक दो धनी जैन व्यापारियो ने डेलवाडा मे जा जैन मदिर बनवाया वे अपने सादय एव स्थापत्य गुण के लिए सुप्रसिद्ध है। अशाक के विख्यात शिलास्तभ जा सारे भारत मे बिखरे हैं और जिन पर बौद्ध धम के तात्विक नीति सिद्धात अकित है इस बात के प्रमाण है कि प्राचीन भारत मे राजकीय सरक्षण मे महान कला पल्लवित पुष्पित हुई। आज भी भारत के लगभग प्रत्येक नगर मे कोई न कोई ऐसा मदिर है जो प्राचीन काल की धार्मिक लगन और कलात्मक प्रतिभा का परिचय देता है।

कला और सस्कृति के क्षेत्र म मुस्लिम सम्राट भी किसी से पीछे नही थे। दिल्ली, आगरा, लाहौर, अहमदाबाद और अन्य शहरो मे मुस्लिम राजाओ द्वारा बनाई गई मसजिद इन राजाआ के गहरे कलाप्रेम और उत्साह के प्रमाण हैं। जिन कलाकारो ने इन भव्य मसजिदा का निर्माण किया वे उन्ह शाही सरक्षण के बिना कभी नही बना पाते।

अत्यत शुद्धतावादी औरगजेब के अतिरिक्त अन्य सारे मुगल शाहशाह कला के अनन्य पोषक थे। सारी दुनिया मे मशहूर ताजमहल जिसे सगमरमररचित स्वप्न की सज्ञा दी गई है, मोती मसजिद, दिल्ली और आगरा के राजप्रासाद जो अभियत्रण और कला नैपुण्य के उत्कृष्ट समन्वय है, श्रीनगर (शालीमार और निशातबाग) और लाहौर के खूबसूरत बगीचे, उस युग के कलात्मक उत्थान और कला के लिए राजाओ द्वारा दिए गए समथन सबल के प्रभावपूण और अकाटय प्रमाण है।

शहर उन दिनो के बौद्धिक जीवन के भी दुग थे। राजदरबार म राजा के सम्मुख विरोधी और प्रतिद्वद्वी दशनो के प्रतिपादको के बीच दाशनिक शास्त्राथ होता था। प्राय दूरस्थ देशो और नगरो से भी विभिन्न धर्मो के सुयोग्य समथको को स्थानीय धमवेत्ताओ से शास्त्राथ के लिए राजा आमत्रित करते थे, जिससे यह देखा जा सके कि कौन सा धम सर्वोत्तम है।

भारत और विदेशो के सपक के बारे मे ओ मली ने कहा है, 'मध्य एशिया, तुर्की, फारस, उत्तरी अफ्रीका से सत, कवि वास्तुकला विशारद और यात्री भारत

आए। फिरिश्ता नामक इतिहासज्ञ कैस्पियन सागर के तटवर्ती एस्ट्राबाद से आया था, इब्नबतूता उत्तरी अफ्रीका से आया बाबर ने कुस्तुनतुनिया से वास्तुकला विशारद बुलाए, पर्सियन विद्वानो के अनुसार ताजमहल का नक्शा बनाने वाला कुस्तुनतुनिया का ही एक तुर्क था।[8]

इसके पूर्व, हिंदू संस्कृति जावा, बाली, सुमात्रा, मलाया और पूर्वी द्वीप समूह के अन्य टापुओ तक फैली हुई थी। आज भी इनमे से कुछ टापुओ के अच्छे खासे हिस्सो के लोगो के जीवन और रहन सहन पर हिंदू धर्म का प्रभाव है।

प्राचीन काल मे शहर अध्ययन-अध्यापन के भी केंद्र थे। कई शहरो मे पहले हिंदू पाठशालाए चलती थी और बाद मे मुस्लिम पाठशालाए चली। इस तरह प्राक ब्रिटिश काल मे शहरो का सास्कृतिक जीवन अत्यत सपन्न और जटिल था।

राष्ट्रीय भावना का अभाव

लेकिन नगरो का यह सपन्न सास्कृतिक जीवन किसी राष्ट्रीय भावना से अनुप्रेरित नही था। उस युग मे यह राष्ट्रीय भावना न तो कही थी, और न हो ही सकती थी। अधार्मिक धर्मनिरपेक्ष कला भी विस्तार और वस्तु की दृष्टि से राष्ट्रीय नही थी। यह कला किसी राजा की गौरव गरिमा की कथा कहती थी, जैसे कुतुबमीनार, भव्य राजप्रासाद, वास्तुकला द्वारा सुनिर्मित कब्रें, या पति पत्नी के आमरण अखड प्रेम की महत्ता प्रदर्शित करती थी, जैसे, ताजमहल। यह कला अभिजातवर्गीय और धार्मिक हिंदुओ या मुसलमानो की थी यह सारे राष्ट्र की कला नही थी और न उन सामाजिक वर्गो की ही कला थी जो आधुनिक राष्ट्र का निर्माण करते है और जिनकी स्थिति रूपत राष्ट्रीय है और वस्तुत वर्गीय। उन दिनो के शहरी लोगो राजाओ और अभिजातीयवर्गीय, व्यापारी एव कारीगर लोगो की चेतना राष्ट्रीय चेतना नही थी।

प्राक ब्रिटिश भारत मे राष्ट्रीय संस्कृति के उदभव के लिए आवश्यक वस्तुनिष्ठ और भावनिष्ठ तत्व (जैसे सम्मिलित आर्थिक सामाजिक और राजकीय अस्तित्व और इस अस्तित्व की चेतना) विद्यमान नही थे। राष्ट्रीय संस्कृति के लिए सारे समुदाय का राष्ट्र के रूप मे एकान्वित होना आवश्यक है। और यह तभी सभव है जब आर्थिक उन्नति (जैसे, उत्पादक शक्तियो और श्रम विभाजन का पर्याप्त विकास जिससे समाज विनिमय सबधो के जाल मे बुन बध जाए आवागमन के द्रुतगामी साधनो का चतुर्दिक विस्तार, इत्यादि) के फलस्वरूप जाति जीवन पहले तो आर्थिक तौर पर और कालक्रम से सामाजिक तौर पर न्यूनाधिक एकान्वित हो। सम्मिलित आर्थिक जीवन की अपेक्षाए सम्मिलित भाषा के विकास की प्रक्रिया को तीव्र करती है और फिर यह जनजीवन को राष्ट्र के रूप मे सुश्रृखल करने का एक और साधन है। सगठन की विभिन्न अवस्थाओ मे राष्ट्र आर्थिक इकाई की सचेतना विकसित करता है और स्वतत्र राज्य के अस्तित्व की लालसा पुष्ट करता है। राष्ट्र क्रमश ऐसी संस्कृति की सरचना करता है जो सगीत, स्थापत्य,

चित्रकारी नाटक, उपन्यास या समाजशास्त्रीय साहित्य के माध्यम से स्वतंत्र और संपन्न सामाजिक-आर्थिक जीवन के लिए व्यक्तियों, दलों और वर्गों की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करती है। प्राक् राष्ट्रीय ऐतिहासिक काल के सामंती अवशेष या विदेशी प्रभुत्व जैसी जो शक्तियां राष्ट्रीय समाज के विकास को अवरुद्ध करती हैं, राष्ट्रीय संस्कृति उनका पर्दाफाश करती है और उनके विरुद्ध क्रोध एवं शत्रुता की भावना जाग्रत करती है। राष्ट्र के उन्मुक्त भौतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान के पथ में जो अवरोध हैं, राष्ट्रीय संस्कृति अनुनय या चिंतनशील विलाप द्वारा उनका विरोध करती है।

पूंजीवादी आर्थिक प्रक्रियाओं ने विभिन्न समुदायों को आर्थिक और सामाजिक तौर पर एकताबद्ध कर उनकी जगह आधुनिक राष्ट्रों को जन्म दिया है। इन्हीं प्रक्रियाओं ने भारतीय राष्ट्र की भी सृष्टि की है। सामंती व्यवस्था की तरह पूंजीवादी समाज का भी अपना विशिष्ट वर्ग चरित्र है। बुर्जुआ समाज में भी विभिन्न वर्ग हैं, भारत में राजे रजवाड़ों जैसे प्रतिक्रियावादी सामंतशाह, अर्ध सामंती जमींदार, इत्यादि भी इस समाज के अंग हैं। लेकिन नए राष्ट्रीय अर्थतंत्र के फलस्वरूप नए सामाजिक वर्गों का भी जन्म हुआ जैसे बुर्जुआजी के उन्नतशील भाग, क्षुद्र बुर्जुआजी, किसान और सर्वहारा ये वर्ग नवनिर्मित राष्ट्रीय समाज के एकीकृत अंश थे, इनका राष्ट्रीय आधार और राष्ट्रीय विस्तार था। इन वर्गों ने विभिन्न मात्रा में अपने मुक्त विकास पर प्रतिक्रियावादी सामंती तत्वों और साम्राज्यवादी शासन का दबाव अनुभव किया। जैसे जैसे इन वर्गों में दलीय चेतना का विकास हुआ, वैसे वैसे उसी अनुपात में इन वर्गों का विविध और विरोधी वर्ग स्वार्थ भी बढ़ा। इन नए राष्ट्रीय सामाजिक वर्गों की संस्कृतियां रूपतः राष्ट्रीय थीं, लेकिन वस्तुतः वर्ग मूलक, जैसे वर्ग चेतनाशील मजदूरों की संस्कृति मूलतः समाजवादी थी यद्यपि रूपतः राष्ट्रीय बुर्जुआजी राष्ट्रीय सर्वहारा, राष्ट्रीय क्षुद्र बुर्जुआजी और कृषक, इन नए वर्गों की विकासमान संस्कृति भारत की समस्त राष्ट्रीय संस्कृति की सृष्टि करती है, साथ ही इस राष्ट्रीय संस्कृति में देश के विभिन्न भूभागों की बंगाली, गुजराती महाराष्ट्रीय, कर्नाटक इत्यादि नव जागृत राष्ट्र जातियों की अपनी विशिष्ट संस्कृतियां भी समाविष्ट हैं।

जागरणशील सामाजिक वर्गों और राष्ट्रीय उपजातियों की संस्कृतियों से आधुनिक भारतीय राष्ट्र बना है। यह राष्ट्रीय संस्कृति इन दलों के और भारतीय राष्ट्र की संपूर्णता के मुक्त विकास की आवश्यकताओं को प्रतिच्छवित करती है। स्पष्टतः ऐसी संस्कृति प्राक् ब्रिटिश भारत में नहीं पैदा हो सकती थी क्योंकि उस वक्त अपने विभिन्न एवं विशिष्ट अवयवों सहित एक संयुक्त राष्ट्र का जन्म नहीं हुआ था। सामंती और वणिक वर्गों की संपन्न, संश्लिष्ट और व्यापक संस्कृति और जनसाधारण की संस्कृति जो लोककला परीकथा एवं धार्मिक अनुष्ठानों आयोजनों के रूप में प्रस्फुटित हुई प्राक् ब्रिटिश भारतीय समाज की इस द्वैत संस्कृति में राष्ट्रीय विस्तार एवं रूप का अभाव था।

संदर्भ

1 सर चार्ल्स मटकाफ घुर्ये द्वारा उद्धत पृ० 24।
2 शेलवकर पृ० 25।
3 वाडिया एंड मर्चेंट पृ० 234।
4 वहा पृ० 234।
5 शलवकर पृ० 102।
6 वाडिया एंड मर्चेंट पृ० 30।
7 देखें गाडगिल पृ० 10 12।
8 शलवकर पृ० 124 125।
9 गाडगिल पृ० 10।
10 वाडिया एंड मर्चेंट पृ० 31।
11 ब्युकनन पृ० 15।
12 वही पृ० 15।
13 कार्ल मार्क्स पृ० 391।
14 ओ मैला पृ० 355।
15 डी० पी० मुखर्जी पृ० 1 2।
16 देख गाडगिल पृ० 6।
17 कलवटन पृ० 16 17।
18 वही पृ० 18।
19 गाडगिल पृ० 45।
20 शलवकर पृ० 139।
21 वही पृ० 139।
22 वही पृ० 142।
23 वही।
24 वही पृ० 143।
25 गाडगिल, पृ० 12।
26 ओ मेली पृ० 2।
27 मुखर्जी पृ 2 3।
28 ओ मेली पृ० 8।

2

ब्रिटेन की भारत विजय

भारतीय समाज का रूपातरण
अग्रेजो की भारत विजय का परिणाम

पिछले अध्याय मे हम प्राक ब्रिटिश सामती अथतत्र के मूल तत्वो का विवरण दे चुके है। इस अथव्यवस्था के पूजीवादी रूपातरण (सामती अवशेपो के साथ ही सही) की प्रक्रिया काफी लबी है। इस रूपातरण के मुख्य कारण थे, अग्रेजो द्वारा भारत की विजय, ब्रिटिश सरकार की राजनीतिक और आर्थिक नीतिया एव आर्थिक विकास की तीनो दशाओ अथात व्यापार, उद्योग तथा वित्त म अग्रेजी पूजीवाद का भारतीय अथतत्र मे विशिष्ट प्रवेश।

इग्लड, फ्रास, इटली, जमनी और कुछ अय यूरोपीय देशो मे उन्ही देशो के पूजीवादी वर्गो ने सामती अथव्यवस्था के बदले पूजवादी अथव्यवस्था स्थापित की। भारत मे यह काय ब्रिटेन के पूजीवादी वग द्वारा सपन्न हुआ न कि देशी पूजीवादियो के किसी वग द्वारा। इस तरह यहा स्वतत्र पूजीवादी आर्थिक विकास नही हो सका अपितु अग्रेजी पूजीवाद की आवश्यकताओ और हितो न इस विकास की प्रकति और व्यापकता निधारित की। इसीलिए भारत को ब्रिटन का आर्थिक उपनिवेश कहा गया है।

जिस युग मे ब्रिटिश, फ्रासीसी और अयाय विदेशी कपनियो न भारत से सबध स्थापित किया और भारत मे वाणिज्यिक पैठ और राजनीतिक प्रभुत्व का सिलसिला शुरू किया, उस युग म और उसके पहले भी इस देश मे एक देशी वणिक पजीवग था जो निरतर शक्ति सचय करता रहा था। वस्तुत 'अठारहवी सदी के प्रारभिक वर्षो म, मुगल साम्राज्य के विघटन काल म, नए मध्यवग का उदय होने लगा था। स्वपर्याप्त गाव उत्पादक इकाई बने रहे, लेकिन धनोमुख मध्यमवग द्वारा पण्य वस्तुओ के वितरण और विनिमय के फलस्वरूप शहरो मे व्यापारिक केंद्रों का जन्म होने लगा था। इन शहरो की ओर हस्तशिल्पियों के विभिन्न वग आकृष्ट हुए, और यहा विनिमय और निर्यात के लिए उत्पादन काय होता था न कि स्थानीय उपयोग-उपभोग के लिए। मुगल साम्राज्य के खडहरो के बीच जिन

नए राज्यो का उदभव हुआ उनकी राजनीतिक सरचना सामती थी, फिर भी वित्तीय मामलो म उन पर व्यापारी वग का नियत्रण था। लेकिन य नई शक्तिया देश को एकता के सूत्र मे बाध सकें, इसके पहले ही एक एस देश का हमला हुआ जो आर्थिक विकास का अग्रणी था। यह हमला भी एसे वक्त हुआ जब देश सक्रमण और विघटन की स्थिति से गुजर रहा था, जिसके कारण वह विदेशी आक्रमण के लिए नितात आसान शिकार था।'[1]

भारत का नवोदित वणिक वग पर्याप्त आर्थिक और सामाजिक शक्ति क सचय, सामती वर्गो से राजनीतिक सत्ता के अपहरण और पूजीवादी प्रसार क लिए इस शक्ति के प्रयोग द्वारा भारत की सामती के बदले पूजीवादी आधारभूमि पर प्रतिष्ठापित करे इसके पहल ही आर्थिक तौर पर अधिक शक्तिशाली हथियारबद विदेशी वाणिज्य निगमो ने आर्थिक और राजनीतिक प्रभुता क लिए भारत को अपना रणक्षेत्र बना लिया। सवविदित है कि इस सदभ म अतत इस्ट इडिया कपनी की जीत हुई।

अग्रेजो की भारत विजय के कारण

आर्थिक और सामरिक दृष्टि स आगे बढी हुई सुसगठित और एकताबद्ध विदेशी शक्ति द्वारा भारत की विजय के लिए यहा की राजनीतिक स्थिति अत्यत उपयुक्त थी। मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद अराजकता और विनाशकारी पारस्परिक सघर्षों की जो स्थिति उत्पन्न हो गइ वह एसी विजय के अनुकूल थी।

> भारत म अग्रेजी प्रभुत्व की स्थापना आखिर हुइ कैसे ? महान मुगलो की अधीश्वर सर्वोपरि शक्ति खडित की मुगल राजप्रतिनिधियो न और इन राजप्रतिनिधियो की शक्ति खडित की मराठो ने। मराठो की ताकत अफगानो न खतम की और जब सब एक दूसरे के खिलाफ लड रहे थे, तब अग्रेज आ पडे और वे सब को दबा सकन म सफल हो सके। देश पहले से ही मुसलमानो और हिंदुओ के ही बीच नही बरन बनजातियो और जातियो म विभक्त था। यह समाज एसे सतुलन पर आश्रित था जिसका आधार था सदस्यो का पारस्परिक विकषण और वधानिक पाथक्य। ऐसा देश और एसा समाज तो मानो विजय का पूवनिश्चित भक्ष्य था।

लेकिन भारत पर अग्रेजो की राजनीतिक सत्ता का स्वत इतना अधिक महत्व नही जितना इस बात का कि उन्होन इस सत्ता का खास ढग स इस्तेमाल किया, जिसका भारतीय समाज पर गभीर आर्थिक प्रभाव पडा।

भारत पहल भी कई बार विजित हो चुका था लेकिन इन विजयो स केवल राजनीतिक सत्ता म उलट फेर हुए। मूलभूत आर्थिक ढाच पर इनका कोई प्रभाव नही पडा था। आत्मनिभर गाव इस अथतत्र क धुराग्रस्तम्भ थे और इनके आधार थे, धरती पर सामुदायिक स्वत्व ग्रामीण कृषि और उद्योग की पारस्परिक एकता भूमिकर को निश्चित करन क लिए गावो को इकाई के तौर पर इस्तेमाल और

गावो के ही उपभोग के लिए गावो मे ही उत्पादन। अपनी मूल बहिर्रेखा मे प्राक ब्रिटिश भारत की यह आर्थिक सरचना सदियो तक विदेशी आक्रमण, सैनिक उथल-पुथल, धार्मिक उलट फेर और राजवशिक युद्धो के बाद भी बची रही। ऐसी घटनाए चाहे जितनी आश्चर्यजनक और विभीषिकापूर्ण रही हो उन्होने भारतीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ढाचे को ही प्रभावित किया, इसके आर्थिक आधार को नही। आत्मनिर्भर गाव, जिनमे लगभग सारी आबादी रहती थी, अत्यत भीषण राजनीतिक तूफानो और सैनिक विध्वसो के बावजूद अपने मूल रूप मे ही जीवित रहे।

भारत का इतिहास प्रधानत युद्धो और आक्रमणो का ही इतिहास रहा है। इनके बावजूद अगर भारत का सनातन अर्थतत्र ज्यो का त्यो बना रहा तो इसकी वजह है कि बाहर के जो लडाकू और हमलावर लोग हिंदुस्तान आए उनमे किसी के पास कोई ऐसा नया अर्थतत्र नही था जो भारतीय अर्थतत्र से आगे बढा हुआ हो।* वस्तुत उत्तर से हमलावर आए और भारत पर कब्जा कायम कर यहा शासको के रूप मे बस गए वे सब भारत आने के पूर्व ऐसे समाज मे रहते आए थे जो आर्थिक विकास की उस स्थिति मे नही पहुच पाए थे जहा भारतीय समाज था। वे ऐसे समाज के सदस्य थे जो विकास के प्राक् सामती खानाबदोश या अर्ध सामती अवस्थाओ से गुजर रहे थे। उनकी भारत विजय उनका भारत निवास और उनके द्वारा इस देश पर शासन ये सब भारतीय समाज के सामती अर्थतत्र के पुनर्गठन और पुनर्गठन की दिशा मे कुछ नही कर सके। नए शासको ने पुराने आर्थिक आधार को स्वीकार कर लिया।

> अरब, तुर्क, तातार, मुगल, जिन्होने एक के बाद एक भारत पर जीत हासिल की, वे सब हिंदुओ जैसे हो गए। मानो इतिहास के एक शाश्वत नियम की पुष्टि करते हुए, बर्बर विजेताओ ने अपनी प्रजा की श्रेष्ठ सभ्यता से स्वय को परास्त कर लिया[3]।

अग्रेजो की भारत विजय के विशिष्ट लक्षण

अग्रेजो की भारत विजय दूसरे प्रकार की थी। ब्रिटेन मे सामतशाही की जगह आधुनिक बुर्जुआ समाज की स्थापना हो चुकी थी। सामती अर्थतत्र पर आधारित

*प्राक ब्रिटिश भारत मे यूरोपीय सामती अर्थतत्र से भिन्न विशिष्ट लक्षणो वाली एशियाई प्रकार की सामती अर्थव्यवस्था थी। इस अर्थव्यवस्था के आधारभूत तत्व ये थे जमीन पर व्यक्तिगत स्वत्व का अभाव उस पर सारे गाव का सामूहिक अधिकार उद्योग और कृषि की एकता पर निर्मित आत्मनिर्भरता सिंचाई और जन-सेवाओ के विषय मे राजकीय उत्तरदायित्व।

मार्क्स के अनुसार इन्ही लक्षणो ने प्राक ब्रिटिश भारतीय समाज के इतिहास और विकास (सभवत विकास न्यूनता या सापेक्ष स्थैर्य कहना अधिक उचित होगा) को रूपायित किया।

सामती अनैक्य की समाप्ति और पूजीवाद के उदभव और विस्तार द्वारा ब्रिटन ने स्वय को आधुनिक राष्ट्र के रूप मे समन्वित कर लिया था। आधुनिक राष्ट्रो के इतिहास से स्पष्ट है कि पूजीवाद के द्वारा ही लोगो का आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक एकीकरण सभव है।[4]

पूजीवादी राष्ट्र सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक और सास्कृतिक तौर पर सामती जन जीवन से अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली होता है। पूजीवाद उन्नत और परिष्कृत उत्पादन तकनीक पर आधारित है, इसलिए पूजीवाद राष्ट्र सामती जन जीवन से आर्थिक तौर पर अधिक शक्ति सपन्न होता है। पूजीवादी राष्ट्र मे देशभक्ति और राष्ट्रवाद का बड़ा गहन भाव होता है। सामती जनसमुदाय भौतिक दृष्टि से असबद्ध सामाजिक तौर पर असयुक्त और राजनीतिक तौर पर असपृक्त होता है। इसके विपरीत पूजीवादी राष्ट्र सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तौर पर समन्वित होता है वहा राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था सबके लिए एक सी होती है। इसलिए वहा लोग देशभक्ति और राष्ट्रवाद की भावना से ओत प्रोत होते हैं। अग्रेजो की भारत विजय के सपूर्ण इतिहास मे शायद ही कोई अग्रेज मिलेगा जिसने भारत मे अग्रेजो के स्वार्थ के प्रति गद्दारी की हो, यद्यपि ऐसे सैकडो हिंदुस्तानी मिलेंगे राजे रजवाडे सिपहसालार, वणिक जो अग्रेजो से मिल गए और जिन्होंने भारत पर उनका प्रभुत्व कायम करने मे मदद दी। अपने सामाजिक आर्थिक पर्यावरण के कारण पूजीवादी राष्ट्रो के लोक जीवन मे राष्ट्रीय एकात्मता, अनुशासन, देश प्रेम सहयोग की आदत, सगठन की योग्यता आदि अन्यतम रूप से विकसित है।* इसमे रचमात्र भी आश्चर्य नही कि पूजीवाद ब्रिटेन ने असयुक्त सामती भारत पर आसानी से विजय हासिल कर ली।

भारत की आर्थिक सरचना पर प्रभाव

भारत पर पहली बार अब एक पूजीवादी राष्ट्र का शासन था और इसका भारत की आर्थिक सरचना पर बहुत गहरा प्रभाव पडा। भारतीय समाज के पुरातन आर्थिक आधार का उन्मूलन कर उसकी जगह पूजीवादी व्यवस्था की स्थापना किए बिना ब्रिटेन अपनी खुद की पूजीवादी आर्थिक आवश्यकताओ के लिए

---

*यह खयाल रखना होगा कि ऐतिहासिक तौर पर सामतशाही से उच्चतर व्यवस्था होने पर भी पूजीवादी समाज परस्पर विरोधी और असगत स्वार्थों वाले विविध युद्धरत वर्गों मे विभक्त है। फिर भी अपने उद्भव के प्रारभिक चरण में राष्ट्रीय बुर्जुआजी नियमन, प्रगतिशील सामाजिक दलो को राष्ट्रीय एकता के सूत्र मे बाध पाती है और उनके बीच राष्ट्रवादी भावना का प्रचार प्रसार करता है एव सामतशाही के विरुद्ध आदोलन, समाज के जनतात्रिक पुनर्गठन और पूजीवादी सगठन और विस्तार की योजनाओ मे उसे उन प्रगतिशील तत्वो का समर्थन प्राप्त होता है। पूजीवाद के ह्रास और वर्ग-सघर्ष के सिद्धात पर आधारित श्रम आन्दोलनो के विकास के युग मे इस तरह का समन्वय अधिकाधिक कठिन होने लगता है।

औपनिवेशिक भारत का समुचित उपयोग नही कर सकता था। भारत पर अंग्रेजो के राजनीतिक प्रभुत्व के विस्तार की दिशा मे उठाया गया हर कदम पुरानी अथव्यवस्था के विघटन और नए आर्थिक रूपा के उन्नयन की दिशा मे ही अलग कदम था।[5]

भारत पर अंग्रेजा के निरतर वधनशील प्रभुत्व का इतिहास प्राक ब्रिटिश भारत की सामती अथव्यवस्था के पूजीवादी रूपातरण का भी इतिहास है, चाहे यह रूपातरण अधूरा और विकृत ही क्यो न रहा हो। पुराने भूमि सबधा एव हस्तशिल्प उद्योग के ह्रास और उनकी जगह नए भूमि सबधा और आधुनिक उद्योगो के उदभव से भी इसका बडा घनिष्ठ सबध है। अंग्रेजा के राजनीतिक प्रभुत्व के विकास के साथ साथ पुराने उद्योगा और भूमि व्यवस्था पर आधारित पुरान वर्गों का विनाश हुआ और नए भूमि सबधा और नए उद्योगा पर आधारित नए वर्गों का उदय हुआ है। गावा के समुदायतत्र (कम्यून) की जगह आधुनिक भूमिधर या जमीदार आविभूत हुए और जमीन पर उनकी निजी मिलकियत कायम हुई। ब्रिटिश शासन काल में स्थापित आधुनिक उद्योगा और आवागमन के साधनो के कारण नए वर्गो का जन्म हुआ, जैसे पूजीवादी वग, उद्योग धधो और यातायात मे लगे हुए मजदूरो का वग खेतिहर मजदूर वग काश्तकार वग, नया वणिक वग जो आधुनिक देशी विदेशी उद्योगा द्वारा उत्पादित पण्य वस्तुओ के क्रय विक्रय मे लगा था। भारत पर ब्रिटिश प्रभाव के कारण न केवल भारत की आर्थिक वरन सामाजिक सरचना का भी रूपातरण हुआ।

> *इग्लैंड को भारत मे दुहरे लक्ष्य की प्राप्ति करना है उसका एक लक्ष्य विनाशात्मक है और दूसरा रचनात्मक प्राचीन एशियाई समाज का उन्मूलन कर उसकी जगह पाश्चात्य सभ्यता की भौतिक नीव डालना अंग्रेजो न देशी जन जीवन और देशी उद्योगा को समाप्त कर हिंदु सभ्यता का विनाश किया*
>
> *महान मुगलो के जमाने से भी अधिक सगठित और व्यापक राजनीतिक एकता इस नए जीवन की पहली शत थी जमीदारी और रैयतवारी दो भिन्न रूप हैं जमीन पर व्यक्तिगत स्वत्व क जिसका एशियाई समाज म नितात अभाव रहा है।*[6]

ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील महत्व

यह कहा जा सकता है कि आत्मनिभर स्वाधीन ग्रामीण अथतत्र पर आधारित भारत के आर्थिक अनक्य की समाप्ति और पूजीवादी रूपो के आगमन से आर्थिक इकाई के तौर पर भारत का रूपान्तरण अंग्रजी शासन के ऐतिहासिक रूप से प्रगतिशील परिणाम थ। फिर भी, चूकि यह रूपातरण ब्रिटिश व्यापार, उद्योग और बैंकिंग की आवश्यकताओ द्वारा सचालित हुआ और ब्रिटिश स्वार्थों की सिद्धि करता रहा, इसलिए भारतीय समाज का स्वतत्र और अविच्छिन्न आर्थिक विकास

संभव नहीं हो सका।[7] इस तरह ब्रिटिश प्रभाव ने भारतीय समाज की ऐतिहासिक प्रगति को सहायता भी दी और उसे अवरुद्ध भी किया।

वस्तुतः भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन भारतीय जनता और उसके विभिन्न वर्गों के स्वतंत्र विकास पर ब्रिटिश स्वार्थों के दबाव का परिणाम था। ब्रिटिश स्वार्थों को भारत के सामान्य और स्वतंत्र विकास के सामने प्रधानता दी गई, भारत के औद्योगीकरण की दिशा में अवरोध उपस्थित किए गए और उसे सीमित रखा गया, ब्रिटिश उद्योगों की कच्चे माल की आवश्यकता की पूर्ति के लिए भारत के कृषि उत्पादन को विकृत किया गया। संक्षेपतः, भारत को कच्चा माल पैदा करने वाले कृषि प्रधान उपनिवेश और ब्रिटिश उद्योगों के लिए बाजार की स्थिति में रखा गया। शुरू के भारतीय राष्ट्रवादियों ने भारत में ब्रिटेन की प्रगतिशील भूमिका स्वीकार की, लेकिन उन्होंने इस बात की आलोचना भी की कि अंग्रेजी शासन ने भारतीय जनता के स्वतंत्र और स्वस्थ ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास को मूलतः अवरुद्ध किया।* भारत पर ब्रिटिश दबाव की बात इससे ही सिद्ध है कि भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन ब्रिटेन के विरुद्ध था।

पहले हम यह देखेंगे कि ब्रिटिश काल में पूंजीवाद कैसे भारतीय गांवों में प्रविष्ट हुआ। पूंजीवाद के विकास की इस प्रक्रिया को समझना आवश्यक है, क्योंकि इसने गांवों की स्वपर्याप्त अर्थव्यवस्था का विनाश कर गांवों की अर्थव्यवस्था को संयुक्त भारतीय अर्थतंत्र का अंग बनाया। संयुक्त राष्ट्र के रूप में असंयुक्त लोगों का एकीकरण, राष्ट्रीय भाव और चेतना का उदय और राजनीतिक स्वतंत्रता एवं सामाजिक सांस्कृतिक प्रगति के लिए अखिल भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का उद्भव और विकास, आर्थिक एकता ने ही इन सबको वस्तुनिष्ठ भौतिक आधार दिया।

संदर्भ

1 जान स्ट्रैची, पृ. 16।
2 कार्ल मार्क्स, पृ. 58।
3 कार्ल मार्क्स, पृ॰ 59।
4 देखें लाम्बी, टाटा और स्तालिन।
5 देखें आर॰ सी॰ दत्त।
6 कार्ल मार्क्स, पृ. 59 60।
7 देखें गार्गिन वार्निया एंड मर्चेंट और आर. पी. दत्त।

* ब्रिटिश पूंजीपतियों ने समाज के नए तत्वों के जो बीज भारतीय समाज में बोए, उनका फल भारतीयों को तब तक उपलब्ध नहीं होगा जब तक ग्रेट ब्रिटेन में ही सर्वहारा वर्ग का स्थानापन्न नहीं कर देता या जब तक भारतीय ही पूरी तरह शक्तिशाली होकर अंग्रेजी जुए को उतार नहीं फेंकते। —कार्ल मार्क्स।

3

ब्रिटिश शासन काल मे भारतीय कृषि का रूपातरण

भारतीय सामतवाद के मलभूत तत्व

भारतीय सामतवाद यूरोपीय सामतवाद मे यो भिन्न है कि भारत मे भूस्वामियो का कोई ऐसा अभिजात वग नही था जिसका जमीन पर मालिकाना हक रहा हो। प्राक ब्रिटिश भारत म कभी भी जमीन पर किसी की निजी मिलकियत नही रही। शाहशाह से सामती अभिजात्य को महज इतना ही हक हासिल था कि वह गावो से कर वसूली कर सके। सामत गावो का मालिक नही केवल तहसीलदार होता था जो सारा लगान या उसका कुछ भाग अपन लिए रख लेता था।[1] प्राक ब्रिटिश भारत म मेनर जसी कोई सस्था कभी नही थी। शाहशाह भी देश की खेती वाली जमीन का मालिक नही होता था। शाहशाह या राज्य का फसल के कुछ हिस्से पर ही अधिकार प्राप्त था।

> भारत मे जमीन जनजाति (टाइब) या उसके किसी प्रविभाजन विशेष जैसे ग्राम समुदाय, गोत्र और बिरादरी की होती थी, वह कभी राजा की सपत्ति नही मानी गई।
>
> जमीन का स्वत्व कभी कृषक समुदाय के अलावा किसी अन्य के हाथ म नही रहा, न तो सामतो के शासन म और न सम्राटो के ही शासन मे।[3]

चूकि राजा जमीन का मालिक नही था, इसलिए वह ऐसे अभिजात वग की सृष्टि नही कर सका जिसका जमीन पर स्वामित्व हो। भूमि कर वसूल करन का अपना अधिकार ही वह दूसरो को दे सकता था।

राजा किसी प्रकार का हो, दयालु या क्रूर परोपकारी या निरकुश हिंदू बौद्ध या मुस्लिम कभी यह कोशिश नही हुई कि ग्राम समुदाय का जमीन से वचित किया जाए या जमीदारो का कोई वग स्थापित किया जाए। यह इस बात का प्रमाण है कि जमीन को कभी राजा की सपत्ति नही समझा गया। ग्राम समुदाय ही गाव की भूसपत्ति का वास्तविक अधिकारी था। शाहशाह या राज्य का सालाना फसल के अश मात्र पर ही अधिकार था। दूसरी तरफ किसी खास किसान का भी जमीन पर कोई निजी हक नही था। प्राक ब्रिटिश भारत म भूमि

पर किसी भी प्रकार का व्यक्तिगत स्वत्व नही था।

मुगल बादशाहो के युग म जो परिवतन हुए उनके बावजूद आधारभूत कृषि सबधो मे कोई मौलिक परिवतन नही हुआ। रुपए पसे द्वारा कर के सरकारी भुगतान की प्रथा शुरू हुई लकिन जमीन पर गाव का ही कब्जा रहा और परपरागत अधिकारो मे हस्तक्षेप नही किया गया। गाव पूववत कर निर्धारण की इकाई भी बने रह।

भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व का प्रारभ

अग्रेजो की भारत विजय के बाद पुरानी भूव्यवस्था मे आमूल परिवतन का सिलसिला शुरू हुआ। नई लगान व्यवस्था ने गाव की जमीन पर लोगो की जमाने स चली आ रही मिलकियत खतम कर उसकी जगह भूस्वामित्व के दो रूपो को जन्म दिया देश के कुछ भागो मे जमीदारी और अय भागो मे किसान की निजी मिलकियत।

सबस पहल 1793 ई० मे कानवालिस ने बगाल, बिहार और उडीसा म जमीन के स्थाई बदोबस्त के जरिए भारत म जमीदारो का सृजन किया। अग्रज शासको के राजनीतिक पूवाधिकारियो न इन प्रातो म जिन तहसीलदारो को कमीशन के आधार पर भूमि कर की वसूली का अधिकार दिया था, उन्ही म से जमीदारो के इस नए वग की सृष्टि हुई। पहले के जितन एसे तहसीलदार थ वे सब स्थाई बदोबस्त म जमीदार हो गए।[4] बदोबस्त की शर्तो के अनुसार अब उन्हें इस्ट इडिया कपनी की सरकार का निश्चित रकम देनी होती थी।

भारत की पुरानी भूमि व्यवस्था पर अग्रेजो न ही पहली गहरी चोट की। उन्ह खासकर तीन बातो स जमीदारी प्रथा लागू करने के लिए बाध्य होना पडा। एक ईस्ट इडिया कपनी जमीन के बदोबस्त की अग्रेजी न्यायिक एव आर्थिक धारणाए ही अपना सकती थी। इग्लैंड का आर्थिक अतीत भारत मे मूलत भिन्न था। अग्रेजी जमीदारी प्रथा जमीन के व्यक्तिगत स्वामित्व की परपरा और भावना म जन्मी और फली फूली थी, जिसके लिए भारत के आर्थिक इतिहास म कोई मिसाल नही थी। दो प्रशासकीय दृष्टि से ब्रिटिश शासन के शुरू के दिनो म, लाखो छोट किसानो की अपक्षा कुछक हजार जमीदारो से लगान की वसूली आसान और आर्थिक दृष्टि स लाभजनक थी। तीन नवजात अग्रेजी राज को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए, राजनीतिक एव सामरिक दृष्टि से, देश म सामाजिक समथन की आवश्यकता थी। एसी आशा स्वाभाविक थी कि जमीदारो का यह नया वग जो ब्रिटिश शासन के चलत ही जन्मा बना, अवश्य ही इस शासन की मदद करेगा। लाड बटिक न, जो 1828 से 1835 तक भारत का गवनर जनरल था कहा है

> यद्यपि स्थाई बन्दोबस्त कई अर्थों म यहा तक कि अपन मूलभूत तत्वो म भी असफल रहा फिर भी व्यापक जन विद्रोह या क्रान्ति के विरुद्ध सुरक्षा की

दृष्टि से इसका यह बहुत बडा फायदा रहा कि इसके जरिए भूमिधरो का ऐसा वडा दल तैयार हो गया जिसको ब्रिटिश शासन के स्थायित्व से फायदा था, और जिसका जनसाधारण पर पूरा नियत्रण था।

बाद की घटनाओ से यह सिद्ध है कि ईस्ट इडिया कपनी की यह उम्मीद पूरी हुई। ब्रिटिश शासन को हरदम जमीदार वग का तगडा समथन प्राप्त हुआ।

एक अय प्रकार से भी एक दूसरे किस्म के जमीदार वग का जम हुआ। छोटे सरदारो के शुल्क और नजराने को लगान माना जाने लगा और उनके राजनीतिक सेना सबधी और प्रशासनिक अधिकारा को समाप्त कर दिया गया। जमीदार वग के सजन मे तीसरे तरीके का भी इस्तेमाल किया गया। जिन लोगा ने ब्रिटिश सरकार को बहुमूल्य सैनिक या अयाय सेवाए प्रदान की, उन्हे जमीन का अनुदान देकर जमीदार बनाया गया।

जब अनुभव से पता चला कि जमीदारो से निश्चित स्थाई कर की वसूली सरकार के लिए आर्थिक तौर पर लाभजनक नही है तब जमीन के नए बदोबस्त अस्थाई भूमिकर के आधार पर किए गए। जमीन के इन अस्थाई बदोबस्तो मे जो जमीदार बनाए गए उनकी जमीन पर मिलकियत ता स्थाई थी, लेकिन जो भूमि कर वे सरकार को देते थे, उसे बाद मे पुनरीक्षित किया जा सकता था।[4] स्थाई बदोबस्त ब्रिटिश भारत के लगभग 20 प्रतिशत भूभाग, बगाल, बिहार और उत्तरी मद्रास के कुछ हिस्सो म लागू किया गया था। अस्थाई बदोबस्त भारतीय भूभाग के लगभग 30 प्रतिशत भाग, सयुक्त प्रात के अधिकाश, बगाल और बबई के कुछ हिस्सो एव मध्य प्रदेश और पजाब म लागू था।

देश के कुछ भागो मे ब्रिटिश शासन न बडे पैमाने पर भूस्वामित्व की सष्टि की, और कुछ भागा म किसाना की निजी मिलकियत की। इस दूसरी व्यवस्था को रयतवारी कहत है। रैयतवारी प्रथा मे किसान को उस जमीन का स्वामी माना गया जिसे वह जोतता था।

सर टामस मनरो ने जमीदारी प्रथा को भारतीय परपरा के प्रतिकूल माना, और उसकी जगह रैयतवारी प्रथा का अनुमोदन किया। उसके अनुसार यह प्रथा परपरा सगत थी, और इसलिए जब वह मद्रास का गवनर था, उसने 1820 म उस प्रात म इस व्यवस्था की शुरूआत की और उसके बहुत बडे भाग म इसे लागू किया। बाद म रैयतवारी प्रथा दूसरे प्रातो मे भी लागू हुई। यह प्रथा बबई, सिंध बरार, मद्रास, आसाम और कुछ और इलाका मे भी, कुल मिलाकर ब्रिटिश भारतीय भूभाग के 51% भाग म प्रचलित थी।

लेकिन जमीदारी की तरह रैयतवारी भी जमीन पर निजी मिलकियत वाले सिद्धात पर आधारित थी। प्राक ब्रिटिश भारत मे ऐसे व्यक्तिमूलक भूस्वामित्व की प्रथा नही थी। स्पष्टत जमीदारी प्रथा की तरह रैयतवारी भी भारतीय परपरा के प्रतिकूल थी। रैयतवारी प्रथा भारतीय परिपाटियो के अधिक नजदीक

समझी गई और इसलिए उसका समर्थन किया गया। लेकिन वस्तुत इसके अनुसार भी जमीन का निजी बदोबस्त किया गया और भूमिकर फसल के बदल जमीन को आधार बनाकर तय किया गया। इस प्रथा ने भी भारतीय संस्थाओं का वैसे ही हनन किया जैसे जमीन्दारी प्रथा ने।'[7] भारत में जमीन की निजी मिलकियत की प्रथा के कारण जमीन अब पण्य वस्तु हो गई जिसे रेहन किया जा सकता है या खरीदा बेचा जा सकता है।

इस तरह अंग्रेजों की भारत विजय से देश में एक कृषि क्रांति हुई। जमीन की निजी मिलकियत की प्रथा शुरू कर अंग्रेजों ने कृषि के पूजीवादी विस्तार की आवश्यक शर्तों की सृष्टि की। वाणिज्यिक एव अन्य नए आर्थिक तत्वों ने गावों की स्वपर्याप्त आत्मनिभरता की जड़े हिला दी। भारत के प्राक् पूजीवादी सामंती अर्थतन्त्र के पूजीवादी रूपातरण के कारणों में भूमि सबधों का परिवर्तन सबसे प्रमुख है। भारतीय समाज के इस भौतिक रूपातरण के सामाजिक, राजनीतिक सास्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिणामों का विवरण हम आगे करेंगे।

नई भूराजस्व व्यवस्था

जबतक जमीन में सारे गाव की मिलकियत बरकरार रही, तबतक सारा गाव भूमिकर के निर्धारण की इकाई बना रहा। समस्त ग्राम समुदाय सरपच या पचायत के माध्यम से राज्य या मध्यस्थ को गाव के वार्षिक कृषि उत्पादन का निश्चित भाग भूमिकर के रूप में दिया करता था। यह अशानपात बदलता रहा होगा लेकिन कुछेक विरले स्थानों को छोड़कर बाकी जगह गाव ही कर निर्धारण की इकाई होता था और वही भूमिकर देता था।

नई भूमि व्यवस्था में गाव कर निर्धारण और कर भुगतान की इकाई नही रह गए और जमीन की निजी मिलकियत के साथ ही व्यक्तिगत कर निर्धारण और कर अदायगी की प्रथा शुरू हुई। कर निधारण और कर अदायगी का नया तरीका भी शुरू हुआ। सीधे राज्य को या शाहंशाह द्वारा नियुक्त मध्यस्थ को पहले जो लगान दिया जाता था वह वास्तविक फसल का एक भाग होता था और उसकी राशि हर साल भिन्न हो सकती थी। इसकी जगह अब रुपए के नियत भुगतान की प्रथा आई जिसके अनुसार जमीन के आधार पर कर निर्धारण होता था। फसल चाहे अच्छी हो या बुरी अधिक जमीन पर खेती हुई हो या कम पर, साल में रुपए की एक निश्चित राशि देय होती थी। जितने बदोबस्त होते थे उनमें अधिकाश में निजी काश्तकारों पर लगान नियत होता था, चाहे वे खुद खेती करने वाले हों या राज्य द्वारा बहाल जमींदार हों।[8] भूमिकर के निर्धारण और भुगतान के नए रूप और ढग का व्यापक प्रभाव पड़ा।

जब वास्तविक वार्षिक उपज का एक अश भूमिकर के रूप में राज्य को देय होता था, उस वक्त जमीन पर गाव के सामुदायिक स्वत्व को कोई खतरा नही था। किसी साल फसल बर्बाद हो गई तो उस साल का भूमिकर स्वत च्युत हो

जाता था, क्योकि भूमिकर वास्तविक फल के अश के रूप मे निर्धारित होता था। भूमिकर नही अदा कर पाने पर भी जमीन पर गाव के अधिकार को कोई खतरा नही था। नई व्यवस्था म भूमिकर सालाना फसल के बदले जमीन के आधार पर रुपए के रूप म निर्धारित होने लगा और जमीदार या भूमिधर गृहस्थ को राज्य के कर दाय को हर साल हर हालत म पूरा करना पडता था चाहे फसल अच्छी हुई हो या बरबाद हो गई हो।

यह स्वाभाविक और अवश्यभावी था (और ऐसा हुआ भी) लगान की नई व्यवस्था के साथ जमीन के रेहन और खरीद बिक्री की भी प्रथा शुरू हुई। जब फसल या अपनी औकात के बल पर किसान राज्य को भूमिकर नही चुका पाता, तब उसे अपनी जमीन रेहन करनी पडती थी या बय। इस तरह नए शासन तत्र मे जमीन का स्वत्व और स्वामित्व अनिश्चित हो गया। नई भूमि व्यवस्था ने गाव के सामुदायिक जन जीवन और उसकी स्वपर्याप्तता को बेहतर झकझोर दिया।

प्राक ब्रिटिश भारत मे सारा गाव जमीन का मालिक हुआ करता था। परपरागत न्याय के अनुसार जिन कृषक परिवारो को जमीन बाट दी गई थी उनके द्वारा की गई खेती का निरीक्षण सारा गाव करता था। इस तरह कृषि सबधी आर्थिक उत्तरदायित्व तो गाव का था ही, तत्सबधी झगडो के निपटारे का न्यायिक काय भी गाव पचायत के माध्यम से सपन्न होता था।

लेकिन नई भूमि व्यवस्था के अतगत गाव अब जमीन का मालिक नही रहा इसलिए कृषि का अधीक्षक भी नही रह गया। हर किसान को जमीन की निजी मिलकियत केंद्रीभूत सरकारी सत्ता से मिलती थी और उसी को कर चुकाना पडता था। इसलिए किसान का सरकार से सीधा सबध बना। साथ ही अब जमीन सबधी झगडो का निपटारा गाव पचायतो के बदले राज्य द्वारा स्थापित कचहरियो मे होना शुरू हुआ। सत्ताविहीन हो जाने से ग्राम पचायतो की प्रतिष्ठा को बडा आघात पहुचा।

इस तरह नई भूमि व्यवस्था ने गाव को उनके कृषि सबधी आर्थिक एव न्यायिक कार्यो से वचित कर दिया। नई व्यवस्था न उन सबध सूत्रो को भी समाप्त कर दिया जिन्होने जविक रूप से किसानो को गावो से सामाजिक जीवन से बाध रखा था।

केंद्रीय सत्ता के विभिन्न अवयवो ने ग्रामीण जीवन के सारे क्रियाकलाप हस्तगत कर लिए। जो काय पहले स्वायत्तशासी ग्राम सगठन किया करते थे व सारे काय अब सरकार द्वारा सपन्न होने लगे।

प्राक ब्रिटिश भारत मे ग्रामीण उत्पादन का उद्देश्य होता था गाव की औद्योगिक एव कृषि सबधी आवश्यकताओ को पूरा करना। मध्ययुगीन उत्पादन का रूप और चरित्र इसी तथ्य द्वारा निर्धारित होता था। इसी आधार पर ग्रामीण कृषि और उद्योग की एकता सभव थी और बनी थी और इसी आधार पर वे सतुलित थे।

कृषि का वाणिज्यीकरण

नए भूमि संबंधों एवं नियत धन राशि के रूप में कर के भुगतान की प्रथा के फलस्वरूप ग्रामीण उपभोग के लिए उत्पादन के बदले बाजार में विक्रय के लिए उत्पादन शुरू हुआ। इस तरह उत्पादन के रूप और चरित्र में मूलभूत परिवर्तन हुए।[9]

आवागमन के साधनों में विकास और पूंजी के व्यापक प्रभाव के कारण किसान के लिए बाजार की सुविधा उपलब्ध हुई और वह अब मुख्यतया बाजार की दृष्टि से सामान पैदा करने लगा। भूमिकर की राशि प्रायः बहुत अधिक हुआ करती थी और पहले तो लगान की अदायगी के लिए और फिर कालक्रम से महाजन का ऋण चुकाने के लिए किसान को अधिक से अधिक पैसा बनाने की जरूरत हुई। वह विभिन्न कारणों से सूदखोर महाजनों के चंगुल में अधिकाधिक जकड़ता गया और इस तरह उसे बाजार के लिए उत्पादन करने को बाध्य होना पड़ा।

फलस्वरूप एक ऐसे तथ्य का जन्म हुआ जिसे कृषि के वाणिज्यीकरण की संज्ञा दी गई है। किसान अब खास किस्म की फसल उगाने पर जोर देने लगे। अपनी विशिष्ट उपयुक्तता के कारण कई गांवों की जमीन में बस एक ही फसल उगाई जाने लगी, जैसे, रूई, जूट, गेहूं, ईख, तेलहन, इत्यादि।[10]

आवागमन के साधनों की सुविधा के कारण भारतीय कृषि में एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन को, अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में, कृषि का वाणिज्यीकरण कहा जा सकता है। इस परिवर्तन की मुख्य विशेषता यह थी कि अब घरेलू उपयोग के बदले बाजार में बिक्री के लिए चीजों की खेती शुरू हुई आवागमन की सुविधाओं के प्रसार ने गांवों के संपृक्त चरित्र का खातमा करना शुरू किया और गांवों के कृषितंत्र को भी प्रभावित किया। खेती की जाने वाली औद्योगिक फसलों के क्षेत्र विस्तार और विभिन्न जिलों में बोई जाने वाली फसलों के विशिष्टीकरण में यह परिवर्तन परिलक्षित है। निर्यात व्यापार बढ़ा और साथ ही बहुत दूर तक देश का अंदरूनी व्यापार भी कर निर्धारण की नई प्रथा के कारण जब गांवों में मुद्रा अर्थतंत्र का प्रचलन शुरू हुआ तो वह वाणिज्यीकरण की दिशा में पहला कदम था। लेकिन इसका प्रभाव तब तक व्यापक नहीं हो सका जब तक आवागमन के साधनों का प्रसार नहीं हुआ था। धीरे-धीरे जिसके रूप में कर भुगतान की प्रथा खतम होने लगी और मुद्राकर का प्रचलन बढ़ा। लगान की नई निर्धारित राशि और मुद्राकर की नई प्रथा का यह असर पड़ा कि खेतिहर को फसल काटने के तुरंत बाद उपज का एक अंश बेचने के लिए बाध्य होना पड़ा। चूंकि, साधारणतः महाजन को सूद इसी वक्त देना होता था इसलिए किसान को अपनी फसल का बहुत बड़ा हिस्सा बेच देना पड़ता था।[11]

इग्लैंड मे आधुनिक उद्योगो के उदय के साथ ही इन उद्योगो के लिए कच्चे माल की जरूरत बढी। भारत की अग्रेजी सरकार ने ऐसी नीतिया अपनाइ जिनके फलस्वरूप अधिक स अधिक इलाको म ब्रिटिश उद्योगो की जरूरत वाले कच्चे माल की खेती होने लगी। इसके चलते भारतीय कृषि के वाणिज्यीकरण और विशिष्टीकरण की गति और अधिक तेज हुई।

> खेती का वाणिज्यीकरण उन इलाको मे अधिक तेजी से हुआ जहा फसल मुख्यतया निर्यात के लिए उगाई जाती थी। ऐसा खास कर बर्मा के धान, पजाब के गेहू पूर्वी बगाल के जूट, एव खानदेश गुजरात और बरार के रूई वाल इलाको मे हुआ। निर्यात व्यापार मे लगे हुए लोगो के क्रिया कलाप के चलते खेतो की उपज को कम समय मे बदरगाह पहुचाने के लिए कायक्षम बाजार सगठन का जन्म हुआ।[1]
>
> पूरी फसल का बहुत बडा भाग अब घर पर रखे जाने के बदले बाजार मे आ गया। स्वाभाविक था कि जिन फसलो मे बहुत बडे पैमाने पर देशी और विदेशी व्यापार चालू था, उनके अलावा ज्वार, बाजरा, कोदो इत्यादि चीजो का बहुत बडा भाग भी विभिन्न कारणो से बाजार मे आ गया, यद्यपि इन वस्तुओ की देशी तिजारत नही के बराबर थी।
>
> सरकारी कर निर्धारण और महाजन के सूद की अदायगी आदि के कारण ऐसा हुआ। इन दो भुगतानो के लिए किसान को फसल कटने के तुरत बाद बाजार जाना पडता था और जो कुछ कीमत मिल जाए उस पर अपनी फसल का बहुत बडा अश बेच देना होता था। बहुत सारे गरीब किसानो को करीब छ महीने के बाद फसल के समय जो अनाज बेचा था उसका कुछ अश वापस खरीदना पडता था। फसल के समय कीमतें बहुत कम होती थी, लेकिन छ महीने बाद उन्ही चीजो की कीमत किसान के लिए सत्यानाशी सिद्ध होती थी[13]

भारतीय अथतत्र के पूजीवादी रूपातरण के फलस्वरूप स्वपर्याप्त ग्रामीण समुदायो का जो विनाश हुआ उसके बाद लोगो को बडे दुर्दिन देखने पडे और उन्हे आर्थिक दुदशा का सामना करना पडा। फिर भी केवल राष्ट्रीय या विश्वजनीन अथतत्र के विकास की दृष्टि से यह प्रक्रिया प्रगतिशील ही मानी जाएगी। इसने भारतीय लोक के राष्ट्रीय समेकन और विश्व के अतर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण के लिए आवश्यक भौतिक आधार जैसे, भारत का आर्थिक सयुक्तीकरण और भारत का दुनिया के साथ सयुक्तीकरण इत्यादि, के निर्माण की दिशा मे सायक योगदान दिया।

उत्पादन के सीमित सकुचित दृष्टिकोण से भी कृषि का वाणिज्यीकरण आगे का कदम था। कहा गया है कि 'जो परिवतन हो रहे थे उनम पहला स्थान कृषि के वाणिज्यीकरण का है, जो स्वत लाभकर प्रक्रिया है। इसके चलते गल्ले का पहले से अच्छा वितरण सभव हुआ और कृषिजन्य लाभ म वृद्धि हुई।'[14]

अपनी निजी और गाव की सामूहिक जरूरता को पूरा करने के बदले अब भारतीय किसान सारे विश्व के लिए फसल उगाने लगा, और कृषि उत्पादन की दिशा मे परिवतन के फलस्वरूप न केवल फसलो का वाणिज्यीकरण और विशिष्टीकरण हुआ, वरन भारतीय गावो की कृषि और उद्योग की प्राचीन एकता भी भग हुई।

हम ऐसे कारणो का उल्लेख कर चुके है जिनके चलते किसान को बाजार की खातिर फसल उगाने को बाध्य होना पडा। ये है भूमिकर के भुगतान के लिए उसे अधिक से अधिक नगदी का इतजाम करना पडता था और चूकि कालक्रम से किसान प्राय महाजन के चगुल म फस ही जाता था, इसलिए उसे कज के दाव को भी लगातार पूरा करते रहने की जरूरत पडती थी। बिक्री के लिए फसल उगाने का तीसरा कारण भी था। आवागमन की सुविधाओ म दिनानुदिन हो रही प्रगति के चलते किसान अब गाव के बाजार या जिले के मेले म बना बनाया कपडा और अपनी जरूरत की अन्य चीजें आसानी से खरीद सकता था। पहले नियमत वह अपना कपडा खुद बनाता था और सालाना फसल के अश के एवज मे गाव का कारीगर उसकी अन्य जरूरतो को पूरा कर देता था। अब वह ये सब चीजें बाजार म खरीदने लगा। गाव के हस्तशिल्प एव अन्य उद्योगो के पतन का यह भी एक मुख्य कारण था।

ग्रामीण कृषि के वाणिज्यीकरण एव ब्रिटन की सस्ती, मशीन से बनी, चीजो और फिर दूसरे देशो की, और फिर भारत के ही उद्योगो की बनी चीजो के अतरागमन ने गाव के सतुलित अथतत्र पर गहरी चोट की।

परपरागत भारतीय गाव का विघटन

आत्मनिभर ग्रामीण अथतत्र के दो आधार स्तभो, ग्राम कृषि और ग्रामोद्योग के सतुलन के नष्ट हो जाने पर आत्मनिभर गावो के अस्तित्व का आर्थिक आधार कमजोर हो गया।

> जिसके रूप म लगान देने की प्रथा जो विशिष्ट उत्पादन और उपज प्रणाली और उसमे सपृक्त कृषि और उद्योग की अनिवाय एकता मे सनिद्ध है किसान परिवार की लगभग सपूण स्व पयाप्तता और गाव के बाहर के सामाजिक क्षेत्रो के इतिहास और उत्पादन सबधी आदोलनो से इसकी स्वाधीनता इन सब कारणो से भारतीय गावो की अथव्यवस्था, एशिया म जिस प्रकार का सामाजिक स्थैय हम देखते है, उसके अनुकूल है।[15]
>
> फिर, भारत के जिन समुदायो म रूढ, परपरागत समाज सगठन विनष्ट नही है वहा और यूरोप के प्राचीन एव मध्ययुगीन इतिहास म देखा जा सकता है कि इन पुरातन प्राकृतिक अथव्यवस्थाओ की उत्पादन पद्धति कृषि पर आधारित है लेकिन गृह हस्तशिल्प और कारीगर श्रम उस व्यवस्था के दो पाश्व स्तभ है। पूजीवादी उत्पादन पद्धति ऐसे सबधो को समाप्त कर देती है।"[16]

गाव का सामुदायिक और स्वायत्तशासी चरित्र और भी कई कारणो से कमजोर हुआ। गाव की जमीन पर अपने परपरागत अधिकार से तो गाव वचित हुआ ही, समीपवर्ती वनभूमि और चरागाह के मुक्त और नि शुल्क उपभोग का उसका अधिकार भी जाता रहा। सारे गाव के नियत्रण मे किसान और गावो के अन्य लोग इस जमीन का इस्तेमाल जलावन की लकडी के लिए और जानवर चराने के लिए करते थे। गाव की साधारण अर्थव्यवस्था और कृषि व्यवस्था के अनुरक्षण सपोषण के लिए भी इस जमीन का निर्णायक मूल्य था। नए राज्य ने समीपवर्ती भूमि पर गावो के स्वत्व और उसके नि शुल्क उपयोग के अधिकार को समाप्त कर दिया। जिन जगल कानूनो के जरिए परपरागत अधिकारो का अपहरण हुआ, उसके बारे मे पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है, 'कलम की एक ही चोट से, सरकार ने, रैयत के चिरकालीन सामुदायिक अधिकारो को समाप्त कर दिया और इस तरह ग्रामीण समाज मे क्रातिकारी परिवतन हुए।'[17]

गाव की कृषि पर सारे गाव का अधिकार था और वैसे ही समीपवर्ती वन-क्षेत्र पर सारे गाव का अधिकार और शासन था। उसके फलस्वरूप गावो का सामुदायिक जीवन सपन्न समृद्ध रहा। स्वायत्तशासी, आत्मनिभर ये गाव सपूण जैविक इकाई थे। उनके सम्मिलित स्वाथ क्या थे, इसका फसला वे खुद करते थे और इन स्वार्थों की परिपूर्ति के लिए सहयोग मिलता रहा था। इसके कारण गावो म सामुदायिक चेतना उदभूत और सपोषित हुई। जब वनभूमि और कृषिभूमि दोनो पर से गाव सामूहिक नियत्रण और स्वत्व जाता रहा और दोनो निजी या राजकीय सपत्ति हो गए तब गाव वालो के सम्मिलित स्वाथ और आर्थिक सहयोग पर आधारित पारस्परिक सबध सूत्र विनष्ट हो गए। जो आर्थिक काय पहले ग्राम समुदाय सपन्न किया करता था वे अब केंद्रीभूत राज्य सत्ता के हाथ चले गए। सदस्यो के सहयोग और सामुदायिक जीवन पर आधारित स्वायत्तशासी गाव समाप्त हो गए। निजी सपत्ति और बाजार ने भी पुरानी अथव्यवस्था पर आधारित सहयोगी सबधो के अतबधन ढीले कर दिए और अतत उन्ह खतम ही कर डाला।[18]

केंद्रीभूत सरकार ने गाव समुदाय की सुरक्षा का भी उत्तरदायित्व अपने हाथो मे ले लिया। आत्मशासी ग्राम समुदाय का धीरे-धीरे रूप परिवतन होता गया। कालक्रम से यह केंद्रीय सत्ता की प्रशासकीय इकाई मात्र रह गया और राष्ट्रीय, या सच पूछिए, तो विश्व की अथव्यवस्था पर निभर उसका एक साधारण अग हो गया। परपरागत गाव की आर्थिक और प्रशासकीय आत्मनिभरता समाप्त हो गई। सम्मिलित आर्थिक स्वाथ और तज्जन्य सहयोगी सबधो पर आधारित सामुदायिक ग्रामीण जीवन के बदले प्रतियोगिता और सघर्ष पर आधारित नए जीवनरूप विकसित हुए। सहयोगी सामाजिक आर्थिक सबधो का स्थानापन्न कर निजी सपत्ति और बाजार के सिद्धातो पर आधारित प्रतिद्वद्वी आर्थिक सबध सामने आए।

पूजीवादी अथ सबधो की रचना हुई और गावो मे उनका प्रवेश हुआ, अब तक के सारे स्थानीय स्वाधीन केंद्र एकीकत राष्ट्रीय व्यवस्था मे सम्मिलित हुए और इस तरह भारत का राजनीतिक प्रशासकीय एकीकरण हुआ। इन सबके कारण, अब तक अभेद्य से दीख पडने वाले गावो की परपरागत व्यवस्था को घातक चोट पहुची।

उत्पादन, वितरण और विनिमय के नए सामाजिक सबधो के साथ नई सस्थाए उदित हुइ। प्राक ब्रिटिश भारत मे ग्रामीण समुदाय के सदस्यो के आपसी सबधो का निरूपण परपरासम्मत रीति रिवाज के आधार पर होता था। पचायतें इन सबधो का नियमन करती थी और आपसी झगडो का निपटारा भी। अब उनकी जगह नए शासन द्वारा स्थापित कानून सहिता और कानून की कचहरिया जमीन मे निजी स्वत्व पर आधारित नई भूमि व्यवस्थाजन्य जटिल सामाजिक सबधो को रूपायित करने लगी। 'सोलहवी सदी के इग्लड मे जस परिवतन हुए वे वसे ही परिवतन अब यहा कृषि के क्षेत्र म हो रहे थे। इस परिवतन के मूल बिंदु थ, मध्ययुगीन समाज तत्र का विघटन, विदेशी कारको और सपत्तिमूलक भावनाओ का आगमन, अनुबधी सबध और परपरासम्मत तरीका से सहयोगी प्रयत्न के बदले व्यक्तिगत उत्तरदायित्व, उद्यम और स्वतत्रता की भावना की स्थापना।[19]

युगो की चट्टान शिला सी, देखने म अभेद्य, इस प्राचीन परपरागत सस्था, भारतीय ग्राम समुदाय की जसे अब जीवन सध्या समीप आ गई थी। भारतीय ग्राम समुदाय पुरानी राजनीतिक उथल पुथल, युद्ध और आक्रमण का आघात सफलता पूवक सभाल सका था। लेकिन भारतीय इतिहास म अभूतपूव नए प्रकार के राजनीतिक शासनतत्र एव आधुनिक पूजीवाद के वाणिज्यिक और औद्योगिक शक्तिया से परास्त हो गया। आत्मनिभर गावा का विनाश ऐतिहासिक दष्टि से प्रगतिशील काय था।

लेकिन गाव के सामुदायिक जीवन, उनके मधुर मानवीय सबधा और युद्ध एव दुर्भिक्ष के अतिरिक्त अन्य दिनो की पारम्परिक सुरक्षा की भावना का विनाश दुखद तथा कारुणिक भी था।

दूसरी तरफ यह भी ज्ञातव्य है कि गावो की जिंदगी सकुचित और सकीण थी, सास्कृतिक दृष्टि से दरिद्र अप्रगतिशील और निष्क्रिय। अगर भारतीय जन जीवन को राष्ट्रत्व, आर्थिक एकता, बौद्धिक विकास, और सामाजिक अस्तित्व के उच्चतर लक्ष्या की प्राप्ति करनी थी, ता आत्मनिभर गावा का विनाश आवश्यक और अवश्यभावी था।

इतिहास की गति द्वद्वात्मक होती है। अतीत के अच्छे तत्वा के विवधन स नही, वरन उनके गुणात्मक परिवतन से प्रगति आती है। सहयोग और सामाजिक अस्तित्व के उच्चस्तरीय रूप एसे पुराने तत्वा के परिमाणात्मक विस्तार स नही वरन उनके विघटन से उद्भूत होते हैं। यह सत्य है कि गावा के जयनत्र के पूजी

वादी रूपातरण की प्रक्रिया मे ग्रामीण सहयोग की भावना का अत हो गया, लेकिन इस रूपातरण की ऐतिहासिक प्रगतिशीलता इस बात मे निहित है कि इसने आत्मनिभर गावो के पार्थक्य को समाप्त कर उनकी अर्थव्यवस्था को सयुक्त एकीकृत भारतीय, अर्थात राष्ट्रीय अथव्यवस्था का अग बनाया। भारतीय जन जीवन के आर्थिक समन्वय के लिए ऐसी प्रगति ऐतिहासिक दृष्टि से आवश्यक थी। जन साधारण के लिए रेल और बस जैसे आवागमन के साधनो की स्थापना से सामाजिक विनिमय की सभावना तेजी से बढी और गाव के लोगो का भौतिक, सामाजिक एव सास्कृतिक पार्थक्य समाप्त हुआ।

ऐसे लोगा का समन्वित राष्ट्र भला कैसे बन पाता जो विभिन्न केंद्रो मे अलग-अलग, विभक्त जीवन जी रह थे, जिनके बीच भौतिक सपक एव आर्थिक और सामाजिक विनिमय शून्यसम था ? छोटे समूहो म स्वतत्र और पृथक जीवनयापन करनेवाले लोगो की जन चेतना राष्ट्रीय स्तर की भला कैसे होगी ? भौतिक अस्तित्व के प्रतिबध चेतना की प्रकृति निश्चित करते हैं, और आत्मनिभर गावो का सकीण जीवन जन साधारण मे ग्राम चेतना को ही उदभूत कर सकता था। वायुरुद्ध मुहरबद गावा के जीवन म गावा के जीवन दशन और चिंतन पद्धति से काई भी आगे नही बढ पाता था, और इसका अपवाद भी विरले ही कोई होगा।

यह सच है कि पूजीवादी सबधा ने ग्रामीण सहयोग का अत कर दिया। लेकिन इस सहयोग का उद्देश्य था सकीर्ण आत्मनिभर ग्रामीण अस्तित्व की सुरक्षा और उसका सपोषण। इसीलिए आत्मनिभर गावो की आबादी शताब्दिया तक, साम्राज्यो और राजवशा के उत्थान पतन जैसी गभीर सामाजिक घटनाओ से, या अपनी क्षुद्र ग्रामीण सीमाओ से परे सपूण जिलो और प्रदेशो के विध्वस-विनाश से अनुद्वेलित रही। गाव की स्वपर्याप्त प्रवृति द्वारा अनुकूलित ग्रामीण एकात्मकता फलती फूलती रही उच्चस्तरीय राष्ट्रीय या अतर्राष्ट्रीय एकात्मकता के अभाव म। ग्रामीण सहयोग ग्रामीण आत्मपर्याप्तता सापेक्ष था और गाव की स्वपर्याप्तता के समाप्त हो जाने पर वहा के लोगो की सहयोग भावना का भी अत हो गया। इस सहयोग भाव को बचाया भी नही जा सकता था, क्योकि यह स्वपर्याप्तता से जुडा हुआ था।

लेकिन गावो की आत्मनिभरता एव यहा के लोगो के सीमित सहयोग का विनाश कर देश का जो पूजीवादी एकीकरण हुआ उसने अथतत्र एव सामाजिक सहक्रमण के उच्चस्तरीय रूपो के आगमन के लिए माग प्रशस्त किया। इसम राष्ट्रीय अथव्यवस्था के सगठन और देश के पैमाने पर सहयोग का रास्ता तैयार किया। देश के एकीकरण के पहले भारतीय जन जीवन अनेकानेक गावा म बिखरा हुआ था और इन गावा म परस्पर सामाजिक या आर्थिक विनिमय नही के बराबर था। इसीलिए इनका कोई सम्मिलित स्वाथ नही था। पूजीवादी एकीकरण ही इस आकारहीन पिंड से भारतीय राष्ट्र के उद्भव का भौतिक आधार सिद्ध हुआ।

यह दु खद भले हो, किंतु आत्मनिभर गाव और इसके लोगा के सहयोगी

जीवन का विनाश ऐतिहासिक तौर पर भारतीय जन के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक एकीकरण के लिए आवश्यक था। यह इतिहास सिद्ध है कि प्रगति ऐतिहासिक शक्तियो के नैतिकेतर क्रियाकलाप से आती है। यह नही भूलना चाहिए कि गाव सामाजिक निष्क्रियता और बौद्धिक जडता के दुर्ग थे, और युगो तक एक ही प्रकार के अस्तित्व को प्रतिपादित करते रहे। इनके चलते भारत के एकीकरण के रास्ते मे रुकावटें आती रही। उनके अवसान पर हमे आसू बहाने की जरूरत नही।

सदर्भ

1 देखें अर मेली और बडन पावेल।
2 राधाकमल मुखर्जी प० 16।
3 वही प० 36।
4 देख थामसन और गरट ओ मली और बडन पावल।
5 मार्क्स द्वारा उद्धत खड 1 प० 215।
6 देखें रगा बडन पावेल और दत्त।
7 आर० पी० दत्त, प 213।
8 वही प० 207।
9 देखें गाडगिल प० 153 155।
10 देख गाडगिल और ब्यूकनन।
11 गाडगिल प 153 154।
12 वही, प० 154।
13 वही प० 155।
14 वही प० 162।
15 मार्क्स मार्क्स प० 82।
16 वही प० 82 83।
17 सीतारमय्या पृ० 62।
18 देख आर० पी० दत्त और शलवकर।
19 शलवकर प० 106।

4

भारतीय कृषि के रूपांतरण के सामाजिक परिणाम

राष्ट्रीय कृषि का उद्भव

भूमि पर व्यक्तिगत स्वत्व और भूसंपदा के विक्रय के व्यक्तिगत अधिकार पर आधारित नए भूमि संबंधों की स्थापना हुई, और भारत के कृषीय अर्थतंत्र ने प्रगति के नए अनजाने ऐतिहासिक दौर मे प्रवेश किया। इसी तरह यहां की कृषक आबादी ने भी सामाजिक और आर्थिक अस्तित्व के नए युग मे पैर रखे। इस नई स्थिति मे जो नई समस्याए आई, अब हम उनका अध्ययन करेंगे।

एक नया महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि नए भूमि संबंधों के कारण, भारतीय कृषि के संकीर्ण ग्रामीण चरित्र के बदले उसके राष्ट्रीय चरित्र का उदभव हुआ। सुसबद्ध जोतो की स्थापना, आधुनिक मशीनों का खेती के लिए इस्तेमाल, वैज्ञानिक खाद और अन्यान्य तरीकों से खेती का तकनीकी नवनिर्माण कृषि संबंधी ये सारी तकनीकी और आर्थिक समस्याए अब सारे राष्ट्र की समस्याए थी।

अंग्रेजो के शासन काल मे भारतीय कृषि के राष्ट्रीय रूप और महत्व का जन्म तो हुआ, लेकिन यह बहुत संपन्न और समृद्ध नही हो सकी। कुल मिलाकर किसानो की भौतिक स्थिति मे भी बहुत तरक्की नही हुई। संगठन और उत्पादन की दृष्टि से भी कृषि की हालत मे बहुत सुधार नही हुआ। अंग्रेजो के शासन काल मे भी, अपने नवीन राष्ट्रीय रूप के बावजूद भारतीय कृषि का इतिहास अविरत और वर्धनशील असंगठन का इतिहास रहा है। किसानो की दरिद्रता और ऋणग्रस्तता बढती गई, उनके भूस्वामित्व का अपहरण होता रहा, और अनेक खेतिहर सर्वहारा की हैसियत मे आ गए।

जमीन का उपविभाजन और विखंडन

भूमि का उपविभाजन और विखंडन भारतीय कृषि का दुर्दांत और विनाशकारी तथ्य है। हर किसान की जमीन कम होती गई और जोत वाली जमीन अधिकाधिक अनार्थिक होती गई।

इसके अनेक कारण थे। यूरोप मे जब कृषि व्यवस्था मे पूंजीवादी संबंधो का

जन्म हुआ, तो उसके साथ ही खेती की इकाई के रूप म सुसगठित फार्मों का जन्म हुआ। भारत मे अग्रेजो ने जमीन का ऐसा कुछ पुनर्गठन नही किया। स्वामित्व और निजी जोत की दृष्टि से जमीन मिली जुली सी रही। जमीन के विखडन और खुली हुई भूमि व्यवस्था से होने वाले नुकसान पहले की ही तरह जारी रहे।[1]

परिवार के सदस्य पहल गाव द्वारा पूरे परिवार को दी गइ जमीन के सयुक्त मालिक थे और उस पर एक साथ काम करते थे। अब जमीन के निजी स्वामित्व की स्थापना और इसके हस्तातरण के आधार के साथ ही सयुक्त परिवार मे अप केंद्रित प्रवृत्तिया का जन्म हुआ। इसके चलते पारिवारिक भूसपदा का विभिन्न दावेदारो के बीच वितरण होने लगा, और जमीन का अधिकाधिक उपविभाजन हुआ।

बटाईदारी प्रथा के उदय के कारण भी जमीन का विभाजन हुआ। छोट छोटे खेत और अधिक छोटे हो गए। लेकिन जमीन के उपविभाजन और विखडीकरण की प्रक्रिया म सबस अधिक निर्णायक तथ्य था खेती पर निभर लोगो की सख्या म वद्धि। इसके कारण शहर और गाव के हस्तशिल्पिया और कारीगरा की आर्थिक बबादी भी हुई। कृषि पर आश्रित लोगा की सख्या म वृद्धि की प्रक्रिया निम्नाकित सेंसर रकड से स्पष्ट है

खेती पर निभर आबादी (प्रतिशत म)[3]

1891	61 1%
1909	65 5%
1911	72 2%
1921	73 0%
1931	75 0%

इधर कृषि पर आश्रित लोगा की सख्या बढ रही थी और उधर उद्योग धधा पर आश्रित लागा की सख्या घट रही थी।

उद्योग धधा पर निभर आबादी (प्रतिशत म)[4]

1911	5 5%
1921	4 9%
1931	4 3%
1941	4 2%

यह प्रवृत्ति उन्नीसवी सदी के मध्य स ही बढती रही थी। 1840 के फेमिन कमीशन रिपाट म भी कहा गया था जिन्ह कृषि के अतिरिक्त अन्य कोई राजगार नहीं है उनकी सख्या खेती के लिए आवश्यक लागा की सख्या से बहुत अधिक है।[5]

यूराप म इसका उल्टा ही हुआ। फ्रास म 1876 1921 के बीच गनिहर आबादी 67 7% से घटकर 53 6% पर आ गई जमनी म 1875 1919 के बीच 61% से 37 8% पर इग्लैंड और वेल्स म 1871-1921 के बीच 38 2% स 20 7% पर डनमार्क म 1880-1921 के बीच 71% से घटकर 57% पर।[6]

भारत के इस अनौद्योगीकरण, अर्थात आधुनिक उद्योगो की समानुपाती वृद्धि के बिना पुराने हस्तशिल्प के विनाश के कारण जमीन पर जन सकुलता बढती ही गई।

इस जन सकुलता के कारण जमीन के उप विभाजन और विखडन की प्रक्रिया और तेज हुई। एच० मान ने दक्कन के एक ठेठ, सामा य गाव के सर्वेक्षण के बाद लिखा कि वहा की औसत जोत 1771 मे 40 एकड थी, लकिन 1915 मे केवल सात एकड।

जमीन के उपविभाजन और विखडन की प्रक्रिया दक्कन तक ही सीमित नही थी, वरन कमोवेश तेजी के साथ सारे भारत मे और सब प्रातो मे जारी रही। (1936 के आस पास) 'सयुक्त प्रात म औसत किसान की जोत 2 5 एकड, बगाल मे 3 1 एकड, मद्रास म 4 9 एकड, और बाबे मे 12 2 एकड है।'[7]

यह तो हुई औसत जोत के आकार की बात। इससे यह पता नही चलता कि अधिसख्यक जोतें छोट आकार की और अनार्थिक थी, उनस आर्थिक लाभ की गुजाइश नही थी।

1926 के एग्रीकलचरल जनल आफ इडिया न जोता का निम्न लिखित वर्गीकरण किया

10 एकड से ऊपर	24%
5 से 10 एकड	20%
1 से 5 एकड	33%
1 एकड या उससे कम	23%

पजाब अपेक्षाकृत समृद्ध क्षेत्र था, लेकिन उसके बारे मे भी रायल कमीशन आन एग्रीकलचर की राय थी

पजाब के आकडो से पता चलता है कि 22 5% किसान एक एकड या कम जमीन जोतते ह, 15% एक और ढाई एकड के बीच 17 9% ढाई एकड और पाच एकड के बीच, और 20 5% पाच और दस एकड के बीच।

जमीन के उपविभाजन और विखडन की प्रक्रिया चलती रही। काग्रेस अग्रेरियन इक्वायरी कमेटी की रिपोट न सयुक्त प्रात की एतद्विषयक स्थिति के बारे म कहा है

पिछले कई वर्षो स जोतो के विखडन की प्रक्रिया लगातार चलती रही है। ऐसे किसानो की सख्या का अनुमान करना कठिन है जो एक बीघा जमीन के शताश या चार सौवा भाग के मालिक है लेकिन इनकी सख्या काफी बडी है।[8]

जोता के अतिशय विखडन के कारण किसानों के लिए सुचारु रूपण खेती करना बडा कठिन था।[9] उप विभाजन और विखडन की स्थिति यह थी कि 'अनेक छोटे खेता म हल का भी इस्तेमाल सभव नही था जोता के अधिकाधिक विखडीकरण के कारण खेतिहर मजदूरो की तादाद बढती है और कुदाल एव फावडे

का इस्तेमाल करने लगता है।'[10] जमीन के *अत्यधिक प्रविभाजन और विखंडीकरण* का यह स्पष्ट तकनीकी साक्ष्य है।

जनसंख्या म निराध वृद्धि भूमि की अनिमकुलता का एक अतिरिक्त कारण है। लेकिन इसके महत्व का प्राय अतिरंजित किया गया है। यह समझना आवश्यक है कि 'यह पुरातन आदिम भारतीय समाज की आधुनिक युग म उत्तरजीवी काई चरित्रगत विरासत नही कि आबादी के तीन चौथाई लोगो का एकमात्र पेशा खेती है और वे खेती पर बेतरह और बुरी तरह आश्रित है। यह वस्तुत एक अर्वाचीन तथ्य है और साम्राज्यशाही का सीधा परिणाम। ब्रिटिश शासन काल म कृषि पर अनानुपाती निभरता लगातार बढती ही गई है, और ऐसा कृषि और उद्योग के पुरान सतुलन के विनाश और साम्राज्यवाद के कृषि प्रधान उपाग के रूप म भारत के अपकर्ष के फलस्वरूप हुआ है।'[11]

कृषि पर अतिरिक्त भार की व्याख्या इस बात मे भी नही होती कि पर्याप्त भूमि का अभाव था। 'जमीन के 34 2% भाग पर ही खेती होती है। 35 2% भूमि जो खेती के लिए दुष्प्राय है उस छोडने के बाद भी 30 6% भूमि अभी एसी है जिस पर खेती हा सकती है। सिंध और पजाब मे प्रच्छन्न उवरता के विशाल क्षेत्र ऐसे हैं जहा केवल जल की आवश्यकता है लेकिन सरकार इन क्षेत्रो म सिंचाई का कोई इतजाम नही कर रही है। फिर, नए क्षेत्रो मे खेती करने के लिए पूजी की आवश्यकता है और भारतीय किसान कर्ज से इतना दबे हुए है कि वे शुरू मे लगान भर पूजी नही जुटा सकत। इस समस्या के प्रति सरकार की चरम विरक्ति कुछ एसी है कि यह आर्थिक अनुदान या किसी अन्य रूप म भी काई आर्थिक सहायता नहीं देती।'[11]

विखंडीकरण के परिणाम

भूमि के अतिशय उपविभाजन और विखण्डन का कृषि और कृषक की आर्थिक स्थिति पर घातक प्रभाव पडा। बडे पमाने पर वैज्ञानिक ढग से खेती करने के लिए खेती की इकाई के रूप म बडे सुसबद्ध भूखंडो की आवश्यकता हाती है। जोतो और दूरस्थ भूखडो के आधार पर सघन और समृद्ध खेती सभव नही है।

बहुत हद तक छाटी जाता के कारण किसान गरीब रह, और उनकी गरीबी का यह नतीजा हुआ कि वे उत्पादन के तरीका और तकनीक का विकसित नहीं कर सके। जमीन की तरक्की पर खच करने के लिए पैसा नही रहने की वजह स किसान आदिम तरीका और साधना का अपनाए रहने के लिए विवश था। वना निर्माण और खेती के आधुनिक यान्त्रिक साधना का इस्तमाल कर सकन की हालत म किसान नहीं थे और न वे अपने पशुआ का ही स्वस्थ और शक्ति सपन्न बनाए रख सकत थ। इसके कारण कृषि का उत्तरोत्तर ह्रास होता गया।

खेती पर आश्रित आबादी की वृद्धि के कारण पशुआ के लिए चारा उगाने वाले चरागाहा का अतिक्रमण हाने लगा और उनम भी खेती होने लगी। इसके

फलस्वरूप पशुओं के लिए चारापूर्ति में कमी हुई, पौष्टिकता के अभाव में पशु शक्ति क्षीण होने लगी और कृषि की उत्पादनशीलता घटी। इस तरह अनेकानेक कारणों से जोती जाने वाली जमीन का प्रति एकड़ उत्पादन लगातार घटता गया। विश्वेश्वरैया ने कहा है, 'साधारण युद्ध पूर्व स्थिति को आधार मानकर ब्रिटिश भारत का औसत उत्पादन, सिंचाई पर निर्भर फसलों को छोड़कर पच्चीस रुपए प्रति एकड़ से अधिक नहीं होगा जबकि जापान में यह डेढ़ सौ रुपया से कम नहीं होगा।'[13] अब हम कृषि और कृषक की स्थिति को प्रभावित करने वाले अन्य कारणों का विवेचन करेंगे।

नई भूराजस्व व्यवस्था

पहले कहा जा चुका है कि अंग्रेजी सरकार ने बिल्कुल नई राजस्व व्यवस्था स्थापित की। नई व्यवस्था में फसल अच्छी हो या बुरी किसान को हर साल निश्चित धनराशि के रूप में सरकार को लगान देना ही पड़ता था। भारत में सिंचाई की कोई उपयुक्त व्यवस्था थी नहीं, इसलिए वर्षा न होने पर या कम होने पर फसल की बर्बादी की ही अधिक संभावना रहती थी। सामान्य औसत वर्ष में भी किसान को अपनी फसल के लिए हिंदुस्तान या बाहर के बाजार में बहुत कम कीमत ही मिल पाती थी। फलस्वरूप, कालक्रम से सरकार की सालाना मांग की पूर्ति करना किसान के लिए असंभव हो गया और वह लगातार गरीबी और कर्ज के भार से दबता गया।

यह बात 1892 में ही मान ली गई थी कि किसान की बढ़ती हुई गरीबी के मुख्य कारणों में एक है, भूमिकर और तज्जनित ऋणग्रस्तता।[14] द ग्रेट फैमिन नामक अपनी पुस्तक में व्होन नैश ने लिखा है, 'बंबई के अपने प्रवास काल में मुझे ठीक से पता चला कि अधिकारी वर्ग कर वसूली के लिए सूद पर रुपया चलाने वाले साहूकार को ही आधार मानते थे।'[15]

अंग्रेजों द्वारा लागू की गई भूमिकर व्यवस्था कृषक समुदाय की ऋणग्रस्तता और गरीबी का मुख्य कारण सिद्ध हुई। तहसीलदारों और बजट बनाने वाले सरकारी राजनेताओं को ऐसी व्यवस्था सुविधाजनक मालूम पड़ सकती है, जिसमें एक ही साथ पैंतीस बरस की अवधि के लिए समरूप अंक पर नगद राशि के रूप में कर निर्धारण होता था, लेकिन जिन्हें अनिश्चित आय से निश्चित धन राशि देनी पड़ती थी, उनके लिए यह व्यवस्था, बुरे वर्षों में बरबादी लाई, और इसके चलते लोग सूदखोर बनियों के चंगुल में बुरी तरह जकड़ने लगे। काफी बुरी हालत में कभी कभी लगान स्थगित या माफ कर दिया जाता था। इससे लोगों की दुरवस्था कुछ कम होती थी, समाप्त नहीं।'[16] भूमिकर के रूप में निश्चित की गई राशि इतनी अधिक होती थी कि दुनम्य भूमिकर व्यवस्था के दुष्परिणाम और अधिक गंभीर सिद्ध हुए।

1857 58 में जब ब्रिटिश राज्य ने ईस्ट इंडिया कंपनी से भारत का शासन

सूत्र अपने हाथों में लिया, उस वक्त सारे भारत का भूमिकर 15 3 मिलियन पौंड था। बाद में यह राशि बढ़ती ही गई। 1900 1 में यह राशि 17 5 मिलियन पौंड थी, 1911 12 में 20 मिलियन और 1936 37 में 23 9 मिलियन।[17]

भूमिकर लगातार बढ़ता ही रहा है। लैंड प्राब्लम्स इन इंडिया नामक अपनी किताब में राधाकमल मुखर्जी ने लिखा है कि 'मद्रास, बंगाल और संयुक्त प्रांतों में लगान की राशि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती रही है।'[18] उन्होंने आगे यह भी कहा है कि 'संयुक्त प्रांत, मद्रास और बंबई में 1890 से 1920 के तीन दशकों में कृषिजन्य आय लगभग 30, 60 और 20 प्रतिशत बढ़ी है और भूमिकर क्रमश 57, 22 6 और 15 5 प्रतिशत बढ़ा है। भूमिकर में यह वृद्धि, नकद राशि के रूप में इसकी गणना और फसल के वक्त इसकी वसूली, इन प्रांतों के किसानों की आर्थिक स्थिति पर जहां अनार्थिक जोत वाले लोगों की ही संख्या अधिक है इन बातों का बड़ा बुरा असर पड़ा है।'[19]

जमीन की जनसंकुलता और उसके उपविभाजन के कारण अनार्थिक जोतों की संख्या में वृद्धि हुई और ऐसी स्थिति में लगान की राशि भी बहुत अधिक तय की गई। ब्रिटिश राज के प्रारंभिक चरणों में भारतीय किसान की गरीबी का यह मूल कारण था। अपनी घटती हुई आय से सरकारी लगान के भुगतान में अपने को असमर्थ पाकर किसान अधिकाधिक ऋणग्रस्त होते गए।

कृषि का वाणिज्यीकरण

ब्रिटिश शासन काल में कृषि का जो वाणिज्यीकरण हुआ, उसका भी किसान के जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ा। अब उसे भारतीय एवं विश्व की मंडी के लिए फसल उगाना पड़ता था और इसलिए वह व्यापार की निरंतर बदलती हुई गतिविधि का शिकार हुआ। उसे अब अमरीका, यूरोप, आस्ट्रेलिया के विशाल कृषि व्यापार संघों जैसे विकट दुर्जेय अंतराष्ट्रीय प्रतियोगियों से होड़ लेनी पड़ी। भूखे बैलों की जोड़ी और आदिम हल से वह अपना छोटा सा खेत जोतता था, और उसके प्रतिद्वंद्वी ट्रैक्टरों और आधुनिक कृषि यंत्रों की सहायता से बड़े पैमाने पर खाद्य राशि उत्पन्न करते थे। वाणिज्यीकरण के कारण किसान धीरे धीरे (मध्यस्थ) व्यापारियों पर निर्भर होता गया, और अपनी बदतर माली हालत के कारण व्यापारियों ने किसान की गरीबी का पूरा फायदा उठाया। गरीब किसान के पास कभी कोई संचित निधि नहीं रही। अब सरकारी लगान और महाजन के सूद में भुगतान के लिए उसे फसल के वक्त ही अपनी उपज का अधिकांश मध्यस्थ को बेच देना पड़ता था। अगर वह इंतजार कर पाता तो उसे अधिक पैसे आते लेकिन उस लाचारी में सौदा करना पड़ता था, इसलिए उसे बहुत कम पैसे मिल पाते थे। उसके मुनाफे का बहुत बड़ा भाग बिचवान या दलाल को चला जाता था।

किसानों की बढ़ती हुई दरिद्रता

किसानों की गरीबी के और भी अनेक कारण थे। समय समय पर होने वाले कृषि संकट के अतिरिक्त सूखा और अनिवार्य जैसे गैर सामाजिक तथ्यों के कारण भी किसानों की तंगहाली बढ़ी। भारतीय किसान बुरे दिनों के लिए धनराशि का संचय नहीं कर पाता था। मानसून अच्छा नहीं होने पर अधिकांश किसानों के पास लगान जमा करने के लिए पैसा नहीं रहता था और इसलिए वे कर्ज में फंसते गए। हिंदुस्तान की जिंदगी से दुर्भिक्ष का नजदीक का सरोकार रहा है।

भूमिकर के अतिरिक्त किसान को किरोसन, तेल और नमक जैसी निरी निपट आवश्यकता की वस्तुओं के लिए भी कर देना पड़ता था। गरीब किसान जमीन की अपनी आय का बहुत बड़ा भाग राज्य को दे देता है, और उसे चीनी, किरोसन तेल, नमक और साधारण उपभोग की अन्य चीजों पर लगाए जाने वाले कर का भी बोझ बर्दाश्त करना पड़ता है। इसके विपरीत स्थाई बंदोबस्त वाले इलाके के जमींदारों को बहुत सारी सुविधाएं प्राप्त हैं। उन्हें बड़ी दूर तक फैली हुई अपनी जमींदारी के लिए नाम मात्र का ही शुल्क देना पड़ता है। वह शुल्क भी लगभग सौ साल पहले तय हुआ था और उसमें कभी किसी रद्दोबदल की संभावना नहीं थी। उसकी कृषि आय पर आयकर भी नहीं लगता है।[0]

जंगलों पर सरकारी एकाधिपत्य के कारण जलावन या गृह निर्माण के लिए किसान जंगल से लकड़ी नहीं ला सकता था। उसे खाद के बदले जलावन के रूप में गोबर का इस्तेमाल करना पड़ा। इसके चलते जमीन की उपज घटी और किसानों की गरीबी बढ़ी। 'जंगल संबंधी कानूनों के कारण जो नुकसान हुआ है, उस पर पूरा ध्यान नहीं दिया गया है और न उसे पूरी तरह से समझने की कोशिश हुई है। दुर्निवार असह्य मौकों में लोगों को जकड़ने में इसका भी उतना ही योगदान रहा जितना भूमिकर निर्धारण और नमक कर का।'[1]

किसान अपने और अपने परिवार के लिए तो पर्याप्त भोजन का प्रबंध कर ही नहीं पाता था, वह अपने जानवरों को भला अच्छी हालत में कैसे रखता? बैलों की संख्या बढ़ती गई उन्हें मिलने वाली खुराक घटती गई। दुःखी भूखे और बेकार जानवरों की तादाद बढ़ने से जमीन की उत्पादनशीलता और भी घटी।

ऊपर जिन सारे तत्वों की चर्चा है उनके संयुक्त प्रभाव के कारण किसानों की गरीबी लगातार असाधारण तौर पर बढ़ती गई। उनकी आय और जिम्मेवारियों के बीच बढ़ती हुई विषमता ने किसानों को अधिक कर्ज लेने के लिए बाध्य किया, लेकिन वे उसका सूद भी चुकाते रहने की स्थिति में नहीं थे।

यह एक दूषित चक्र था जिसमें किसान की गरीबी से ही अपनी उसकी ऋण-ग्रस्तता जैसे-जैसे बढ़ी वैसे-वैसे उसकी बढ़ती हुई गरीबी का कारण भी सिद्ध हुई। किसान धीरे-धीरे न तो ऋण चुकाने की स्थिति में रहा और न उसका सूद। इस तरह वह महाजनों को अपनी फसल दे देने के लिए तो बाध्य हुआ ही, तेजी से अपनी

जमीन भी उन्‍हें बेचने लगा। किसानो की जमीन के स्वत्वापहरण की यह प्रक्रिया बीसवी सदी मे काफी तेज हुई।

किसानो की बढती हुई ऋणग्रस्तता

ब्रिटिश शासनकाल मे किसानो की ऋणग्रस्तता प्रत्येक दशक मे लगातार बढती ही गई। 1880 मे भी हालत काफी बुरी थी। 'एक तिहाई काश्तकार या खेतिहर ऋण ग्रस्त है कि अब उनके लिए ऋणमुक्त होना असभव है, लगभग एक तिहाई और लोग भी ऋण के चक्कर मे हैं, यद्यपि वे कभी भी अपने को इससे मुक्त कर लेने की स्थिति मे है। किसानो की ऋणग्रस्तता 1880 के बाद ज्यामितिक दर से बढता ही रही है। इस तथ्य का अन्वेषण करने वाले सभी लोगो ने यह बात मान ली है [3] 'बहुसख्यक किसान सूदखोरो से कर्जा लिए हुए है।' (साइमन रिपोर्ट, जिल्द 1, पृ० 16)।

समय समय पर किसानो की सतत वर्द्धनशील ऋणग्रस्तता का अध्ययन होता रहा है और इससे स्थिति की भयकरता का अनुमान होता है। 1911 मे, मक्लागन के अनुसार केवल ब्रिटिश भारत मे, समस्त ऋण राशि लगभग 300 करोड थी 1925 मे एम० एल० डार्लिंग के अनुसार, लगभग 600 करोड, 1929 मे, सेंट्रल बैंकिंग एक्वायरी कमिटी रिपोर्ट के अनुसार 900 करोड, और 1937 मे, एग्रीकलचरल क्रेडिट डिपार्टमेंट के अनुसार 1800 करोड। [4]

1929 के विश्वव्यापी आर्थिक सकट का भारत के कृषक समुदाय पर काफी बुरा असर पडा। खेती के उत्पादनो की कीमत इतनी तेजी से घटी कि 1929 से 1936 के बीच समस्त ऋण की राशि 1800 करोड हो गई। 'इस असाधारण वृद्धि का मूल कारण यह है कि 1929 के बाद किसानो की आय आधे से भी कम हो गई लेकिन उनका कर भार ज्यो का त्यो रहा। कुछ विपदग्रस्त क्षेत्रो मे सरकार ने कुछ माफी भी दी, लेकिन यह बहुत कम थी जमीदारी वाले इलाको मे मुकदमेबाजी के खर्च के कारण भी किसानो पर ऋण बढा। सारा कर चुका सकने मे किसानो की असमर्थता के कारण बकाए की राशि बढती गई और जमीदारो की ओर से कचहरियो मे मुकदमे भी दायर होते रहे। किसानो की हालत पर इसका बडा बुरा असर पडा। मुकदमे के खर्च के लिए वे हर तरह से सूदखोर महाजनो पर निभर है। [5]

> ऋणग्रस्तता का मुख्य कारण यह है कि 75% किसान जमीन से अपनी साधारण जीविका भी अर्जित नही कर पाते। [6]
> ऋणग्रस्तता आज भारतीय देहात की अनन्य समस्या है। आज स्थिति यह है कि किसानो मे 80% भाग अपनी मौजूदा जोत के बल पर अपना कर्ज कभी नही चुका सकेंगे। [7]

भूमि का हस्तातरण, काश्तकार से गैर काश्तकार मालिको को

किसानो की बढती हुई ऋणग्रस्तता के कारण रैयतवारी इलाको म बडे पमाने पर जमीन काश्तकारो के हाथो से निकलकर सूदखोर महाजना के हाथ म जाने लगी और जमींदारी इलाको मे बडे पैमाने पर किसाना की बेदखली हुई।

निष्ठुर सूदखोर महाजना ने तत्परता से किसानो की बबसी का अधिक से अधिक फायदा उठाया। सूद की दर हर प्रात म एक जैसी नही थी, लेकिन सब जगह काफी ऊची थी, 12% से लेकर कुछ इलाको मे 200 या 300% तक।[8] इसलिए सब जगह साहुकार घणा के पात्र थे। वे अमानुषिक अर्थ लिप्सा के मूत रूप थे और इस देश के साहित्य मच नाटय और फिल्म कथाओ म खलनायक के रूप मे प्रस्तुत किए जाते थे।

किसाना से पैसा चूसने के लिए ये साहूकार कानूनी तरीका के अलावा जाल साजी से भी काम लेत थे जैसे मूल से अधिक का शतनामा लिखवाना गलत हिसाब रखना, इत्यादि। व किसान की गरीबी और उसके अज्ञान का भी फायदा उठाते थे। अपनी अनभिज्ञता के कारण किसान रा जालसाजी का पता नही लग पाता था, और इस तरह वह कानूनी कायवाही नही कर पाता था।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता का वधानिक उपायो द्वारा समाप्त करने की सरकारी कोशिश नाकामयाब रही। रायल कमीशन आन एग्रीकलचर की रिपोट म कहा गया है कि 'ऋणग्रस्तता की समस्या के समाधान के लिए किए गए वैधानिक प्रयास अपेक्षाकृत असफल रहे है।' किसानों की इस असाध्य एव असह्य ऋण ग्रस्तता के कारणो के बारे म रायल कमीशन की रिपोट म यह भी कहा गया है

> भारतीय किसान प्राय लाभ और प्रतिफल के लिए नही, वरन जीवननिर्वाह के लिए खटता था। भूमि की अनिमकुलता, और जीवन निर्वाह के वकल्पिक साधनो एव अपनी दुदशा से बचने के उपायो की कमी इन सबके कारण कही भी, किसी भी शत पर फसल उगाने को किसान लाचार था। खाद्य सामग्री के लिए उस जमीन की जरूरत है और जमीन के लिए उसे महाजन की मिन्नत चिरौरी करनी पडती है, यद्यपि जितनी उसकी चल अचल सपत्ति है उसस अधिक उस पर महाजन का ऋण है जहा उसकी जमीन महाजन के हाथ म चली गई है, वहा किसी भी कायदे-कानून से उसकी जरूरते पूरी नही हो सकती काश्तकारी का कोई भी कानून उसकी रक्षा नही कर सकता।

नई भूमि व्यवस्था म भूमि पण्य-वस्तु हो गई थी। इससे किसान का यह अधिकार तो मिला कि वह अपनी जमीन का क्रय या रेहन कर सके, लेकिन महाजन को भी यह अधिकार मिला कि वह किसान की जमीन हडप ले। नए आर्थिक पर्यावरण म जिस दरिद्रता का जन्म हुआ उसके कारण अधिकाधिक जमीन महाजना की होने लगी। फलस्वरूप भारतीय कृषक समाज का व्यापक स्वत्वाप हरण हुआ और दूरस्थ जमीदारा के वग का आविर्भाव हुआ।

यह भी ज्ञातव्य है कि काश्तकार के बदले महाजन या साहूकार जैसे गैर काश्तकार मालिकों के हाथ में जमीन के चले जाने के बाद भी कृषि के तौर-तरीकों में कोई तरक्की नहीं हुई। एग्रीकल्चरिस्टस रिलीफ ऐक्ट के कार्यान्वयन पर प्रतिवेदन के लिए 1892 में स्थापित डेक्कन कमीशन ने इस बात की आलोचना की है कि 'कृषि प्रधान देश में, बहुत अधिक कर वसूलने के बावजूद खेती की तरक्की नहीं करने वाले बाहरी लोगों के हाथ में जमीन चली जाए।' [9]

कर्ज के भारी बोझ ने कृषि और कृषक की प्रेरणा और पहल शक्ति को क्षति पहुंचाई। इंटरनेशनल कोआपरेटिव अलायंस के भूतपूर्व सभापति ने लिखा है 'सारा देश जैसा सर हेमिल्टन ने चित्रमय शैली में कहा है, महाजनों के शिकंजे में है। ऋण के बंधन ने कृषि को जैसे जंजीरों से जकड़ रखा है। सूदखोरी की इस सर्वव्याप्त और निर्मम प्रथा ने रैयत की हड्डियों का सारा रस चूस लिया है, और उसे गरीबी और गुलामी की जिंदगी जीने को बाध्य किया है। ऐसी स्थिति में उत्पादन तो घटता ही है आदमी की ताकत और उसकी इच्छाशक्ति को लकवा भी मार जाता है, वह भाग्यवादी हो जाता है। आशाहीन, थका हारा, लाभशून्य और उद्देश्यहीन जीवन किसी तरह घिसटता हुआ चलता है। अब इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता। इसे सब साफ-साफ देख सकते हैं।'

कृषि दासता का उद्भव

भारत के कुछ हिस्सों में ऋणग्रस्तता के कारण कुछ किसान अततोगत्वा कृषिदास की स्थिति में पहुंच गए। इस तरह आधुनिक कर्ज भार से उत्पन्न आर्थिक पराधीनता ने एक मध्ययुगीन संस्था को जन्म दिया।

> आर्थिक दासता किस हद तक पहुंच गई है और साहूकार की पकड़ कितनी मजबूत है इसके दो उदाहरण दिए जा सकते हैं। बिहार और उड़ीसा में कमिऔटी नाम की प्रथा प्रचलित थी। यह व्यवहारतः कृषि दासों द्वारा खेती की प्रथा है। कमिया लोग अपने मालिक के बांधे हुए नौकर हैं, ऋण के मूल पर जो सूद आता है उसके एवज में उन्हें सारे भृत्योचित काम करने पड़ते हैं। जमींदार की निजी जमीन पर खेती के लिए जो मजदूर बहाल होते हैं, उन्हें सबसे पहले जमींदार के यहां काम के लिए हाजिर होना पड़ता है। इस तरह अग्रिम राशि इसी शर्त पर दी जाती थी कि कृषि संबंधी काम के लिए मजदूर जमींदार के बुलाने पर तुरत आ जाए। ऐसे मजदूर जिन दिनों अपने साहूकार के लिए काम करते हैं उन दिनों के लिए उन्हें अन्न राशि मजदूरी के रूप में मिलती है। इस प्रथा में कमिया लोगों का अधःपतन अवश्यंभावी है कमिया अपनी मजदूरी के लिए मोलतोल नहीं कर सकता है ठेकेदार सड़क की मरम्मत के लिए निर्बंध मजदूर को जो मजदूरी देता है उसकी एक तिहाई मजदूरी ही कमिया को दी जाती है जो समय बच जाता है उसमें काम कर वह कभी कभी कुछेक पैसे जमा कर लेता है। इसके

अतिरिक्त और कभी उसे पैसा देखने को भी नही मिलता। अत इस बात की कोई उम्मीद नही कि वह अपने कर्ज की मूल राशि चुका कर कभी भी स्वतत्र हो सके। कमिऔटी का शतनामा जैसे सारी जिदगी के लिए दडाज्ञा है।[30]

नई विधि-व्यवस्था मे गरीब किसान की तुलना म धनी साहूकार का पलडा भारी रहा, क्योकि मुकदमेबाजी खर्चीली थी। साहूकार तो वकील बहाल कर सकता था और मुकदमा बहुत दिनो तक चले तब भी उसका खर्च बर्दाश्त कर सकता था। लेकिन बेचारा गरीब किसान, जो मुश्किल से अपना जीवन निर्वाह कर पाता था, वकीलो की महगी विधि सेवा का कहा से प्रबध करता? अपने दावे को पुष्ट करने मे चालाक साहूकार इस बात का पूरा फायदा उठाता था।

किसानो के बारे म प्राय कहा जाता था कि वे अपव्ययी थे और सामाजिक धार्मिक अवसरो पर पैसा पानी जैसा बहाते थे और यही उनकी ऋणग्रस्तता का कारण था। लेकिन सुविज्ञ विशेषज्ञो ने जब किसानों के पारिवारिक बजट का अध्ययन किया तो पता चला कि ऐसे त्योहारो पर वे जो धन खर्च करते है, वह उनकी सारी आमदनी का अल्पाश मात्र है।[31]

इस दयनीय स्थिति की एक विशेषता यह भी थी कि सरकारी या गैर सरकारी दातव्य सस्थाओ द्वारा जो कदम उठाए गए उनका पूरा लाभ उठा सकने की स्थिति म किसान नही थे। जमीदार या साहूकार के दावे को पूरा करना तो कभी सभव था ही नही, जो किंचित लाभ किसानो को होता, उसे भी ये लोग हडप लेते थे।

भारतीय किसानो की बेहद गरीबी और तज्जन्य ऋणग्रस्तता, अनार्थिक जोतो और आदिम तकनीक पर आधारित कृषि की उर्वरशीलता मे क्रमिक ह्रास—इन सबके कारण बडे गहरे थे। भारतीय कृषि और अर्थव्यवस्था मूलत औपनिवेशिक थी। यह तथ्य देश के मुक्त विकास मे बाधक था, और किसानो की गरीबी आदि का मूल कारण था।

भारतीय किसानो की गरीबी और ऋणग्रस्तता के कारण किसान की जमीन बनिया, महाजन या जमीदारो के हाथ म जाने लगी। काश्तकार मालिको की सख्या घटी और जमीन धीरे-धीरे गिने चुने लोगो के अधिकार म आती गई। गरीब और मध्यम किसान का अल्पाश ही धनी हो सका, उनका अधिकाश बटाईदार या खेतिहर मजदूर हो गया।

कृषि क्षेत्र मे वर्गो का बढता हुआ ध्रुवीकरण

किसानो के बीच वर्ग विशिष्टीकरण की प्रक्रिया लगातार अधिकाधिक तीव्र होती गई। खेतिहर मालिको और काश्तकारो की सख्या घटती गई और गैर काश्तकार जमीन्दारो की सख्या बढती गई। बगाल, बिहार उडीसा, मद्रास और ... अन्य भागो मे ब्रिटिश सरकार द्वारा किए गए स्थाई मालिकाना हक

जमींदारों का जो वर्ग बना था, उसके अतिरिक्त अब दूरस्थ और गैर काश्तकार जमींदारों के एक नए वर्ग का जन्म हुआ। निम्नांकित अंकों से स्पष्ट है कि ब्रिटिश भारत में गैर काश्तकार जमींदारों और खेतिहर मजदूरों की संख्या बढ़ती रही[3]

	1921 (मिलियन)	1931 (मिलियन)
गैर काश्तकार जमींदार	3 7	4 1
काश्तकार (मालिक या बटाईदार)	74 6	65 5
खेतिहर मजदूर	21 7	33 5

बंगाल और मद्रास के उदाहरण से स्थिति और भी स्पष्ट होगी।

मद्रास की अंक तालिका (प्रति हजार)[33]

	1901	1911	1921	1931
गैर कामगर जमींदार	19	23	49	34
गैर कामगर बटाईदार	1	4	28	16
कामगर जमींदार	464	426	381	390
कामगर बटाईदार	151	207	225	120
सर्वहारा	345	340	317	429

बंगाल की अंक तालिका (प्रति हजार)[34]

	1921	1931	प्रतिशत वृद्धि या कमी
गैर काश्तकार जमींदार या तहसीलदार	390	634	+62
काश्तकार मालिक और बटाईदार	9 275	6 041	−35
सर्वहारा	1 805	2,719	+50

किसानों के बीच बढ़ते हुए वर्ग विभेदीकरण की यही प्रवृत्ति दूसरे देशों में भी परिलक्षित है। सब जगह समान कारण विद्यमान थे और उनके समान परिणाम हुए। खेतिहर मजदूरों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई। 1882 में इनकी संख्या 7½ मिलियन थी, 1921 में 21½ मिलियन, 1931 में 33 मिलियन। इस विषय के विशेषज्ञों का ख्याल है कि 1931 के बाद खेतिहर मजदूरों की संख्या में और अधिक वृद्धि हुई है।[3] गैर काश्तकार जमींदार, काश्तकार मालिक और बटाईदार, खेतिहर मजदूर—खेती से संबंधित कुल इतने ही वर्ग नहीं थे। भूमिहीन सर्वहारा के नीचे खेतिहर आबादी के दूसरे तबके भी थे जो अत्यन्त निर्धन लगभग कृषि-दासता की स्थिति में थे।

देश के कई भागों में कृषि दासता और अर्ध दासता जैसी श्रम व्यवस्था प्रचलित थी। गुजरात में दुबला और हाली, तमिलनाडु में पनियाल, कर्नाटक में मगता, सी० पी० में तम्मलिया और दूसरे भागों में ऐसी ही अन्य समुदाय भारतीय समाज

के निम्नतम अग थे, जो लगभग मध्ययुगीन आर्थिक शोषण और सामाजिक प्रतिबंधों की स्थिति मे रह रहे थे। [36] इनमें कुछ समुदायो जैसे गुजरात के हालियो की दशा गुलामो जैसी थी। हाली खेतिहर मजदूर है जो अपनी सुविधा के अनुसार मजदूरी नही कर पाते ह। व बडे बडे जमीदारो के यहा स्थाई नौकरो की तरह पीढी दर पीढी खटते आए है। जमींदार उनके भरण-पोषण एव भोजन आवास का प्रबध करते है। ये इस्तीफा देकर दूसरी जगह काम नही खोज सकते है। हालियो और गह युद्ध के पहले क अमरीकी गुलामो की स्थिति म कोई वास्तविक अतर नही है, सिवा इसके कि हालियो के शरीर और श्रम पर मालिक के निरकुश स्वत्व को न्यायालयो की मान्यता नही मिलेगी। कानूनन य लाग स्वतत्र ह वस्तुत गुलाम।'[37]

पूजीवादी व्यवसायो म भी, खासकर जहा यूरोपियन मालिक थे जैसे रबर, चाय और काफी के बडे बडे बागानो मे, मजदूरो के जीवन और श्रम की शर्तें काफी बुरी थी। यूरोपीय पूजी ने औपनिवेशिक देशो म पूजी लगाई, इसका एक प्रमुख कारण यह था कि यहा श्रम सस्ता था। यूरोपीय मालिको के बागानो के मजदूरो की मजदूरी तो कम थी ही, उन पर बहुत भारी पाबदिया भी थी, जिनके कारण उन्ह अपने परिवार के साथ मालिक की जायदाद पर ही जिदगी गुजारनी पडती थी।[33]

खेतिहर सर्वहारा वर्ग का उदय

पहले भी कहा जा चुका है कि अधिकाश किसान मालिको के गरीब हो जाने की वजह से भारत म खेतिहर मजदूरो का वर्ग तेजी से बढता गया। विशेषज्ञो का अनुमान है कि यह वर्ग इतना बढा कि सारी खेतिहर आबादी के आधे लोग इसी वर्ग के हो गए। शिकमी काश्तकारो की और जिन गरीब किसानो के पास अब भी अपनी जमीन थी उनकी हालत भी खेतिहर मजदूरो की हालत से कुछ खास अच्छी नही थी।

> शिकमी काश्त और खेत मजदूरो की मदद म की गई खेती का अतर समझ पाना कुछ कठिन है। शिकमी म शायद ही कभी नकद लगान मिलता है यह साझे के सिद्धात पर आधारित है, और इसम फसल का 40 से 60 प्रतिशत, या 40 प्रतिशत तक जमीन के मालिक को मिलता है। जमीन का मालिक ही बीज, पशु औजार और ऋण का प्रबध करता है और शिकमी काश्तकार एक ही जसी शर्तों पर साल दर साल किसी तरह अपनी जीविका चलाता है। इसी तरह खेत मजदूर भी मालिक के ही बीज, पशु और औजार का इस्तेमाल करता है समय समय पर अपनी साधारण जरूरतो के लिए अग्रिम पैसा भी लेता है और अत मे उसे फसल मे एक बधी हुई राशि मिलती है या फसल का कोई निश्चित भाग मिलता है। खेत मजदूर को यथासदा अनाज के साथ थोडा नकद इनाम भी मिलता है। शिकमी काश्तकार

अपने सामान और औजार से भी खेती कर सकता है, लेकिन व्यवहारतः शिकमी काश्तकार और खेत मजदूर का अंतर स्पष्ट नहीं है। जब जमीन का मालिक कहीं दूर रहता हो तब तो यह समझना और भी मुश्किल है कि जो आदमी खेती कर रहा है वह खेत मजदूर है या शिकमी काश्तकार।[39]

खेतिहर आबादी में उन्हीं लोगों की संख्या अधिक है जो पूर्ण सर्वहारा हैं या अधिकांश गरीब किसानों की तरह अर्ध सर्वहारा। उच्च कृषक वर्ग की बढ़ती हुई गरीबी और उनकी जमीन के अपहरण के कारण सर्वहारा और अर्ध सर्वहारा वर्ग की संख्या बढ़ती ही जा रही है। मध्यम और उच्च कृषक वर्ग का अल्पांश ही छोटे या बड़े समृद्ध जमींदारों की श्रेणी में आ सका।

परजीवी जमीन मालिकों के नए वर्ग का उद्भव

साहूकारों, व्यापारियों और जिन लोगों ने किसी तरह के शहरी पेशे में रुपया बनाया था, भूस्वामियों के इस नए वर्ग की भी जमींदारों के पुराने वर्ग की ही तरह कोई प्रगतिशील भूमिका नहीं रही। इन्होंने भी खेती की तरक्की के कोई काम नहीं किए। नए और पुराने दोनों प्रकार के जमींदार वर्ग को बटाईदारों से लगान वसूलने के अलावा खेती में कोई रुचि नहीं थी। पूंजी लगाने के औद्योगिक रास्तों की भारत में कमी थी और जमीन की मांग काफी अधिक। इसलिए पैसे वाले लोगों ने जमीन खरीदना पसंद किया और उसे फायदेमंद समझा।

व्यापारी, साहूकार और शहर के धनी लोग, गैर खेतिहर किस्म के इन नए भूस्वामियों को खेती से कभी कोई मतलब नहीं था। उनके लिए यह नई चीज थी। अपनी जमीन के उत्पादन को सुव्यवस्थित करने, उसकी देखरेख करने और उसके तकनीक और तरीकों को बदलने की उन्हें कोई खास ख्वाहिश नहीं थी।[40] खेती में उनकी कोई खास रुचि नहीं थी। इसलिए ऋणग्रस्त किसान से उन्होंने जो जमीन खरीदी या हथिया ली वह एक जगह न होकर कई जगह तितर बितर थी। लोगों में जमीन जोतने की इच्छा काफी प्रबल थी इसलिए इन नए जमींदारों ने ऊंचे लगान पर बटाईदारों को अपनी जमीन दे दी।

जमींदारों के पुराने वर्ग की भी स्थिति यही थी। वह भी गैरतरक्की पसंद ही रहा। बटाईदारों से लगान की ऊंची दर वसूल करने के अलावा खेती में इनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी।

पुराने जमींदारों के अप्रगतिशील चरित्र एवं रवैये की आलोचना केवल राष्ट्रवादियों ने ही नहीं, वरन अंग्रेज वायसरायों, राजनेताओं और प्रचारकों ने भी की। इन्होंने जमींदारों को उनके अपने वर्ग के हित में यह राय दी कि किसानों पर लगान की सख्ती न की जाए, खेती पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जाए, और अच्छी तकनीकी एवं वैज्ञानिक आधार पर इसे पुनर्गठित किया जाए। ऐसा करने से जमींदारों का यह बुनियादी निश्चित अनुपात का शिक्षित अध्यवसायी, आधुनिक प्रगतिशील जमींदार के रूप में परिणित हो सकता था, जिससे

राय दी गई थी उस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

भारतीय जमीदार पाश्चात्य देशों के जमीदारों के समकक्ष नहीं हो सके। उन्होंने अपनी जमीदारी में खेती का वैज्ञानिक तरीका नहीं चलाया, खेती का मशीनीकरण नहीं किया, हल के बदले ट्रैक्टर जैसे यंत्रों का इस्तेमाल नहीं किया। किसान से अधिकाधिक लगान वसूल करना ही भारतीय जमीदार का एकमात्र उद्देश्य था। जमीदार के कानूनी और गैर कानूनी रवैयों से किसान की रक्षा के लिए कई बटाईदार कानून भी बनाए, लेकिन वे बहुत कारगर नहीं हुए।

जमीदारी व्यवस्था की एक विशेषता यह भी थी कि बटाई और शिकमी के कारण रैयत और जमीदार के बीच बहुत सारे मध्यस्थ आ गए। राधाकमल मुखर्जी ने उपसामंतीकरण की इस प्रक्रिया के बारे में लिखा है, 'जमीदार अपनी जमीदारी को पूरी तरह से बेचे बिना भी अपनी मिलकियत को कम कीमत वाली छोटी जमीदारियों में वितरित कर रुपया बना सकता है। उसका ओहदा बना रहता है और उसे सालाना मालगुजारी मिलती रहती है, जिससे सरकारी लगान देने के बाद भी उसके पास पैसा बचा रह जाता है। कम कीमत की छोटी जमीदारियों वाले लोग भी यही प्रथा अपनाते हैं, जिसके फलस्वरूप बहुत से मध्यस्थ तैयार हो जाते हैं, जिन्हें खेती और जमीन के विकास में कोई रुचि नहीं इटली और स्पेन में भी उत्तरी भारत के जमीदारी राज्यों जैसा संगठन है। उधर इटली और स्पेन में और इधर भारत में बड़ी जमीदारियों की एकमात्र रुचि अपने लगान में है। वे एक या अधिक मध्यस्थों को जमीन लगा देते हैं और ये मध्यस्थ अपनी बटाई की अवधि में अधिक से अधिक लाभ कमाते हैं बंगाल के बहुत से जमीदार स्पेन और इटली के जमीदारों की तरह ही अन्यत्रवासी हैं, और लगान वसूलने भर से उन्हें मतलब है।'[11]

> कुछ जिलों में उपसामंतीकरण इस आश्चर्यजनक सीमा तक पहुंच गया है कि सबसे ऊपर जमीदार और सबसे नीचे वास्तविक काश्तकार के बीच पचास से भी अधिक मध्यस्थ स्वार्थ विद्यमान हैं।[4]

फलस्वरूप, खेती करने वाले किसान एक अनुक्रमिक श्रेणी शृंखला की अंतिम निम्नतम कड़ी हैं, और उन्हें लगान वसूल करने वाले गैरकाश्तकार लोगों की बहुत बड़ी फौज का भार संभालना पड़ा है। अलिफ लैला में नाविक सिंदबाद की पीठ पर जो समुद्री बूढ़ा सवार हुआ था, वैसे बहुत सारे बूढ़े, भारतीय किसान की पीठ पर सवार थे। किसान को इन सारे लोगों का दिए जाने वाले लगान का दुवह असह्य भार ढोना था।

रैयतवारी इलाकों में भी बटाई और शिकमी की प्रथा लगातार बढ़ती गई और जमीन काश्तकार मालिकों के हाथ से निकलकर गैर-काश्तकार मालिकों के हाथ में पड़ती गई। नए जमीदारों ने जमीन बटाईदारों को लगा दी, जिन्होंने उसे फिर शिकमी पर लगाया। इस तरह मध्यस्थों की एक पूरी शृंखला तैयार हो गई, और काश्तकार को लगान वसूलने वाले सब लोगों का बोझ ढोना पड़ा।

अधिक लगान वसूली की प्रथा जो पहले जमींदारी इलाकों तक ही सीमित थी, अब दूरस्थ भूस्वामित्व के कारण रैयतवारी इलाकों में भी बटाईदारों और शिकमी काश्तकारों की संख्या में वृद्धि हुई है। बबई और मद्रास में तीस प्रतिशत जमीन की खेती बटाईदार खुद नहीं करते हैं। इसी तरह पंजाब में भी लगान वसूल करने वालों की संख्या हाल में साठ लाख से एक करोड़ हो गई है। युक्त प्रांत में 1891 और 1921 के बीच लगान वसूलने वालों की संख्या में 46% की वृद्धि हुई है, और इसी अवधि में मध्य प्रदेश में 50% की।[13] जमीन के विभाजन और उप-विभाजन कृषि की अतिसंकुलता उसकी उत्पादनशीलता का क्रमिक ह्रास, उसका तकनीकी पिछड़ापन, किसानों की ऋणग्रस्तता उनकी दरिद्रता और उनका सर्वहाराकरण इन सबकी तरह अधिकाधिक लगान वसूली की समस्या भी अखिल भारतीय राष्ट्रीय समस्या थी। आखिर इस समस्या का जन्म भी उन्हीं कारणों से हुआ था जिनके परिणाम अन्यत्र भी परिलक्षित हो रहे थे।

भारतीय कृषि का औपनिवेशिक चरित्र

अंग्रेजों की भारत विजय और नई प्रशासन व्यवस्था के फलस्वरूप भारतीय कृषि तंत्र नए रास्तों से विकसित हुआ लेकिन भारत की औपनिवेशिक स्थिति के कारण न तो यह विकास ही उन्मुक्त था और न यहां की कृषि और कृषक आबादी ही समृद्ध और उन्नतिशील हो सकी।

इंग्लैंड, फ्रांस और दूसरे स्वतंत्र पूंजीवादी देशों में पूंजीवादी व्यवस्था के प्रवर्तन के बाद खेती की उपज बढ़ी और किसान संपन्न-समृद्ध हुए। कृषि के तकनीकी आधार का अधिकाधिक मशीनीकरण हुआ और खेतिहर मजदूर की उत्पादनशीलता बढ़ी। हल और अन्यान्य मध्ययुगीन औजारों की जगह जुताई कटाई और दवनी के ट्रैक्टर हार्वेस्टर थ्रेसर जैसी आधुनिक मशीनों का इस्तेमाल शुरू हुआ। कृषि की भौतिक इकाई के रूप में छोटे छोटे खेतों की जगह सघन कृषि क्षेत्रों (फार्म) का जन्म हुआ। कृषक आबादी का भौतिक और सांस्कृतिक स्तर ऊंचा से ऊंचा उठता गया।

यह सही है कि स्वतंत्र पूंजीवादी देशों में भी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के साधारण ह्रास के कारण संकट उत्पन्न हो गए हैं और उनका असर कृषक अर्थतंत्र और आबादी पर पड़ा है। फिर भी पूंजीवादी देशों में इन संकटों का उतना नष्टकर प्रभाव नहीं पड़ा है, जितना भारत जैसे उपनिवेशी देश में।

पूंजीवादी देशों के विपरीत भारत में नए भूमि संबंधों के आगमन के साथ समानांतर औद्योगिक विकास नहीं हुआ। ब्रिटिश उद्योगों में मशीन निर्मित सामान के बाजार में आने की वजह से भारतीय कारीगर में बहुसंख्यक बेकार हो गए और चूंकि देश में उद्योगों का विकास नहीं हो रहा था इसलिए उन्हें अन्यत्र काम नहीं मिल सका। इन लोगों ने जीविकोपार्जन के लिए बड़ी तादाद में खेती का सहारा लिया और भूमि की जनसंकुलता और बढ़ा दी। यह

भारतीय कृषि के विकास के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा रही है। इस जनसकुलता के कारण जमीन का विभाजन उपविभाजन हुआ और अनार्थिक जोतों की संख्या बढ़ी, कृषि की गुण क्षमता का ह्रास हुआ और किसानों के क्रमिक दरिद्रीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। 1850 के बाद भारत मे देशी उद्योगों का जो विकास शुरू हुआ उसकी गति पुरातन हस्त शिल्प के विनाश की गति से धीमी थी।

भूमि की जनसंकुलता और तज्जन्य उपविभाजन एवं विखंडीकरण के फलस्वरूप किसानों की आय में लगातार कमी होती गई। किसानों को अपनी फसल की बिक्री के लिए महाजनों और मध्यस्थों का सहारा लेना पड़ता था और वे किसानों की अनभिज्ञता और लाचारी का नाजायज फायदा उठाया करते थे। कृषि संकट, विश्व-बाजार के उतार-चढ़ाव किसानों का महाजनों मध्यस्थों द्वारा शोषण इन सब कारणों से किसानों की आमदनी और भी घटी। वे बड़ी तेजी से गरीब होते जा रहे थे।

भूमिकर की राशि इतनी अधिक थी कि अधिकांश किसान उसे चुकाने में असमर्थ थे। साधारण जरूरत की जो चीजें किसानों को खरीदनी पड़ती थी उन पर सरकारी टैक्स की रकम बहुत अधिक थी। इस तरह किसानों में अधिकांश को साहूकारों या सहयोग समितियों से कर्ज लेते रहना पड़ता था। साहूकार किसानों से बहुत ऊंची दर पर सूद लेते थे और किसान मूल तो क्या सूद भी नहीं चुका पाते थे। कृषक आबादी में अधिकांश बुरी तरह ऋणग्रस्त थे। इसके कारण भी किसानों की गरीबी बढ़ी ही।

जैसे जैसे दरिद्रीकरण के चपेट में अधिकाधिक किसान आते गए, वैसे-वैसे कृषि की हालत और भी चौपट हुई। निर्धन किसान न तो नए जानवर खरीद पाते थे और न खाद का ही प्रबंध कर पाते थे। उन्हें पुष्ट भोजन नहीं मिल पाता था इसलिए खेत पर काम करने की उनकी शारीरिक क्षमता भी क्रमशः क्षीण होती गई। इस तरह भारतीय कृषि गतिहीन ही नहीं ह्रासोन्मुख भी हुई। प्रति एकड़ फसल लगातार कम होती गई।

किसानों के हर तबके में बढ़ते हुए दरिद्रीकरण और ऋणग्रस्तता के फलस्वरूप जमीन बड़ी तेजी से धनी भूस्वामियों, महाजनों और साहूकारों के हाथ में जाने लगी और अंग्रेजी शासन द्वारा निर्मित जमींदार वर्ग के अतिरिक्त जमींदारों के एक और नए वर्ग की सृष्टि हुई। जमीन से अलग, दूर शहर में रहने वाले इन मालिकों को खेती की तरक्की में कोई रुचि नहीं थी और न उन्होंने कृषि के साधनों के तकनीकी विकास की ही कोई जरूरत समझी। दूसरी तरफ, किसानों की भू-क्षुधा का लाभ उठाकर वे किसानों को लगान पर जमीन देने लगे, और किसान उसको शिकमी बंदोबस्त करने लगे। इस तरह कृषक आबादी में श्रेणी-शृंखला का जन्म हुआ। जो खेती करता था वह इस श्रेणी शृंखला की निम्नतम कड़ी था। उसे गैर-काश्तकार जमींदारों, काश्तकारों, उप-काश्तकारों का भार बोझ बर्दाश्त करना पड़ता था। बटाई और शिकमी के कारण जमीन का

अधिक लगान वसूली की प्रथा जो पहले जमींदारी इलाको तक ही सीमित थी, अब दूरस्थ भूस्वामित्व के कारण रैयतवारी इलाको मे भी बटाईदारो और शिकमी काश्तकारो की सख्या मे वद्धि हुई है बबई और मद्रास म तीस प्रतिशत जमीन की खेती बटाईदार खुद नही करत है। इसी तरह पजाब म भी लगान वसूल करन वालो की सख्या हाल मे साठ लाख से एक करोड हो गई है। युक्त प्रात मे 1891 और 1921 क बीच लगान वसूलने वालो की सख्या म 46% की वद्धि हुई है और इसी अवधि म मध्य प्रदेश मे 50% की।[13] जमीन के विभाजन और उप विभाजन कृषि की अतिसकुलता उसकी उत्पादनशीलता का क्रमिक ह्रास, उसका तकनीकी पिछडापन किसानो की ऋणग्रस्तता उनकी दरिद्रता और उनका सर्वहाराकरण, इन सबकी तरह अधिकाधिक लगान वसूली की समस्या भी अखिल भारतीय राष्ट्रीय समस्या थी। आखिर इस समस्या का जन्म भी उन्ही कारणो से हुआ था जिनके परिणाम अन्यत्र भी परिलक्षित हो रहे थे।

भारतीय कृषि का औपनिवेशिक चरित्र

अग्रेजो की भारत विजय और नई प्रशासन व्यवस्था के फलस्वरूप भारतीय कृषि तत्र नए रास्तो से विकसित हुआ, लेकिन भारत की औपनिवेशिक स्थिति के कारण न तो यह विकास ही उन्मुक्त था और न यहा की कृषि और कृषक आबादी ही समद्ध और उन्नतिशील हो सकी।

इग्लैंड, फ्रास और दूसरे स्वतत्र पूजीवादी देशो म पूजीवादी सबधो के प्रवतन के बाद खेती की उपज बढी और किसान सपन्न समद्ध हुए। कृषि के तकनीकी आधार का अधिकाधिक मशीनीकरण हुआ और खेतीहर मजदूर की उत्पादनशीलता बढी। हल और अन्यान्य मध्ययुगीन औजारो की जगह जुताई, कटाई और दवनी क ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, थ्रेसर जैसी आधुनिक मशीनो का इस्तेमाल शुरू हुआ। कृषि की भौतिक इकाई के रूप म छोटे छोटे खेतो की जगह सघन कृषि क्षेत्रो (फाम) का जन्म हुआ। कृषक आबादी का भौतिक और सास्कृतिक स्तर ऊचा से ऊचा उठता गया।

यह सही है कि स्वतत्र पूजीवादी देशो म भी पूजीवादी अथव्यवस्था के साधारण ह्रास के कारण सकट बढते ही गए हैं और उनका असर कृषक जनतत्र और आबादी पर पडा है। फिर भी पूजीवादी देशो मे इन सकटो का उतना नष्टकर प्रभाव नही पडा है, जितना भारत जैसे उपनिवेशी देश म।

पूजीवादी देशो के विपरीत भारत मे नए भूमि सबधो के आगमन के साथ समानातर औद्योगिक विकास नही हुआ। ब्रिटिश उद्योगो के मशीन निर्मित सामान के बाजार मे आने की वजह से भारतीय कारीगरो म बहुसख्यक बर्बाद हो गए और चूकि देश मे उद्योगो का विकास नही हो रहा था इसलिए उन्हे अन्यत्र काम नही मिल सका। इन लोगो न जीविकोपाजन के लिए बहुत बडी तादाद मे खेती का सहारा लिया और भूमि की जनसकुलता और बढी ही। यह

भारतीय कृषि के विकास के रास्ते मे सबसे बडी बाधा रही है। इस जनसकुलता के कारण जमीन का विभाजन-उपविभाजन हुआ और अनार्थिक जोतो की सख्या बढी, कृषि की गुण क्षमता का ह्रास हुआ और किसानो के क्रमिक दरिद्रीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। 1850 के बाद भारत मे देशी उद्योगो का जो विकास शुरू हुआ, उसकी गति पुरातन हस्त-शिल्प के विनाश की गति से धीमी थी।

भूमि की जनसकुलता और तज्जन्य उपविभाजन एव विखडीकरण के फलस्वरूप किसानो की आय मे लगातार कमी होती गई। किसानो को अपनी फसल की बिक्री के लिए महाजनो और मध्यस्थो का सहारा लेना पडता था और वे किसानो की अनभिज्ञता और लाचारी का नाजायज फायदा उठाया करते थे। कृषि सकट, विश्व बाजार के उतार चढाव किसानो का महाजनो मध्यस्थो द्वारा शोषण इन सब कारणो से किसानो की आमदनी और भी घटी। वे बडी तेजी से गरीब होते जा रहे थे।

भूमिकर की राशि इतनी अधिक थी कि अधिकाश किसान उसे चुकाने मे असमर्थ थे। साधारण जरूरत की जो चीजें किसानो को खरीदनी पडती थी उन पर सरकारी टैक्स की रकम बहुत अधिक थी। इस तरह किसानो मे अधिकाश को साहुकारो या सहयोग समितियो से कर्ज लेते रहना पडता था। साहुकार किसानो से बहुत ऊची दर पर सूद लेते थे और किसान मूल तो क्या सूद भी नही चुका पाते थे। कृषक आबादी मे अधिकाश बुरी तरह ऋणग्रस्त थे। इसके कारण भी किसानो की गरीबी बढी ही।

जैसे-जैसे दरिद्रीकरण के चपेट मे अधिकाधिक किसान आते गए, वैसे-वैसे कृषि की हालत और भी चौपट हुई। निर्धन किसान न तो नए जानवर खरीद पाते थे और न खाद का ही प्रबंध कर पाते थे। उन्हे पुष्ट भोजन नही मिल पाता था इसलिए खेत पर काम करने की उनकी शारीरिक क्षमता भी क्रमश क्षीण होती गई। इस तरह भारतीय कृषि गतिहीन ही नही, ह्रासोन्मुख भी हुई। प्रति एकड फसल लगातार कम होती गई।

किसानो के हर तबके मे बढते हुए दरिद्रीकरण और ऋणग्रस्तता के फलस्वरूप जमीन बडी तेजी से धनी भूस्वामियो महाजनो और साहुकारो के हाथ मे जाने लगी और अग्रेजी शासन द्वारा निर्मित जमीदार वर्ग के अतिरिक्त जमीदारो के एक और नए वर्ग की सृष्टि हुई। जमीन से अलग, दूर शहर मे रहने वाले इन मालिको को खेती की तरक्की मे कोई रुचि नही थी और न उन्होने कृषि के साधनो के तकनीकी विकास की ही कोई जरूरत समझी। दूसरी तरफ, किसानो की भू-क्षुधा का लाभ उठाकर वे किसानो को लगान पर जमीन देने लगे, और किसान उसका शिकमी बदोबस्त करने लगे। इस तरह कृषक आबादी मे श्रेणी-शृखला का जन्म हुआ। जो खेती करता था वह इस श्रेणी शृखला की निम्नतम कडी था। उसे गैर-काश्तकार जमीदारो, काश्तकारो, उप-काश्तकारो का भार बर्दाश्त करना पडता था। बटाई और शिकमी के कारण जमीन का

उपविभाजन और बढा और जोतें अधिक-से अधिक अलाभकर होती गइ ।

खेतिहर मालिको के हाथ से गैर काश्तकार मालिका के हाथ मे जमीन के जान से कृषि क्षत्र मे वर्गो का ध्रुवीकरण बढा । कृपक आबादी के एक छोर पर गर काश्तकार जमीदारा की मख्या बढी । दूसरी ओर खेतिहर सवहारा वग की मख्या बढी । निधनतम किसानो और बटाईदारा की स्थिति खेतिहर मजदूर से कुछ खास भिन नही थी और ये तीना खेतिहर सवहारा वग के ही अग माने जाएगे ।

भूमिहीन किसानो और साथ ही गैर काश्तकार कर वमूलन वाले लोगो की सख्या बढती गई । कृपक समुदाय के एक छोर पर सपत्ति एकत्र होती गई, दूसरे छार पर भूमिहीन और बेहद गरीबी । 1914 के वाद इस प्रवृत्ति ने विकराल रूप धारण कर लिया था । राधाकमल मुखर्जी न कहा है 'जवतक जमीन के नए व्यवस्थापन, कृषि सहयोग और वज्ञानिक कृषि के जरिए ग्रामीण अथतन्त्र म मूलभूत परिवतन नही होते तबतक भूमिहीन किसाना की समस्या और भी भयकर होती जाएगी और यह वग शहर के औद्योगिक सवहारा वग जसा हाता जाएगा । यह प्रवृत्ति आगामी सामाजिक उथल पुथल की पूव-सूचना है ।'[11]

इस तरह भारत की औपनिवेशिक स्थिति के कारण, खेती म नए भूमि सबधो के आगमन से भी कृषि का आधुनिकीकरण नही हुआ और न कुछ ही दिना के लिए सही, किसान समद्ध-सपन्न ही हो सके । जमीन पर सामाजिक स्वत्व के बदले निजी स्वत्व के आगमन से सामाजिक विनिमय सबधा का विकास हुआ लेकिन खेती के तकनीकी आधार म कोई भी परिवतन नही हुआ ।

उपनिवेशी भारतीय किसान हल बल से छोटी, अलाभकर जोता मे खेती करता था । अब उसे इग्लैंड, फ्रास, अमरीका और आस्ट्रेलिया जसे स्वतन्त्र राष्ट्रो के शक्तिशाली कृपक पूजीवादी व्यापार सघ और बडे खता या बडी जागीरा पर आधुनिक मशीना की मदद से खेती करने वाले समद्ध पूजीवादी किसाना स दुनिया के बाजार मे होड लेनी पडी । किसी भी कृषि सकट का सामना करन म उसे दिक्कत होती थी । वह अधिकाधिक दरिद्र और ऋणग्रस्त होता गया ।

भारतीय जनता को राजनीतिक स्वतत्रता नही थी । वह भारतीय अथतन्त्र उद्योग, वाणिज्य और कृषि के उ मुक्त विकास के लिए हितकर स्वतन्त्र आर्थिक नीतियो और योजनाआ का न तो निरूपण ही कर सकती थी और न उनका कार्यान्वयन । भारतीय कृषि का विकास ब्रिटिश पूजीवाद की आर्थिक आवश्यकताओ द्वारा अनुकूलित था, और ब्रिटिश पूजीवाद को ब्रिटिश उद्योगो के लिए आवश्यक कच्चे माल की अपूर्ति के लिए ही कृपक उपनिवेश के रूप मे भारत की जरूरत थी । फलत भारतीय कृषि का ऐसा स्वतत्र विकास नही हो सका जिससे भारतीय जनता की आर्थिक आवश्यकताआ की पूर्ति हो । भारतीय कृषि की प्रगति एकागी और विकृत रही ।

फिर भी यह तो मानना ही होगा कि ब्रिटिश शासनकाल म गाव की फसल देश और दुनिया क बाजार म आई और खेती सारे देश के अथतन्त्र के तात्विक

अग के रूप मे प्रतिष्ठापति हुई और यह अग्रेजो की भारत-विजय का प्रगतिशील पहलू है।

इस तरह भारतीय कृषि और उसकी समस्याओ को राष्ट्रीय रूप और विस्तार मिला। स्वपर्याप्त गावा के युग म खेती ग्रामीण अथतत्र की सूत्र से समन्वित थी, इसकी समस्याए गाव की आत्मनिभर अथव्यवस्था की समस्याए थी। इनका प्रभाव गाव की आबादी तक ही सीमित था, बाहर की आबादी पर इनका कोई असर नही पडता था। भूमिकर के लिए राज्या को गावा की खेती का ही सहारा लेना होता था, लेकिन हर गाव की आबादी मुख्यतया अपने ही गाव की फसल पर निभर थी, दूसरे गावो की फसल पर नही। हर शहर के इद गिद कुछ गाव होते थे जो उस शहर की कृषि सबधी जरूरतो की आपूर्ति कर देते थे। लेकिन मूलत हर गाव की कृषि सबधी अपनी अलग समस्याए थी।

भारतीय कृषि के राष्ट्रीय उन्नयन के कारण अब कृषि सबधी समस्याए सारे देश की थी। किसी गाव या जिला विशेष मे खेती की स्थिति कसी है, इसका असर सारे देश पर पडने लगा, क्योकि अब किसी क्षेत्र विशेष मे केवल उस क्षेत्र के लिए नही वरन सारे देश के लिए फसल उगाई जाती थी। कृषि का अपकष, पशुओ की क्षीणता किसाना की दरिद्रता और ऋणग्रस्तता जमीन का विभाजन और विखडीकरण, ये सब अब राष्ट्रीय समस्याए थी। दूरस्थ मिलकियत, अतिशय भूमिकर, अपर्याप्त औद्योगीकरण, देश की कृषक आबादी को तो यह एहसास था ही कि इन्ही सब कारणो से उनकी सम्मिलित समस्याओ का जन्म हुआ है आधुनिक उद्योगो मे सबधित वग भी इन समस्याओ को अपना ही समझते थे। खेती और खेतिहर की हालत का गैर खेतिहर वर्गो और उद्योगो की दशा पर भी असर पडा। किसानो की स्थिति और कृषि की अन्य समस्याए अब अखिल भारतीय समस्याए थी।

चूकि कृषि सबधी समस्याए सारे राष्ट्र की समस्याए थी, इसलिए उनके आधार पर सारे राष्ट्र को सगठित और आदोलित किया जा सकता था। प्रत्येक पार्टी चाहे वह किसी भी सामाजिक दल का प्रतिनिधित्व करती हो उसकी कृषि सबधी अपनी नीति थी और उस नीति के पीछे उस सामाजिक दल विशेष के स्वाथ थे। विभिन्न वर्गो जसे कृषक आबादी के ही विभिन्न अग, जमीदार, काश्तकार मालिक, कर्जदार खेत मजदूर आदि के बीच जो स्वार्थो का सघष था, उनके चलते विभिन्न वर्गो की नीति और उनके कायक्रम भिन्न थे। फिर भी विभिन्न और विरोधी नीतिया भी अभिन्न भारतीय व्यवस्था के अभिन्न अग के रूप म राष्ट्रीय कृषि की समस्याओ से उत्प्रेरित थी।

कृषि के पुनगठन की आवश्यक शर्ते

भारतीय कृषि को समृद्ध करने के लिए उसका पुनरुद्धार और पुनगठन करने उन सभी कायक्रमो तथा नीतियो का सामान्य लक्ष्य बन गया जिनमे भारतीय

कृषि समृद्ध हो सके तथा कृषकों का भौतिक स्तर सुधर सके।

भारतीय कृषि के पुनरुद्धार और पुनर्गठन का प्रयास करने वाले विभिन्न दलों के सभी आंदोलन ने इसके लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने ही भारत में नई कृषि की व्यवस्था की नींव डाली थी और ऐसी नीतियां अपनाई थीं जिनका भारतीय कृषि की स्थिति पर कुछ न कुछ असर पड़ा था। अंग्रेजों की सरकार विदेशी थी इसीलिए पुनरुद्धार और पुनर्गठन संबंधी आंदोलनों का रूप और विस्तार राष्ट्रीय था। कृषि के क्षेत्र में सुधार या क्रांति के लिए जब विभिन्न दलों ने ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला तो वे राष्ट्रीय भावना से अनुप्रेरित थे, क्योंकि यह दबाव विदेशी सत्ता पर डाला जा रहा था। इस तरह अंग्रेजों की भारत विजय और उनके द्वारा लाई गई शासन व्यवस्था ने राष्ट्रीय कृषि को प्रतिष्ठापित किया और भारतीय जनता में कृषि के विषय में राष्ट्रीय हित की भावना का विकास हुआ। इस राष्ट्रीय भावना के उदय के साथ साथ कृषि को समृद्ध बनाने की दिशा में भी प्रयास हुए।

भारतीय कृषि के पुनर्गठन, इसके विकास और किसानों की समृद्धि के सवाल बड़े बीहड़ थे। इनके समाधान के लिए व्यापक योजना की आवश्यकता थी ऐसी योजना जो सुनियोजित राष्ट्रीय अर्थतंत्र से संपन्न हो। सारे अर्थतंत्र के विकास के बिना किसी एक अंग या उपांग का विकास पूरी तरह से संभव नहीं है। औद्योगिक उत्पादन की योजना के लिए कृषिजन्य उत्पादनों का समायोजन आवश्यक है, और इनकी सफलता सुनियोजित मुद्रा एवं ऋण तथा साख के संगठन पर निर्भर है।[45]

नए भूमि-संबंध और व्यापक ऋणग्रस्तता किसानों की गरीबी और कृषि के ह्रास के दो प्रमुख कारण थे। इसलिए राष्ट्रीय कृषि के उत्थान की किसी भी योजना की सफलता के लिए आवश्यक था कि पुराने संपत्ति संबंधों का पुनर्गठन हो और ऋणग्रस्तता को खतम किया जाए। ऐसे किसी भी कार्यक्रम के कार्यान्वयन में जमींदारों, सूदखोरों और अन्य निहित स्वार्थवालों जैसे शहरी मध्यमवर्ग जो तेजी से जमीन खरीद रहा था का प्रतिरोध अवश्यंभावी था। इसलिए जो भी आंशिक और छिटपुट कदम उठाए गए उनका कोई परिणाम नहीं निकला। 'खेतिहर वर्गों की ऋणग्रस्तता असाध्य बीमारी थी ऋण को कम करने और साहूकार के क्रियाकलाप पर रोकथाम लगाने वाले विधान इस रोग का कोई इलाज नहीं कर सकेंगे।'[46]

फिर यह भी तात्पर्य है कि 'जबतक उनके ऋणों के समवेत विलोपन जैसे उपायों द्वारा रैयतों को एक सिरे से फिर से जिंदगी शुरू करने का मौका नहीं दिया जाता और जबतक उनकी गरीबी से संबंधित सारी समस्याओं पर विभिन्न दिशाओं से एक ही साथ आघात कर उनके कृषि संबंधी क्रियाकलाप के लिए पूरी सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती तबतक भारतीय कृषि की समृद्धि की आशा बेकार है।'[47]

उपरोक्त मतव्य के लेखकद्वय ने यह भी कहा है, 'अगर इस दिशा म रुक रुककर कच्चा काम करने के बदले हम जमीन के पुर्नवितरण समग्र जोतों की स्थापना और बडे पैमाने पर सहयोगी उत्पादन आदि की सभावना पर विचार करें, तो ऐसे उपायो का हमारी कृषि पर क्रांतिकारी प्रभाव पडेगा। लेकिन इसका मतलब होगा कि साहुकारो से लेकर सामती और दूरस्थ जमीदारो तक हर प्रकार के निहित स्वार्थो से जमकर दीघकालीन सघष किया जाए हमारे पास दो ही विकल्प है, या तो हम सशक्त और मूलभूत परिवतन का रास्ता अपनावें, जिससे हमारे सामाजिक और आर्थिक सगठन का नवनिर्माण हो सके या फिर हम आज के अनियोजित सबहन की स्थिति का निर्वाह करते रहे। यह दूसरा रास्ता रुक रुककर चलने वाले सुधार का रास्ता है जिसकी परिणति होगी गभीर कृषि सकट म, और तब उसके कारण विध्वसक क्रांति होगी।[18]

भारतीय जनता की जरूरतो और उसकी साधारण आर्थिक प्रगति के लिए कृषि का मुक्त विकास आवश्यक है। ऐसा मुक्त विकास ही कृषि सबधी राष्ट्रीय योजना का उद्देश्य है। लेकिन इस प्रकार की किसी भी योजना की सफलता की एक आवश्यक शत यह है कि राजनीतिक सत्ता भारतीय जनता के हाथ म हो। सुनियोजित और समृद्ध राष्ट्रीय कृषि के लिए देश की अपनी राष्ट्रीय सरकार आवश्यक है, ऐसी सरकार जो विदेशी या देशी निहित स्वार्थों के बदले भारतीय जनसमूह के हित और उसकी आकाक्षाओ को अभिव्यक्त कर, उन्हे सतुष्ट करे।

यह बात भी माननी होगी कि समस्त कृषि जन्य अथतत्र के नवनिमाण जैसा बृहद काय, जिसका अथ है भारत जसे उपमहादेश के सारे उपलब्ध भौतिक तकनीकी और मानवीय साधनो का सुनियोजित सगठन और सचालन व्यक्तिगत उद्यम से सभव नही है। यह काम राज्य द्वारा ही सभव है। ऐसी योजना का यह भी मतलब होगा कि कृषि उत्पादन के क्षेत्र म लाभ और प्रतियोगिता की भावना खतम कर दी जाए। साथ ही भारतीय जनता की जरूरतो और भारतीय अथतत्र का सर्वांगीण प्रगति के दृष्टिकोण से कृषि उत्पादन को सहयोग के सिद्धात पर निरूपित करना पडेगा। जिस प्रकार के कृषक सगठन की हम कल्पना करते है वह जनता के हिताथ राज्य द्वारा उत्पादन के विनियमन और कृषि उत्पादन के जनोपयोगी सेवाओ के रूप म परिवतन पर आधारित होगा।'[19]

स्पष्टत, भारतीय जनता की राष्ट्रीय सरकार ही न कि भारतीय और विदेशी निहित स्वार्थों की सरकार, एसी योजना का सफल कार्यान्वयन कर सकेगी।

इस तरह भारतीय कृषि के पुनरुद्धार और उसकी प्रगति की समस्या महज तकनीकी आर्थिक समस्या नही थी। यह मूलत सामाजिक आर्थिक और राज नितिक समस्या थी। भारतीय उद्योग के समुचित सर्वांगीण, क्षिप्र और मुक्त विकास से इसका गहरा सबध था। उद्योगो के विस्तार ने ही देहात की आबादी का अधिकाश अन्यत्र आत्मसात हो सकता था, और कृषि के आधुनिकीकरण और

कृषि समृद्ध हो सके तथा कृषकों का भौतिक स्तर सुधर सके।

भारतीय कृषि के पुनरुद्धार और पुनर्गठन का प्रयास करने वाले विभिन्न दलों के सभी आंदोलन ने इसके लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने ही भारत में नई कृषि की व्यवस्था की नींव डाली थी और ऐसी नीतियां अपनाई थीं जिनका भारतीय कृषि की स्थिति पर कुछ न कुछ असर पड़ा था। अंग्रेजों की सरकार विदेशी थी इसीलिए पुनरुद्धार और पुनर्गठन संबंधी आंदोलनों का रूप और विस्तार राष्ट्रीय था। कृषि के क्षेत्र में सुधार या क्रांति के लिए जब विभिन्न दलों ने ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला तो वे राष्ट्रीय भावना से अनुप्रेरित थे क्योंकि यह दबाव विदेशी सत्ता पर डाला जा रहा था। इस तरह अंग्रेजों की भारत विजय और उनके द्वारा लाई गई शासन व्यवस्था ने राष्ट्रीय कृषि का प्रतिष्ठापन किया और भारतीय जनता में कृषि के विषय में राष्ट्रीय हित की भावना का विकास हुआ। इस राष्ट्रीय भावना के उदय के साथ साथ कृषि को समृद्ध बनाने की दिशा में भी प्रयास हुए।

भारतीय कृषि के पुनर्गठन इसके विकास और किसानों की समृद्धि के सवाल बड़े बीहड़ थे। इनके समाधान के लिए व्यापक योजना की आवश्यकता थी, ऐसी योजना जो सुनियोजित राष्ट्रीय अर्थतंत्र से संबद्ध हो। सारे अर्थतंत्र के विकास के बिना किसी एक अंग या उपांग का विकास पूरी तरह से संभव नहीं है। औद्योगिक उत्पादन की योजना के लिए कृषिजन्य उत्पादनों का समायोजन आवश्यक है, और इनकी सफलता सुनियोजित मुद्रा एवं ऋण तथा साख के संगठन पर निर्भर है।'[45]

नए भूमि-संबंध और व्यापक ऋणग्रस्तता किसानों की गरीबी और कृषि के ह्रास के दो प्रमुख कारण थे। इसलिए राष्ट्रीय कृषि के उत्थान की किसी भी योजना की सफलता के लिए आवश्यक था कि पुराने संपत्ति संबंधों का पुनरीक्षण हो और ऋणग्रस्तता को खत्म किया जाए। ऐसे किसी भी कार्यक्रम के कार्यान्वयन में जमींदारों, सूदखोरों और अन्य निहित स्वार्थवालों जैसे शहरी मध्यवर्ग जो तेजी से जमीन खरीद रहा था का प्रतिरोध अवश्यंभावी था। इसलिए जो भी आंशिक और छिटपुट कदम उठाए गए उनका कोई परिणाम नहीं निकला। 'खेतिहर वर्गों की ऋणग्रस्तता असाध्य बीमारी थी ... ऋण को कम करने और साहूकार के क्रियाकलाप पर रोकथाम लगाने वाले विधान इस रोग का कोई इलाज नहीं कर सकते।'[46]

फिर यह भी ज्ञातव्य है कि जबतक उनके ऋणों के समवेत विलोपन जैसे उपायों द्वारा रैयतों को एक सिर से फिर से जिंदगी शुरू करने का मौका नहीं दिया जाता और जबतक उनकी गरीबी से संबंधित सारी समस्याओं पर विभिन्न दिशाओं से एक ही साथ आघात कर उन्हें कृषि संबंधी क्रियाकलाप के लिए पूरी सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती तबतक भारतीय कृषि की समृद्धि की आशा बेकार है।[4]

उपरोक्त मतव्य के लेखकद्वय ने यह भी कहा है, 'अगर इस दिशा मे रुक रुककर कच्चा काम करने के बदले हम जमीन के पुनर्वितरण समग्र जोतो की स्थापना और बड़े पैमाने पर सहयोगी उत्पादन आदि की सभावना पर विचार करें, तो ऐसे उपायो का हमारी कृषि पर क्रातिकारी प्रभाव पडेगा। लेकिन इसका मतलब होगा कि साहुकारो से लेकर सामती और दूरस्थ जमीदारो तक हर प्रकार के निहित स्वार्थों से जमकर दीघकालीन सघष किया जाए हमारे पास दो ही विकल्प हैं या तो हम सशक्त और मूलभूत परिवतन का रास्ता अपनावें, जिससे हमारे सामाजिक और आर्थिक सगठन का नवनिर्माण हो सके, या फिर हम आज के अनियोजित सवहन की स्थिति का निर्वाह करते रहे। यह दूसरा रास्ता रुक-रुककर चलने याने सुधार का रास्ता है जिसकी परिणति होगी गभीर कृषि सकट म, और तब उसके कारण विध्वसक क्राति होगी।'[18]

भारतीय जनता की जरूरतो और उसकी साधारण आर्थिक प्रगति के लिए कृषि का मुक्त विकास आवश्यक है। ऐसा मुक्त विकास ही कृषि सबधी राष्ट्रीय योजना का उद्देश्य है। लेकिन इस प्रकार की किसी भी योजना की सफलता की एक आवश्यक शत यह है कि राजनीतिक सत्ता भारतीय जनता के हाथ मे हो। सुनियोजित और समृद्ध राष्ट्रीय कृषि के लिए देश की अपनी राष्ट्रीय सरकार आवश्यक है, ऐसी सरकार जो विदेशी या देशी निहित स्वार्थों के बदले भारतीय जनसमूह के हित और उसकी आकाक्षाओ को अभिव्यक्त करे उन्हे सतुष्ट करे।

यह बात भी माननी होगी कि समस्त कृषि जन्य अथतत्र के नवनिमाण जैसा वृहद काय, जिसका अथ है भारत जसे उपमहादेश के सारे उपलब्ध भौतिक, तकनीकी और मानवीय साधनो का सुनियोजित सगठन और सचालन, व्यक्तिगत उद्यम से सभव नही है। यह काय राज्य द्वारा ही सभव है। ऐसी योजना का यह भी मतलब होगा कि कृषि उत्पादन के क्षत्र मे लाभ और प्रतियोगिता की भावना खतम कर दी जाए। साथ ही भारतीय जनता की जरूरतो और भारतीय अथतत्र की सर्वागीण प्रगति के दृष्टिकोण से कृषि उत्पादन को सहयोग के सिद्धात पर निरूपित करना पडेगा। 'जिस प्रकार के कृषक सगठन की हम कल्पना करते है वह जनता के हिताथ राज्य द्वारा उत्पादन के विनियमन और कृषि उत्पादन के जनोपयोगी सेवाओ के रूप म परिवतन पर आधारित होगा।'[19]

स्पष्टत, भारतीय जनता की राष्ट्रीय सरकार ही न कि भारतीय और विदेशी निहित स्वार्थों की सरकार ऐसी योजना का सफल कार्यान्वयन कर सकेगी।

इस तरह भारतीय कृषि के पुनरुद्धार और उसकी प्रगति की समस्या सहज तकनीकी आर्थिक समस्या नही थी। यह मूलत सामाजिक, आर्थिक और राजनितिक समस्या थी। भारतीय उद्योग के समुचित सर्वागीण, क्षिप्र और मुक्त विकास से इसका गहरा सबध था। उद्योगो के विस्तार से ही देहात की आबादी का अतिशेष अन्यत्र आत्मसात हो सकता था, और कृषि के आधुनिकीकरण और

मशीनीकरण के लिए औजार और यत्र का निर्माण हो सकता था। भूमि सबधा के आमूल परिवतन के प्रश्न से कृषि के पुनरुद्धार का महत्वपूण सरोकार था। यह राजनीतिक शक्ति और मत्ता का भी सवाल था। सवाल यह असल मे भारतीय जनता के स्वतत्र सावभौम राज्य की स्थापना का था, ऐसा राज्य जिसम शक्ति निहित स्वार्थो के हाथ मे न होकर आबादी के उत्पादक और शोपित तत्त्वा के पास हो।

इस तरह कृपि के नवनिर्माण की समस्या ऐतिहासिक तौर पर उच्चस्तरीय समाज के नवनिर्माण और स्वतत्रता की समस्या से सपृक्त थी और यह ऐसी राष्टीय समस्या थी जिसका प्रगतिशील निदान ही सभव था।

सदभ

1 देखें शलवकर प० 106 7।
2 देखें वाडिया एड मर्चेंट प० 167।
3 वही प० 85।
4 वही प० 87।
5 अहमद द्वारा उद्धत प 1।
6 वही प० 1।
7 वही प० 3।
8 काग्रेस अग्रेरियन इक्वायरी कमेटी रिपोट प० 28।
9 देखें राधाकमल मखर्जी मान व्रिजनारायण रगा।
10 राधाकमल मुखर्जी प० 196।
11 आर० पी० दत्त प० 184।
12 अहमद प० 2 3।
13 विश्वेश्वरया अहमद द्वारा उद्धत प० 8।
14 देखें कमीशन की रिपाट (1892)।
15 आर० पी० दत्त द्वारा उद्धत प० 22।
16 आर० पी० दत्त प० 227।
17 देखें आर० पी दत्त 205।
18 राधाकमल मुखर्जी प 206।
19 वही प० 345।
20 इडियन स्टच्युटरी कमीशन का रिपोट 1930 जिल्द 1।
21 सीतारमया प० 62।
22 द फमिन कमीशन रिपाट 1880।
23 देख सर एडवर्ड मकलागन एम० एल० डालिंग द सट्रल बैंकिंग इक्वायरा कमटी पा ज० थामस एग्रीकल्चरल अन्टि डिपाटमट और अन्य।
24 देख वाडिया एड मर्चेंट प० 185।
25 अहमद प 26-27।
26 वही प० 27।

27 वाडिया एन मर्चेंट प० 27।
28 प्रविन्पियल बकिंग इन्क्वायरी की रिपाट दखें।
29 आर० पी० दत्त द्वारा उद्धत पृ० 235।
30 रायल कमीशन आन एग्रीकल्चर प० 433 34।
31 द इक्स्न रायल्स कमीशन बगाल प्रविशियल कमटी रिपाट कमिटी आन को-आपरेशन इन मद्रास की रिपाट।
32 दखें आर० पी० दत्त प० 216।
33 वाडिया एन मर्चेन्ट से उद्धत प० 249।
34 वहा प० 249।
35 दखें सरकार इडियन जनल आफ इकनामिक्स जुलाई 1939 प० 94 96।
36 दखें निरर देसाई अग्ररियन सफडम इन इडिया इडियन सोशियालिस्ट जुलाई 1942।
37 ज० एम० मेहता प० 125।
38 दखें रायल कमीशन आन लेबर आर० पी० दत्त और शिव राव।
39 मद्रास बकिंग इन्क्वायरी कमिटी की रिपाट प० 1930।
40 दख पजाडड कमशीन रिपाट पृ० 37।
41 राधाकमल मुकर्जी प० 90।
42 साइमन कमीशन रिपोट जिल्द 1 प० 340।
43 वाडिया एड मर्चेन्ट प० 231।
44 बाम्बे इन्क्वायरी कमटी की रिपोट म उद्धत प० 23।
45 वाडिया एड मर्चेंट प० 231।
46 वहा प० 195।
47 वही प० 195 96।
48 वहा प० 182।
49 वहा प० 270।

5

नागरिक हस्तशिल्प का अपकर्ष

नागरिक हस्तशिल्प पर अग्रेजी शासन का प्रभाव

डी० आर० गाडगिल ने नागरिक हस्तशिल्प पर अग्रेजी शासन के प्रभाव का निम्नाकित शब्दो मे बडा तात्विक, सारगर्भित एव सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है, 'पुराने हस्तशिल्पो का ह्रास भारत के आर्थिक सक्रमण की सर्वाधिक नाटकीय घटना है। इनका वस्तुत बडा आकस्मिक और सर्वग्राही विध्वस हुआ।'[1] उन्होने इसी प्रसग मे यह भी कहा है, 'इसके अनेक कारण थे, लेकिन उन कारणो मे सबसे महत्वपूर्ण ये है (1) भारत से पुराने देशी दरबारो का लोप (2) विदेशी शासन की स्थापना और तज्जन्य विदेशी प्रभावो का आगमन (3) अधिक विकसित उद्योगो से प्रतियोगिता।' अग्रेजी शासन काल मे भारत के नागरिक हस्तशिल्प का यह जो आकस्मिक और सपूर्ण विध्वस हुआ अब हम उसका विस्तृत सर्वेक्षण करेंगे।

देशी रजवाडो अर्थात नागरिक हस्तशिल्प के सरक्षको का लोप

अग्रेजो की भारत विजय के बाद लगातार एक के बाद एक तेजी से देशी राज्यो का खात्मा होने लगा। उनकी जगह ईस्ट इडिया कपनी द्वारा विकसित शासन प्रशासन के नए रूप सामने आए। जहा देशी राज्य समाप्त नही हुए वहा भी अग्रेजो का परोक्ष राजनीतिक प्रभुत्व बढता ही गया। देशी राज्यो और उनके अधिकार के ह्रास का हिंदुस्तान की शहरी दस्तकारी पर तत्काल बडा सीधा असर पडा। ये देशी राज्य ही शहरी दस्तकारी के सामान के सबसे बडे खरीदार थे। इनमे से बहुतो के यहा कारखाने और शिल्पालय थे। इन कारखानो और शिल्पालयो मे श्रेष्ठतम शिल्पी काम करते थे। इसलिए इन राज्यो के खतम हो जाने पर 'देशी कारीगरी की चीजो की माग घट गई और यह देशी कारीगरी पर पहला बडा आघात था। इसका तत्काल यह परिणाम हुआ कि उन श्रेष्ठ कलात्मक वस्तुओ का उत्पादन कम हो गया, जिनका बडे बडे राजा महाराजा राजकीय अवसरो पर उपयोग करते थे। राजदरबारो के खतम हो जाने पर साधारण चीजो

की माग कुछ दिनों तक बनी रही, लेकिन वह भी धीरे-धीरे कम हो गई।'[3]

नागरिक हस्तशिल्प पर विदेशी शासन का अनर्थकारी प्रभाव

भारतीय वस्तु निर्माण उद्योग पर विदेशी शासन का जो प्रभाव पडा, अब हम उसका विवेचन करेंगे। 1600 से 1757 तक ईस्ट इंडिया कंपनी मूलत एक व्यापार सघ थी जो भारतीय राजाओ की अनुमति से, उनके सरक्षण म, या कभी-कभी उनकी अनिच्छा के बावजूद, भारत म तिजारत करती थी। यह व्यापार सघ प्राय बाहर से बुलियन (सोना चादी) लाता था और उसके बदले भारत से विलासिता के उपकरण जैसे मसाला, सूती कपडा, इत्यादि विदेश ले जाता था। इस अवधि म भारत म बने सामान का निर्यात बढा।

> सत्तरहवी सदी के अत म रेशम और सूती सामान का बडे परिमाण म निर्यात हुआ। [ईस्ट इंडिया] कपनी के लिए यह बडे लाभ का रोजगार था, और 1672 मे कपनी ने बहुत सारे विलायती पैटर्नो के साथ अंग्रेज धुनिया, रगरेज और ताना बटने वालो को हिंदुस्तान भेजा कि वे यहा के कारीगरो को अंग्रेजी और यूरोपीय बाजार के उपयुक्त सामान बनाने के नए तरीके सिखा सकें।'[4]

इस तरह जिन दिनो ईस्ट इंडिया कपनी महज एक व्यापार सघ थी, और भारतीय सामान की खपत के लिए विदेश मे जी तोड कोशिश कर रही थी, उन दिनो भारत का निर्यात तरक्की पर रहा। इंग्लैंड मे भारतीय सामान के आधिक्य से घबडा कर ब्रिटिश सरकार को उन दिनो ऐसे कानून बनाने पडे जिनसे इगलैंड म भारतीय सामान की बिक्री कठिन हो जाए।[5]

पलासी की विजय ने भारत म ईस्ट इंडिया कपनी के पैर जमा दिए। कपनी के हाथ म अब राजनीतिक सत्ता भी थी, और उसकी मदद से अपनी तिजारत आगे बढाने के लिए वह तरह-तरह की सुविधाओं की सृष्टि कर सकती थी जैसे कारीगरो को कपनी की शर्तों पर काम करने के लिए बाध्य करना कम दाम मे चीजें खरीदना, कारीगरो के कामो पर अपना एकाधिकार बनाए रखना, बाहर से खरीदकर लाई गई चीजो को जबदस्ती भारत म बेचना, राजनीतिक हथकडो से अपना एकाधिकार बनाए रखने के लिए देशी और विदेशी प्रतिद्वद्वियो का उन्मूलन आदि।

1757 और 1857 के बीच ईस्ट इंडिया कपनी ने भारत के अधिकाधिक भूभाग पर अपनी सत्ता का विस्तार किया, बहुत सारे देशी राज्यो को आत्मसात कर लिया और भारत मे बहुत सारा धन विदेश पहुचाया। ईस्ट इंडिया कपनी के आलोचको ने धन के इस निर्यात को लूट की सज्ञा दी है। इसी 'लूट' के जरिए ब्रिटेन की औद्योगिक क्राति के लिए आवश्यक पूजी का 'आद्य सचयन' हो सका। 'द ला आफ सिविलाइजेशन एड डिके' नामक अपनी पुस्तक म ब्रुक्स ऐडम्स ने इस बारे मे विस्तार से लिखा है

पलासी की लडाई 1757 म हुई और इसके बाद अभूतपूर्व तेजी से बहुत

सारे परिवर्तन हुए। 1760 में तेज चलने वाली दरकी भरनी का आविष्कार हुआ और लोहा पिघलाने के जलावन के रूप में लकड़ी के बदले कोयले का इस्तेमाल शुरू हुआ। 1764 में हारग्रीव्स ने सूत कातने वाली मशीन का आविष्कार किया, और 1776 में, क्राम्पटन ने एक ही साथ कई सूत कातने और उन्हें बटने वाली मशीन का, 1785 में कार्टराइट ने मशीन से चलने वाले करघे का पेटेंट कराया, और इन सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि 1768 में वाट ने भाप से चलने वाले इंजन को पूरा कर लिया। केन्द्रीभूत ऊर्जा के जितने सारे उद्गम थे वाष्पचालित इंजन उनमें सबसे अधिक कार्यक्षम था। युग की त्वरणशीलता को इन मशीनों से अभिव्यक्ति मिली लेकिन ये मशीनें इस गतिशीलता की कारक नहीं थीं। आविष्कार स्वतः निष्क्रिय हैं अनेक महत्वपूर्ण आविष्कार शताब्दियों तक सुप्तावस्था में पड़े रहे हैं इस प्रतीक्षा में कि प्रचुर शक्ति संचय हो और वे कार्यरत हो सकें। यह शक्ति संचय धन द्रव्य के रूप में ही संभव है। इस धन संपत्ति का गतिशील होना भी आवश्यक है भूगर्भ में संचित कोष में कोई लाभ नहीं। भारतीय धन के अंतरागमन के पूर्व और तज्जन्य वाणिज्यिक साख और विश्वास के बिना (ब्रिटेन के औद्योगीकरण के लिए आवश्यक) शक्ति वहां उपलब्ध नहीं थी। अगर वाट पचास साल पहले हुआ होता तो निश्चय ही वह और उसका आविष्कार नष्ट हो गए होते। संभवतः सृष्टि के प्रारंभ से आज तक कहीं भी पूंजी लगाने पर इतना फायदा नहीं हुआ है जितना भारत की लूट में ब्रिटेन को हुआ है। लगभग पचास वर्षों तक ब्रिटेन का कहीं कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं रहा। 1694 से पलासी (1757) तक विकास की गति धीमी थी 1760 से 1815 के बीच यह गति बड़ी तेज और अपूर्व रही।[6]

इस तरह जो औद्योगिक क्रांति आई उसके चलते इंग्लैंड में एक शक्तिशाली औद्योगिक वर्ग का जन्म हुआ। इस वर्ग ने धीरे-धीरे राज्य सत्ता पर अपना अधिकार जमाया और प्राच्य देशों से व्यापार करने के ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार को खतम करने के लिए इस राज्य सत्ता का उपयोग किया। इस वर्ग ने कंपनी को इसके लिए भी बाध्य किया कि वह ऐसे राजनीतिक और आर्थिक कदम उठाए जो ब्रिटिश उद्योगों के हित में हों। घोर संघर्ष के बाद ही ब्रिटेन में व्यापारिक पूंजी पर औद्योगिक पूंजी की राजनीतिक विजय हो सकी।

जिन दिनों इंग्लैंड में औद्योगिक वर्ग की ताकत बढ़ रही थी उस वक्त भारतीय हस्तशिल्प तेजी से श्री विहीन हुआ। आ

इए हम इसके विनाश के विभिन्न कारणों का अध्ययन करें।

नवोदित ब्रिटिश उद्योग के लिए भारत में बने सामानों की प्रतियोगिता में टिक पाना संभव नहीं था। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटिश बाजार में भारतीय सामान की आमद रोकने के लिए और इस तरह ब्रिटिश उद्योग को संरक्षण प्रदान

करने के लिए बहुत सारे कानून बनाए, जिनका भारत के निर्यात व्यापार पर बुरा असर पड़ा। होरेस विल्सन ने बड़ी जानदार शैली में इसकी चर्चा की है

> भारत के साथ सूती माल के व्यापार का इतिहास एक दुखद प्रसंग है। इससे पता चलता है कि जिस देश पर भारत आश्रित हो चुका था, उसने भारत के साथ कैसा अन्याय किया यदि प्रतिरोधक कर और कानून नहीं होते तो पजली और मैनचेस्टर की मिलें शुरू में ही बंद हो जातीं, और भाप की ताकत से भी उन्हें फिर चला पाना संभव नहीं होता। भारतीय निर्माण उद्योग की बलि चढ़ाकर ही ब्रिटिश उद्योगों की सृष्टि की गई। जिस तरह का प्रतिकार स्वाधीन रहने पर भारत कर सकता था, वैसा कोई आत्मरक्षात्मक कार्य वह नहीं कर सका। वह अजनबी लोगों की दया पर निर्भर था। ब्रिटेन में बने सामान पर कर नहीं लगता था और यह सामान खरीदने को भारत बाध्य था। ब्रिटिश उद्योगपतियों ने राजनीतिक प्रभुता और अनीति की मदद से अपने भारतीय प्रतियोगियों को दबाए रखा और अंततोगत्वा उन्हें पूरी तरह समाप्त कर दिया, यद्यपि बराबर की लड़ाई में वे नहीं टिक पाते।"[7]

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रुइन आफ इंडियन ट्रेड एंड इंडस्ट्रीज' में बी० डी० बसु ने भारत से इंगलैंड भेजे जाने वाले सामान पर लगाए गए करों की विस्तृत तालिका दी है। इस तालिका से स्पष्ट है कि अपने उद्योगों की तरक्की और उनके हितार्थ देशी बाजार को सुरक्षित रखने के लिए अंग्रेजी सरकार ने जान बूझकर भारत के निर्यात व्यापार का गला घोंट दिया।[8]

लेकिन यह भी याद रखना चाहिए कि भारतीय हस्तशिल्प का विदेशी बाजार बहुत छोटा था। उसकी खपत के लिए सबसे अधिक गुंजाइश हिंदुस्तान में ही थी।[9] यहीं विदेशी प्रभाव और शासन से सबसे भारी नुकसान हुआ।

भारतीय हस्तशिल्प की बर्बादी के कारण

ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन भारत के हस्तशिल्प उद्योग के लिए हानिकर था। इसके अनेक कारण थे। पहला कारण यह था कि अंग्रेजी शासन के चलते देशी रजवाड़े खतम हो गए। ये रजवाड़े इस उद्योग के सबसे बड़े खरीदार और संरक्षक थे। दूसरा कारण यह था कि यों ईस्ट इंडिया कंपनी खुद उन उद्योगों को प्रश्रय दे सकती थी लेकिन इसे अपने देश की सरकार के दबाव में ऐसे काम करने पड़े जो भारतीय उद्योग के लिए अहितकर हुए। तीसरा कारण यह था कि कंपनी का स्वार्थ तिजारत में था और विदेशी मंडी में पूरा फायदा उठाने के लिए यह कम खर्च में चीजों का उत्पादन करना चाहती थी। इंगलैंड में भारतीय सामान पर जो कर लगाया गया उससे लाभ की राशि में कमी न हो इसलिए जरूरी हो गया कि उत्पादन पर कम खर्च हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कंपनी ने धुनियों और दूसरे कारीगरों पर अपना एकाधिकार जमाया और उन्हें कम खर्च में चीजों के उत्पादन के लिए बाध्य किया। कंपनी के हाथ में राजनीतिक सत्ता थी, और

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने इसका भी इस्तेमाल किया। भारतीय या गैर ब्रिटिश विदेशी सौदागरों को अधिक दाम म अपनी चीजे बेचने स कपनी न देशी कारीगरो का रोक दिया। इनकी स्थिति बहुत कुछ गुलामो की सी हो गई। चौथा कारण यह था कि कपनी ने भारत म सीमा शुल्क लगाए और परिवहन व नियमन के तरीके अपनाए जिनके कारण भारतीय व्यापारियो को दश के अदर तिजारत करन म भी कठिनाइया का सामना करना पडा। कपनी द्वारा की गई इन कारवाइयो का उद्देश्य ही यह था कि प्रतिद्वद्वी व्यापारियो का रास्ते से हटा कर भारतीय मडी पर एकछत्र राज्य स्थापित कर लिया जाए। फलस्वरूप भारतीय हस्तशिल्प की कृतियो के लिए देशी बाजार नष्टप्राय हो गया। यह भी ज्ञातव्य है कि 1813 तक इगलैड म वहा के औद्योगिक वग राजनीतिक तौर पर समथ हो चुके थे। 1813 के चाटर म ईस्ट इडिया कपनी के एकाधिकार का समाप्त कर भारत को अग्रेज सौदागरो के निर्बाध व्यापार के लिए मुक्त कर दिया। ये नए सौदागर सोलहवी-सत्तरहवी सदी म यहा आने वाले पुराने सौदागरो से भिन्न थे। ये नए सौदागर भारत मे निर्मित सामान खरीदने नही, वरन इगलड की मिलो मे बने सामान बचने और इन मिलो क लिए कच्चा माल ले जाने आए थे। ईस्ट इडिया कपनी अब मुख्यत इगलैड के औद्योगिक वर्गों के राजनीतिक स्वार्थों की अनुचरी थी। 1814 के बाद अग्रेजी उद्योगो के लिए आवश्यक कच्चे माल का आयात निर्यात ही इसकी नीतियो का मूल उद्देश्य रहा। यह भी उल्लेखनीय है कि अग्रेजी शासन की स्थापना के कारण भारत म 'धनी व्यापारियो सफल साहूकारो और यूरोपीय लोगो की तरह रहने वाले सरकारी पदाधिकारियो के नए वग[10] का जन्म हुआ। उनकी रुचि भिन्न थी, और उन्हे अलकारपूर्ण प्राच्य कलाकृतिया' का कोई शौक नही था। ये कलाकृतिया वस्तुत सामती जीवन के ही उपयुक्त[11] और इस नए वग के रहन सहन के प्रतिकूल थी।

अब आगे हम देखेंगे कि इन कारणो से नागरिक उद्योगो को कैसे नुकसान हुआ। ईस्ट इडिया कपनी वाले जो सामान इगलैंड ले जाते थे उन पर लगाए गए कर की राशि के असर को खतम करने के लिए और अधिक से अधिक सस्ते भाव म सामान खरीदने के लिए कपनी के सौदागरो ने हस्तशिल्पियो के खिलाफ बडी सख्त कारवाई की।[1]

बगाल के 1793 के एक्ट जसे कपनी द्वारा बनाए गए विधान और उसके सौदागरो और एजेंटो द्वारा अपनाए गए दमनात्मक तरीको ने कारीगरो की जिंदगी और उनके काम पर घातक प्रभाव पडा। जुलाहो के हजारो परिवारो ने अपना पेशा छोडना शुरू किया। बोल्टस ने कहा है जुलाहो के मामलो से भी अधिक परिवारो ने जगलबाडी के इद गिर्द के इलाको मे दमनात्मक कारवाइयो के कारण अपना देश और पेशा छोड दिया।[13]

इस तरह देशी रजवाडो के बदले जो नए शासक आए उन्होने कारीगरो का दाम उतार छीना और वे हस्तशिल्प उद्योग के स्वतत्र अस्तित्व म बाधक सिद्ध

हुए। इसके चलते नागरिक हस्तशिल्प के कला कौशल एव उसके विस्तार दोनो को नुकसान हुआ। कारीगरो के परिवार अपना पेशा छोड़ने लगे।

देश के अंदर लगाए गए परिवहन कर और सीमा शुल्क सबधी घोर अन्यायपूर्ण नियमो और सीमाशुल्क अधिकारियो द्वारा अपनाए गए दमनात्मक कार्यो की सर चार्ल्स टिवेलियन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपोर्ट आन ट्राजिट ड्यूटीज' मे बड़े स्पष्ट शब्दो मे आलोचना की है। व्यक्तिगत और घरेलू इस्तेमाल की दो सौ पैंतीस से भी अधिक वस्तुओ पर ये अंतर्देशीय कर लगे थे।[14] नवोदित ब्रिटिश उद्योगो के हित मे जो काम किए गए उनका हस्तशिल्प के अतिरिक्त कुछ अन्य देशी उद्योगो पर भी बुरा असर पड़ा। कपनी के अधिष्ठाताओ ने निर्णय लिया कि विदेशी व्यापार के लिए केवल ब्रिटिश जहाजो का इस्तेमाल किया जाएगा। इसके चलते भारत के नौ परिवहन उद्योग को गहरी मार पड़ी। या इसके अशक्त-अक्षम होने के अन्य कारण भी थे।[15]

इस अवधि मे भारत के कागज उद्योग को भी क्षति पहुची। ब्रिटिश शासको ने भारत मे इस्तेमाल के लिए केवल ब्रिटेन मे बना कागज खरीदने का फैसला किया। सर चार्ल्स वुड के आदेशानुसार भारत की ब्रिटिश सरकार विलायती कागज खरीदने को बाध्य थी। इसके कारण भारतीय कागज उद्योग अपने सबसे बड़े खरीदार और सरक्षक से वचित हो गया।

एक अन्य महत्वपूर्ण उद्योग के विनाश के बारे मे गाडगिल ने कहा है, 'छुरा तलवार और अन्य हथियारो पर खूबसूरत दमिश्की वगैरह जैसा काम भारत के उत्तर पश्चिम मे, कच्छ, सिंध पजाब मे बहुत प्रचलित था। लेकिन इस विशिष्ट क्षेत्र मे ब्रिटिश शासन ने दस्तकारो को पूरी तरह खत्म ही कर दिया। अंग्रेजी शासन ने हथियारो से लैस रहने और उनके इस्तेमाल की आवश्यकता समाप्त कर दी, और इस पर प्रतिबध लगाए। अब विदेशी यात्रियो और अन्य लोगो के लिए अलकारयुक्त खूबसूरत नुमायशी चीज बनाना भर इस उद्योग का काम रह गया।[16]

लोहा गलाने के उद्योग को भी बड़ी क्षति पहुची। देशी राज्यो का पतन इसका प्रमुख कारण था क्योकि राजे-रजवाड़ो के यहा ही इसकी खपत होती थी। देशी राज्यो का विनाश तो हुआ ही, साथ ही अंग्रेजी सरकार ने इग्लैंड मे भारतीय लोहे के निर्यात पर कर लगा रखा था और नई सरकार ब्रिटेन के बने लोहे के सामान को प्राथमिकता प्रदान कर रही थी। फिर 'अनुचित सीमा शुल्क और चीली नाइट्रेट के आविष्कार से सारा उद्योग को काफी नुकसान हुआ। जगलो के सरकारी सरक्षण और रेलवे के विस्तार के कारण लकड़ी के कोयले की कीमत बढ़ी, और लोहा गलाने वाले उद्योग को भी काफी नुकसान हुआ। इसकी एक वजह यह भी थी कि देशी उद्योग को बाहर के सस्ते लोहे से होड़ लेनी पड़ी।'[17]

इस तरह, ब्रिटिश उद्योगो की जरूरतो को पूरा करने के लिए विदेशी सरकार ने जो कदम उठाए उनकी वजह से इस अवधि मे एक के बाद एक देशी उद्योग

लगातार खत्म होने लगे। बी० डी० बसु ने सरकार द्वारा किए गए इस तरह के मुख्य कार्यों की लिखित शब्दों म चर्चा की है

> भारत पर राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के बाद इंग्लैंड न भारतीय उद्योगा के विनाश के लिए नीचे लिखे तरीका से काम लिया
>
> (1) भारत म अबाध ब्रिटिश व्यापार शुरू करना
>
> (2) भारत म निर्मित वस्तुओ पर ब्रिटेन म बिक्री के लिए भारी कर लगाना
>
> (3) भारत से कच्चे माल का निर्यात करना
>
> (4) सीमा शुल्क और परिवहन कर लगाना,
>
> (5) भारत म रहने वाले अग्रेजा को विशेष सुविधाए प्रदान करना
>
> (6) भारत म रेलवे का निर्माण करना,
>
> (7) भारतीय कारीगरा का अपने रोजगार की गुप्त बातें बतलाने का बाध्य करना,
>
> (8) प्रदर्शनियो का आयोजन करना।[18]

ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद उदित सपन्न वर्गों के विचारा का भी भारतीय उद्योगो पर असर पडा।

> नया शिक्षित वग पुराने अभिजात वग का स्वाभाविक उत्तराधिकारी था। यह नया वग पाश्चात्य देशो के बुजुआ पेशावर तबका की ही तरह मुख्यत नगरवासी और पेशावर वग था। इसाम यह उम्मीद की जा सकती थी कि यह हस्तशिल्प का सरक्षण प्रदान करेगा। लेकिन सत्य यह था कि कुछेक अपवादा का छोडकर इन लागा न देशी कलाकृतिया की ओर स मुह मोड लिया। विजित जातियो पर विजयी जातिया के आदर्शों का प्रतिष्ठापन विदेशी शासन का एक अत्यत हानिकर परिणाम हाता है। पिछली सदी के उत्तराद्ध की नवोदित बुजुआजी न यूरोपीय मानदडा का खुले दिल से स्वागत किया। वे भारतीय वस्तु मात्र से घृणा करते थे यूरोपीय फैशन का अनुसरण प्रबुद्ध नागरिकता का प्रमाण चिह्न माना जाता था और इससे देशी उद्योगा का नुकसान पहुचा स भवत इस वग के लिए ऐसा करना स्वाभाविक ही था। यह वग पूरी तरह से ब्रिटिश शासन की ही देन था उसी से उदभूत लेकिन कई मौका पर यूरोपीय अफसरा की नाराजगी के भय से बलात भारतीय प्रबुद्ध वग की रुचि निर्धारित हुई।[19]

इस तरह हस्तशिल्प का विदेशी बाजार ही नहीं, वरन रजवाडे अभिजात वग और समाज के अन्य धनाढय वर्गों के रूप म उस जो देशी बाजार उपलब्ध था वह भी विनष्ट हो गया। विदेशी शासन के सचेत और अचेत क्रियाकलाप का भी इन उद्योगो पर असर पडा। पुराने अभिजात वग और पुराने राज्यो के धनाढय नागरिक वर्गों की जगह जो नया धनाढय वग आया उसने पुरानी कारीगरी की उपेक्षा ही की। इन सब कारणा से हस्तशिल्प उद्योग का विनाश शुरू हुआ और अन्त म यह लगभग पूरी तरह समाप्त हो गया। उन्नीसवीं सदी के चौथे दशक म

रलवे का विकास शुरू हुआ। उसके चलते देश के कोने-कोने म विलायती सामान भर गया और भारतीय मडी पर विदेशी माल का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

भारत म हस्तशिल्प उद्योग सदियो मे फलते फूलते रहे थे। उनके लिए भारत सारे विश्व म प्रसिद्ध था और प्राचीन काल स ही मिस्रवासियो, ईरानियो, चीनियो, यूनानियो, रोमनो, अरबो और यूरोपीयनो की प्रशसा और ईर्ष्या का पात्र रहा। युगो तक इनके कारण भारत शानदार भारत रहा। अग्रेजी शासन काल म इस उद्योग का बडा दुखद अत हुआ। आज य प्राचीन काल के अवशेष कौतूहल के विषय और अजायबघरो की वस्तु भर रह गए ह। अब इनकी याद भर बाकी है पुरानी कलाकृतियो की उनकी नकली अनुकृतियो म जिन्ह पुराने कारीगरो के वशज अभी भी आगरा, बनारस अहमदाबाद, सूरत राजपूताना के कुछ शहरो और एसे ही कुछ अन्य स्थानो म तैयार करते है। पुराने कारीगरो के व वशज जिन्ह रोजगार का कोइ दूसरा रास्ता नही मिला, जो पुराना रोजगार अपनाए रह और किसी तरह अपना अस्तित्व बनाए रह अभी भी छोट-छोट पूजीपतियो द्वारा चलाए गए कारखानो म बडी बुरी हालतो म काम करत है। 1880 तक हस्तशिल्प उद्योग लगभग पूरी तरह समाप्त हो गया था।

डी० आर० गाडगिल न लिखा है आठवें दशक म भारत जसा महान देश एक विचित्र दशयावली था, जिसम हस्तशिल्प उद्योग नष्टप्राय था दूसरा कोई उद्योग अभी विकसित नही हुआ था, और अधिकाधिक लोग भूमि पर आश्रित होन लगे थ।' [0] ब्रिटिश शासन काल म हस्तशिल्प के विनाश और पतन का यही इतिहास है। एक जमाने म ये उद्योग भारत के लिए गव और गौरव के विषय थे, लेकिन ये राजनीतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक शक्तियो का दबाव नही सह सके।

भारत के हस्तशिल्प के ह्रास की विशिष्टता

इग्लैंड और दूसरे पूजीवादी देशो मे आधुनिक विनिर्माण और मशीन उद्योग की शुरुआत के बाद हस्तशिल्प का ह्रास शुरू हुआ। अथशास्त्र का एक आधारभूत नियम यह है कि सहज श्रम साध्य औद्योगिक तकनीक से वस्तुओ के उत्पादन पर अपेक्षाकृत कम खच होता है और वे तकनीकें पीछे छूट जाती है या बिल्कुल खतम हो जाती ह जो आदमी का काम उतना हल्का नही कर पाती। इस तरह मशीन उद्योग न धीरे धीरे हस्तशिल्प की जगह लेनी शुरू की और सारी दुनिया मे आधुनिक उद्योग के बढते हुए ज्वार के सामने हस्तशिल्प उद्योग का लोप होने लगा। इग्लड और अन्य यूरोपीय देशो म देशी हस्तशिल्प की जगह देशी उद्योग का उदय हुआ और पुराने कारीगर प्राय नए उद्योगो म शामिल हो गए।

भारत मे देशी हस्तशिल्प का विनाश विदेशी सत्ता के राजनीतिक दबाव और विदेशी मशीन उद्योग के सस्त उत्पादनो के कारण हुआ और इसलिए पुराने कारीगरो को जीविका का कोई नया साधन नही मिला। 1850 के बाद आधुनिक

उद्योग भारत मे कुछ तेजी से बढे, लेकिन तब भी इतनी तेजी से नही कि तेजी से बेकार और बर्बाद हो रहे कारीगरो के लिए पूरा रोजगार मिल सके। कुछ नए उद्योगो में गए अवश्य लेकिन अधिकाश को जमीन का सहारा लेना पडा। उनमे से कुछ किसान या बटाईदार हो सके लेकिन बहुत बडी तादाद में वे खेतिहर मजदूर होने को बाध्य हुए।[1] इन कारीगरो का एक अन्य तबका भी था, जो किसी तरह अपने पुराने रोजगार से ही जीविकोपार्जन करता रहा, लेकिन इस लोगो की संख्या लगातार घटती गई। जो पुराने रोजगारो में लगे रहे उन्हे अपने सामान की खपत के लिए मडी पर आश्रित रहना पडा और वे धीरे धीरे सौदागर वर्ग के आर्थिक शिकजे में और बुरी तरह जकडते गए और उनका शोषण बढता ही गया।

आधुनिक उद्योग का उदय हुए बिना नागरिक हस्तशिल्प के विनाश के कारण भारत में उद्योग और कृषि का असतुलन पैदा हुआ। जमीन पर आश्रित लोगो की संख्या बढी और यह उन लोगो के लिए और कृषि कौशल के लिए भी हानिकर था। ब्रिटेन की आर्थिक नीति के कारण पुराने हस्तशिल्प का विनाश हुआ, इस नीति ने नए उद्योगो को भी विकसित होने से रोका क्योकि भारत में नए उद्योगो के विकास से ब्रिटिश उद्योगो के सामानो की यहा खपत घट जाती। इस तरह कृषि और उद्योग का पुराना सतुलन बिगड गया। ('भारत में आधुनिक उद्योगो का उद्भव और विकास शीर्षक सप्तम अध्याय देखें)। एक अन्य कारण से भी ब्रिटेन ने भारत को मूलत कृषि प्रधान देश बनाए रखने की कोशिश जारी रखी। इसे अपने उद्योगो के लिए भारत से सस्ते कच्चे माल की जरूरत थी। इस तरह भारत एक औद्योगिक राष्ट्र का कृषि प्रधान औपनिवेशिक उपाग होकर रह गया।

भारतीय हस्तशिल्प की शिखर परिणति को स्वीकारते हुए भी हम उसकी सीमाओ और कमजोरियो को नही भूलना चाहिए। ये नागरिक हस्तशिल्प मूलत मध्ययुगीन समाज की सीमित अभिजात वर्ग एव सपन्न वणिक वर्ग की विलासिता सबधी रुचियो राज्य की सैन्य सबधी आवश्यकताओ धार्मिक दलो और सस्थाओ के विशिष्ट उपकरणो या समय समय पर धार्मिक केंद्रो में आने जाने वाले तीर्थ यात्रियो की विविध आवश्यकताओ आदि की ही आपूर्ति करते थे। वे साधारण लोगो की रोजमर्रा की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए नही थे। इसके कारण उनके द्वारा निर्मित पदार्थ और उनकी मडी सदा सीमित रही। जब ये अपने बहुमूल्य पदार्थ विदेश भेजते थे तो वहा भी धनी लोग ही इन्हे खरीद पाते थे। बहुत अधिक खपत की गुजाइश नही होने से इनके विस्तार एव विकास की सभावनाए काफी सीमित थी। यह विकास तभी सभव होता जब ये उद्योग साधारण लोगो की जरूरतो को पूरा करते। राष्ट्र के रूप में देश का औद्योगिक एकीकरण भी तभी सभव था जब साधारण लोगो की प्राथमिक आवश्यकताओ के लिए बडे पैमाने पर चीजो का उत्पादन शुरू होता।

अनेकानेक आत्मनिर्भर गावो म बिखरे हुए भारतीय लोगो मे बहुसख्यक की प्राथमिक आवश्यकताओ की पूर्ति गाव के कारीगर उद्योग द्वारा निर्मित चीजो के स्थानीय निर्माण और उपभोग द्वारा होती थी। प्रत्येक गाव स्वतत्र उत्पादक और उपभोक्ता केंद्र था और देश म प्राथमिक दैनिक आवश्यकता की चीजो का विनिमय बहुत विकसित नही था।

हस्तशिल्प के ह्रास का ऐतिहासिक महत्व

शहरी और देहाती दस्तकारी और कारीगर उद्योग के ह्रास और विनाश के कारण इनकी जगह आधुनिक विदेशी और फिर देशी उद्योगो के सस्ते उत्पादनो की खपत शुरू हुई। परस्पर गावो के बीच, गावो और शहरो के बीच भारत और विदेशो के बीच नए विनिमय सबध विलासिता के उपकरण और सैन्य सबधी सामग्रियो तक ही सीमित नही थे वरन दैनिक मानवीय उपभोग की सामग्रिया पर भी हावी थ। विनिमय सबधो का विस्तार हुआ और उन्होने सारे भारतीय समाज को एक सूत्र मे बाध लिया। इससे भारत के आर्थिक एकीकरण को मदद मिली।

यह सच है कि अपने रोजगार के खतम हो जाने के कारण शहरी कारीगरो को बडी तकलीफ का सामना करना पडा। इसका कारण यह था कि भारत म पर्याप्त मात्रा म समातर औद्योगिक विकास नही हुआ था, जिससे बेकार कारीगरो को काम मिल सके। नतीजा यह हुआ कि खेती पर निर्भर लोगो की तादाद तेजी म बढती गई और देहात के लोग लगातार गरीब होते गए। लोगो की तकलीफ से हम सहानुभूति हो सकती है लेकिन यह तो मानना ही होगा कि जब आधुनिक उद्योग और वाणिज्य के कारण प्राक पूजीवादी नागरिक हस्तशिल्प का विनाश हुआ, तभी आर्थिक इकाई के रूप मे भारत का सगठन सभव हो सका। नए विनिमय सबधो न सारी जनता को एक कर दिया और भारतीय जनता क सयुक्त अस्तित्व और विकास के लिए और उनकी अर्थव्यवस्था के राष्ट्रीय समन्वय के लिए भौतिक आधार बनान म मदद की।

पुरान कारीगरो मे कुछ तो कारखानो और परिवहन उद्योग म लगे, लेकिन चूकि इन उद्योगो का पर्याप्त विकास नही हुआ इसलिए अधिकाश खेती की ओर गए और खेत मजदूरी या बटाईदारी करने लगे। जमीन खरीदने लायक पूजी उनके पास नही थी। इस तरह पुराने कारीगरो न आधुनिक सर्वहारा वर्ग, या बटाईदारो या खेत मजदूरो की तादाद बढाई। ये उन वर्गो के अभिन्न अग हुए जो ब्रिटिश शासन काल म उत्पन्न नए पूजीवादी आर्थिक सबधो के आधार पर बने थे। अपर्याप्त रूप से ही विकसित सही, भारत की जो नई पूजीवादी सामाजिक आर्थिक सरचना थी उसके ये अग थे। साथ ही उन्ह जिन नई समस्याओ का सामना करना पडा वे शहर की परिसीमा के बाहर की थी वे राष्ट्रगत समस्याए थी। खेत मजदूर औद्योगिक सर्वहारा, जमीदार, किसान मालिक, इन नए वर्गो

के कुछ ऐसे सम्मिलित स्वार्थ थ, उनकी ऐसी सम्मिलित समस्याए थी, जिनसे प्राक ब्रिटिश भारत के हस्तशिल्पकार अपरिचित ही रहे होगे। य नष्टप्राय हस्तशिल्पकार नए युग मे कुछ एसे वर्गों म सम्मिलित हुए जो भारतीय राष्ट के अगभूत भाग थ जिनके एक जैसे हित थ एक सी समस्याए थी, जो राष्ट्रीय इकाइया थी। एसा होना निश्चय ही एतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील माना जाएगा।

सदभ

1 गाडगिल प० ६१।
2 वही प० 37।
3 वही पृ० 38।
4 टामसन एड गरेट प 431 2।
5 देखें लेकी।
6 बुक्स एडम्म प० 263 4।
7 मित्र द्वारा उद्धत प० 385।
8 दखें मेजर बसु।
9 दख गाडगिल और ब्यूकनन।
10 टामसन एड गरट प० 434 5।
11 वही प० 434।
12 दखें बसु प 85 7।
13 बोल्टस प 195।
14 रामचद्र राव प० 99।
15 देखें ए० महता।
16 गाडगिल प० 41।
17 वही प० 45।
18 बसु प० 10-11।
19 गाडगिल प० 40 1।
20 वही प 43 4।
21 दखें गाडगिल।
22 देखें गाडगिल और ब्युकनन।

6

ग्रामीण शिल्प उद्योग का ह्रास

प्राक् ब्रिटिश ग्रामीण शिल्प उद्योग

हम दख चुके हैं कि ग्रामीण शिल्पकार उद्योग प्राक् ब्रिटिश आत्मनिर्भर ग्रामीण अथतन का औद्योगिक पक्ष था और उसस गाव की औद्योगिक आवश्यकताओ की पूर्ति होती थी। गावो की आर्थिक आत्मनिर्भरता का एक आधार स्तभ था ग्रामीण कृषि और दूसरा ग्रामीण शिल्प। यह भी ज्ञातव्य है कि गावो मे श्रम विभाजन अभी आदिम स्थिति म था। कारीगर अपना कुछ समय खेती मे लगाते थे और किसान खासकर उनकी औरतें, अपना कुछ समय सूत कातने जैसे औद्योगिक कामो म।[1]

गाव के आर्थिक सगठन का एक विशिष्ट तथ्य यह था कि (शायद जुलाहा को छोडकर बाकी) कारीगर गाव के सम्मिलित जनसमुदाय के नौकर जस थे। ग्रामीण जनसमुदाय की ओर से गाव की जमीन का कुछ हिस्सा कारीगरो को खेती के लिए दे दिया जाता था और उन्हे सालाना फसल का भी कुछ अश मिलता था। लेकिन कारीगर स्वतन्त्र उत्पादको की स्थिति म नही थे और अपनी सेवाओ और उत्पादनो का न तो आपस म और न किसानो के साथ ही विनिमय कर पाते थे।

कारीगर उद्योग म भी श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण बहुत कम था, जिसके फलस्वरूप कारीगरो का काय कौशल निम्नस्तरीय था। बाह्य प्रतिद्वद्विता के अभाव म कारीगरो को अपनी तकनीक और कायकुशलता को विकसित करने के लिए आवश्यक प्रोत्साहन तो नही ही मिल सका उद्योगो का स्थानीकरण भी नही हो सका।[3]

ग्रामीण शिल्पकार उद्योग के ह्रास के कारण

ब्रिटेन और अन्य देशो की मशीन स बनी सस्ती वस्तुओ की भारत म जो बाढ आई, वह ग्रामीण शिल्प के ह्रास का मूल कारण थी। रलवे और बसो की मदद से हर सामान आसानी से गावो मे पहुचने लगा। रलवे और वाष्पचालित

जलयानो के कारण यूरोप के मशीन मालिकों के लिए भारतीय किसानो को उनके अपने ग्रामीण शिल्पकारो से भी कम दाम म सामान देना सभव हो गया। अतर्राष्टीय विशिष्टता और वाणिज्य न आत्मपर्याप्त स्थानीय अर्थव्यवस्था की जगह ली और यह भारतीय कारीगरो के पराभव का मूल कारण था।[1] उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध म और उसके बाद भी, स्वय भारत म जो आधुनिक उद्योगो का विकास हुआ, उसके कारण भारतीय कारीगरी के विनाश की गति और तेज हुई। अब हम इस ह्रास की प्रक्रिया का सक्षिप्त सर्वेक्षण करेंगे।

ग्रामीण हस्त शिल्प उद्योग के ह्रास की विषम प्रक्रिया

ग्रामीण हस्तशिल्प का ह्रास भारत के सब भागो म हुआ, लेकिन अनेकानेक सामाजिक आर्थिक और स्थानीय कारणो से यह ह्रास अनियमित रहा। बाजार म मशीन से बने सस्ते कपडे की बाढ का हाथ करघा उद्योग पर बडा बुरा असर पडा और 1850 के बाद तजी से उसका विनाश शुरू हुआ। बाद मे गाधी जस नताओ और आल इडिया स्पिनस एसोसिएशन जसे सगठनो और उनके प्रचारात्मक काय के फलस्वरूप यह ह्रास कुछ हद तक रोका जा सका। लेकिन मिल मालिको ने खद्दर के प्रचार का पूरा फायदा उठाया और मिल का बना खद्दर भी बाजार मे आया जिसके कारण असली खद्दर की बिक्री को धक्का लगा।

> फिर भी कारखाना म जो उत्पादन के मितव्ययी और लाभकर तरीके अपनाए जाते है उनके साथ प्रतियोगिता म हाथ से कताई बुनाई का तरीका नही टिक पाता जिस तरह एक जमाने म यत्रचालित कारखानो की होड के कारण यूरोप म हाथ करघा उद्योग को क्षति पहुची वसे ही भारत म भी हाथ करघा से काम करने वालो को देशी और विदेशी कारखाना म बन सस्ते माल की वजह से काफी नुकसान उठाना पडा।

ग्रामीण उत्पादन म जसे जसे मशीन का उपयोग बढा, वैसे वसे गाव के बढई की स्थिति बुरी होती गई। लोहे के हल और ईख स रस निकालन वाल लोहे क यत्र जस नए तरीको मे उस बहुत नुकसान हुआ। बकार बढइयो म से कुछ शहर म फर्नीचर बनाने जैसे उद्योगो म लगे। आर्थिक प्रगति का गाव के लोहार की स्थिति पर न्यूनतम प्रभाव पडा। मरम्मत के जो काम वह देहात म करता था वे खास घट नही। फिर भी कुछ लोहार शहरो की ओर गए और लोहे के ढलाई घरो या इस तरह के अन्य उद्योगो और कारखानो म काम शुरू किया।[6]

गावो के आर्थिक रूपातरण से सर्वाधिक क्षति ग्रामीण चर्मशोधक को हुई। प्राक ब्रिटिश भारत मे उस गाव वालो म जानवरो की लाश मुफ्त मिल जाया करती थी। लेकिन भारत जब विश्वमडी से सबद्ध हो चुका था और यहा आधुनिक चर्मशोधक उद्योग का विकास होने लगा था। अब ऐसे देशी विदेशी उद्योगो के प्रतिनिधियो को चमडा बचने मे मृत पशुओ के मालिको को अधिक फायदा था।[7] शहर के नए चर्मशोधक उद्योगो म कुछ पुराने चर्मशोधको

को अवश्य काम मिला, लेकिन उनके बहुत बड़े अंश को खेतिहर मजदूर बनने को बाध्य होना पड़ा। सस्ते नीलिन रंगों के आयात से गांवों का रंगरेज उद्योग चौपट हो गया। उन्नीसवीं सदी के अंत तक यह ग्रामीण रोजगार लगभग पूरी तरह नष्ट हो चुका था।[8] रोशनी के लिए किरोसिन तेल के अधिकाधिक प्रयोग के कारण गांव के तेली की स्थिति बुरी होती गई। यों शहर में भोजन संबंधी आवश्यकताओं के लिए तेल निकालने का उद्योग विकसित हुआ, लेकिन इससे देहात के तेली के रोजगार को कोई खास फायदा नहीं हुआ।

गांव के ऊपरी तबके के लोग धीरे धीरे विदेशी चीनी मिट्टी के बर्तन या शहरों के बढ़ते हुए धातु उद्योग से निर्मित धातु के बर्तनों का इस्तेमाल करने लगे। इसके चलते गांव के कुम्हार द्वारा बनाई गई चीजों का बाजार घटा। लेकिन चूंकि गरीब तबके के लोग मिट्टी के बर्तनों का ही इस्तेमाल करते रहे इसलिए कुम्हार पूरी तरह बर्बाद नहीं हुए।[9] नाविक तौर पर निस्सहाय कुम्हार शहर के किसी उद्योग में तो लिया नहीं जा सकता था, इसलिए वह साधारणतः खेतिहर मजदूर हो गया।

समय समय पर जो अकाल पड़े उनका भी ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योग के विनाश में योगदान रहा। अकाल के समय, गरीब कारीगर, खासकर जुलाहे दूसरी तरह के काम द्वारा रोजी कमाने को लाचार थे। लोहार और बढ़ई को तो कभी कभी काम मिल भी जाता था, जुलाहों या ऐसे ही अन्य लोगों को शारीरिक श्रम का सहारा लेना पड़ता था। संकट की स्थिति समाप्त हो जाने पर फिर अपनी पुरानी कायमता प्राप्त करना उनके लिए प्राय कठिन होता। 'बाहरी सहायता के अभाव में बहुतेरे जुलाहों को दुर्भिक्ष के समय अपना रोजगार छोड़ना पड़ता था। इनमें से बहुत सारे फिर अपने पुराने पेशे में वापस नहीं लौट पाते थे और वे साधारण मजदूरों की स्थिति में रह जाते थे एवं उन्हीं की संख्या बढ़ाते थे।[10]

कुछ हस्तशिल्प उद्योग देहातों की दरिद्रता के कारण जीवित रहे। जैसे, गांव के कुम्हार की चीजों की खपत बनी रही, क्योंकि लोगों में अधिकांश इतने गरीब थे कि वे धातु या चीनी मिट्टी के बर्तन नहीं खरीदते थे। इस तरह मिट्टी के बर्तन बनाने का रोजगार बना रहा। लेकिन गांवों के उद्योग अब मूलतः विनाशोन्मुख थे।

बचेखुचे कारीगर और उनकी परिवर्तित स्थिति

देहात के कारीगरों के काम की नई और पुरानी स्थिति में एक बड़ा फर्क था। पहले वे ग्राम समुदाय के भृत्य जैसे थे। उन्हें अपनी सेवाओं और सामग्रियों के लिए गांव की ओर से मुफ्त जमीन मिलती थी और फसल के समय निश्चित अन्न राशि। लेकिन अब वे मूलतः द्रव्य के लिए काम करते थे और गांव वालों से उनके आर्थिक संबंध बाजारी के थे। पुराने से नए तरीकों में संक्रमण की गति काफी धीमी थी और यह संक्रमण भी पूरा नहीं हुआ। लेकिन 'यह बात ध्यान देने की है कि लगभग हर जगह प्राप्य और अनुलाभ में कारीगरों को होने वाली नियमित आमदनी की कीमत घटी।'[11]

ग्रामीण कारीगरों की स्थिति में एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि धीरे-धीरे वे मजदूरी पर अधिकाधिक आश्रित होने लगे। पुराने जमाने में गांव के जुलाहे गांव के लोगों की जरूरतों के लिए कपड़े तैयार करते थे, बाजार में बिक्री के लिए नहीं। बदली हुई परिस्थिति में जुलाहे (या तांती) स्थानीय या दूरस्थ मंडी में अपनी चीजों की खपत के लिए बनियों पर अधिकाधिक निर्भर होने लगे। साथ ही, बढ़ती हुई प्रतियोगिता का यह परिणाम हुआ कि जितनी पूंजी जुलाहों के पास थी, उससे अधिक की उन्हें जरूरत पड़ी। इसलिए उन पर महाजनों का शिकंजा कड़ा होता गया। अधिकांश कारीगर अभी भी सिद्धांततः स्वतंत्र हैं और ऐसा समझा जाता है कि वे सूत खरीदते और कपड़ा बेचते हैं। लेकिन ऋणभार से लदे होने के कारण हर कारीगर अपने महाजन से ही तिजारत करने को बाध्य है।[1] इस तरह किसानों की तरह कारीगर भी अधिकाधिक महाजनी पूंजी की गिरफ्त में आ गए।

गांवों के हस्तशिल्प उद्योग या नागरिक हस्तकारिता के ह्रास के साथ आधुनिक उद्योगों का समानांतर और समानुपाती उद्भव विकास नहीं हुआ। इसके कारणों का अन्यत्र (इन उद्योगों के विकास संबंधी अध्याय में) उल्लेख है।

लेकिन आधुनिक उद्योगों के अपर्याप्त विकास की स्थिति में गांवों के बचे खुचे उद्योगों ने, अपनी बढ़ती हुई नष्टशीलता के बावजूद देहात के लोगों की जरूरतों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आज भी भारत की औद्योगिक आबादी में गांवों के पुराने कारीगरों की ही संख्या अधिक है।[13]

भारतीय हस्तशिल्प के नवनिर्माण के असफल प्रयास

गांव के हस्तशिल्प उद्योग के बढ़ते हुए विघटन की प्रक्रिया को रोकने के लिए और उन्हें पूर्ववर्ती शक्ति और प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए बहुत सारे प्रयास किए गए हैं। इन उद्योगों को पुनर्जीवित करने के जो प्रयास हुए हैं उनमें सबसे प्रमुख और प्रभावशाली प्रयास वे थे जो इंडियन नेशनल कांग्रेस और गांधी जी ने किए। गांधी ने आल इंडिया स्पिनर्स एसोसिएशन कायम की। गांवों के हाथ चरखा उद्योग को पुनर्जीवित करना ही इसका उद्देश्य था। गांधी ने आल इंडिया विलेज इंडस्ट्रीज एसोसिएशन भी बनाई। समस्त कुटीर उद्योग का थोड़े परिवर्तित रूप में पुनर्जागरण इस संस्था का उद्देश्य था।

लेकिन इन प्रयासों का कोई विशेष परिणाम नहीं निकला। ग्राहकों को लोगों की देशभक्ति और उनकी मानवीय भावनाओं का सहारा लेना पड़ा, न कि ग्रामीण उद्योगों की आर्थिक श्रेष्ठता और उसके लाभों का। उदाहरणार्थ गांधी ने लोगों को खादी पहनने के लिए उत्प्रेरित किया, यद्यपि यह न तो दामों में ज्यादा मुनासिब और ललित ही थी और न इतनी मजबूत ही जितनी कि मिल की वस्तु।[11] महात्मा गांधी का व्यक्तिगत प्रभाव बहुत व्यापक था और उन्होंने खादी प्रचार के लिए प्रचुर धन राशि भी एकत्र कर ली थी। एक अजीब बात यह है कि जिन

आधुनिक उद्योग धंधों के कारण ग्रामीण उद्योगों का विनाश हुआ था उन्हीं उद्योग धंधों से और आधुनिक उद्योगपतियों से यह धनराशि एकत्र हुई थी। लेकिन अपने प्रभाव और अतीव धनराशि के बावजूद गांधी ग्रामीण उद्योगों का कुछ विशेष कल्याण नहीं कर सके। उनके द्वारा किए गए प्रयासों की असफलता का मूलभूत कारण यह था कि वे इतिहास की अग्रगामी प्रगति और आर्थिक विकास की शक्तियों के विरुद्ध थे।

आल इंडिया विलेज इंडस्ट्रीज एसोशिएशन गांधी की पहलकदमी पर स्थापित हुआ। गांवों को मशीन के बने सामान से मुक्त करना और प्राक् पूंजीवादी हस्तशिल्प उद्योग (मृत या मृतप्राय) का पुनर्जीवित करना इस संगठन का व्यक्त उद्देश्य था। आर्थिक प्रतिगमन के इस कार्यक्रम ने इतिहास एवं जीवन के मूलभूत तथ्यों की उपेक्षा की। यह सामाजिक अस्तित्व के आधारभूत अटल नियमों के विरुद्ध था। इसने उन आर्थिक रूपों और तकनीकों को वापस लाने की कोशिश की जो ऐतिहासिक प्रगति की दौड़ में अग्रवर्ती आर्थिक रूपों और तकनीकों से बहुत पीछे छूट गए थे।

प्राक् पूंजीवादी हस्तशिल्प उद्योग आखिर इसीलिए तो नष्ट हुआ था कि आधुनिक मशीन आधारित उद्योग से असम संघर्ष में यह टिक नहीं सका। मशीनी उद्योगों की शक्तिशीलता इस तथ्य में निहित थी कि इनके द्वारा निर्मित सामान हस्तशिल्प द्वारा निर्मित सामानों से सस्ते थे। उत्पादनों के विनिमय पर आधारित समाज में उत्पादन के वे ही तत्व जीवित रह जाते हैं जो न्यूनतम परिश्रम में मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें, बाजार प्रमुख समाज में सस्ता सामान हरदम महंगे सामान की अपेक्षा अधिक मात्रा में तैयार होगा और अधिक बिकेगा। आर्थिक चयन के लौह नियम के कारण हस्तशिल्प उद्योग का ह्रास हुआ और मशीन उद्योग का उद्भव एवं विकास।

ऐतिहासिक विकास के साधारण क्रम में विनष्ट आर्थिक व्यवस्था का पुनर्जीवित करना संभव नहीं। आधुनिक उद्योगों ने बड़ी तेजी से प्राक् पूंजीवादी हस्तशिल्प को हटाकर अपने लिए जगह बना ली। पुरानी तकनीक और श्रम की निम्नस्तरीय उत्पादनशीलता पर आधारित हस्तशिल्प उद्योग का पुनर्जीवित करने के गांधी और उनके जैसे अन्य नेताओं के प्रयास अनैतिहासिक थे इसलिए उनकी असफलता निश्चित थी।

कताई और बुनाई के देहाती उद्योगों और कुछ अन्य उद्योगों के पुनर्जीवन का लगभग असफल उपाख्यान कई कारणों से संभव हुआ। "कृषि की असंगठित दयनीय स्थिति, भूमि की असमर्थता जिसके कारण लगभग आधे साल की अवधि में अधिकांश लोग बेकार रहते थे औद्योगिक विकास का अभाव इन सबके कारण हाथ से सूत कातने, हाथ करघे पर कपड़ा बुनने और ऐसे अन्य उद्योगों को कुछ प्रश्रय अवश्य मिला, लेकिन यह अल्पकालीन उपचार था"[1]

इस आंशिक और अत्यधिक सीमित प्रभाव वाले आर्थिक उपचार का अर्थ था

'भारतीय अर्थतंत्र की तंग और विकारग्रस्त स्थिति की निकृष्टतम बुराइयों को मान्यता प्रदान करना और इन बुराइयों को समाप्त करने के बदले उनके अनुकूलन का प्रयास करना।' पूंजीवादी जगत में हस्तशिल्प के कृत्रिम पुनर्जीवन के उपायों का कोई भविष्य नहीं है। खादी या हाथ से बने कपड़े कीमत की दृष्टि से मिल में बने कपड़ों से होड़ नहीं ले सकते, और इस तरह गरीब लोगों की पहुंच के बाहर है।[16] वस्तुतः यह कृत्रिम पुनर्जीवन, क्षणिक और सीमित ही सही, बिड़ला और बजाज जैसे उद्योगपतियों की मदद से हुआ।*इससे उन उच्चवर्गीय लोगों की भी मदद मिली जो इन उद्योगों के सामान खरीद कर आर्थिक त्याग कर रहे थे और समझते थे कि उनके त्याग के कारण मृतप्राय हस्तशिल्प जिंदा होंगे, अंग्रेजों की अर्थव्यवस्था पर चोट पहुंचेगी और भारतीय साधारण जन की गरीबी दूर होगी। यह उम्मीद पूरी नहीं हो सकी क्योंकि यह कार्यक्रम नई आर्थिक ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक शक्तियों के प्रतिकूल था। गांधी ने भी, जो शुरू में आधुनिक उद्योगों के अदम्य विरोधी थे अपने कार्यक्रम की असफलता के बाद उत्पादन के सीमित और अनुशासित शनैः शनैः मशीनीकरण का समर्थन किया।

ग्रामीण उद्योग के ह्रास के परिणाम

गांवों की अर्थव्यवस्था कृषि और उद्योग के स्थानीय समन्वय पर निर्भर थी। ग्रामीण उद्योग के ह्रास से इस समन्वय को नुकसान पहुंचा। गांवों को औद्योगिक सामग्री के लिए शहरों पर आश्रित होना पड़ा। गांव अब पहले जैसा संपूर्ण आर्थिक इकाई नहीं रह गया, वरन राष्ट्र और विश्व की अर्थव्यवस्था का अनुगामी हुआ।

नए भूमि संबंधी कानूनों में प्रत्येक किसान कर वसूली की अलग इकाई था। लेकिन पूंजीवादी भूसंबंधों और नए भूमि कानूनों से ही गांवों की आत्मनिर्भरता समाप्त नहीं होती। ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योग कृषक अर्थतंत्र का औद्योगिक आधार स्तंभ था, और ग्रामीण आत्मनिर्भरता की समाप्ति के लिए इसका विनाश भी आवश्यक था। इस तरह नए भूमि संबंधों की स्थापना और ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योग के विनाश की सम्मिलित क्रिया ने आत्मनिर्भर गांवों की जड़ हिला दी।

---

* कुछ वामपंथी राष्ट्रीय और समाजवादी नेताओं के अनुसार यह भारतीय मिल मालिकों और जमींदारों की चालाकी थी कि उन्होंने खद्दर और कुटीर उद्योग की मदद की। ये मिल मालिक और जमींदार नहीं चाहते थे कि कृषक की आबादी का आर्थिक असंतोष जमींदारों साहूकारों और महाजनों के विरुद्ध संघर्ष का रूप ले। गांवों की गरीबी के वास्तविक कारण थे ऊंचा भूमिकर, ऋण, शोषण अन्याय। लेकिन संपन्न लोगों ने गांवों की आबादी का ध्यान दूसरी तरफ आकर्षित करने की कोशिश की जिसमें वे अपनी गरीबी के कल्पित समाधान खोजते रहे। भारत में जमींदार, महाजन और साहूकार वर्गों से उद्योगपतियों के बड़े घनिष्ठ आर्थिक संबंध थे।

लगातार बढती हुई गरीबी के कारण अधिकाधिक कारीगर अपना पुश्तैनी कारोबार छोडने लगे। इनमे कुछ शहरो मे गए और तेल, चीनी, चमडा, फर्नीचर आदि विभिन्न उद्योगो मे लगे या कल कारखानो मे मजदूरी करने लगे। जिन लोगो के पास कुछ पैसा था, उन्होने जमीन खरीद ली। जो साधनहीन थे उनमे से कुछ खेत मजदूर हो गए और कुछ दरिद्र भिखमगे। कृषि पर आश्रित लोगो की सख्या बढी।

'लाखो करोडो बर्बाद कारीगरो, जुलाहो सूत कातने वालो कुम्हारो चमकारो, लोहा गलाने वालो बढइयो आदि के पास, चाहे वे शहर के हो या देहात के, सिवा इसके कोई चारा नही था कि वे खेती पर निर्भर लोगो की तादाद बढावें। भारत मे पहले कृषि और उद्योग का सयुक्त, समन्वित रूप विद्यमान था लेकिन अब वह ब्रिटिश पूजीवाद का (कृषि प्रधान) उपनिवेश मात्र रह गया।'[17] इसका कारण यह था कि आधुनिक उद्योग जो बर्बाद कारीगरो को काम दे पाते, उनका विकास उस तेजी से नही हुआ जिस तेजी से पुराने उद्योगो की बर्बादी हुई। पुराने कारीगरो मे कुछ के लडके-बच्चे स्कूलो मे थोडी सी शिक्षा प्राप्त कर शिक्षक या किरानी भी बने। फिर भी, जैसा पहले कहा जा चुका है भारत मे औद्योगिक विस्तार की धीमी गति के कारण, अपनी घटती हुई जन सख्या के बावजूद, गाव के कारीगर देश की समस्त औद्योगिक आबादी का बहुत बडा भाग थे।

आत्मनिर्भर गाव राष्ट्रीय चेतना और सम्मिलित राष्ट्रीय जीवन के विकास के रास्ते मे बहुत बडी बाधा थे। हस्तशिल्प उद्योग के सतत विघटन ने आत्मनिर्भर गावो की आर्थिक नीव कमजोर कर इस राष्ट्रीय भाव की परिपक्वता के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

'हजारो उद्यमी, निर्दोष सामाजिक सगठनो का विघटन, दुख के महासागर मे उनका विलयन इन सगठनो के विभिन्न सदस्यो का जीविका विहीन होना मानवीय भावनाओ के लिए ये सब बातें बडी दर्दनाक हैं। लेकिन हम यह नही भूलना चाहिए कि ये रमणीक ग्राम्यमय, देहाती जनसमुदाय प्राच्य निरकुशता के आधार थे और वे मानव मन को सकीर्णतम परिधि मे सकुचित किए रहे एव उसे अधविश्वासो का दुर्ग बनाए रहे पुराने कायदे-कानून मे बाधे रहे और ऐतिहासिक प्रगति की गरिमा और शक्ति से शून्य रखा।'[18]

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो भारतीय लोक की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकसित होने के पहले आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को समाप्त होना ही था। इसी तरह समस्त भारतीय जन जीवन राष्ट्र के रूप मे सपृक्त हो सके और ऐतिहासिक दृष्टि से उच्चतर सामाजिक राजनीतिक आर्थिक और सास्कृतिक अस्तित्व का विघटन होना भी आवश्यक था।

जो कारीगर गाव छोडकर शहरो मे गए और मिलो मे मजदूर बने, वे मजदूर वर्ग के अग हुए और मजदूर वर्ग स्थानीय और प्रातीय सीमाओ से परे राष्ट्रीय स्तर पर सगठित होने लगा था। इस तरह देहात के पुराने कारीगरो मे

नई वहत्तर चेतना और राष्ट्रीय दष्टिकोण का उद्भव हुआ।

कारीगरा के उन वर्गों को भी बर्बादी का सामना करना पडा जिन्हान जमीन खरीदी और मेती शुरू की थी और उनको भी जा साधना के अभाव मे खेत मजदूरी करने लगे थे। उनम भी नई वृहत्तर चेतना का विकास हुआ। कृषि के रूपानरण के कारण हालतें बदल रही थी और गावा की आत्मनिभरता समाप्त प्राय हो चुकी थी। इस नई परिस्थिति म गावा के विभिन्न वग अव वस्तुत ऐसे आर्थिक वर्गों से सपृक्त थे जो भारतीय राष्ट्र के अविच्छिन्न अग थे। सारे भारत म अब एक ही जसे भूमि-कानून लागू थे, इसलिए सारे भारत के किसानो और खेत मजदूरो के स्वाथ अव लगभग एक जैसे थे। फलस्वरूप इनम भी वहत्तर वग चेतना और राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ और कालक्रम से वे अखिल भारतीय किसान सभा जसे सगठना मे शामिल हुए।

जो कारीगर अपने पुराने रोजगारा मे लगे रहे व भी प्राक ब्रिटिश युग के कारीगरो से भिन्न थे। पहले ये कारीगर गाव के भत्य जसे थ और गाव की जरूरता को पूरा करना उनका धम था। अब वे बाजार के लिए सामग्री तैयार करन लगे। इस तरह सार ससार के पैमाने पर कीमतो का जो सक्रमण होता था, उसका उन पर असर पडना शुरू हुआ। अपनी सुरक्षा के लिए उन्ह भी राष्ट्रीय सगठनो की आवश्यकता हुई और आल इडिया स्पिनस एसासिएशन जैसी सस्थाओ की स्थापना हुई। इस तरह ग्रामीण कारीगरा म भी वहत्तर ज्ञान और दष्टि का विकास हुआ। इन लोगा म पुराने आत्मनिभर गावो के कारीगरो की अपक्षा अधिक पहल शक्ति और व्यक्तित्व का भाव था।

ग्रामीण हस्तशिल्प के ह्रास का आत्मनिभर ग्रामीण अथव्यवस्था के विनाश मे अपना योगदान रहा और इस विनाश के ऐतिहासिक दष्टि से प्रगतिशील परिणामा की हमन चर्चा की।

सदर्भ

1 देखें गाडगिल।
2 देखें गाडगिल ब्युकनन याडिया एण्ड मर्चेंट।
3 देखें गाडगिल ब्युकनन।
4 ब्युकनन प 130।
5 वही प० 77 78।
6 देखें गाडगिल।
7 देखें ब्युकनन गाडगिल।
8 देखें गाडगिल।
9 वही।
10 रिपोर्ट आफ द फैमिन कमीशन 1896।

11 गाडगिल प० 175।
12 ब्युकनन प० 77।
13 गाडगिल प० 163।
14 गाधी हरिजन 19 नवबर 1938।
15 आर० पी० दत्त प० 515।
16 वही प० 515।
17 आर० पी० दत्त, प० 129।
18 कार्ल मार्क्स प० 20-21।

7

भारत मे आधुनिक उद्योगो का उद्भव और विकास

भारत मे आधुनिक उद्योग धधो का विकास

देश के राष्ट्रीय अर्थतन्त्र के समेकन मे आधुनिक मशीनी उद्योगो की स्थापना का बहुत बडा योगदान रहा। इससे ऐसी सामाजिक शक्तियो का भी जन्म हुआ जिन्होने राष्ट्रीय आदोलन और भारतीय राष्ट्रवाद को अनुप्रेरित अनुप्राणित किया। अनेकानेक कारणो से भारत का औद्योगिक विकास अपर्याप्त और एकागी रहा। फिर भी इससे राष्ट्रीय प्रगति को मदद मिली। उदाहरणार्थ आधुनिक उद्योगो के चलते आधुनिक औद्योगिक नगरो का जन्म हुआ जो सामाजिक, राजनीतिक एव सास्कृतिक क्रियाकलाप के बडे जीवत रगमच सिद्ध हुए और जहा सारे प्रगतिशील आदोलनो का जन्म हुआ। आधुनिक उद्योगो के कारण ही बुर्जुआजी और सर्वहारा इन दो नए सामाजिक वर्गो का उदय हुआ। इन वर्गो की विशिष्ट स्थिति का आधुनिक समाज के विकास पर निर्णायक प्रभाव पडा है।

बुर्जुआजी और सर्वहारा आधुनिक पूजीवादी समाज के आधारभूत वर्ग हैं। प्रतिद्वद्विता और माल के उत्पादन पर आधारित पूजीवादी अर्थतन्त्र के विकास के कारण कारीगरो जैसे क्षुद्र उत्पादको का मध्यवर्ती वर्ग जो अपने औद्योगिक प्रतिद्वद्वियो से होड लेने मे अक्षम है, क्रमश कमजोर होने लगता है और अतत मजदूर वर्ग मे परिणत हो जाता है। देहातो मे भी पूजीवाद के आर्थिक परिवेश मे वर्धनशील विपन्नता के कारण किसान मालिको का मध्यवर्ती वर्ग साहूकारो, बनियो और अन्य पूजीपतियो को अपनी जमीन बेचने को बाध्य होता है और उनमे से अधिकाश भूमिहीन मजदूरो या कृषक सर्वहारा की श्रेणी मे पहुच जाते है।

इस तरह मध्यवर्ती सामाजिक श्रेणिया अनस्थिर और विघटनशील है लेकिन सर्वहारा स्थिर और निरतर वर्धनशील है। सर्वहारा और बुर्जुआजी का सघर्ष पूजीवादी समाज का मूलभूत सघर्ष है और यह सघर्ष ही इस समाज को गति देता है। इस वर्ग सघर्ष मे मजदूर दल का लक्ष्य है समाजवाद। इस समाज व्यवस्था मे मजदूरी पर आधारित श्रम और उत्पादन के साधनो पर निजी स्वत्व के लिए कोई जगह नही है। यह व्यवस्था पूजीवाद के विपरीत उत्पादन के साधनो के सामा

जि स्वामित्व और कमकरो के मुक्त सहयोगी श्रम के सिद्धात पर आधारित है। भारतीय मजदूर वग के लिए राष्ट्रीय स्वातत्र्य समाजवादी मुक्ति सग्राम के रास्त म एक मील-स्तभ भर था।

भारत मे आधुनिक उद्योगो के विकास का सक्षिप्त इतिहास

अब हम ब्रिटिश शासन काल म आधुनिक भारतीय उद्योग के उद्भव और विस्तार, उसके विकास की प्रवृत्ति और सीमाओ तथा उसकी सागठनिक सरचना का सर्वेक्षण करेंगे। उन्नीसवी सदी के मध्य मे रेलवे की स्थापना से आधुनिक उद्योगो के विकास के लिए जरूरी एक बहुत बडी शत पूरी हो गई। रेलवे पर अपनी प्रसिद्ध टिप्पणी म लाड डलहौजी ने रेलवे के निर्माण की एक प्रमुख अभिप्रेरणा का विवरण दिया है

> इनकी स्थापना से भारत को जो व्यावसायिक और सामाजिक लाभ होगे उनकी कल्पना नही की जा सकती इग्लैंड म भारतीय रूई की माग बढ रही है, दूर क मैदानो से बदरगाहो तक इसे ले जाने के समुचित साधन उपलब्ध हो तो पर्याप्त परिमाण म अच्छे किस्म की रुई उगाई जा सकती है। हमने यह भी देखा है कि व्यापार सबधी सुविधाओ मे थोडी सी भी वृद्धि होने पर भारत के दूरस्थ बाजारो मे भी यूरोप के बने सामानो की माग बढ रही है धरती के इस छोर पर हमारे लिए जो बाजार बन रहे हैं, उनके भावी विस्तार और सभावित मूल्य को आकना सूक्ष्म दिव्य दृष्टि वाले विद्वानो के लिए भी आसान नही है।[1]

इस तरह ब्रिटिश उद्योगो की कच्चे माल और बाजार सबधी आवश्यकताओ की पूर्ति करना रेलवे के निर्माण का एक अ यतम प्रयोजन था। इस निमाण काय से ब्रिटिश पूजी की लागत और ब्रिटेन के बढते हुए अभिय त्रण उद्योग मे बने पदार्थों के विक्रय के लिए क्षेत्र विस्तार भी हुआ।

रेलवे की स्थापना और भारतीय साहूकार वग के पास पर्याप्त बचत, जिसने मूल पूजी का काम किया, इन दो कारणो से भारतीय उद्योगपति भी नए उद्योगो की स्थापना कर सके। विकास की इस प्रक्रिया मे रेलवे की भूमिका के बारे मे काल माक्स न लिखा है

> जिस देश मे लोहा और कोयला प्राप्त है वहा के परिवहन यत्र मे मशीनो का इस्तेमाल शुरू हो जाने के बाद उस देश द्वारा खुद मशीनो के निर्माण को नही रोका जा सकता। रेलवे की तात्क्षणिक और सदा वतमान आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए जिन औद्योगिक प्रक्रियाओ की जरूरत है उ हे लाए बिना किसी भी बडे देश म रेलतत्र का सुचारु सचालन सभव नही। उद्योग की जिन शाखाओ का रेलवे से सीधा सबध है उनमे भी मशीनरी के इस्तेमाल की जरूरत पडती है। इसलिए रेलवे का प्रादुर्भाव भारत मे आधुनिक उद्योगो के आगमन का पूवसूचक है।'

उन्नीसवी सदी के मध्य तक भारत मे आधुनिक उद्योग (जैसे नील, चाय, काफी के क्षेत्र मे) स्थापित करने मे अंग्रेज लोग आगे रहे। 1850 और 1855 के बीच सूती कपडो के पहले कारखाना, कुछ जूट की मिलो और कुछ कोयला खानो की शुरुआत हुई। 1879 म भारत म 56 सूती कपडो के कारखाने थे। 1882 मे जूट मिलो की सख्या 20 हो गई थी, इनमे अधिकाश यूरोपीय मालिको के हाथ म थी। 1880 मे देश मे कोयला खदानो की सख्या 56 थी। 1880 के आसपास हिंदुस्तान मे यही तीन प्रमुख आधुनिक उद्योग थे।

1880 और 1895 के बीच कोई नया महत्वपूर्ण उद्योग कायम नही हुआ लेकिन पुराने उद्योगो ने काफी तरक्की की। सूती कपडो का उद्योग विशेष तेजी से बढा। 1894 95 मे काटन मिलो की सख्या 144 जूट मिलो की सख्या 29 और कोयला खदानो की सख्या 123 थी।[3]

रानाडे जैसे राष्ट्वादी अर्थशास्त्री इस दौर मे हुए भारतीय उद्योग के सुनियमित विस्तार से काफी प्रभावित थे और उन्होने भारत के लिए महान औद्योगिक भविष्य का सपना देखा। रानाडे ने कहा भारत अब उस रास्ते पर चल चुका है, जिस पर अगर वह उसी जोश से चलता रहा जिससे अभी तक यहा के पूजीपति अभिप्रेरित हुए तो वह अवश्य ही औद्योगिक मुक्ति प्राप्त कर सकेगा।[4]

लेकिन 1895 और 1905 के बीच भारतीय उद्योगो खासकर सूती उद्योग के विकास की गति काफी धीमी हो गई। इसके दो मूल कारण थे। दो दुर्भिक्षो के चलते कृषक आबादी की आर्थिक हालत काफी खराब हो गई थी। फिर 1902 म अमरीकी सट्टेबाजी के कारण रूई की कीमत बहुत बढ गई। इन दोनो बातो का भारत के मिल उद्योग पर बहुत बुरा असर पडा। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति के बावजूद भारतीय उद्योगो ने इन वर्षो मे कुछ मद्धम गति से ही सही लेकिन तरक्की की।

स्वदेशी आन्दोलन से भी जिसे मुख्यत इडियन नेशनल काग्रेस ने 1905 म शुरू किया, भारतीय उद्योगो की मदद मिली। 1913 14 म काटन मिलो की सख्या बढकर 264 हो गई थी और जूट मिलो की 64। कोयला उद्योग लगातार बढता ही रहा था, और 1914 म कुल 1,51,376 लोग कोयला खदानो म काम कर रहे थे। यह उद्योग मूलत आवागमन के साधनो और मिल उद्योग की प्रगति के कारण विकसित हुआ।

1890 और 1914 के बीच पेट्रोलियम, मैंगनीज, अबरख और शोरा जैसे नए उद्योगो का उदभव हुआ और चावल और टिंबर की भी कुछ मिले खुली। इसके अतिरिक्त अभियत्रण और रेलवे के कारखाने एव लोहे और पीतल के ढलाई घर भी खुले।[5] 1890 और 1914 के बीच हुए औद्योगिक विस्तार का डी० एच० ब्युकैनन ने निम्नाकित विवरण प्रस्तुत किया है

1890 म विश्वयुद्ध तक प्रत्येक क्षेत्र मे अविरत प्रगति हुई। सूती तकला तारो की सख्या दुगुनी हो गई लेकिन नालिका करघे चौगुने हो गए,

जूट के करघे साढे चार गुना वढे, कोयला उत्पादन का परिमाण 6 गुना बढा [6]

अविरल प्रगति के बावजूद 1914 मे भारतीय औद्योगिक विकास का स्तर काफी निम्न था। केवल काटन और जूट उद्योग मे ही कुछ विशेष प्रगति हुई थी। भारी उद्योगो का लगभग बिलकुल अभाव था। अभियन्त्रण के नाम पर केवल कुछ मरम्मत की दुकानें थी, खासकर रेलवे के लिए, 1914 की लडाई के पहले लोहा और इस्पात उद्योग की मामूली सी शुरुआत भर हुई थी मशीनो का उत्पादन नही था।'[7]

भारत का औद्योगिक विकास तजी से नही हुआ, इसके अनेक कारण थे। तीव्र विकास के लिए नवजात भारतीय उद्योग को सरकारी सुरक्षा की आवश्यकता थी, जिससे वह ब्रिटन, जमनी आदि देशा के समथ और सुस्थापित उद्योगो से लोहा ले सके। मगर भारत की ब्रिटिश सरकार ने भारतीय उद्योग को ऐसी कोई सुरक्षा नही दी और न उसे कोई अन्य ठास मदद ही दी। ब्रिटिश लेखको प्रचारका ने भी इस भारत के तीव्र औद्योगिक विकास का एक प्रमुख अवरोधक माना है।

> भारत के औद्योगिक विकास सबधी हमारी काय तालिका अतीत में सदव बहुत श्रेयस्कर नही रही है, यह तो केवल युद्ध की आवश्यकताओ के दबाव म सरकार को शुद्ध भारतीय उद्योग के प्रति निस्पृहता की सभवत ईर्ष्या की भी, अपनी पुरानी भावना का परित्याग करना पडा।[8]

1921 के वार्षिक सरकारी प्रतिवेदन मे यह माना गया कि भारत सरकार पर ब्रिटिश आर्थिक स्वार्थों के दबाव के कारण भारतीय उद्योगो को सरकारी सहायता और सुरक्षा नही मिल सकी। रिपाट मे कहा गया है, युद्ध के कुछ दिना पहले पायनियर कारखाना और सरकारी अनुदाना के द्वारा भारतीय उद्योगो का सहायता और प्रोत्साहन प्रदान करन के प्रयास को लदन की सरकार ने पूरी तरह रोक दिया।'[9]

क्षिप्र औद्योगिक विकास की राह मे एक और बडी बाधा थी, वह यह कि पर्याप्त सख्या म टेक्नीशियन उपलब्ध नही थे। तकनीकी शिक्षा के साधन भी बहुत कम थे।

> बीस से भी अधिक वर्षों से तकनीकी और औद्योगिक शिक्षा का सवाल सरकार और जनता के सामन रहा है। शायद ही कोई ऐसा विषय हो जिस पर इतना अधिक लिखा और कहा गया हो और जिस पर इतना कम काम हुआ हो।[10]

जिन अन्य कारणो से भारतीय उद्योग का विकास अपर्याप्त और एकागी रहा, हम उनका उल्लेख औद्योगिक विकास के सर्वेक्षण के अत मे करेंगे।

1914 18 के युद्ध के समय विदेशी सामान के आयात म काफी कमी हुई साथ ही युद्ध सबधी उपकरणा और सामग्रिया के उत्पादन की तात्कालिक आवश्यकता भी आ खडी हुई। इन कारणा से इस अवधि मे भारतीय उद्योगा का विकास हुआ। सरकार ने उद्योगीकरण की नीति अपनाई। 1915 मे वायसराय

लाड हार्डिंग ने इस विषय म कहा

ज्यो ज्यो यह स्पष्ट होगा कि बडे राष्ट्रो का राजनीतिक भविष्य उनकी आर्थिक स्थिति पर निभर है वसे वैसे विदेशी मडी के लिए उनकी पारस्परिक होड बढेगी। वैसी हालत म अगर भारत को विदेशो मे निर्मित सामान के लिए क्षेपण भूमि नही बनना है तो स्पष्टत लडाई के बाद, भारत की औद्योगिक सभावनाओ को विकसित करने की निश्चित और सचेत नीति अपनानी होगी। इस प्रश्न पर भारतीय जनता पूणत एकमत है और उसकी राय को नजरअदाज नही किया जा सकता

औद्योगिक देश के रूप मे यथासभव विकसित होन के लिए लडाई के बाद सरकार से अधिकतम सहायता की माग करना भारत अपना हक मानेगा।[1]

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1916 मे इडस्ट्रियल कमीशन की स्थापना हुई।

1918 म प्रकाशित माटेगु चेम्सफोड रिपोट म कहा गया ह

प्रत्येक दृष्टिकोण से, न केवल भारत के आर्थिक स्वय के लिए वरन जनसाधारण की आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए भी औद्योगिक विकास की चरम आवश्यकता है आर्थिक और सैनिक दोनो दृष्टियो स साम्राज्यवादी स्वार्थो से भी यही अपेक्षा है कि भारत के प्राकृतिक साधनो का समुचित उपयोग हो। औद्योगिक भारत से साम्राज्य की सत्ता को जो शक्ति मिलेगी उसका अनुमान करना कठिन है।[1]

विदेशी प्रतियोगिताओ के अभाव मे युद्ध के समय सूती और जूट उद्योगो का काफी विकास हुआ। इस्पात का उत्पादन 1913 मे केवल 91,000 टन था, लेकिन 1918 म 1 24,000 टन।

धातु और मशीन उद्योगो जैसे आधारमूलक उद्योगो का अस्तित्व किसी भी देश के तीव्र औद्योगिक विकास की आवश्यक शत है। ऐसे उद्योग भारत म लगभग नही के बराबर थे, इसलिए युद्धकाल म भी भारत का औद्योगिक विकास सीमित ही रहा। 'आधारमूलक अभियत्रण उद्योग और विशाल रासायनिक उद्योग भारतीय उद्योगतत्र के दुबलतम अग थे।[13] चूकि देश के उद्योगो के लिए आवश्यक मशीन रसायन रग जैसे पदार्थों के उत्पादन की व्यवस्था नही थी इसलिए युद्ध काल म भी भारतीय उद्योगो का उतना विकास नही हो सका जितना अन्यथा हुआ होता। 1911 म जे० एन० टाटा द्वारा स्थापित लोहा और इस्पात उद्योग भारतीय उद्योग की आवश्यकताओ की आशिक पूर्ति ही कर पाता था।

युद्ध काल मे पोत परिवहन युद्ध सबधी आवश्यकताओ की पूर्ति म व्यस्त रहा, इसलिए बाहर स चीजो का आयात काफी घट गया। फिर भी इन दिनो भारतीय उद्योगो का जितना विस्तार होना चाहिए उतना नही हुआ। ऊपर जिन कारणो की चर्चा है उनके अलावा इस तथ्य के और भी अनेक कारण है। लोकनाथन ने इस विषय मे लिखा है

देशी पूजी, औद्योगिक नेतृत्व और तक्नीकी नैपुण्य का अभाव तो था ही, उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल और साधनो की आपूर्ति मे भी काफी कमी थी। गधक, तावा, जस्ता, रागा और रवर की खास कमी थी। कोयला प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध था, लेकिन उसका समरस विनरण नही हुआ था। यह मुख्यत बिहार और बगाल मे पाया जाता था, देश के सारे उत्पादन का 10% बिहार-बगाल की खाना से ही आता था। फिर, भारत म जिस विशिष्ट औद्यागिक नेतृत्व, मैनेजिंग एजेंसी (प्रबधअ भिकर्ता) प्रथा का विकास हुआ, उसका यह हानिकर असर पडा कि नए और सभवत अलाभकर उद्योगो मे पूजी लगाने की चाह (और हिम्मत) खतम हो गई। मिल की वनी चीजो और मशीन के आयात एव व्यापार और बीमा से प्रवध अभिकर्ताआ को कमीशन के रूप मे काफी फायदा हो रहा था। लकिन सबसे बडा एक और तथ्य था, वह यह कि अहस्तक्षेप की नीति भारत जैसे गरीब देश के लिए काफी नहीं थी, इसका आर्थिक विकास सुविचारित राजकीय नीति द्वारा ही सभव था

इस तरह पिछली लडाई ने कुछ जमे हुए उद्योगो को कुछ थाडा अस्थाई लाभ पहुचान के अलावा देश के समुचित औद्यागिक विकास म कोई मदद नही दी।[14]

इडस्ट्रियल कमीशन की मुख्य अनुशसा यह थी कि सरकार देश के औद्योगिक विकास मे क्रियाशील रुचि ले। इस विकास म मदद देने के लिए सरकार को कुछ आवश्यक काय करन हागे। उदाहरणाथ उसे बडी तादाद मे वज्ञानिका और टक्नीशियनो की बहाली करनी होगी, जा नए उद्योगो की स्थापना और स्थापित उद्योगो के समुचित विकास मे उद्योगपतियो का मागदशन कर सकें। लेकिन कमीशन की इस अत्यत महत्वपूण शिफारिश पर कोई कारवाई नही हुई।[15]

1919 के रिफार्म्स ऐक्ट (सुधार विधेयक) के अनुसार उद्योग प्रादेशिक विषय हो गया। लेकिन विभिन्न प्रात आर्थिक और तक्नीकी दृष्टि से इतने अक्षम थे कि औद्योगिक विकास की दिशा म वे विशेष सहायक नही हो सकते थ। डी० एच० ब्युकैनान ने इस विषय म कहा है

> 1919 के सावैधानिक सुधारा के बाद उद्योग धधे चुने हुए प्रतिनिधियो के प्रति जिम्मेवार सरकार के हाथ मे आ गए। दुर्भाग्यवश उपलब्ध धनराशि नाकाफी थी, इसलिए महत्वपूण कदम नही उठाए जा सके। उद्योगो के प्रोत्साहन के लिए दूरगामी सर्मा वत सरकारी नीतिया की भी आवश्यकता हाती है एसी नीतिया की जा कच्चे माल, उत्पादन के साधन और बाजार आदि सारी बाता का ध्यान रखें उद्योगो के विकास के लिए देश म जिन प्रादेशिक कायालयो की स्थापना हुई है उनसे किसी प्रकार के लाभ की सभावना कम है।[16]

1922 म फिस्कल कमीशन (राजस्व सबधी आयाग) ने सिफारिश की कि

सरकार उद्योगों को विवेकपूर्ण, सोची समझी हुई सुरक्षा और सहायता प्रदान करने की नीति अपनावे। सरकार ने इस सिफारिश पर 1923 में अमल करना शुरू किया और नई नीति के तहत इसी साल टैरिफ बोर्ड (सीमा शुल्क विषयक पर्षद) की स्थापना हुई। 1924 में अभी हाल ही में स्थापित टाटा के लोहे और इस्पात उद्योग को सरकारी अनुदान मिला और 33⅓% तक सुरक्षा की गारंटी भी मिली। इसके अतिरिक्त सूत, माचिस, चीनी और कुछ अन्य उद्योगों को भी भिन्न मात्राओं में सुरक्षा प्रदान की गई। औद्योगिक विकास की मदद के लिए बाद में सेंट्रल ब्यूरो आफ इंडस्ट्रियल इंटलिजेंस एंड रिसर्च (औद्योगिक ज्ञान और अनुसंधान का केंद्रीय दफ्तर) की स्थापना हुई।

लेकिन इन सबके बावजूद भारतीय उद्योग के स्वतंत्र, त्वरित और प्रचुर विकास की बुनियादी शर्त पूरी नहीं हुई, अर्थात भारी, विशाल उद्योगों की स्थापना नहीं हो सकी। प्लांड इकानमी फार इंडिया (1936) में एम० विश्वेश्वरैया ने लिखा है "विशाल उद्योग आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है, लेकिन उसके विकास पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया है।"[17] टाटा आयरन एंड स्टील उद्योग को दिया गया अनुदान 1927 में वापस ले लिया गया।

1927 के बाद भारतीय सीमा-शुल्क साम्राज्यवादी पूर्वाधिकार के सिद्धांत द्वारा नियंत्रित हुआ। इससे गैर साम्राज्यीय और भारतीय मंडी में भी भारतीय उत्पादनों की तुलना में ब्रिटिश उत्पादनों का लाभ हुआ।[18] 1932 का ओटावा समझौता साम्राज्यवादी पूर्वाधिकार के सिद्धांत पर ही आधारित था। भारत में इसका बड़ा विरोध हुआ। फिर भी इस पर अमल हुआ। केट मिशेल ने लिखा है 'तीसरे दशक के प्रारंभिक दिनों में जारी किए गए सीमाशुल्क के बारे में कहा गया था कि यह भारतीय उद्योगीकरण को बढ़ावा देगा। लेकिन इस व्यवस्था को एक ऐसी व्यवस्था में परिणत कर दिया गया जिसने भारतीय मंडी में ब्रिटिश उद्योगों की मदद की। इसके बदले भारत को कच्चे माल और अर्ध औद्योगिक सामान को ब्रिटेन में अच्छे दर पर बेचने की सुविधा मिली। इस तरह स्पष्टतः 1914 के पहले की स्थिति फिर वापस आ गई।[19]

1929-33 के आर्थिक संकट का भारतीय कृषक वर्ग पर गहरा असर पड़ा। उनके पास जो सोना था उसे बेचने के लिए वे बाध्य हुए।[20] 1936 और 1937 में भारतीय जनता की स्वर्ण राशि में दुबारा कमी हुई। इस तरह औद्योगिक सामान खरीदने की उनकी शक्ति घटी और इस बात का औद्योगिक विकास की गति पर अनिवार्यतः बुरा प्रभाव पड़ा।

स्वर्ण के निगमन के बारे में केट मिशेल ने लिखा है, 'भारतीय कृषक वर्ग की बहुत दिनों की संचित स्वर्ण राशि के निगमन से भारतीय मंडी और अधिक विपन्न हुई और इस तरह भारतीय उद्योग का और अधिक ह्रास हुआ।'[21]

इन कठिनाइयों के बावजूद आधुनिक उद्योग दोनों महायुद्धों के बीच के वर्षों में लगातार विकसित होते रहे। इस अवधि में कुछ प्रमुख उद्योगों में

जो प्रगति हुई वह नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट है

		1922-23	1938-39
सीमट	टन	1,93 000	1,170 000
कोयला	मिलियन टन	19	28 3
सूती सामान	मिलियन गज	1,713 5	4 269 3
जूट	मिलियन गज	1,187 5	1,174
सलाई	ग्रॉस डिब्बे (1934-35)	1,65,00,000	2 11,00,000
कागज	टन	23,576	59,198
कच्चा लोहा	टन	4,55,000	15,75 500
चीनी	टन	84 000	10 40 048
सल्फ्यूरिक एसिड	हडरवेट	5 29 637	6 07 000
इस्पात पिंड	टन	1 31 000	9 77 400

(वाडिया एड मर्चेंट पृ० 285 86)

उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योग मे विस्तार होन क कारण एसी वस्तुओ का आयात घटा। 'उपभोक्ता वस्तुओ के आयात की मात्रा मे सापेक्ष गिरावट की प्रवत्ति बढ रही है। 1926-27 मे यह 37% था, और 1938 39 मे घटकर यह 20% हो गया रग, पेंट आदि कच्चे माल का आयात बढा है। 1922 23 मे यह 16% था जो 1938 39 मे बढकर 24% हो गया। मशीन और अ य बडी पूजी के सामान का आयात 1926 27 मे सारे आयात का 19% था लेकिन 1938 39 म यह बढकर 25% हो गया।

दूसरे युद्ध के पहले उपभोक्ताओ के मामल मे भारतीय जनता की आत्मनिभरता निरतर बढती गइ। वसे ही बडी पूजी वाले सामानो क मामल म उसकी पराश्रयिता भी बढी। वाडिया एड मर्चेंट ने इसकी या चर्चा की है

> औद्योगिक विकास के सवाल पर वतमान युद्ध के पहले की आर्थिक स्थिति का या वणन किया जा सकता है। सरक्षित उद्योगो के विस्तार से राष्टीय आय मे विशष वद्धि नही हुई। इन उद्योगो और विदेशी मडी की जरूरता को पूरा कर सकने की इनकी काबिलीयत से देश को वह आत्मनिभरता नही मिल रही है जो भविष्य के लिए आशाजनक हो। चीनी, सूती सामान, लोहा और इस्पात के मामल मे हम विदेशो पर निभर नही, लेकिन अपन कच्चे माल की खपत के लिए हम विदेशो का ही सहारा लेना है। लेकिन इन सबस अधिक महत्व का तथ्य यह है कि मशीनरी और बडी पूजी वाले सामान के लिए हम अभी भी विदेशो पर आश्रित हैं। इनके बिना नए उद्योगो की स्थापना असभव है।[3]

आधुनिक उद्योगो के निरतर विस्तार के बावजूद भारत । ना।

ही हुआ, क्योंकि जिस गति से प्राक-आधुनिक देशी उद्योगों का विनाश हो रहा था उतनी तेजी से नए उद्योगों का विकास नहीं हो रहा था। 1936 में इकानमिस्ट के इंडियन सप्लीमेंट ने लिखा 'उद्योग पर आश्रित आबादी घटती जा रही है भारत के उद्योगों का आधुनिकीकरण शुरू हो गया है लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उसका उद्योगीकरण हो चुका है।'[4]

1939 में द्वितीय महायुद्ध शुरुआत होने पर भारतीय उद्योग के विकास की रफ्तार कुछ तेज हुई। यों नौपरिवहन वायुयान और ऐसे कुछ अन्य उद्योगों में शायद ही कोई खास प्रगति हुई और युद्ध काल की स्थिति के बावजूद भारी उद्योगों का भी विशेष विकास नहीं हुआ। भारी उद्योगों का विकास ही किसी देश के स्वतंत्र और तीव्र औद्योगिक विकास की मूल शर्त है और उसकी आर्थिक प्रगति का परिचायक। फिर भी लड़ाई के दरम्यान कुछ हल्के उद्योगों का विकास हुआ। नीचे दी गई तालिका में विकास की गति का पता चलता है

	1938 39	1939 40	1940-41	1941 42	1942 43	औसत
लोहा और इस्पात	100	110	125	150	200	146
सूती उद्योग	100	94	100	153	92	110
जूट उद्योग	100	106	91	103	85	96
ईख के कारखाने	100	191	168	120	163	160
कागज	100	118	149	159	112	134
विद्युत उद्योग	100	109	115	135	155	123

(एन० सी० जैन, इंडियन इकानमी ड्यूरिंग द वार पृ० 31)

युद्ध काल में जो प्रगति हुई वह सब उपभोक्ता उद्योग में ही हुई। पूंजीगत उद्योगों की दुखद और असाधारण उपेक्षा हुई है। सूती सामान चीनी, कागज सीमेंट चमड़ा इन सब उद्योगों का विस्तार हुआ है और मशीन और उसके कलपुर्जे मोटरगाड़ी आदि रेलवे इंजन जलयान और वायुयान संबंधी उद्योग उपेक्षित रह हैं।'[5] साथ ही युद्ध के कारण देश की जो औद्योगिक प्रगति हुई है वह कुछ हद तक कृत्रिम और अस्थाई है, वास्तविक और चिरस्थाई नहीं।[6]

'मशीनीकरण और तकनीकि पुनर्गठन दोनों दृष्टियों से भारतीय उद्योग युद्ध के दिनों में अपने प्रतियोगियों से सदा बराबर बनकर पिछड़ रहा है और इस बात का प्रचुर साक्ष्य उपलब्ध है हिंदुस्तान के सामने युद्धोत्तर खतरा है औद्योगिक विघटन का, और उसकी युद्धोत्तर आवश्यकता है औद्योगिक विकास की।'[7]

व्यापार संघों और व्यावसायिक एकाधिकारों का आविर्भाव

ब्रिटिश शासन काल में भारत के आधुनिक उद्योगों का जो विकास हुआ उसका संक्षिप्त वर्णन हम दे चुके हैं। अब यह देखें कि इस विकास की विशिष्टता क्या

थी। वाणिज्य, उद्योग और बैंकिंग के क्षेत्र में इस काल में जो आर्थिक विकास हुआ उसकी यह विशेषता है कि अधिकांश उद्योग कुछ इने गिने आदमियों के हाथ में सिमट गए।

अभी (1940 में) भारत में 1,000 कारखाने हैं जिनमें कुल 17,00,000 मजदूर काम करते हैं। भारत में पंजीबद्ध कंपनियों में लगी पूंजी तीन हजार मिलियन रुपए के बराबर है

औद्योगिक क्रियाकलाप के हर क्षेत्र के लगभग 500 कारखानों पर प्रबंध अभिकर्ताओं के दल विशेष का अधिकार है। इन कारखानों में लगभग पंद्रह सौ मिलियन रुपए की पूंजी है। आर्थिक नियंत्रण का ऐसा केंद्रीकरण सब उद्योगों के बारे में सही है।[8]

भारत में जो हुआ वह इंग्लैंड, फ्रांस जर्मनी अमरीका आदि देशों के आर्थिक विकास के इतिहास के विपरीत था। उन देशों के आर्थिक विकास के परवर्ती चरण में पूंजी और उद्योग का केंद्रीकरण हुआ।[9] भारत में इसके विपरीत उद्योगों की स्थापना के बाद कुछेक दशकों के अंदर ही ऐसा केंद्रीकरण हो गया।

इस केंद्रीकरण के कारण आधार और लंब दोनों दिशाओं में उद्योगों का सम्मिलन हुआ और व्यापार संघों की स्थापना हुई। देश की आर्थिक जीवन के बहुत बड़े क्षेत्र में इन व्यापार संघों का अधिकार था। 1940 में ऐसे लगभग 40 व्यापार संघ थे जिनका 450 कारोबारों पर कब्जा था और जिनमें लगभग ग्यारह सौ मिलियन रुपए की पूंजी लगी थी। ये कारोबार सब तरह के थे औद्योगिक, परिवहन संबंधी और वित्तीय। शक्ति संपन्न ब्रिटिश व्यापार संघों में कुछ ये थे किलिक निक्सन, सैसून, एण्ड्रयू यूल ब्रैडिज और जार्डाइन एंड स्किनर टाटा, बिड़ला और डालमिया भारतीय एकाधिकारी संगठनों में प्रमुख थे।

हर प्रकार के आर्थिक उद्यम पर इन व्यापार संघों का अधिकार था। उदाहरणार्थ, टाटा के जिम्मे कुल 22 कारोबार थे चार सूती कारखाने चार बिजली कंपनियां चार पावर कंपनियां एक लोहा और इस्पात का कारखाना एक वायु परिगमन कंपनी, एक तेल कारखाना, एक बीमा कंपनी और एक होटल। इसी तरह एण्ड्रयू यूल एंड कंपनी, जो पूर्वी हिंदुस्तान में काम करती थी कुल 42 कारोबारों पर अधिकार जमाए हुए थी। उसके पास 11 जूट, 11 कोयला, 15 चाय, एक कागज, दो रबर और एक तेल, इतने कारोबार थे, और एक जमींदारी भी थी।[10] इन उदाहरणों से इने गिने व्यापार संघों के व्यापक क्रियाकलाप और लोगों के आर्थिक जीवन पर इनके प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है।

इन व्यापार संघों में भी सत्ता उन डाइरेक्टरों के हाथ में थी जो बड़ी बड़ी जगहों पर बैठे थे। सर्वव्यापी डाइरेक्टरशिप की प्रथा भी काफी प्रचलित थी और इसके कारण कुछ डाइरेक्टरों के अधिकार में और वृद्धि हुई। अशोक मेहता ने 1940 में लिखा, 'हमारे देश के पांच सौ प्रमुख औद्योगिक कारोबारों का प्रबंध केवल 2,000 डाइरेक्टर करते हैं। इनमें भी कुल डाइरेक्टरशिप केवल 850

ही हुआ क्योंकि जिस गति से प्राक-आधुनिक देशी उद्योगों का विनाश हो रहा था उतनी तेजी से नए उद्योगों का विकास नहीं हो रहा था। 1936 में इकानमिस्ट के इंडियन सप्लीमेंट ने लिखा 'उद्योग पर आश्रित आबादी घटती जा रही है भारत के उद्योगों का आधुनिकीकरण शुरू हो गया है लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उसका उद्योगीकरण हो चुका है।'[4]

1939 में द्वितीय महायुद्ध शुरुआत होने पर भारतीय उद्योग के विकास की रफ्तार कुछ तेज हुई। यों नौपरिवहन, वायुयान और ऐसे कुछ अन्य उद्योगों में शायद ही कोई खास प्रगति हुई और युद्ध काल की स्थिति के बावजूद भारी उद्योगों का भी विशेष विकास नहीं हुआ। भारी उद्योगों का विकास ही किसी देश के स्वतंत्र और तीव्र औद्योगिक विकास की मूल शर्त है और उसकी आर्थिक प्रगति का परिचायक। फिर भी लड़ाई के दरम्यान कुछ हल्के उद्योगों का विकास हुआ। नीचे दी गई तालिका में विकास की गति का पता चलता है

	1938 39	1939 40	1940-41	1941 42	1942 43	औसत
लोहा और इस्पात	100	110	125	150	200	146
सूती उद्योग	100	94	100	153	92	110
जूट उद्योग	100	106	91	103	85	96
ईख के कारखाने	100	191	168	120	163	160
कागज	100	118	149	159	112	134
विद्युत उद्योग	100	109	115	135	155	123

(एल० सी० जैन इंडियन इकानमी ड्यूरिंग द वार पृ० 31)

'युद्ध काल में जो प्रगति हुई वह सब उपभोक्ता उद्योग में ही हुई। पूंजीवाले उद्योगों की दुखद और असाधारण उपेक्षा हुई है। सूती सामान, चीनी, कागज, सीमेंट, चमड़ा इन सब उद्योगों का विस्तार हुआ है और मशीन और उसके कलपुर्जे मोटरगाड़ी आदि रेलवे इंजन जलयान और वायुयान संबंधी उद्योग उपेक्षित रहे है।'[5] साथ ही 'युद्ध के कारण देश की जो औद्योगिक प्रगति हुई है वह कुछ हद तक कृत्रिम और अस्थाई है, वास्तविक और चिरस्थाई नहीं।'[6]

'मशीनीकरण और वैज्ञानिक पुनर्गठन दोनों दृष्टियों से भारतीय उद्योग युद्ध के दिनों में अपने प्रतियोगियों से सब मिलाकर बेतरह पिछड़ गया है और इस बात का प्रचुर साक्ष्य उपलब्ध है हिन्दुस्तान के सामने युद्धोत्तर खतरा है औद्योगिक विघटन का, और उसकी युद्धोत्तर आवश्यकता है औद्योगिक विकास की।'[7]

व्यापार संघों और व्यावसायिक एकाधिकारों का आविर्भाव

ब्रिटिश शासन काल में भारत के आधुनिक उद्योगों का जो विकास हुआ उसका संक्षिप्त वर्णन हम दे चुके हैं। अब यह देखें कि इस विकास की विशिष्टता क्या

थी। वाणिज्य, उद्योग और बैंकिंग के क्षेत्र मे इस काल मे जो आर्थिक विकास हुआ उसकी यह विशेषता है कि अधिकाश उद्योग कुछ इने गिने आदमियो के हाथ मे सिमट गए।

> अभी (1940 मे) भारत मे 1,000 कारखाने हैं जिनम कुल 17,00,000 मजदूर काम करत है। भारत म पजीवद्ध कपनिया मे लगी पूजी तीन हजार मिलियन रुपए के बराबर है
>
> औद्योगिक क्रियाकलाप के हर क्षेत्र के लगभग 500 कारखाना पर प्रबध अभिकर्त्ताओ के दल विशेष का अधिकार है। इन कारखानो मे लगभग पद्रह सौ मिलियन रुपए की पूजी है। आर्थिक नियत्रण का ऐसा केंद्रीकरण सब उद्योगो के बारे म सही है। [8]

भारत मे जो हुआ वह इग्लैंड, फ्रास जमनी, अमरीका आदि देशो के आर्थिक विकास के इतिहास के विपरीत था। उन देशा के आर्थिक विकास के परवर्ती चरण म पूजी और उद्योग का केंद्रीकरण हुआ। [9] भारत मे इसके विपरीत उद्योगा की स्थापना के बाद कुछेक दशका के अदर ही ऐसा केंद्रीकरण हो गया।

इस केंद्रीकरण के कारण आधार और लब दानो दिशा ा मे उद्योगा का सम्मिलन हुआ और व्यापार मघो की स्थापना हुई। देश की आर्थिक जीवन के बहुत बडे क्षेत्र म इन व्यापार सघा का अधिकार था। 1940 मे ऐसे लगभग 40 व्यापार सघ थे जिनका 450 कारोबारो पर कब्जा था और जिनमे लगभग ग्यारह सौ मिलियन रुपए की पूजी लगी थी। ये कारोबार सब तरह के थे औद्योगिक परिवहन सबधी और वित्तीय। शक्ति सपन्न ब्रिटिश व्यापार सघो म कुछ ये थे किलिक निक्सन, सैसून, एण्ड्यू यूल ब्रडिज और जार्डाइन एड स्किनर टाटा, बिडला और डालमिया भारतीय एकाधिकारी सगठनो मे प्रमुख थ।

हर प्रकार के आर्थिक उद्यम पर इन व्यापार सघा का अधिकार था। उदाहरणाथ, टाटा के जिम्मे कुल 22 कारोबार थ चार सूती कारखाने, चार बिजली कपनिया चार पावर कपनिया एक लोहा और इस्पात का कारखाना एक वायु परिगमन कपनी, एक तेल कारखाना, एक बीमा कपनी और एक होटल। इसी तरह एण्ड्रयू यूल एड कपनी, जो पूर्वी हिंदुस्तान मे काम करती थी कुल 42 कारोबारो पर अधिकार जमाए हुए थी। उसके पास 11 जूट, 11 कोयला, 15 चाय, एक कागज, दो रबर और एक तेल, इतने कारोबार थे और एक जमीदारी भी थी। [10] इन उदाहरणा से इने गिने व्यापार मघा के व्यापक क्रियाकलाप और लोगा के आर्थिक जीवन पर इनके प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है।

इन व्यापार सघा म भी नत्ता उन डाइरेक्टरा के हाथ म थी जो बडी-बडी जगहा पर बठे थ। गमापी डाइरेक्टरशिप की प्रथा भी काफी प्रचलित थी और इसके कारण कुछ डाइरेक्टरा के अधिकार मे और वृद्धि हुई। अशोक मेहता ने 1940 म लिखा 'हमारे देश के पाच सौ प्रमुख औद्योगिक कारोबारा का प्रबध केवल 2,000 डाइरेक्टर करते है। इनम भी कुल डाइरेक्टरशिप केवल 850

व्यक्तियों के हाथ में है और 1000 डाइरेक्टरशिप के मालिक महज 70 व्यक्ति हैं। इस पिरामिड के शीर्ष पर दस आदमी हैं जो 300 डाइरेक्टरशिप के मालिक हैं। दस व्यक्ति हमारे देश के औद्योगिक अर्थतंत्र के भाग्य विधाता हैं।'[31]

उदाहरणार्थ, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास 51 कारोबारों के डाइरेक्टर थे। ये कारोबार विभिन्न कोटि के थे जैसे बी० ई० एस० एंड टी० क० (बाम्बे एलेक्ट्रिक सप्लाई एंड ट्रांसपोर्ट कंपनी), दि ओरियंटल गवर्नमेंट सिक्युरिटी लाइफ अस्यारेंस कंपनी, दि इंडियन रेडियो एंड केबल कम्युनिकेशंस कंपनी, रिजर्व बैंक आफ इंडिया, कई छापेखाने, बहुत सारी सूती मिलें, बहुत सारी रेलवे कंपनियां, टाटा हाइड्रो एलेक्ट्रिक कंपनी और अन्य कई बिजली और दूसरे सामानों की कंपनियां।

वित्तीय पूंजी का प्रावल्य

आधुनिक उद्योगों के लिए बड़ी पूंजी की आवश्यकता होती है और छोटे लोगों के पैसा लगाने से बड़ी पूंजी का इकट्ठा होना संभव नहीं। इसलिए बैंकों और वित्तीय व्यवसाय संघों से सहायता लेनी पड़ी और भारतीय उद्योग पर वित्तीय पूंजी का नियंत्रण कायम हुआ। अर्थतंत्र के लगभग सारे अंगों पर वित्तीय पूंजी का नियंत्रण आज के पूंजीवादी देशों के आर्थिक जीवन का सामान्य लक्षण है और यह भारत में भी परिलक्षित हुआ। 'बैंकों, बीमा कंपनियों और लागत संघों पर अपने नियंत्रण और प्रभाव के कारण महज दर्जन भर लोग बंबई के औद्योगिक जीवन पर कब्जा किए बैठे हैं। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और उनके रिश्तेदार सर चुन्नीलाल महता बंबई के लगभग प्रत्येक व्यापार संघ और प्रमुख कारोबार में ऊंची जगहों पर हैं। अपने खुद के फायदे नुकसान को नजर में रखकर उन्होंने बहुत सारे संभावित प्रस्तावित एकीकरणों और विलयनों को सफल या विफल बनाया है। अपनी वित्तीय स्थिति के बल पर प्रेमचंद रायचंद, जीजीभाई ग्रुप, कोवासजी जहांगीर आदि भी अपने तौर पर इसी तरह से अपने प्रभाव का उपयोग करते हैं।[32]

भारतीय और अंग्रेजी दोनों प्रकार की वित्तीय पूंजी खासकर मैनेजिंग एजेंसी (प्रबंध अभिकर्त्ता) वाली प्रथा के जरिए अपना काम करती है। इस प्रथा के अनुसार अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक मैनेजिंग एजेंसियां बहुत सी औद्योगिक कंपनियों और उद्योगों को स्थापित करती हैं, उन पर नियंत्रण रखती हैं, उन्हें पैसा देती हैं, उनके क्रियाकलाप और उत्पादनों पर कड़ी नजर रखती हैं और उनके द्वारा तैयार माल की बिक्री का भी प्रबंध करती हैं। कंपनियों के डाइरेक्टर नाम मात्र की या अधीनस्थ की भूमिका अदा करते हैं। लाभ का अधिकांश हिस्सेदारों को न जाकर मैनेजिंग एजेंसियों को जाता है।[33]

भारतीय अर्थतंत्र पर ब्रिटिश पूंजी की घातक जकड़

ब्रिटिश मैनेजिंग एजेंसियां भारतीय एजेंसियों से तगड़ी थीं। एण्ड्रयूज एंड कंपनी

और जार्डाइन एड स्किनर इस तरह की दो बडी सक्षम कपनिया थी। अ
बहत्तर वित्तीय शक्ति और औद्योगिक कपनियो पर अपने नियत्रण के कारण
भारतीय उद्योगो पर खासकर सकट के दिनो मे, अधिकाधिक अधिकार
सकी।[2]

ब्रिटिश और भारतीय दोनो प्रकार की वित्तीय पूजी बको के माध्यम से
काम करती थी। 1934 म स्थापित रिजव बैंक आफ इडिया और 192
स्थापित इपीरियल बैंक आफ इडिया देश के सर्वाधिक शक्तिशाली बैंक थे।
विनिमय बैंक भी काम करते थे और आयात निर्यात मे लगे थे। चाटड बक
इडिया और मर्केटाइल बैंक आफ इडिया इनम प्रमुख थे। देश मे एक तीसरे कि
के बक भी थ, भारतीय ज्वायट स्टाक (सयुक्त पूजी) बक जिनमे भारतीय
का प्राबल्य था। इपीरियल बक और विनिमय बैंक गैर भारतीय थे। उ
सम्मिलित वित्तीय सपत्ति भारतीय ज्वायट स्टाक बैंको जो मूलत भार
नियत्रण मे थे, की पूजी से अधिक थी।

रिजव बक आफ इडिया देश का सबसे तगडा बैंकिंग सगठन था। इ
शक्ति काफी व्यापक थी और इस पर सरकारी नियत्रण था। सरकार ही इ
प्रमुख अफसरो जैसे गवनर, डिप्टी गवनर और कुछ डाइरेक्टरो को भी ब
करती थी।

उन दिनो कई भारतीय राष्ट्रवादी अथशास्त्रियो और राजनीतिज्ञो ने
कहा कि भारतीय बैंकिंग पर व्यापक ब्रिटिश प्रभुत्व भारत के क्षिप्र और उ
औद्योगिक विकास के पथ म बहुत बडा अवरोध है। भारतीयो द्वारा चलाए
उद्योगो म पैसा या पूजी लगाने के सवाल पर ब्रिटिश प्रभुत्व वाले बैंक
ब्रिटिश सरकार दोनो ऐसी नीतिया अपनाते थे जो ब्रिटिश आर्थिक हितो
निर्धारित होते थे न कि भारत के औद्योगिक विस्तार के दृष्टिकोण से।[35]

इस तरह ब्रिटिश वित्तीय पूजी के नियत्रण के कारण भारत का तीव्र
उन्मुक्त औद्योगिक और सामान्य आर्थिक विकास अवरुद्ध रहा। भारतीय ज
की भौतिक, सामाजिक और सास्कृतिक प्रगति के लिए देश का आर्थिक विक
आवश्यक था। इसलिए राष्ट्रवादी आदोलन इस आर्थिक विकास का पक्षधर
और ब्रिटिश वित्तीय पूजी के रुख और सरकारी नीति का घोर आलोचक।

इडियन नशनल काग्रेस एव उदारवादी और अन्य राजनीतिक दलो
सगठनो ने उद्योगशील देश के रूप म भारत क रूपातरण की बात की। 193
गवनमेट आफ इडिया एक्ट म अग्रेजी वित्तीय पूजी को जो वैधानिक सुरक्षा प्र
हुई, उसकी उन्होने बडी तीव्र आलोचना की। इन दलो ने कहा कि भारत
मत्रिया क फसल को रद्द करने का जो अधिकार प्राता के गवनरो को दिया
है वह भारतीय अथतत्र पर ब्रिटिश पूजी के नियत्रण और उसके प्राबल्य को
जारी रखेगा और देश के सामान्य एव औद्योगिक विकास को अवरुद्ध करेगा।

या भारतीय उद्योगो के विकास और जमनी जापान और अमरीका

ब्रिटन के गर हिंदुस्तानी प्रतियोगिया की बढती हुई ताक्त के कारण भारतीय मडी मे ब्रिटन का हिस्सा कम होता गया।[36]

1936 के बाद भारत ब्रिटेन का प्रमुख खरीदार नही रहा जैसे वह पिछले सौ साल से था। 1937 म ब्रिटेन के सामाना के खरीदारो म भारत की दूसरी जगह थी और 1938 म तीसरी।

1918 के बाद भारतीय मडी म ब्रिटन की स्थिति का विशेष ह्रास हुआ। यह ह्रास सूती माल के निर्यात म खासकर दिखाई पडता है हालाकि उन्नीसवी सदी मे सूती कपडो का ही रोजगार भारत के औद्योगिक पूजीवादी शोषण का प्रमुख क्षेत्र था

इस तरह पुराने आधार तो खत्म हो रहे थे, लेकिन दूसरी तरफ वित्तीय पूजीवादी शोषण द्वारा लाभ के नए आधार भी तेजी से बन रहे थे। फाइनेशियल टाइम्स के अनुसार वडे सतुलित अनुमान के आधार पर भी 1929 मे भारत मे लगी हुई ब्रिटिश पूजी की राशि 573 मिलियन पाउड थी यो सभवत यह राशि वस्तुत 700 मिलियन पाउड थी।[37]

ब्रिटिश एसोसिएटेड चवम आफ कामस क अनुसार 1933 म यह रकम 1 000 मिलियन पाउड थी। भारत म ब्रिटिश और विदेशी पूजी की लागत का एक यह पहलू है कि औद्योगीकरण के परिणाम और उसमे लगी पूजी का अनुपात सतोषजनक नही है। इसका कारण यह था कि विदेशी पूजी का बहुत बडा भाग गैर औद्योगिक क्षेत्रा म लगा था क्योकि गैर औद्योगिक क्षेत्रा म अधिक लाभ होता था। जहा पूजी उद्योगो मे लगी भी, वहा हल्के उद्योगा म ही अधिक पसा लगा।[38]

भारतीय उद्योग के एकागी विकास के कारण

देशी पूजी एसे भी बहुत कम थी लेकिन इसे भी लागा न अधिक फायदा वाल गैर उद्योगी क्षेत्रो मे लगाया। डी० आर० गाडगिल न लिखा है भारतीय पूजी उद्योगा मे नही लगी इसके कई कारण थे। भारतीय पूजी की राशि बहुत कम थी और कृषि एव उद्योग दोना ओर स इस पूजी की माग थी। सूदखोरी और वाणिज्य मे बहुत अधिक फायदा था खासकर फसल के दिनो म पैसा लगान स जा फायदा होता था उसकी दर काफी ऊची थी।[39]

भारत का औद्योगिक विकास वडा धीमा और एकागी था। भारत म उद्योग तब विकसित हुए जब इग्लैंड अमरीका, जमनी और अन्य देशा म बडे बडे उद्योग स्थापित हो चुके थे। इसलिए भारतीय उद्योग विदेशी उद्योग से होड लन म असमथ थ। विकसित देशा के उद्योगा को अपनी सरकारा का समथन और उनकी सुरक्षा उपलब्ध थी। इसके विपरीत, भारत म मुक्त व्यापार के सिद्धात की आड मे, ब्रिटिश सरकार न 1924 तक भारतीय उद्योगा को कोई सुरक्षा नही प्रदान की। दूसरे देशो के सरकारी सहायता प्राप्त विशालकाय उद्योगा से होड लन क लिए भारतीय उद्योगा को इस तरह की सरकारी सुरक्षा की बडी आवश्यकता

थी। टैरिफ वोड की स्थापना और सुरक्षा प्रदान करने वाले करो के लगने के वाद भी भारतीय उद्योगा को खास मदद नही मिल सकी क्योकि जसा पहले बताया जा चुका है इपीरियल प्रेफरेंस (साम्राज्यी अधिमान) के सिद्धात के सामन सुरक्षा के सिद्धात का बहुत कम महत्व था। फिर भी सुरक्षा प्रदान करने की नीति स उपभोक्ता सामान पैदा करने वाले कुछ उद्योगा का फायदा हुआ।

सुस्थापित धातुमूलक और मशीन बनाने वाले बडे बडे उद्योगो के अभाव के कारण भी देश के तीव्र औद्योगिक विकास मे दिक्कत हुई। औपनिवेशिक अर्थतत्र का यह लक्षण है कि इसको अपना भारी उद्योग नही है और इसलिए इसे साम्राज्यी अर्थव्यवस्था के अधीन रहना पडता है। आधुनिक समाज के मुक्त, समानुपाती और तीव्र औद्योगिक विकास के लिए ऐसे उद्योग आवश्यक है।

> किसी भी देश मे वास्तविक परिवतन की तब शुरुआत होती है जब उस देश म लोहा और इस्पात उद्योग नियाशील होने लगते है धातु के उद्योगो के विकास का अथ है वास्तविक औद्योगिक क्राति। इग्लैंड, जमनी और अमरीका ने पहल अपना लोहा और इस्पात उद्योग शुरू किया, वाद म अपन सूती कारखाने।[30]

कृपक आवादी की अत्यतम निधनता भी भारतीय उद्योगा के विकास म बहुत बडी रुकावट थी। कृपक आबादी सारी आवादी का 4/5 भाग थी और औद्योगिक माल के लिए यह वहुत वडा वना वनाया वाजार था। हम कृषि वाले अध्याय म देख चुके है कि ऋण, लगान, जमीन से होने वाली आय के ह्रास आदि कारणा से कृपक आवादी के वहुसख्यक लोग काफी गरीब हो गए थे। मूलभूत भूमि सुधार के बिना किसानो की आर्थिक स्थिति म बुनियादी तरक्की सभव नही थी, और उसके बिना भारतीय उद्योग का समुचित विकास सभव नही था। आवश्यकता थी भूमि सवधो के पुनरीक्षण की और कृषि के नवीकरण के लिए किसानो को सरकारी सहायता की जिससे आवादी के इस बहुत बडे की क्रय शक्ति वढे और औद्योगिक सामानो की विक्री हो।

भारतीय औद्योगिक विकास ब्रिटिश वित्तीय पूजी पर आश्रित था और भारतीय उद्योगा पर ब्रिटिश पूजी का नियत्रण था। इसका भी उद्योगा के विकास पर बुरा असर पडा। वित्तीय सहायता अक्सर इसी शत पर दी गई थी कि भारतीय उद्योगपति ब्रिटिश कारखानो से ही औद्योगिक मशीन वगैरह खरीदें। या फिर यह सहायता उन उद्योगो को दी गई जो ब्रिटिश उद्योगो से होड लेन वाले नही थ।

तकनीकी शिक्षण सस्थाए बहुत कम थी और इसलिए तकनीकी काम करन वाल प्रशिक्षित लोग भी कम थे। उद्योगा के विकास म यह भी एक वडी वाधा थी। उनके जन्मकाल सही भारत के राष्ट्रीय आदोलन की यह माग थी कि तकनीकी शिक्षा का विस्तार हो। इडियन नेशनल काग्रेस और उदारवादी एव अय प्रगतिशील राजनीतिक दलो न तकनीकी शिक्षा के प्रश्न को भी अपन

कार्यक्रम में प्रमुख स्थान दिया। यह भी ज्ञातव्य है कि भारतीय उद्योग पर बहुत जल्दी केंद्रीकरण और एकाधिकार हावी हो गया। औद्योगिक विकास और विस्तार में एकाधिकारी संगठनों के जो नुकसान थे, वे भारत की स्थिति में अवश्यंभावी थे।

भारतीय इजारेदारी के विशिष्ट लक्षण

अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस एवं अन्य पूर्ण विकसित पूंजीवादी देशों के एकाधिकार संगठनों से भारत के एकाधिकार संगठन कई प्रकार से भिन्न थे। इन उन्नत देशों में 'मुक्त प्रतिद्वंद्विता' के आधार पर विकसित पूंजीवादी अर्थतंत्र के चरम विकास की स्थिति में एकाधिकार का उद्भव हुआ था। भारत में पूंजीवाद देर से आया इसलिए देशी पूंजीवादी विकास के गैर एकाधिकारी चरण की विशिष्ट परंपरा और उसके सुदीर्घ अस्तित्व के बिना ही उद्योगों ने एकाधिकार का रूप ले लिया। ऊपर जिन देशों की चर्चा है वहां पूंजीवादी इजारेदारी का जब जन्म हुआ तब उत्पादन की शक्तियों और साधारण आर्थिक जीवन का काफी विकास हो चुका था। इसके विपरीत भारत में इजारेदारी जब आई तब उत्पादन की शक्तियां अभी पूर्णत विकसित नहीं थीं। एक तरफ औद्योगिक और अन्य आर्थिक तत्व अभी भी अपरिपक्व थे, दूसरी तरफ था एकाधिकारी संगठनों का विकराल रूप, और इन दोनों स्थितियों में परस्पर घोर विरोध था। पूंजीवादी आर्थिक संगठन के एकाधिकारी रूप का अर्थ है पराश्रयिता और सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक अधोगति। भारतीय आर्थिक विकास के लिए यह स्थिति और अधिक नुकसानदेह थी क्योंकि यहां विकास का स्तर काफी निम्न था।*

भारतीय इजारेदारी और उन्नत देशों की इजारेदारी में यह भी फर्क था कि राज्य से उनके संबंध भिन्न कोटि के थे। अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस और ऐसे अन्य

*एकाधिकार का जन्म पूंजीवादी व्यवस्था के विभिन्न उद्यमों की पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता के कारण होता है। समस्त राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय उद्योग पर और उद्योग की सारी शाखाओं पर एकाधिकारी पूंजी का स्वत्व और नियंत्रण होता है। एकाधिकारों के जन्म के बाद भी प्रतिद्वंद्विता खत्म नहीं होती। अब सारे विश्व के रणक्षेत्र में एकाधिकार एक दूसरे से होड़ लेते हैं, एक दूसरे की ताकत को चुनौती देते हैं। एकाधिकार रूपी आर्थिक दैत्यों का पारस्परिक संघर्ष विश्वजनीन और भयंकर होता है, इनके संघर्ष के कारण पूंजीवादी राष्ट्रों का विरोध बढ़ता है और उनके बीच घोर आर्थिक और सैनिक युद्ध होता है।

एकाधिकार का उद्भव उत्पादन की शक्तियों और उनके सामाजिक चरित्र के असाधारण विकास की ओर इंगित करता है। उत्पादन की आधुनिक शक्तियां विकास की जिस स्थिति में आज हैं वहां उनका सचालन और लाभप्रद कार्यान्वयन सुचारु संयोजना के बिना संभव नहीं। एकाधिकार के जन्म का अर्थ है कि स्वयं पूंजीवादी मालिकों ने सुचारु संयोजन की आवश्यकता स्वीकार की है। फिर भी उत्पादन के साधनों के पूंजीवादी निजी स्वत्व की स्थिति में उत्पादन की संपूर्ण लयमय विश्वजनीन योजना संभव नहीं। यों आधुनिक युग का अत्यंत विकसित उत्पादन विधा ही समाजवाद का भौतिक आधार है लेकिन समाजवादी अर्थव्यवस्था में ही उत्पादन की शक्तियों का स्वच्छंद विकास संभव है।

देशो मे साधारणत एकाधिकार ही अपन देश की राष्ट्रीय और अतर्राष्टीय आर्थिक नीतियो का निर्णायक था। उसे राज्य का सरक्षण भी प्राप्त था। इसके विपरीत भारतीय स्वामित्व वाले एकाधिकार, नियमत, मूलभूत आर्थिक नीतियो को प्रभावित करने मे असमथ रह। भारतीय सरकार तो देशी थी नही, और उसकी रुचि थी ब्रिटिश आर्थिक हितो की सुरक्षा मे। वह भारतीय स्वामित्व वाले एकाधिकार को क्यो काई सुरक्षा या समयन देती ?

भारतीय एकाधिकार की तीसरी विशिष्टता यह थी कि इसका उदय कृषि प्रधान देश मे हुआ था जहा के अधिकाश निवासी गरीब थ। भारतीय औद्योगिक एकाधिकार के लिए मडी का प्रश्न वडा बीहड था। भारत मे पूजीवादी विकास का यह एक स्पष्ट अतर्विरोध है कि यहा पूजीवादी आर्थिक सगठन के उच्चतम रूप एकाधिकार का दरिद्र और आदिम कृषिमूलक आर्थिक परिवेश मे उदभव हुआ। इस आर्थिक परिवेश मे अद्ध सामती और प्राक सामती तत्व अब भी शेष थे।

उन्नत देशो की तरह भारत मे भी निजी एकाधिकार के साथ ही साथ राजकीय एकाधिकार भी मौजूद था। लेकिन भारत के और अन्य दशो के राजकीय उद्योगो मे मौलिक अतर था। भारत म रेलवे जसे राजकीय एकाधिकार विदेशी सत्ता के हाथ म थे। यह विदेशी सत्ता भारतीय जनता के स्वतन्त्र आर्थिक विकास के बदले ब्रिटिश पूजीवाद के हित की रक्षा के लिए राजकीय एकाधिकार का इस्तमाल करती थी। इसलिए रेलवे केंद्रीय विधान सभा के नियत्रण के बाहर था। अमरीका, ब्रिटेन और फ्रास जैसे स्वतत्र देशो म जब राज्य ने कुछ उद्योगो को अपने अधिकार मे लिया तो उन उद्योगो के सचालन सबधी नीतियो नियमो पर वहा की सीनेट या ससद का पूरा नियत्रण था। जब तक उन दशो मे पूजीवादी वग का शासन रहेगा तब तक ये नीतिया उस वग के हित म होगी, लेकिन वे किसी विदेशी स्वाथ की रक्षा के लिए नही थी। भारत सरकार की मूल आर्थिक नीति जनमत के दबाव पर यदाकदा सशोधित होती रही, लेकिन यह नीति न तो भारतीय जनता द्वारा निर्धारित होती थी और न भारतीय मिलकियत वाली इजारेदारी द्वारा, और ब्रिटिश वित्तीय पूजी का हित साधन करती थी।

भारत का औद्योगिक विकास सरकार की मुद्रा नीति के कारण भी रुक रुककर हुआ। इस नीति के अनुसार विनिमय के दर का नियमन भारतीय हितो के विरुद्ध होता था।

भारत के क्षिप्र और सर्वांगीण औद्योगिक विकास की राह मे य ही कुछ मुख्य अवरोध थे। समय और उन्नतिशील उद्योगो क विकास और स्वतत्र, सपन्न औद्योगिक राष्ट्र के रूप मे भारत के उदभव के लिए आवश्यक सारी मानवीय और भौतिक सुविधाए भारत म वतमान थी। फिर भी ऊपर जिन अवरोधो की चर्चा हुई है उनके कारण भारत मुख्यत गरीब, कृषि प्रधान जन समुदाय बना रहा, राष्ट के रूप म उसके उदभव म कठिनाई हुई और यहा उद्योगो का विकास भी नाकाफी रहा। इस प्रसग मे डी० एच० ब्युकैनन न 1934 मे लिखा

इस देश में वे सारे अनगढ तत्व मौजूद थे जिन पर वस्तु निर्माण निर्भर है। फिर भी पिछले सौ साल में इस देश म बाहर के कारखानो म बनी चीजो का बडी तादाद म आयात हुआ है। यहा केवल कुछ सरलतम उद्योगो का उदभव हो सका है, ऐसे उद्योग जिनके लिए मशीन और सगठन अन्य देशो मे पूरी तरह विकसित हो चुके हैं। कच्चा सूत, कच्चा जूट, सहजोपलब्ध कोयला, आसानी से खान से निकाला जा सके ऐसा अच्छे किस्म का लोहा बहुत बडी आबादी जिसमे लाभप्रद कारोबार के अभाव म प्राय लोग भुखमरी के शिकार हैं, सोना और चादी का ढेर, ब्रिटिश सरकार के माध्यम से ऐसी मुद्रा मडी की सहज साध्यता जो सारे ससार को बहुत बडे अश मे पूजी दे रही थी देश विदेश म जो पूजीवादी उद्योग शुरू कर रहे थे ऐसे ब्रिटिश कारोबारी जगत के नेताओ के लिए अपनी स्वय की विजय पताका की छत्रछाया, देश की सीमाओ म ही बहुत बडे बाजार का अस्तित्व इन सबके बावजूद, सौ साल के बाद भी, भारत की सारी आबादी का केवल दो प्रतिशत उद्योग पर आश्रित है देश अभी भी लगभग पूरी तरह कृषि प्रधान है।[11]

स्वस्थ औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक शर्तें

सारे प्रगतिशील राष्ट्रवादी दल देश के उद्योगीकरण के पक्ष म थे और उन्होने इसके लिए जोर लगाया। इन दलो ने भारतीय जनता की आर्थिक, प्रजातान्त्रिक सामाजिक और सास्कृतिक प्रगति के लिए उद्योगिकरण को आवश्यक माना। कृषि की अति सकुलता किसानो की गरीबी का प्रमुख कारण थी और उद्योगीकरण इस सकुलता को कम करने का तरीका। इसलिए सारे मतभेदो के बावजूद देश के सारे सामाजिक राजनीतिक दलो के आर्थिक कायक्रम म उद्योगीकरण को अनिवायत जगह मिली। स्वदेशी आदोलन रुपये के विनिमय अनुपात के विरुद्ध सघष, 1935 के विधान मे प्रातो के गवनरो को दिए गए अधिकारो के खिलाफ की गई लडाई ब्रिटिश आर्थिक स्वार्थो की सुरक्षा के लिए अपनाए गए उपायो का विरोध, इन सघर्षों म सारे राजनीतिक दल साथ थे और इन सबका उद्देश्य था भारत का सम्पन्न औद्योगिक राष्ट्र बनाना। टाटा बिडला योजना के प्रवतक इसी उद्देश्य से अनुप्रेरित थे और इसीलिए राजभक्त दलाल उदारवादी टाटा और गाधीवादी काग्रेसी बिडला ने इस सदभ म सम्मिलित स्वार्थ की पूर्ति के लिए सम्मिलित प्रयास किए।

भारतीय उद्योगो के विकास के रास्ते म जो बाधा विघ्न थे उनकी गिनती हम लोग कर चुके हैं, सरकार की मूलभूत आर्थिक नीतिया किसान जो औद्योगिक माल के ग्राहक हो सकते थे उनकी चरम दरिद्रता, भारतीय बुर्जुआजी की आर्थिक हीनता अपनी सरकारो द्वारा समर्थित विदेशी प्रतिद्वद्वियो के साथ तीव्रतर होती हुई होड, इत्यादि।

ऐसी हालत म आर्थिक जीवन के हर क्षेत्र पर जो ध्यान लगी किसी

सुनियोजित अथव्यवस्था के कायक्रम से ही उद्योगा का तेज, समरूप और निश्चित विकास सभव है। इस तरह के किसी भी कायक्रम के उद्देश्य होने चाहिए आदिम और विपन्न कृषि का पुनरुद्धार और समृद्धिशील आधुनिक कृषि के रूप मे उसकी स्थापना, उद्योगा का आधुनिकीकरण और विस्तार, धातु रसायन, विद्युत और मशीन सबधी भारी उद्योगो और ऐसे ही अन्य उद्योगो की स्थापना और विकास रेलवे, बस और आवागमन के अन्य साधनो का विस्तार, तकनीक और अभियत्रण मे प्रशिक्षित लोगा की सख्या मे वद्धि बडी तादाद म कषि अथविदो का प्रशिक्षण। सुनियोजित राष्ट्रीय अथतत्र का अथ है भारतीय जनता के जीवन म तकनीकी आर्थिक क्राति और भारतीय उपमहाद्वीप के सारे भौतिक और मानवीय साधनो का अधिकतम और योजनाबद्ध उपयोग। ऐसे कायक्रम के बिना साधारण आर्थिक प्रगति और तीव्र औद्योगिक विकास सभव नही था।

देश के सुदढ आर्थिक अस्तित्व और विस्तार के लिए राष्ट्रीय आर्थिक योजना की आवश्यकता थी, और अब बुजुआजी भी यह बात मान रही थी, यद्यपि आर्थिक सकट के पहले वाले युग म अहस्तक्षेप और उन्मुक्त व्यवसाय उनका परम पवित्र सिद्धात था।

बाबे प्लान और उसकी कमजोरिया

भारतीय उद्योगपतियो ने भी राष्ट्रीय अथतत्र का योजनाबद्ध करने की चरम आवश्यकता को स्वीकार किया। औद्योगिक दलो द्वारा बनाई गई योजनाओ मे बाबे प्लान सबसे अधिक प्रसिद्ध है। राष्ट्रीय अथतत्र के विकास की किसी भी योजना के कार्यान्वयन के लिए राजनीतिक सत्ता की जरूरत है। बाबे प्लान के प्रवतको ने भी यह समझा और राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की आशा प्रकट की ऐसी सरकार जो योजना के कार्यान्वयन मे सहायक हो।

बाबे प्लान म कुछ बहुत बडी कमजोरिया थी। इसके समथको की यह समझ थी कि भूमि सबधो के मूलभूत पुनरीक्षण के बिना भी देश का व्यापक औद्योगिक विकास सभव है लेकिन किसानो की गरीबी दूर करने और उनकी क्रय शक्ति बढाने के लिए एसा पुनरीक्षण आवश्यक था। कृषक अथतत्र और अधिक ह्रास-ग्रस्त न हो और किसान और भी अधिक गरीब न हो इसके लिए भूमि सबधो म आधारभूत परिवतन लाना ही था।

योजना के प्रवतको ने यह भी उम्मीद की थी कि प्रतिद्वद्विता, लाभाथ उत्पादन, उत्पादन तत्र पर निजी स्वत्व आदि पूजीवादी मान्यताओ की आधारभूमि पर भी उनकी योजना का कार्यान्वयन हो सकेगा। पूजीवादी आधार पर भी कुछ हद तक योजना सभव है लेकिन राष्ट्र के पैमाने पर व्यापक आर्थिक सयोजन के लिए भूमि उद्योग आवागमन के साधन और उत्पादन के भौतिक उपकरणो पर सामाजिक स्वत्व आवश्यक है। इन्हे गिने मालिको के बदले जनसाधारण के उपयोग और उनके हित म साधनो के मुक्त सयोजित और महत्तम उपयोग उपभोग के लिए

इन साधनों पर समूचे समाज का अधिकार जरूरी है। पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन का उद्देश्य है नफा कमाना लेकिन इसकी जगह वस्तुओं के उपभोग को उत्पादन का आधार और उद्देश्य बनाना होगा।

यह ज्ञातव्य है कि आज हम अंतर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन और विश्व के पैमाने पर एकीकृत अर्थतंत्र के युग में रह रहे हैं। इसलिए अत्यधिक योजनाबद्ध राष्ट्रीय अर्थतंत्र भी विश्व की आर्थिक व्यवस्था द्वारा संचालित है और सुनियोजित राष्ट्रीय अर्थतंत्र सुनियोजित अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का ही अंग हो सकता है। फिर भी, भारत जैसी बड़ी आबादी और संपन्न आर्थिक साधनों के देश में सुनियोजित राष्ट्रीय अर्थतंत्र संभव है। यो इसके लिए राष्ट्रीय स्वातंत्र्य, निहित स्वार्थों से सत्ता का अपहरण, मूल उत्पादकों के हाथ में सत्ता का हस्तांतरण और उत्पादन के साधनों पर सामाजिक अधिकार की आवश्यकता है। बांबे प्लान के प्रतिपादकों के दिमाग में दूसरी बातें थीं

> हम साफ बतला देना चाहते हैं कि यह योजना समाजवादी आधार पर, उप भावनाओं के हित में, आर्थिक नियंत्रण की बात नहीं करती, यह वर्तमान आर्थिक संरचना की दृष्टि से योजना की बात सोचती है। जब तक पूंजीवादी संरचना में लाभ की भावना है आवर्ती संकट और चिरकालिक बेरोजगारी की समस्या समाप्त नहीं होगी। इस योजना में कहीं भी पूंजीवादी व्यवस्था की इन अंतर्निहित कमजोरी की चर्चा नहीं है। लेकिन इस योजना के प्रवर्तक बड़े भोलेपन से ऐसा मान बैठे हैं कि आर्थिक जीवन का ऐसा संगठन संभव है जिसमें अर्थव्यवस्था के कुछ अंगों पर पूरा सरकारी प्रबंध और अधिकार हो। दूसरे शब्दों में वे मिश्रित, द्वैत अर्थतंत्र का प्रस्ताव करते हैं, जिसमें एक भाग बिल्कुल स्वतंत्र हो और दूसरा कुछ हद तक नियंत्रित और अथवा सरकार द्वारा प्रबंधित हो। लोग प्रायः भूल जाते हैं कि आर्थिक संरचना के एक भाग का नियमन सारी संरचना में द्वंद्वितांजन्य संघर्ष को तीव्र कर सकता है।[4]

भारतीय औद्योगिक विकास का सामाजिक महत्व

अपर्याप्त और असंतुलित होने के बावजूद उद्योगीकरण ने भारतीय जन जीवन में क्रांतिकारी भूमिका अदा की। कृषि के क्षेत्र में पूंजीवादी आर्थिक रूप लाने के प्रयास संसार की व्यावसायिक शक्तियों द्वारा भारत की घुसपैठ और आवागमन के आधुनिक साधनों के विस्तार के फलस्वरूप जिस एकीकृत राष्ट्रीय अर्थतंत्र का भारत में विकास हुआ था उसका सुसंगठन उद्योगीकरण के चलते संभव हो सका। इसके चलते भारतीय अर्थतंत्र अधिक समन्वित समरूप और जीवंत हो सका और उसे निश्चित रूपरेखा मिली। इसके चलते आधुनिक शहरों का भी आविर्भाव हुआ जो आधुनिक संस्कृति और वर्धनशील प्रजातांत्रिक सामाजिक जीवन के केंद्र बने, और जहां सभी सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक प्रगतिशील आंदोलनों का जन्म हुआ।

भारत के प्रगतिशील सामाजिक और राजनीतिक दलो ने उद्योगीकरण के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभो को समझा। उद्योगो एव अन्य आर्थिक शक्तियो और साधनो के सामाजिक सगठन के बारे म इन दलो मे मतभेद था। इन दलो म परस्पर इस बात पर भी झगडा था कि आर्थिक सगठन निस्सीम व्यक्तिगत प्रतिद्वद्विता और व्यक्तिगत अध्यवसाय के अहस्तक्षेप वाले सिद्धात के आधार पर किया जाए, या राष्ट्रीय योजना के आधार पर, चाहे वह योजना पूजीवादी हो या समाजवादी। लेकिन उद्योगो के सर्वागीण विकास के पक्ष म सब थ। बहुत सारी बातो पर उनमे घोर मतभेद था लेकिन इस सवाल पर सब एकमत थे। औद्योगिक विकास के अवरोधो के खिलाफ उन्होने जमकर लडाई की और उद्योगीकरण की उनकी सम्मिलित माग राष्ट्रीय माग थी। आधुनिक उद्योगो की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय समाज मे दो महत्वपूण वर्गों का जन्म हुआ, बुजुआजी और सवहारा। राष्ट्रीय आदोलन मे इन वर्गों की भूमिका की विवेचना हम बाद मे करेंगे।

सदभ

1 लार्ड डलहौजी मिनिट आन रेलवेज।
2 कार्ल मार्क्स प० 62।
3 देखें गाडगिल प० 74 77।
4 रानाडे प० 18।
5 गाडगिल प० 117 18।
6 ब्युकनन पृ० 139।
7 आर० पी० दत्त प० 153।
8 सर वर्लेंटाइन शिरोल आबजवर 2 अप्रल 1922।
9 मारल एड मेटेरियल प्रोग्रेस आफ इडिया 1921 प० 144।
10 सर जान हिवेट यू० पी के लेफ्टिनेंट गवनर इन्डियन इन्डस्ट्रियल कान्फ्रेंस 1907।
11 *डिस्पैच टु दि इडियन सेक्रेटरी 26 नवबर, 1915।*
12 मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प० 267।
13 लोकनाथन पृ० 6।
14 वही प० 6।
15 देखें वाडिया एड मर्चेंट पृ० 285।
16 डी० एच० ब्युकनन पृ० 464।
17 सर एम० विश्वेश्वरय्या प० 247।
18 वाडिया एड मर्चेंट प० 285।
19 कट मिश्रा पृ० 285।
20 देखें वर्गा।
21 कट मिश्रा पृ० 280।
22 लोकनाथन प० 7 8।

23 वाडिया एंड मर्चेंट पृ० 287।
24 अ सर्वे आफ इंडिया टु डे 12 दिसंबर 1936।
25 जन पृ० 48।
26 वही पृ० 128।
27 वही पृ० 128।
28 अशोक मेहता पृ० 3।
29 देखें हाब्सन और लेनिन।
30 देखें अशोक मेहता।
31 वही पृ० 11 12।
32 वही पृ० 14।
33 आर० पी० दत्त पृ० 168।
34 रिपोर्ट आफ द सेंट्रल बैंकिंग इंक्वायरी कमेटी 1931 जिल्द 1।
35 देखें विश्वेश्वरया पृ० 64 65।
36 देखें रिव्यू आफ ट्रेड इन इंडिया 1937 8 भारत सरकार के आर्थिक मामलों के सलाहकार डा० ग्रेगरी द्वारा प्रस्तुत।
37 आर० पी० दत्त पृ० 146।
38 देखें आर० पी० दत्त।
39 गाडगिल पृ० 193।
40 डी० एच० ब्युकनन पृ० 450-5।
41 वही।
42 वाडिया एंड मर्चेंट द बाब प्लान अ क्रिटिसिज्म पृ० 3 4।

8

आवागमन के आधुनिक साधन और भारतीय राष्ट्रवाद का उदय

प्राक् ब्रिटिश भारत मे आवागमन

आधुनिक राष्टो के सगठन म रेलवे, बस और स्टीमर जैसे आवागमन के अर्वाचीन साधनो का बहुत बडा महत्व है। यह महज सयोग की बात है कि राष्टो का उदय अधिकाशत उन्नीसवी शताब्दी मे हुआ जब आवागमन के आधुनिक साधनो का आविष्कार हुआ। इग्लैंड और फ्रास अठारही सदी मे ही राष्ट्रवाद के पथ पर अग्रसर हो चुके थे लेकिन राष्ट के रूप म उनका सपूर्ण सामाजिक और सास्कृतिक विकास उन्नीसवी सदी मे ही सभव हो सका जब आवागमन के नए साधन इन देशो को आर्थिक और सास्कृतिक रूप म सुसगठित कर सके।[1]

भारत म भी रलवे और मोटर बसो के आगमन और प्रसार से भारतीय जनता के राष्ट्रीय समेकन मे काफी मदद मिली। आवागमन की तकनीक किसी देश के आर्थिक विकास की स्थिति विशेष पर निभर और उसी से निर्धारित होती है। प्राक ब्रिटिश भारत म यातायात व्यवस्था बहुत कमजार थी, क्योकि वैज्ञानिक और तकनीकी पिछडेपन के कारण आधुनिक उद्योग नही पनप पाए थे, और आधुनिक उद्योग के बिना आवागमन के आधुनिक साधना का निर्माण सभव नही। अधिकाश आबादी गावा मे रहती थी और गाव आत्मनिभर था। दुबल अथव्यवस्था के कारण आवागमन के साधना की अक्षमता बनी रही और इन साधनो की दुबलता ने अथव्यवस्था के विकास को अवरुद्ध किया।

> अधिकाश लोग अलग अलग गावा म रहते थे। साधारण आकार और अधिक मूल्य की कुछ चीजा, जैसे औषधि रेशम और बेशकीमती पत्थर जो आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाए जा सकते हैं, और फिर कुछ भारी भरकम सामान जसे लोहा और नमक जिनकी कम मात्रा म ही सही, लकिन सबका जररत पडती है, इनके अतिरिक्त बाकी सब चीजो के लिए गाव वाले गाव की ही उपज पर निभर थे। विभिन्न समुदाया म विशिष्टीकरण का अभाव था, इसलिए वस्तुओ और व्यक्तियो का आवागमन नही के बराबर था। खेता से फसल घर ले आना, और उसका कुछ अश निकटस्थ

व्यापार केंद्र तक पहुंचाना, वस्तुओं का मात्र इतना ही स्थानांतरण आवश्यक था, और यह काय लोग सामान को आदमियों के सिर पर या जानवरों की पीठ पर ढोकर लिया करते थे। कभी कभी जब बहुत दूर जाना होता था तो सूखे के मौसम में बैलगाडियों का इस्तेमाल किया जाता था। कुछ इलाकों में, खासकर बगाल में नदियों और गगा एव ब्रह्मपुत्र के मुहाने पर स्थित खाडियों में नजदीक और दूर की भी यात्रा पानी के रास्ते होती थी। उत्तर और पश्चिम के इलाकों में गगा और सिंधु और दक्षिण में कृष्णा और गोदावरी के रास्ते छोटे छोटे यान भीतर के इलाकों तक पहुंच जाते थे। मुगल काल में राजधानियों को मिलाने वाली कुछ गदी सडकें थी, और अंग्रेजों ने भी शासक बनने से पहले सडकें नही बनवाइ।[3]

प्राक ब्रिटिश भारत में आवागमन के साधनों की कमजोरी के कारण लोगों का व्यापक एकान्वित सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक जीवन सभव नही हुआ। आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक कार्यों के लिए लोगों में परस्पर आदान प्रदान सभव नही था, क्योंकि यात्रा के द्रुतगामी साधन उपलब्ध नही थे। केवल कुछ विद्वज्जन कुछ व्यापारी, राज्य काय से सबधित कुछ व्यक्ति और तीर्थयात्री ही देश में भ्रमण करते थे, लेकिन आबादी के अधिसख्यक लोग आत्म निर्भर गावों में रहते थे और शायद ही कही गावों से बाहर जाते थे। सामाजिक विनिमय के अभाव में केवल ग्रामीण या जाति चेतना का ही विकास हो सका राष्ट्रीय चेतना और दृष्टि विकसित नही हो सकी।

आवागमन के आधुनिक साधनों का उद्भव

उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध में टेक्नालाजी की अभूतपूर्व प्रगति और पिछले युग के व्यापार से सग्रहीत पूजी के कारण, इग्लैंड में मशीन पर आधारित उद्योग धधों का जन्म हुआ। अंग्रेज उद्योगपतियों के सामने प्रश्न था इन नए और निरतर वर्धनशील उद्योगों से बने सामानों की तेजी से खपत और उनके लिए भारत और दुनिया के अन्य भागों से कच्चे माल की आपूर्ति।

ब्रिटिश उद्योग की आवश्यकताओं के कारण ईस्ट इंडिया कपनी की सरकार को भारत में रेलवे और सडकों का निर्माण करना पडा। लार्ड डलहौजी ने भारत में रेलवे निर्माण का व्यापक कार्यक्रम प्रारभ किया। उसने अपनी मशहूर मिनिट आन रेलवेज में रेलवे के निर्माण के आर्थिक कारणों की स्पष्ट व्याख्या की है।

ब्रिटिश पूजीवाद के सामने यह समस्या भी थी कि ब्रिटेन में अधिक पूजी एकत्र होती जा रही थी और उसका वहा लाभदायक इस्तेमाल सभव नहीं था। इस पूजी के लिए निकास की जरूरत थी। रेलवे निर्माण का कार्यक्रम शुरू करने पर भारत सरकार को पूजी की जरूरत होती थी। ब्रिटेन में एकत्र पूजी के अतिरेक का एक अश भारतीय सरकार को कर्ज रूप में दिया जाता और इस तरह उसका विकास सभव हुआ।

इन आर्थिक कारणो के अतिरिक्त भारत मे रेलवे की स्थापना के राजनीतिक प्रशासनिक और सामरिक रणनीतिक कारण भी थे। अग्रेजो की भारत विजय पूरी हो जाने पर अपने सदियो पुराने इतिहास मे भारत पहली बार एकल राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था मे आबद्ध हुआ और भारत की यह राजनीतिक प्रशासनिक एकता मात्र सतही नही थी।

प्राक ब्रिटिश भारत की सरकारें लगान वसूली की एजेंसी भर होती थी। अग्रेजी सरकार ने गावो के अतर्जीवन पर आघात किया, उनके न्यायिक और पुलिस सबधी स्वातत्र्य को समाप्त किया, उसकी जगह पर सारे देश को एक जैसी विधि व्यवस्था प्रदान की और उसके कार्यान्वयन के लिए गावो मे अपने प्रतिनिधि भेजे। वस्तुत उन्होने पहले के स्वशासित गावो से वे सारे काय हथिया लिए जो राज्य द्वारा सचालित होते थे लेकिन जिन्हे प्राचीन काल से ही ग्रामीण सस्थाए चलाती रही थी।

इस तरह अग्रेजो ने भारत मे एक विशाल प्रशासनिक यत्र की स्थापना की। इसके लिए रेलवे की स्थापना और उसका विकास, आधुनिक सडको का निर्माण और डाक और तारघर की स्थापना अनिवार्य थी। गावो शहरो जिलो और प्रातो को एक राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था के रूप मे सगठित करने की आवश्यकता से रेलवे निर्माण को काफी प्रोत्साहन मिला।

सैन्य और सामरिक कारणो से भी भारत मे आवागमन के आधुनिक साधनो की स्थापना आवश्यक थी। भारत मे स्थापित अग्रेजी राज्य की भीतरी विद्रोह और बाहरी आक्रमण दोनो से रक्षा करनी थी। सामरिक दष्टि से महत्वपूर्ण स्थानो मे सेना को तेजी से ले जाने के लिए पर्याप्त रेलवे लाइनो की स्थापना और आधुनिक पक्की सडको का निर्माण आवश्यक था। इस तरह सैन्य और सुरक्षा सबधी कारणो से भी रेलवे की स्थापना हुई और सचार साधनो का विकास हुआ।

आवागमन के आधुनिक साधनो का एकागी विकास

भारत मे आवागमन के आधुनिक साधनो की स्थापना और विस्तार भारतीय राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक और सास्कृतिक जीवन के सहज स्वतत्र और बहुमुखी विकास के दृष्टिकोण से नही, वरन मूलत भारत मे अग्रेजो के आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक स्वार्थो की पूर्ति के लिए किया गया। इस कारण भारतीय आवागमन और सचार व्यवस्था का रूप उपनिवेशी रहा। इसलिए भारत मे रेलवे और सडको का विकास अपर्याप्त, एकागी और विकृत रहा।

रेलवे के माइलेज की दृष्टि से भारत की तुलनात्मक हीनता इसी से स्पष्ट है कि जब भारत मे हर 100 वर्गमील पर 2 2 मील रेलवे है और हर मील रेलवे लाइन पर 7 894 व्यक्ति हैं अमरीका मे जो भारत की तरह विशाल कृषि प्रधान देश है, हर 100 वर्गमील पर 8 42 मील रेलवे है और हर मील

रेलवे लाइन के लिए 469 वाशिंदे है। फिर कर्जेंटिना, अटिना और न्यूजीलैंड म औसतन हर मील रेलवे लाइन पर केवल 300 वाशिंदे ह।[3]

ब्रिटिश सरकार ने भारत म ब्रिटिश सत्ता और पूजी की रक्षा के लिए रेलवे की जीवत भूमिका का समस्या और रेलवे पर अपन प्रतिनिधि वडे ठाट का हरदम नियत्रण रखा। 1935 के गवनमट आफ इडिया एक्ट के अनुसार भी रलवे के नियमन और निर्माण सपोषण और सचालन पर फेडरल रेलवे अथारिटी का कार्यकारिणी अधिकार होगा। यह फेडरल रेलवे अथारिटी सीधे गवनर जनरल के अधीन होगी और विधायिका का उस पर कोई नियत्रण नहीं होगा।' यद्यपि भारत म रेलवे और सडका का निर्माण ब्रिटिश हित की दृष्टि से किया गया और एकाकी रहा, फिर भी भारतीय जनता के जीवन म इसकी प्रगतिशील भूमिका रही।

भारत क पुरान समाज के आर्थिक आधार का नष्ट करने म रेलवे ने ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील नई आर्थिक शक्तिया की मदद की। उन्होंने आधुनिक समाज के औद्योगिक माल को भारत मे पहुचान म मदद की और इस तरह गावा की आर्थिक आत्मनिर्भरता का समाप्त किया। उन्होने भारत का एक आर्थिक इकाई बनान म मदद की और विश्व की मडी स भारत का सबध जोडा। रेलवे क कारण राष्ट्रीय अथव्यवस्था सभव हो सकी जो भारतीय राष्ट्र का भौतिक आधार है।

> रलवे के पास अतीव शक्ति थी। विनिष्टीकरण के लिए आवश्यक शर्ता की सष्टि द्वारा उसन उत्पादन और वाणिज्य के क्षेत्र म क्रांति ला दी, और उसके कारण बड बदरगाहा और औद्योगिक केंद्रा की स्थापना हुई रेलवे के चलत सार दश म साला भर कीमतें समरूप रह सकी और राष्ट्र का एकीकरण हुआ दुर्भिक्ष की समस्या के निराकरण म दुर्भिक्ष रिलीफ सगठना से भी वडी भूमिका रलवे की रही। इनक चलते दास मुक्ति सभव हुई क्योकि लोगा को वैकल्पिक रोजगार और गतिशीलता मिली।

काल मार्क्स न 1853 म ही भविष्यवाणी की थी कि अग्रेजा को यह पसन्द हो या न हो भारत म रेलवे की स्थापना स भारतीय पूजी की मिल्कियत मे भारतीय उद्योग का उद्भव अवश्यभावी था

> मुझे मालूम है कि अग्रेज मिलाधिपति अपन उद्योगा क लिए कम खर्चे म रूई और अन्य कच्चे माल का भारत स बाहर निकालन के लिए भारत म रेलवे की स्थापना करना चाहत ह। लेकिन जिस देश म पायला और लोहा मिलता है उस देश म एक बार मशीन का इस्तेमाल शुरू हो जान पर फिर उस देश को मशीना के निर्माण म वचित रखना असभव है। किसी बडे देश म रलवे का जाल आप बिछाए रखें तो उसके चलते यातायात की तात्कालिक और आसन्न आवश्यकताओं की पूर्ति क लिए औद्योगिक प्रक्रियाए भी अपनानी होगी और तब धीरे धीरे उद्योग की उन शाखाओ म भी मशीन

रेलवे और बसों के कारण देश के एक भाग से दूसरे भाग में लोगों का प्रवसन संभव हुआ। नौकरी की खोज में या अपने भविष्य की बढ़ोत्तरी के लिए लोग बस या रेल द्वारा मद्रास से बंबई या लाहौर से कलकत्ता गए। शिक्षित लोग, डाक्टर, शिक्षक, किरानी, इन लोगों ने रोजगार के लिए अपने प्रांत छोड़े और बंबई जैसे शहरों में नौकरी पेशा और व्यावसायिक वर्ग में देश के हर प्रांत के लोग मौजूद हैं।

यात्रा की व्यापक सुविधाओं के कारण लोगों का जो सम्मिश्रण संभव हुआ उसके बड़े गहरे नतीजे निकले। कुछ दिनों तक पुराने स्थानीय और प्रांतीय दृष्टिकोण बने रहे, लेकिन उनके विनाश की प्रक्रिया शुरू हो गई। पुराने संकीर्ण विचार और दृष्टिकोण निरंतर समाप्त होते गए। इसके चलते व्यापक राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय आधार पर सहयोग का रास्ता प्रशस्त हुआ।

भोजन पान, शारीरिक संबंध व्यवहार, और ऐसी ही अन्य बातों के विषय में जो रूढ़िवादी या सामाजिक आदतें थीं उनको समाप्त करने में रेलवे ने बहुत बड़ा योगदान दिया। रेलवे ने निष्पक्ष रूप से केवल भाड़ा चुकाने के आधार पर, हिंदू, छूत अछूत सबको एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाया। कुलीन हिंदुओं को पहले तो यह बात कुछ जंची नहीं, लेकिन शीघ्र ही उन्होंने अछूतों के साथ यात्रा की बात से समझौता कर लिया क्योंकि रेलगाड़ी से यात्रा करने के जो लाभ थे उनसे वे वंचित रहना नहीं चाहते थे। इस तरह रेलवे ने सनातनी हिंदुओं की कट्टर रूढ़िवादिता और भोजन पान छूत अछूत संबंधी उनकी पापशंका को क्रमशः क्रम से समाप्त किया। रेलवे के चलते लोगों का आवागमन बढ़ा और वे आपस में मिलने जुलने लगे। लगातार मिलने जुलने और सामाजिक आदान प्रदान से सामाजिक पृथकता के पुराने भाव भी धीरे धीरे तिरोहित होने लगे।

रेलवे, मोटर, बस और आवागमन के आधुनिक साधनों के बिना राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन संभव नहीं होता। अगर ये साधन भारत में अंग्रेजी शासन को सुदृढ़ और सुरक्षित करने के माध्यम बने तो साथ ही उन्होंने इस शासन के विरुद्ध भारतीय जनता के राजनीतिक आंदोलन को संगठित करने का भी काम किया। आधुनिक रेलवे, बस, डाक और तार के बिना इंडियन नेशनल कांग्रेस, लिबरल फेडरेशन, नेशनल डेमोक्रेटिक यूथ लीग, आल इंडिया कीसन कांफ्रेंस, अखिल भारतीय छात्र संगठन, आल इंडिया किसान सभा, आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस जैसी संस्थाओं का न तो जन्म ही होता और न वे राष्ट्रीय स्तर पर अपना कार्य ही कर पातीं। विभिन्न शहरों, गांवों, जिलों, प्रांतों के लोगों को रेलवे के द्वारा आपस में मिलने का, विचारों के आदान प्रदान का और आंदोलन के लिए कार्यक्रम निश्चित करने का मौका मिला। और इसके बिना राष्ट्रीय आंदोलन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आवागमन के आधुनिक साधनों के बिना कोई राष्ट्रीय कांफ्रेंस संभव नहीं हुआ होता।

रेलवे और बसों के द्वारा लोगों के बीच प्रगतिशील सामाजिक और बौद्धिक

विचारो का प्रचार प्रसार हुआ। आवागमन के आधुनिक साधनो के बिना वैज्ञानिक और प्रगतिशील साहित्य (किताबें और पत्र पत्रिकाए) सारे देश म तेजी से वितरित नही हो पाती। प्राथमिक कक्षाओ के लिए छपी छपाई किताबो के होने से सवसाधारण में शिक्षा का प्रसार हो सका। हजारो लाखा की तादाद म किताबो का मुद्रण तो सभव होता लेकिन हजारा गावा और शहरो म उनके क्षिप्र वितरण की व्यवस्था के बिना जो रेलवे और बसो के कारण सभव था, ये किताबें विभिन्न क्षेत्रो म नही पहुच पाती। आवागमन के आधुनिक साधना के बिना व्यापक शिक्षा का प्रबध नही हो पाता।

रेलवे की मदद से किसी एक क्षेत्र की वैज्ञानिक और सास्कृतिक उपलब्धिया को राष्ट्रीय सपत्ति बनाया जा सकता था। वैज्ञानिक कलाकार, समाजशास्त्री दाशनिक और अथविद अपना ज्ञानभडार और कलाजन्य आनद लोगा तक पहुचा सकते थे, क्योकि अब वे एक जगह से दूसरी जगह की यात्रा कर सकते थे और लोगा के सामने आ सकते थे। दाशनिक और सास्कृतिक कान्फरेंस, जहा भारतीय बुद्धि और कलात्मक प्रतिभा का सारतत्व प्रतिपादित और प्रदर्शित हो सकता था तभी सभव हुए जब रलवे और बसा का आविभाव हुआ। इस तरह राष्ट्रीय स्तर की सर्वोपलब्ध व्यापक जनशिक्षा और सस्कृति रेलवे पर भी उतनी ही निभर थी जितनी किन्ही अन्य कारक तत्वा पर।

भारत म आवागमन और सचार के आधुनिक साधना का विकास एकागी और सीमित था। श्रेष्ठतर सामाजिक और आर्थिक एकीकरण और भारतीय जनता की क्षिप्रतर सास्कृतिक प्रगति की दिशा म इन साधना की अतर्निहित क्षमता का पूण विकास नही हुआ। इन साधना के विस्तृत और पर्याप्त विकास की समस्या का राजनीतिक सत्ता पर भारतीय जनता के अधिकार की समस्या से बडा गहरा सबध था, साथ ही आर्थिक नवनिर्माणोन्मुख वैज्ञानिक योजना द्वारा भारतीय समाज की उत्पादक शक्तियो के तीव्र विकास से भी इसका सबध था। और सही अर्थों म यह तभी सभव था जब उत्पादन के साधनो पर समाज का पूरा अधिकार हो।

सदर्भ

1 देखें लास्की।
2 देखें डी० एच० ब्यूकनन गाडगिल ओमैला।
3 ब्यूकनन, पृ० 176।
4 मोती प० 24।
5 आ मैला प० 269 70
6 काल मार्क्स पृ० 62-63।
7 जान म्यूकम्स प० 42।
8 वसिल मथ्यूज ओमैला प० 248 द्वारा उद्धत।

9

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास मे आधुनिक शिक्षा का योगदान

शिक्षा का सामाजिक महत्व

आर्थिक क्रियाकलाप किसी भी समाज के अस्तित्व के लिए नितात आवश्यक है। अपने सदस्यो के महज भौतिक अस्तित्व के लिए भी समाज को उत्पादन की प्रक्रिया चालू रखनी पडती है। उत्पादन का अर्थ है प्रकृति म उपलब्ध पदार्थों का मनुष्य की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकने वाले रूपो म परिवतन, और इसके लिए आवश्यक है प्रकृति के क्रियाकलाप की समझदारी अर्थात विज्ञान। जविक अस्तित्व के लिए आवश्यक सामाजिक क्रियाकलाप के सिलसिले मे खगोलशास्त्र भौतिकी रसायन कृषिशास्त्र और दूसरे वैज्ञानिक विषयो का विकास हुआ। छोटे या बडे समूहो म सगठित लोगो न इस विज्ञान का उपयोग किया और इस तरह शिल्प विज्ञान अर्थात प्राद्योगिकी (टैक्नालाजी) का विकास हुआ और हस्तशिल्प उद्योग के औजार और हल जसी चीजो का आविष्कार-उत्पादन हुआ। आधुनिक युग म उत्पादन के जिन आश्चयजनक साधनो का आविष्कार हुआ है वे भाप बिजली या आणविक शक्ति द्वारा सचालित होत हैं। बहुत पिछडे हुए दशा म भी वैज्ञानिक ज्ञान और शिल्प क्रिया कुछ हद तक तो थी ही। उनके पास भी अपना जीवन दशन था चाहे वह कितना ही अपरिष्कृत या अनगढ क्यो न हो।

सदियो से जीवन प्राक ब्रिटिश भारत म भी वज्ञानिक संस्कृति विद्यमान थी। इसका अस्तित्व कृषि और हस्तशिल्प पर निभर था, जिनके लिए खगोलशास्त्र कृषि विज्ञान गणित और मशीन विज्ञान की जानकारी आवश्यक थी। प्राक ब्रिटिश भारत का अपना औषधि विज्ञान भी था।

अग्रेजो के आने के पहले भारत का आर्थिक और वज्ञानिक विकास बहुत कम हुआ था। विश्व के बहुत सारे राष्ट्र जब सभ्य जीवन के पथ पर अग्रसर हुए उसके सदियो पहले भारतीयो न गणित, रसायन और औषधि विज्ञान म पथप्रदशक का काम किया। लेकिन सभवत इसीलिए भारतीय समाज लगभग उसी पुराने आर्थिक और सास्कृतिक स्तर पर बहुत दिनो तक स्थिर रहा और भारतीय जनजीवन का समुचित विकास नहीं हो सका। भारतीयो न इस लबी अवधि म उपनिषद के

आदर्शवादी दर्शन के अनेकानेक भाष्य प्रस्तुत किए। लेकिन प्रकृति विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इनकी देन कुछ विशेष नहीं रही। आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ कर अंग्रेज वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय ज्ञान के क्षेत्र में भारत को आधुनिक पाश्चात्य उपलब्धियों के संपर्क में ले आए।

> 'समय आ गया है जब यूरोप एशिया की सभ्यता के पुराने ऋण का भुगतान करे। विज्ञान जो पूरब के देशों में जन्मा और पश्चिम के देशों में सयाना हुआ, अब सारी दुनिया पर छा जाने वाला है।'[1]

प्राक् ब्रिटिश भारतीय संस्कृति के बारे में दो गलत धारणाएं

अंग्रेजों के आने के पूर्व की भारतीय संस्कृति के बारे में दो गलत धारणाएं प्रचलित थीं। अंध देशभक्त और अतिराष्ट्रीयतावादी आर्य समाज ने भारत के अतीत का आदर्श रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने यह भी दावा किया कि आर्यों ने संपूर्ण सामाजिक वैज्ञानिक आध्यात्मिक ज्ञान बहुत पहले प्राप्त कर लिया था, और वह ज्ञान चिरजीवी वेदों में सदा के लिए एकत्र है। आर्य समाज ने कहा कि आधुनिक युग के सभी आश्चर्यजनक आविष्कार-अन्वेषण एवं आधुनिक भौतिकी रसायन, प्राणिशास्त्र और अभियंत्रण के सारे सिद्धांत और निष्कर्ष वेदों में उल्लिखित हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि लोग वेदों को ठीक तरह से समझें और उनकी समुचित व्याख्या करें।

आर्य समाजियों ने ऐसे अतिराष्ट्रीयतावादी दावे इसलिए किए कि उन्हें यह समझदारी नहीं थी कि सारा ज्ञान इतिहास द्वारा निर्णीत नियमित है, कि ज्ञान सदा वर्धनशील होता है लेकिन इतिहास के किसी क्षण विशेष में वह परिमित और सीमाबद्ध है और इसकी व्यापकता और गहराई लोगों के सामाजिक विकास के स्तर पर निर्भर है। प्राक् ब्रिटिश भारतीय समाज, अपने दीर्घकालीन अस्तित्व की लंबी अवधि में सदा सामाजिक और आर्थिक विकास के निम्न स्तर पर रुका रहा, और इसलिए इसका ज्ञान भंडार आधुनिक ज्ञान भंडार से निश्चय ही छोटा था।

दूसरी तरफ लार्ड मैकाले एवं अन्य प्रकार की गलत धारणा के शिकार थे। *उन्होंने सारी भारतीय संस्कृति की घोर अवहेलना की और उसे अंधविश्वासों का* पुंज मात्र माना। उन्होंने कहा कि भारतीय औषधि विज्ञान में जिस तरह के सिद्धांत हैं उन पर इंग्लैंड के एक देहाती वैद्य को भी शर्म आएगी और जिस तरह का खगोलशास्त्र भारत में प्रचलित है, उस पर इंग्लैंड में स्कूली लड़कियां हंसेंगी। यहां का इतिहास लेखन तीस फुट लंबे राजाओं की कहानी है जिनका शासनकाल तीस-तीस हजार बरस तक चला, यहां भूगोल का अर्थ है चाशनी और मक्खन के समुद्र। मैकाले ऐसी शिक्षा पर सरकारी पैसा खर्च करना गलत समझते थे।

यह भारत की प्राचीन संस्कृति का एकांगी रूप है। यह सही है कि हर पिछड़े हुए देश में अंधविश्वास का व्यापक प्रचलन होता है लेकिन अंधविश्वास के साथ ही हर समाज में वैज्ञानिक ज्ञान के भी कुछ तत्व रहते हैं। जैसा पहले कहा जा

चुका है अपने अस्तित्व के लिए उसे चीजो का उत्पादन करना ही होता है, और जिस किसी मात्रा म हो प्रौद्योगिकी और विज्ञान के बिना उत्पादन सभव नही। कोई भी समाज इनके बिना जीवित नही रह सकता। प्राक ब्रिटिश भारत के दीघ कालीन अस्तित्व और इतिहास से यह स्वत सिद्ध है कि भारत मे वैज्ञानिक ज्ञान था। हर समाज का यह काय है कि वह अतीत की सस्कृति को आलोचनात्मक तौर पर आगे बढावे अर्थात अतीत की सस्कृति के वैज्ञानिक तत्वो का आत्मसात करे। मकाले न जो बिना सोचे-समझे भारत की समस्त प्राचीन सस्कृति का नकारा, वह उतना ही अनैतिहासिक था जितना आय समाज द्वारा उस सस्कृति का आदश रूप मे प्रस्तुत करना।

प्राक् ब्रिटिश भारत मे शिक्षा

हिंदू समाज विभिन्न जातियो म बटा था और इस जाति व्यवस्था म जहा प्रत्येक जाति का अपना विशिष्ट सामाजिक कम था ब्राह्मणो को ही धार्मिक सूत्रो के प्रवचन, पूजा-पाठ करवाने और शिक्षा देने का एकमात्र अधिकार था। अ य जातियो के लिए उच्च शिक्षा धार्मिक सूत्रो द्वारा निषिद्ध थी और हिंदू राज्य इस व्यवस्था का समथ प्रतिपालक था। ब्राह्मण टोल विद्यालय और चतुष्पाठी जसे विशेष शिक्षालयो म पढा करते थे। हिंदुओ की पवित्र भाषा सस्कृत ही शिक्षा का माध्यम थी और सारा धार्मिक और उच्च धमनिरपेक्ष ज्ञान सस्कृत म ही निहित था।[3]

जनसाधारण के लिए हर गाव और शहर म स्थानीय स्कूल थ जहा खास तौर पर लिखना पढना और जोड घटाना सिखाया जाता था। इन विद्यालयो म लडको को धार्मिक शिक्षा भी दी जाती थी।[4] इन स्कूलो म खासकर बनियो महाजन के लडके पढते थ। औरतो निम्न जातियो एव किसानो के लिए शायद ही कोई शिक्षा व्यवस्था थी। इस तरह प्राक ब्रिटिश भारत म शिक्षा का क्षेत्र बहुत ही सकुचित था और ब्राह्मणो के अतिरिक्त अ य लोगो के लिए शिक्षा लगभग तत्व हीन और सारशून्य थी। उच्च शिक्षा पर ब्राह्मणो का एकाधिकार था।

यह शिक्षा ब्राह्मणो द्वारा नियत्रित और प्रशासित हिंदू समाज की समस्त सस्कृति का विशिष्ट अग थी। लेकिन इसका उपयोग मूलत जाति व्यवस्था की सावजनीन मा यता और स्वीकृति प्रदान करने और वेदो की सत्यता एव उनकी व्याख्या परिभाषित करने म ब्राह्मणो की दक्षता म आस्था जमाने के लिए साधन के रूप म किया गया। इस शिक्षा के माध्यम से मा बाप एव गुरुजन शिक्षक और राजा की आज्ञा को बिना शत मानने की भी सीख दी गई। वस्तुत इस शिक्षा पद्धति का उद्देश्य यह था कि व्यक्ति समाज की श्रेणीबद्ध सरचना को स्वीकार कर ले और अपने व्यक्तित्व को उसके अधीन रखे।

प्राक ब्रिटिश काल म मुसलमानो के बीच शिक्षा पर किसी वग विशेष का एकाधिकार नही था। इसका कारण था इस्लाम का प्रजातात्रिक स्वरूप। मदरसा

मे कोई भी मुसलमान पढ सकता था। लेकिन, चूकि कुरान अरबी भाषा मे लिखा गया था, इसलिए यह विदेशी भाषा मुसलमानों के बीच सारी उच्च शिक्षा का माध्यम थी, कुछ ऐसे स्कूल भी थे जहा कुरान के अलावा, दूसरे विषयो की भी पढाइ होती थी, जैसे फारसी की, जा इस्लामी सस्कृति और प्रशासन की भाषा थी।

'[हिंदू और मुस्लिम] शिक्षा व्यवस्थाओ म काफी मेल था। दोनो व्यवस्थाओ म ऐसी भाषाए शिक्षा का माध्यम थी जो जनसाधारण के लिए पराई थी, दोनो को अपनी धर्मोन्मुख प्रकृति से बल मिलता था और अपरिवर्तनीय प्रभुत्व पर आधारित होने के कारण ये शिक्षा पद्धतिया स्वतत्र अन्वेषण की भावना के प्रतिकूल थी। लेकिन एक दृष्टि से दोनो पद्धतिया काफी भिन्न थी। हिंदू स्कूल समाज के एक विशिष्ट अधिकार सपन्न वग के लिए थे, लेकिन मुस्लिम स्कूलो म वे सब लोग जा सकते थे जिनकी यह आस्था थी कि भगवान एक ह और मुहम्मद उनके पैगबर हैं।'[5]

प्राक ब्रिटिश भारत के इन स्कूलो मे छात्रो म न तो व्यक्तित्व का विकास हो सकता था और न बुद्धिवाद का ही। इस शिक्षा का उद्देश्य था छात्रो को कट्टर हिंदू या मुसलमान बनाना अपने विभिन्न धर्मों और इन धर्मों द्वारा समर्थित सामाजिक सरचना का अविवेकी अनुयायी बनाना। आधुनिक शिक्षा की शुरुआत का भारत के लिए ऐतिहासिक महत्व है। इसके द्वारा ब्रिटिश शासन ने निश्चय ही एक प्रगतिशील काय किया।

आधुनिक शिक्षा का जन्म

भारत म आधुनिक शिक्षा के प्रसार का श्रेय विदेशी ईसाई मिशनरियो, ब्रिटिश सरकार और प्रगतिशील भारतीयो को है। ईसाई मिशनरियो ने भारत मे आधुनिक शिक्षा के प्रसार के लिए बहुत सारे काय किए। लेकिन इनकी मूल प्रेरणा थी भारतीय जनता म इसाइ धम का प्रचार। उनका यह सच्चा विश्वास था कि भारतीयो के धम परिवतन का उनका लक्ष्य वस्तुत सभ्यता के प्रसार प्रचार का लक्ष्य है। उन्होने हिंदुओ के अनेकेश्वरवाद और उनकी जातिगत विषमताओ पर प्रहार किया, क्योकि मूलत ईसाई धम एकेश्वरवाद और सामाजिक समानता मे विश्वास करता है। ये मिशनरी भारत मे आधुनिक शिक्षा के प्रथम प्रचारक थे। इन्होने अपने स्कूलो म आधुनिक धमनिरपेक्ष शिक्षा तो दी ही, उसके साथ ही इसाई धम की भी शिक्षा दी। मूलत धमनिरपेक्ष इन शिक्षण सस्थाओ म भारतीयो को एक साथ लाकर उनके बीच ईसाई धम का प्रचार किया जा सकता था। लेकिन ऐसा हुआ कि जो लडके इन सस्थाओ म आए उनम अधिकाश ने आधुनिक शिक्षा प्राप्त की, बहुत ही कम लोग ईसाई हुए। इन मिशनरी सस्थाओ का लक्ष्य तो धार्मिक था लेकिन भारतीयो के बीच आधुनिक शिक्षा के प्रचार म उन्होने बहुत बडी भूमिका अदा की।[6]

फिर भी भारत म आधुनिक शिक्षा का प्रसार सबसे अधिक ब्रिटिश सरकार

ने किया। इसने सारे देश में स्कूलों और कालेजों की स्थापना की जिनमें हजारों की तादाद में भारतीय शिक्षित हुए। इस शिक्षा की सीमाओं और विकृतियों के बावजूद जिनकी भारतीय राष्ट्रवादियों ने आलोचना भी की, भारत में अपनी जरूरतों के लिए ही सही उदारवादी और तकनीकी शिक्षा का प्रसार कर अंग्रेजों ने वस्तुनिष्ठ तौर पर प्रगतिशील भूमिका अदा की।

भारत में अंग्रेजों की जो राजनीतिक-प्रशासनिक एवं आर्थिक आवश्यकताएं थीं मूलतः उन्हीं के कारण भारत में आधुनिक शिक्षा की शुरुआत हुई। यह महज संयोग की बात नहीं कि उन्नीसवीं सदी के मध्य में, खासकर लार्ड डलहौजी के शासन काल में, भारत में आधुनिक शिक्षा का बड़े पैमाने पर प्रारंभ हुआ। तब तक भारत का बहुत बड़ा अंश अंग्रेजी शासन के अधीन हो चुका था। उन्हीं दिनों ब्रिटेन के औद्योगिक उत्पादन भारत में आने लगे थे और भारत और ब्रिटेन के बीच व्यापार बहुत तेजी से बढ़ा, यद्यपि इसका अधिक फायदा अंग्रेजों को ही हुआ।[7]

ब्रिटिश सरकार ने विजित भू-भाग के लिए व्यापक प्रशासन तंत्रव्यवस्था की। इस वृहद राजनीतिक प्रशासकीय यंत्र के संचालन के लिए शिक्षित व्यक्तियों की बहुत बड़ी तादाद में जरूरत थी। इतने सारे शिक्षित लोग सीधे ब्रिटेन से तो आ नहीं सकते थे। नए प्रशासन के लिए सुयोग्य व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने के लिए भारत में स्कूल और कालेज खोलना आवश्यक हो गया। महत्वपूर्ण ओहदों पर अंग्रेजों की और अधीनस्थ ओहदों पर शिक्षित भारतीयों की बहाली हुई।

भारत के साथ बढ़ते हुए व्यापार और जो थोड़े बहुत उद्योग अंग्रेज धीरे धीरे भारत में खोलने लगे उसके लिए भी अंग्रेजी जानने वाले किरानियों, मैनेजरों और एजेंटों की जरूरत थी।

इन राजनीतिक-प्रशासनिक और आर्थिक आवश्यकताओं ने खास तौर पर ब्रिटिश सरकार को इसके लिए प्रेरित किया कि वह भारत में स्कूल और कालेज खोले, जहां आधुनिक शिक्षा दी जा सके, क्योंकि ऐसी शिक्षा ही किसी आधुनिक राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती थी। इन शैक्षणिक संस्थाओं ने सरकारी और व्यावसायिक कार्यालयों को किरानी दिए, नई विधिव्यवस्था में पारंगत वकील दिए, आधुनिक विज्ञान में प्रशिक्षित डाक्टर दिए, टेक्नीशियन दिए, शिक्षक दिए।

कुछ और कारण थे जिनके चलते ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और अग्रणी विचारकों ने भारत में आधुनिक शिक्षा को प्रश्रय दिया। इन प्रबुद्ध अंग्रेजों का यह विश्वास था कि ब्रिटिश संस्कृति संसार में सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक उदार थी और अगर भारत, दक्षिणी अफ्रीका और फिर सारा संसार सांस्कृतिक तौर पर अंग्रेजीकरण हो जाए तो सारे संसार के सामाजिक और राजनीतिक एकीकरण का रास्ता प्रशस्त होगा। ब्रिटिश शिक्षा और संस्कृति के प्रसार के लिए अंग्रेजों में मिशनरियों जैसा जोश था। मकाले ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के इसी गुट में था

रचनात्मक शक्ति के लिए ये पुरान आदश जजीर का काम कर रहे थे, लेकिन नवशिक्षित भारतीय पुराने आदर्शो के बदले व्यक्तिगत आचार मे नए बौद्धिक आदर्शो और मानदडो को अपना सकने म सदा सफल नही हुए। उन्होने यह गलत समझदारी हासिल कर ली कि अबौद्धिक निषेधो से मुक्ति का अथ है आकस्मिक उत्तेजना द्वारा अनुप्रेरित परिचालित होना। उन्होने मान लिया कि आजादी का मतलब है मदिरापान और अस्वास्थ्यकर यौन सबधो का रसास्वादन। सामाजिक जीवन की पुरानी सत्तावादी धारणाओ का तिरस्कार करत हुए भी, वे स्वतत्र सामाजिक धारणा विकसित नही कर सके। पुरान सामाजिक पर्यावरण के प्रति उनकी प्रतिक्रिया मूलत निषेधात्मक थी। उन्होने पुरान रूपो और विचारो की अबौद्धिकता को समझा लेकिन सामाजिक और व्यक्तिगत व्यवहार के लिए नए प्रगतिशील सिद्धात का निर्माण नही कर सके। इससे व्यक्तिगत जीवन म अराजकता और जनजीवन से बिलगाव का जन्म हुआ। बुद्धिजीवियो के इस हरावल दस्त की ऐतिहासिक जिम्मेदारी यह थी कि वे लोगो को गतिशून्य और अधविश्वासपूण सामाजिक अस्तित्व से प्रगतिशील, प्रजातात्रिक स्वतत्र राष्ट्रीय जीवन की ओर ले जाए लेकिन इसके विपरीत इन लोगो न साधारण लोगो के सामाजिक और सास्कृतिक पिछडेपन के प्रति अशोभपूर्ण अवज्ञा का भाव अपना लिया। उनके [illegible] साधारण लोगो के बीच दरार पड गई। इन बुद्धिजीवियो [illegible] [illegible] कहना शुरू किया, और साधारण लोगो ने [illegible] और 'राष्ट्रीय भावनाओ से शून्य कहना शुरू

एव कालजय प्रामाणिकता को जारी रखना। 'अगर ब्रिटिश राष्ट्र को वास्तविक ज्ञान से अनभिज्ञ रहना होता तो मध्यकालीन दार्शनिक तर्क मोह, जो उनके अज्ञान को बनाए रख सकता था की जगह बेकन का दशनवाद कभी नही आता। इसी तरह अगर अग्रेजी शासन का यह उद्देश्य होता कि भारतीयो को अज्ञान के अधकार मे रखा जाए तो सस्कृत शिक्षा प्रणाली को ही जारी रखा गया होता।[10]

बाद म बहुत सारे सगठनो न, जैसे ब्राह्मसमाज, रामकृष्ण मिशन, अलीगढ आदोलन और फिर देशमुख, चिपलूणकर, आगरकर मगनभाई करमचद, कर्वे, तिलक, गोखल, मालवीय, गाधी और अय लोगो ने औरत मद दोनो के लिए ऐसी शिक्षण सस्थाओ की स्थापना की जिनसे देश म चारो ओर शिक्षा का प्रसार हुआ। यह सही है कि वे इस शिक्षा प्रणाली के कुछ पहलुओ के आलोचक थे, लेकिन उन्होन इसका महत्व समझा और कुछ परिवतनो के बाद लोगो म इसके प्रसार का समथन भी किया। कुछ लोगो ने इसकी धमनिरपक्ष प्रकृति की आलोचना की और जिन शिक्षण सस्थाओ की उन्होने स्थापना की उनम उन्होने धार्मिक शिक्षा का भी प्रबध किया। इस आदोलन के प्रमुख उदाहरण थे पडित मालवीय द्वारा स्थापित बनारस हिंदू विश्वविद्यालय और सैयद अहमद खा द्वारा स्थापित अलीगढ विश्वविद्यालय। कुछ लोगो की शिकायत यह थी कि सरकारी और मिशनरी स्कूलो म जो पाठय पुस्तकें पढाई जाती हैं वे भारत के अतीत का अवमूल्यन करती ह या फिर जीवन की वास्तविकता स उनका कोई सबध नही। इन लोगो ने दूसर पाठय ग्रथ लिखे जिनस भारतीयो म राष्ट्रीय आत्मसम्मान के भाव का उदय हुआ। लकिन सबन आधुनिक शिक्षा क सारतत्व—जसे सत्ता क प्रति इस शिक्षा का विरोध भाव, उदारवादी विचारधारा, व्यक्तिगत स्वातत्र्य की पुष्टि, अधविश्वास का निराकरण और आधुनिक प्रकृति विज्ञान की पढाइ को अपनाया ही। आय समाज विदशी प्रभावो का लड़ाकू दुश्मन था, लकिन उसके (लाजपत राय सेवशन) द्वारा खोले गए स्कूलो और कालजो ने भी आधुनिक शिक्षा पद्धति को स्वीकार किया और केवल इसम धम का पुट डाला, जस यह सिद्धात कि वेद भ्रातियो से पर है अमोघ अचूक, भ्रमातीत, हालाकि इस तरह का विश्वास जो उदारवादी शिक्षा उन्होने खुद प्रदान की उसकी आत्मा के प्रतिकूल है। इस नई शिक्षा का मूल तत्व था प्रयोग और विवेक क आधार पर तथ्यो का मूल्याकन करना।

आधुनिक शिक्षा के प्रति अस्वस्थ प्रतिक्रिया

जिन लोगो को आधुनिक शिक्षा मिली, उनम से कुछ लोगो पर इसका बडा बुरा प्रभाव पडा। आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के साथ भारतीयो क इस प्रथम सपक न बिजली की ताकत स काम किया। लेकिन कुछ लोगो न इसके वास्तविक बौद्धिक और मुक्तिदायी सारतत्व का आत्मसात नही किया। उन्होन पुरान आदर्शो और मानदडो का बहिष्कार किया जो ठीक ही हुआ, क्योकि व्यक्ति की स्वतत्र

रचनात्मक शक्ति के लिए ये पुराने आदर्श जंजीर का काम कर रहे थे, लेकिन नवशिक्षित भारतीय पुराने आदर्शों के बदले व्यक्तिगत आचार में नए बौद्धिक आदर्शों और मानदंडों को अपना मकने में सदा सफल नहीं हुए। उन्होंने यह गलत समझदारी हासिल कर ली कि अबौद्धिक निषेधों से मुक्ति का अर्थ है आकस्मिक उत्तेजना द्वारा अनुप्रेरित परिचालित होना। उन्होंने मान लिया कि आजादी का मतलब है मदिरापान और अस्वास्थ्यकर यौन संबंधों का रसास्वादन। सामाजिक जीवन की पुरानी सत्तावादी धारणाओं का तिरस्कार करते हुए भी, वे स्वतंत्र सामाजिक धारणा विकसित नहीं कर सके। पुराने सामाजिक पर्यावरण के प्रति उनकी प्रतिक्रिया मूलतः निषेधात्मक थी। उन्होंने पुराने रूपों और विचारों की अबौद्धिकता को समझा लेकिन सामाजिक और व्यक्तिगत व्यवहार के लिए नए प्रगतिशील सिद्धांत का निर्माण नहीं कर सके। इससे व्यक्तिगत जीवन में अराजकता और जनजीवन से बिलगाव का जन्म हुआ। बुद्धिजीवियों के इस हरावल दस्ते की ऐतिहासिक जिम्मेदारी यह थी कि वे लोगों को गतिशून्य और अंधविश्वासपूर्ण सामाजिक अस्तित्व से प्रगतिशील प्रजातांत्रिक स्वतंत्र राष्ट्रीय जीवन की ओर ले जाएं लेकिन इसके विपरीत इन लोगों ने साधारण लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन के प्रति अशोभपूर्ण अवज्ञा का भाव अपना लिया। उनके और साधारण लोगों के बीच दरार पड़ गई। इन बुद्धिजीवियों ने साधारण लोगों को जंगली कहना शुरू किया, और साधारण लोगों ने उन्हें 'आंग्लीयता का उपासक' और 'राष्ट्रीय भावनाओं' से शून्य कहना शुरू किया।

पाश्चात्य संस्कृति ने हानिकर व्यक्तिगत आदतों का समर्थन नहीं किया था और न साधारण लोगों के प्रति दुर्भाव का ही। आधुनिक बुद्धिवाद की महज इतनी ही मांग थी कि जीवन के बारे में बुद्धिवादी दृष्टिकोण और स्वस्थ व्यक्तिगत आचार व्यवहार का विकास हो, अंधविश्वास का बहिष्कार हो एवं अतीत के सारे सांस्कृतिक विचारों और सामाजिक संगठनों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाए अर्थात उन संस्कृतियों और प्रथाओं में जो कुछ बहुमूल्य है उसका आत्मसात किया जाए और आधुनिक समाज के बारे में सही दृष्टिकोण से जो गलत समझा जाए उसका या जिन बातों की अब कोई ऐतिहासिक आवश्यकता नहीं रह गई हो और इसलिए जो परिवर्तित सामाजिक स्थिति की आवश्यकताओं से मेल नहीं खाती हों उनका परित्याग किया जाए। व्यक्तिगत स्वातंत्र्य, सामाजिक एकता, और विचारों और समस्याओं के विवेचन के एकमात्र सही मानदंड विवेक-बुद्धि का उपयोग—पाश्चात्य उदारवाद की ये ही आधारशिलाएं थीं। बावजूद इसके कि सामाजिक अस्तित्व की पूंजीवादी स्थिति के कारण इनमें से कुछ सिद्धांत केवल विचार के रूप में ही प्रतिपादित हुए थे और वास्तविक जीवन में अंशतः ही प्रयुक्त हुए थे।[11] मानव जाति के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में इन सिद्धांतों का प्रतिपादन महान प्रगति का सूचक था और इसका अर्थ था मध्ययुगीन

समाज स आधुनिक पूजीवाद की दिशा म विकास जो ऐतिहासिक दृष्टि से समाज का उच्चतर रूप है। कुछ शिक्षित भारतीयो न स्वस्थ मानसिक और नैतिक सयम की अवहेलना की, और जो कुछ भी भारतीय था उसकी अविवेचित उपेक्षा भी। लेकिन इसका एक विशिष्ट कारण था। मध्ययुगीन सामाजिक सरचना पूर्णत सत्तावादी थी और जाति एव सामाजिक रीति रिवाज के माध्यम स उसन वैयक्तिक स्वातत्र्य पर जो नियत्रण लगाए थ, व इतन दमघोटू थे कि पश्चिमी देशो के सामाजिक इच्छा स्वातत्र्य सबधी विचार पद्धति के प्रथम प्रभाव के समय शिक्षित भारतीयो के एक अश न ही सही किसी भी तरह के सयम के विरुद्ध विद्रोह किया। सत्तावादी सामाजिक व्यवस्था एव विचारधारा द्वारा लगाए गए शारीरिक एव मानसिक दोनो प्रकार क अवरोधो से मुक्ति की उन्मत्त कामना के कारण कुछ दिनो—और कुछ दिनो क लिए ही यद्यपि सामाजिक प्रतिक्रिया के कारण इस मतिभ्रश न अतिरजित रूप लिया—इन भारतीयो न पाश्चात्य उदारवाद द्वारा समर्थित स्वातत्र्य सिद्धात को अराजकतापूर्ण जीवन का सिद्धात मान लिया। सामाजिक इतिहास के प्रत्यक सक्रमणात्मक काल म इस तरह की अनसोची प्रतिक्रिया होती ही है।[1]

नई शिक्षा प्रणाली म कुछ एसे दोष भी थ जिनके कारण यह प्रतिक्रिया और अधिक तीव्र हुई। नई शिक्षा प्रणाली न अग्रेजी भाषा को बहुत अधिक महत्व दिया जिसके कारण शिक्षित भारतीय और जनसाधारण के बीच का अतर बहुत बढा। यह शिक्षा भारतीय जनता के वास्तविक जीवन से बहुत अलग थी और भारतीय राष्ट्र की प्रगति की समस्याओ से इसका कोई सबध नही था। इसन ब्रिटिश शासन को आदर्श के रूप म प्रस्तुत किया, उस गौरवपूर्ण माना और भारत के अतीत क आलोचनात्मक वैज्ञानिक विवेचन के बदले इसका नितात अवमूल्यन किया। इसने ब्रिटिश इतिहास के अध्ययन पर जरूरत से अधिक जोर दकर राष्ट्रीय भाव का उद्भव नही होने दिया। इन सबके कारण भी शिक्षित भारतीय अपन देश के जनजीवन स विमुख होत गए और शासक राष्ट्र के साथ उनका तालमेल एव साधारण लोगो के प्रति घृणा और उपेक्षा के भाव बढत गए।

शिक्षित भारतीयो का यह वर्ग पश्चिम की बुद्धिवादी और प्रजातात्रिक परपरा को सही तौर पर अपनान म असमर्थ रहा और सामाजिक एव धार्मिक प्रतिक्रियावाद न समस्त पाश्चात्य सस्कृति की अविवेचित भर्त्सना के लिए इस बात का उपयोग किया। इन प्रतिक्रियावादी शक्तियो को पाश्चात्य सस्कृति का गलत चित्र उपस्थित करन का मौका मिला। उनके अनुसार यह शराबखोरी, अस्वस्थ यौन जीवन एव उद्धत समाज और राष्ट्र विरोधी अहम को पूरी छूट देता है। सामाजिक स्वातत्र्य और बुद्धिवादी जीवन दर्शन आधुनिक पाश्चात्य सस्कृति के मूल तत्व थे और पुरान प्रतिक्रियावाद पर इनका जो हमला हुआ उसने विरुद्ध अपने को सुदृढ करन के लिए इसन गलत प्रचार का सहारा लिया। वैयक्तिक स्वतत्रता पर लगाए गए पुरान दमनात्मक निषेधो को इसन सामाजिक

अधिक उदार और प्रबुद्ध शिक्षा प्रणाली को प्रश्रय दिया जाए।'[15] इस विषय म राजा राममोहन राय का दृष्टिकोण भारतीय राजनीति के उदार पथ का अग्रदूत सिद्ध हुआ। इस उदार पथ न पाश्चात्य शिक्षा का आदश रूप म प्रस्तुत किया और इसके लिए वह दूसरे राष्ट्रवादी दलो (पाल घोष, गाधी और अन्य) द्वारा आलोचना का भागी हुआ।

अतत विचार पद्धतियो का यह सघप अग्रेजीदा लोगो के पक्ष म निर्णीत हुआ। 1835 म भारत के गवनर जनरल लाड बेटिक ने उनके विचारो का अनुमोदन किया और उन्ह अपनाया। सरकार द्वारा प्रकाशित प्रस्ताव म कहा गया कि ब्रिटिश सरकार का सबसे बडा उद्देश्य यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का देशी लोगो म प्रचार करना है और शिक्षा पर उपलब्ध धनराशि का सर्वांश केवल अग्रजी शिक्षा पर ही खच होना चाहिए। साथ ही यह भी कहा गया कि 'आग स यह सारी राशि अग्रेजी भाषा क माध्यम से देशज आबादी को अग्रेजी साहित्य और विज्ञान की शिक्षा दन म खच किया जाए।[16]

कपनी की सरकार न अपनी शिक्षा नीति म जनशिक्षा और गावो के पुरान स्कूलो की पूरी अवहेलना की यद्यपि अपनी सीमाओ और अपरिष्कृत रूप क बावजूद य पाठशालाए ही लोगो को प्राथमिक शिक्षा देती थी। अग्रजीदा लोग अधोमुखी निस्पदन सिद्धात म विश्वास करत थ जिसके अनुसार ज्ञान धीरे धीरे शिक्षित वर्गों के स्वतत्र प्रयास स आम जनता तक पहुच जाएगा।

बबई के जो लोग शिक्षा के माध्यम के रूप म देशी भाषाओ का समथन कर रहे थे उनकी हार हुई। एजुकेशन बोर्ड के तीन हिंदुस्तानी सदस्य थे जगन्नाथ शकर सेठ फ्रामजी कोवासजी और एन० आई० मकबा। अपनी टिप्पणी (मिनिट) म शकर सेठ न लिखा, मेरा दृढ विश्वास है कि पश्चिमी भारत म उपयोगी शिक्षा के माध्यम के रूप म देशी भाषाओ का इस्तेमाल अग्रेजी के मुकाबले अधिक फायदे का है। लोगो को अपनी भाषा म जो कुछ शिक्षा दी जाएगी उसे समझने म उन्हे कम कठिनाई होगी, और किसी विदेशी भाषा के माध्यम स उन्हे वह शिक्षा दी जाए तो उन्हे अधिक कठिनाइ होगी। मैं अग्रेजी की शिक्षा का विरोधी नहीं हू लेकिन मैं यह मानता जरूर हू कि यह साधारण लोगो की पहुच के बाहर है।'[17] बबइ म जो मतभेद चला उसका एक फायदा अवश्य हुआ। कालेज स्तर पर अग्रेजी ही शिक्षा का एकमात्र माध्यम स्वीकृत हुइ लेकिन माध्यमिक स्तर पर देशी भाषाओ का इस्तेमाल जारी रहा।

वुड्स डिस्पैच से लाड कर्जन के युनिवर्सिटी एक्ट तक

भारत म आधुनिक शिक्षा के इतिहास का प्रथम चरण 1854 म वुड्स डिस्पैच क साथ समाप्त हो जाता है। इसने शिक्षा विषयक सारे मतभेद को सुपरिभाषित विचारो क पारस्परिक विरोध के रूप म प्रस्तुत किया। इसे भारतीय शिक्षा म मैग्नाकार्टा क रूप म जाना जाता है क्योकि इसने सरकार क लिए कुछ

उच्चस्तरीय कार्य निर्धारित किए। भारतीय आलोचको ने बाद मे इसके कार्यान्वयन को नाकाफी कहा। डिस्पैच मे कहा गया कि भारत की शिक्षा पद्धति के तीन उद्देश्य थे (1) पाश्चात्य संस्कृति का प्रसार, (2) जन प्रशासन के लिए सुप्रशिक्षित जनसेवक तैयार करना और (3) भारतीय प्रजा को राजा के प्रति अपना कर्तव्य निभाने की योग्यता प्रदान करना।[18]

शिक्षा के माध्यम के बारे मे डिस्पैच का निर्णय था कि (1) कालेज स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप मे अंग्रेजी का प्रयोग हो, (2) माध्यमिक शिक्षा अंग्रेजी और भारतीय दोनो भाषाओ के माध्यम से दी जानी चाहिए, और (3) आधुनिक भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे कालांतर मे वे उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप मे प्रयुक्त हो सकें।

सरकार के हिंदुस्तानी आलोचकों का आक्षेप था कि पिछले दोनो निर्णयों का सही कार्यान्वयन नहीं हुआ और सरकार इसके लिए जिम्मेदार थी।[19] डिस्पैच ने यह भी कहा कि औरतों और जनसाधारण की शिक्षा का सारा उत्तरदायित्व सरकार को लेना होगा, इस तरह पहले के अधोमुखी संतरण या निस्पंदन के सिद्धांत का परित्याग हुआ। 1854 के वुड्स एजुकेशन डिस्पैच से ही भारत मे आधुनिक शिक्षा की शुरुआत की और इसके बाद शिक्षा का तेजी से विकास हुआ।

1880 के बाद यह नई शिक्षा और अधिक तेजी से विकसित हुई। विदेशी मिशनरियों सरकार के शिक्षा विभाग और अधिकाधिक बड़ी तादाद मे प्रगतिशील भारतीयों ने बहुत बड़े पैमाने पर शिक्षा प्रसार का कार्य संगठित किया। इनमे भी, खासकर 1901 2 मे शिक्षा का सबसे अधिक श्रेय भारतीय व्यक्तिगत पूंजी को मिलना चाहिए।[20]

पिछली सदी के सातवें दशक मे तिलक और आगरकर ने बाद प्रेसिडेंसी मे डक्कन एजुकेशन सोसायटी की स्थापना की जो राष्ट्रवादी भारतीयों के शिक्षा संबंधी प्रयास और उद्यम का बहुत अच्छा उदाहरण है। सोसायटी के संस्थापकों ने भारतीय जनता की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति मे आधुनिक शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका को समझा। वे अपनी संस्था के इर्द गिर्द कुछ ऐसे आत्मत्यागी शिक्षित भारतीयों को भी संगठित करना चाहते थे जो शिक्षा संबंधी एवं अन्याय राष्ट्रवादी कार्य कर सकें। बहुत सारे देशभक्त भारतीय, जिनमे भारतीय राष्ट्रवाद के दो प्रमुख नेता तिलक और गोखले भी थे, सोसायटी के कार्यों से संबंधित थे।

विजापुरकर की विशेष चर्चा आवश्यक है क्योंकि उन्होंने उन्नीसवीं सदी के अंत मे तलेगाव मे एक राष्ट्रीय स्कूल खोला जो संभवत भारतीयों द्वारा किए गए स्वतंत्र शैक्षणिक प्रयोगों मे पहला था। इस प्रयोग मे, बाद मे, विद्यापीठों और वर्धा शिक्षा योजनाओं का नाम आता है। यह स्कूल औद्योगिक शिक्षा प्रदान करता था। अब तक भारतीय उद्योग काफी विकसित हो चुके थे। स्कूल के संस्थापक का उद्देश्य था इन उद्योगों के लिए टेक्नीशियन पैदा करना, जिसमे

विदेशी टेकनीशियनों पर इन उद्योगों की निर्भरता कम हो जाए। संभवत इस संस्था का एक उद्देश्य यह भी था कि बढ़ते हुए आतंकवादी आंदोलन को टेक्नीशियनों की ऐसे लोगों की जो आंदोलन के लिए हथियार बना सकें, जो जरूरत थी उसे पूरा किया जा सके।

उन्नीसवीं सदी के अंत तक देशी स्कूल व्यवस्था तेजी से समाप्त हो चुकी थी। इसके मुख्यत दो कारण थे (1) राज्य से आर्थिक मदद का अभाव और (2) जो नए स्कूलों में शिक्षा पाते थे वे ही नौकरियों में लिए जा सकते थे। अपने निजी कारोबार में लोगों को नियुक्त करने वाले भी उन्हें ही पसंद करते थे जो आधुनिक शिक्षा प्राप्त थे।

आधुनिक शिक्षा के विकास का तीसरा चरण, 1921 तक

1901 और 1920 के बीच का काल राजनीतिक उथल पुथल का काल था। यह बंगविभाजन आंदोलन मार्ले मिंटो सुधार प्रथम विश्वयुद्ध, होमरूल और असहयोग आंदोलन का युग था। यह भारतीय जनता के राष्ट्रीय जागरण और ऊर्ध्वमुखी राजनीतिक चेतना का युग था जब राजनीति अर्थतंत्र और शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी कार्यों की अधिकाधिक आलोचना हुई।

1880 और 1901 के बीच शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से विस्तार हुआ। लार्ड कर्जन और दूसरे लोगों ने गुण की दृष्टि से इस विकास की आलोचना की। उन लोगों ने कहा कि 1880 के बाद शिक्षा का स्तर काफी नीचे आया था व्यक्तिगत नियंत्रण वाली शैक्षणिक संस्थाएं ठीक से काम नहीं कर रही थीं शिक्षित भारतीय विदेशी संस्कृति को आत्मसात करने में प्रायः अयोग्य थे। और चरित्रवान व्यक्तित्व के निर्माण की दृष्टि से शिक्षा व्यवस्था का पुनर्गठन होना चाहिए।[1]

दूसरी तरफ भारतीय आलोचकों ने भारतीय जनता की संपूर्णत सांस्कृतिक प्रगति के लिए परिमाणिक विस्तार के महत्व पर जोर दिया। उनके अनुसार जरूरत इस बात की थी कि गुण के नाम पर शिक्षा को सीमित न किया जाए वरन स्वेच्छा के आधार पर उच्च शिक्षा का तीव्र विकास हो और जनसाधारण के लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रबंध हो।

> सरकार यह न सोचे कि कालेजों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा अगर बिलकुल सर्वोत्तम प्रकार की नहीं है तो वह बेकार सिद्ध होगी और हानिकर भी। फिर बौद्धिक क्षेत्र में हमारे स्नातकों की उपलब्धि को इस शिक्षा पद्धति औचित्य का एकमात्र आधार नहीं बनाया जाए। मेरा ख्याल है कि भारत की अभी की हालत में सारी पाश्चात्य शिक्षा उपयोगी और बहुमूल्य है। मेरे अनुसार, अभी पाश्चात्य शिक्षा का महत्तर उद्देश्य विद्वत्ता को प्रश्रय देना नहीं वरन पुरानी विचार पद्धति की गुलामी से भारतीय मानस को मुक्त करना है इस उद्देश्य के लिए सर्वश्रेष्ठ ही नहीं वरन हर प्रकार की पाश्चात्य शिक्षा उपयोगी है।[2]

1

चालू शिक्षा पद्धति के आलोचक शिक्षण सस्थाओ के क्षेत्र मे व्यक्तिगत उद्यम और प्रयास के भी पूरे समर्थक थे। घोष बधुओ और पाल जसे अतिवादियो ने इस पद्धति पर इसलिए आघात किया कि इससे अराष्ट्रीय भावनाओ का विकास होता था। उनकी आलोचनाओ की चर्चा बाद मे की गई है।

लगभग सार्वभौमिक भारतीय विरोध के बावजूद, 1904 का इडियन युनिवर्सिटीज एक्ट पास हो गया। इसने कई प्रतिबध लगाए और साथ ही किसी विश्वविद्यालय से किसी कालेज के सबद्ध होने की शर्तो को और अधिक कडा कर दिया। इसके अनुसार, विश्वविद्यालय की परिषद द्वारा बनाए जाने वाले नियमो के बारे म भी सरकार को बहुत सारी शक्तिया प्रदान की गई। विश्वविद्यालय के पार्षदो म अधिकाश को नामजद करने का अधिकार भी सरकार को मिला और कालेजो को सबद्ध असबद्ध करने के प्रश्न पर सरकारी स्वीकृति आवश्यक हो गई। इसके आलोचको ने कहा कि एक्ट के अनुसार विश्वविद्यालय महज सरकारी विभाग जसे हो गए थे।

विश्वविद्यालयो को आर्थिक सहायता देन वाले सिद्धात का 1904 और 1908 के बीच जो पुनरीक्षण हुआ उससे शिक्षा प्रसार म एक और गतिरोध आया। इससे सकेंडरी स्कूलो के विस्तार पर बुरा असर पडा। अतत, गोखले ने शिक्षा को अनिवार्य बनाने के सिलसिले म जो विधेयक प्रस्तुत किया, जिसे प्राथमिक शिक्षा का मैग्नाकार्टा कहा गया उसकी हार के कारण भारत की साधारण जनता को शिक्षित करने के सपने फिलहाल चूर-चूर हो गए।

शिक्षा सबधी सरकारी नीति के प्रति बढते हुए असतोष के कारण भारतीयो ने यह सोचना शुरू किया कि शिक्षा विभाग पर उनका अपना नियत्रण होना आवश्यक है। कुछ नेताओ न नए स्वतत्र शिक्षा सबधी प्रयोग की भी बात सोची।

चौथा चरण 1921 1939

1921 म द्वितीय शासन पद्धति के अतगत शिक्षा विभाग भारतीय मत्रियो को सौपा गया। इस व्यवस्था म प्रातीय सरकारो को शिक्षा प्रसार सबधी योजनाओ को स्वीकार करने और उन्हे लागू करने की अधिक आजादी थी। परिणामस्वरूप 1921 के बाद शिक्षा का तेजी स विस्तार हुआ।

आर्थिक साधनो की कमी के कारण यह विकास शीघ्र धीमा पड गया। 1901 21 के बीच भारत सरकार स मिलन वाली विशिष्ट राशि की प्राप्ति रुक जाने स और विश्व आर्थिक सकट स उत्पन्न आर्थिक कठिनाइयो के कारण शिक्षा प्रसार की बडी योजनाओ को आगे बढ़ाना कठिन हो गया। फिर भी 1921 और 1937 के बीच शिक्षा का काफी विस्तार हुआ। पृष्ठ 128 पर नीचे दिए गए आकडो स यह बात स्पष्ट हो जाती है।

शिक्षा सबधी आकडे 1921-22 और 1936 37

सस्थाओ के प्रकार	सस्थाओ की सख्या		विद्यार्थियो की सख्या	
	1921 22	1936 37	1921-22	1936-37
विश्वविद्यालय	10	15	आकडे उपलब्ध नही	9,697
कला महाविद्यालय	165	271	45, 418	86,273
व्यावसायिक महाविद्यालय	64	75	13 662	20,645
माध्यमिक विद्यालय	7,530	13 056	11 06 803	22 87,872
प्राथमिक विद्यालय	1,55 017	192244	6108752	10 224,288
विशिष्ट विद्यालय	3,344	5,647	1,20 925	2,59,269
मान्यता प्राप्त सस्थाओ का योग	1 66 130	2 11,308	73 96 560	1,28,88 044
ऐसी सस्थाए जिन्हे मान्यता प्राप्त नही थी	16 322	16 647	4 22,165	5,01530
सपूर्ण योग	1 82,452	2 27 955	78 18 725	1 33,89 574

(ऊपर के आकडे बर्मा को छोडकर ब्रिटिश भारत के लिए है।)

शिक्षा विभाग पर भारतीय नियत्रण के अतिरिक्त शिक्षा प्रसार के कुछ अन्य कारण भी है। इस अवधि मे लोगो के बीच अभूतपूर्व सामाजिक और राजनीतिक चेतना का उदभव इसका कारण है।[3]

जनसाधारण की शिक्षा का तेजी से विस्तार होना इस युग की महत्वपूर्ण घटना है। अधिकाश प्रातो मे अनिवार्य शिक्षा के विधेयक पारित हुए और जहा भी इस तरह के अधिनियम थे वहा इनका क्रमाबद्ध कार्यान्वयन भी हुआ। 1922 और 1927 के बीच प्राथमिक शिक्षा का जो विकास हुआ उसका पता नीचे के आकडो से लगता है।

प्राथमिक शिक्षा सबधी आकडे

	1921 22	1926-27
प्राथमिक विद्यालयो की सख्या	1,55 017	1,84,829
प्राथमिक विद्यालयो मे शिक्षार्थियो की सख्या	61 09,752	81 07 927
प्राथमिक विद्यालयो पर व्यय (सीधा)	4,94 69 060	6 75 14 802

1927 के बाद प्राथमिक शिक्षा के विकास की गति कम होने लगी। बाद के वर्षों मे जो आर्थिक सकट आया वह इसका एक प्रमुख कारण था। इसके चलते प्राथमिक शिक्षा के प्रसार की बहुत सारी योजनाए छोड देनी पडी। इसके विकास की गति के मद्धम हो जाने का एक कारण यह भी था कि हार्टाग कमिटी ने यह

सिफारिश की कि प्राथमिक शिक्षा के विस्तार से अधिक उसके संगठन पर जोर दिया जाय। गैर सरकारी तत्वों ने इस अनुशंसा की आलोचना ही की, क्योंकि वे साक्षरता और शिक्षा की परिमाणात्मक वृद्धि के समर्थक थे। 'शिक्षा की तो मूसलाधार होनी चाहिए न कि बूंदाबूंदी।'

> दूसरे देशों के उदाहरण से ही नहीं, वरन उन देशों की शिक्षा के इतिहास में भी स्पष्ट है कि अन्य शिक्षा संबंधी सुधारों के पहले शिक्षा का तीव्र प्रसार होना चाहिए। जनशिक्षा के संबंध में इस महान सत्य को भारत ने कभी नहीं पहचाना है कि धीमी प्रगति कोई प्रगति नहीं है।'[4]

1921 और 1937 के बीच प्रमुख भारतीय शिक्षाविदों और भारतीय राष्ट्रवाद के अग्रणी नेताओं ने शिक्षा विषयक बहुत सारे प्रयोग किए। कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित विश्व भारती, कर्वे द्वारा संगठित एस० एन० डी० टी० वीमन विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, जामिया मिलिया, गुजरात विद्यापीठ और तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ इनमें प्रमुख थे।

1937 के बाद तीन ऐसी बातें हुई जिनका भारतीय जनजीवन पर बहुत बड़ा असर पड़ा (1) 1937 में प्रांतीय स्वायत्त शासन की स्थापना, (2) 1939 में द्वितीय महायुद्ध की शुरुआत, और (3) अगस्त 1942 में भारत में जो राजनीतिक बवंडर आया, और उसके बाद की घटनाएं।

प्रांतीय स्वशासन से प्राथमिक शिक्षा के विकास को बल मिला। लेकिन कुछ प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रियों द्वारा गांधीवादी विचारधारा पर आधारित विद्यामंदिर योजना जैसे जो प्रयोग किए गए उनकी कुछ बुद्धिवादियों और गैर हिंदुओं ने बड़ी कटु आलोचना की। अन्य दो घटनाओं का भी भारतीय जनता के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर बड़ा गहरा असर पड़ा।

भारत में आधुनिक शिक्षा की आलोचना के मूल तत्व

भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ अंग्रेजी शासन की ऊपर गिनाई गई जरूरतों को पूरा करने के लिए किया गया, अतः इसकी प्रगति काफी अवरुद्ध सी रही और भारतीय जनता की उन्नति की दृष्टि से काफी असंतोषजनक। आधुनिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था ब्रिटिश शासनतंत्र का अंग्रेजी के जानकार कार्यकर्ता देना, इसलिए जनसाधारण की शिक्षा इस पूरी अवधि में बेतरह उपेक्षित रही।

सौ साल से ऊपर के ब्रिटिश शासन के बाद भी 1911 में भारतीय आबादी के 94% लोग निरक्षर थे और 1931 में 92% लोग। प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षार्थियों की कुल संख्या 1934-35 में केवल 13.5 मिलियन थी। अर्थात कुल आबादी का 4.9 प्रतिशत। इनमें प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले लोगों के दो तिहाई ही पहले साल के बाद पढ़ते थे, और पांचवें भाग से भी कम लोग अंतिम कक्षा तक पढ़ पाते थे।[5]

'प्राथमिक पाठशालाओं में अधिकांश बच्चे तीन या चार वर्षों के बाद शिक्षा

पाते ६ और अधिकांश समय हर पाच म चार बालक सबसे नीचे की कक्षा म ही पडे रहते ह। फलस्वरूप, शिक्षा की स्वल्प अवधि के अत म प्राय फिर निरक्षरता की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति रहती है।'[6]

जनसाधारण की निरक्षरता और तज्जन्य अज्ञान के कारण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रगति अवरुद्ध रही।

1941 42 म उच्च शिक्षा के सस्थानो के अध्येताओ की सख्या 1,59,254 थी सारी आबादी का लगभग ० 5 प्रतिशत। पिछडे हुए देश के आर्थिक विकास के लिए तकनीकी विषयो के जानकारो की आवश्यकता होती है। 1934 35 म इजीनियरिंग, कृषि और वाणिज्य के स्नातक शिक्षार्थियो की सख्या केवल 960 थी। सबसे अधिक अभाव तकनीकी शिक्षा के ही क्षेत्र मे था कृषि वाणिज्य और अभियात्रिकी जैसे क्षेत्रो म अमरीका के क्षीण आबादी वाले आइयोवा जसे राज्य म भी जहा की आबादी ब्रिटिश भारत की आबादी का एक प्रतिशत मात्र है, भारत से अधिक छात्र ह।'[7]

राष्ट्रवादियो ने आधुनिक शिक्षा की इसलिए भी आलोचना की कि वह अत्यधिक व्ययसाध्य है। अत्यत निर्धन भारतीय जनता के लिए खर्चीली शिक्षा का भार उठाना मुश्किल था। इसीलिए लार्ड कर्जन के विश्वविद्यालय सुधार का, जिसके अनुसार शिक्षा अधिक फलोत्पादक लेकिन साथ ही अधिक व्ययसाध्य भी हो रही थी व्यापक विरोध हुआ। भारतीय राष्ट्रवादियो को यह सदेह भी था कि लार्ड कर्जन शिक्षा को सक्षम और सक्षम बनाने के नाम पर उसे सीमित सकुचित करना चाहते ह क्योकि कर्जन का मत था कि शिक्षा के प्रसार से राजद्रोह की भावना का जन्म होता है। गैर भारतीयो ने भी इस बात की चर्चा की थी कि ब्रिटिश अफसर राजनीतिक विक्षोभ के लिए अग्रेजी शिक्षा के प्रसार को जिम्मेदार मानते थे। 'भारत म बहुतेरे अफसरो का सचमुच यह विश्वास था कि शिक्षा से असतोष बढेगा और प्रशासन का कार्य अधिक कठिन हो जाएगा यह (शिक्षा प्रसार के विरुद्ध) मूल तर्क आधार था।'[8] व्ययसाध्य होने के कारण उच्च शिक्षा अधिकाश भारतीयो की पहुच के बाहर थी।

भारतीय राष्ट्रवादियो ने इस बात की भी आलोचना की कि शिक्षा सबधी सरकारी बजट की राशि बहुत कम थी। शिक्षा सदा अन्य सरकारी सेवाओ की तुलना म उपेक्षिता सी रही। सरकारी आय का औसतन एक तिहाई सेना पर खर्च होता था, लेकिन शिक्षा के मद म बहुत कम राशि ही खर्च होती थी।

अन्य कई मुद्दो पर भी राष्ट्रवादियो ने आधुनिक शिक्षा की आलोचना की। उनके अनुसार इस शिक्षा का भारतीय जनजीवन स कोई सबध नहीं था। इससे भारतीय जीवन की सही झाकी नहीं मिलती थी, न राजनीतिक गुलामी की ओर न भारतीय समाज के आर्थिक और सास्कृतिक पिछडेपन के सही कारणो की। इसने भारतीय समस्याओ के प्रस्तुतीकरण और भारतीय दृष्टिकोण से उनके समाधान का कोई प्रयास नहीं किया। इसमे भारतीय इतिहास का विकृत विवरण

प्रस्तुत किया, भारत के ब्रिटिश विजेताओं का गुणगान किया और अंग्रेजों को भारत को सभ्य बनाने वाला बतलाया। इसने राष्ट्राभिमान और आत्मसम्मान के भाव को दुर्बल करने की कोशिश की। फिर, चूंकि अंग्रेजों की जरूरतों को पूरा करने के लिए विदेशी भाषा अंग्रेजी के माध्यम से यह शिक्षा दी जाती थी, इसलिए ज्ञान का शीघ्र और सम्यक स्वांगीकरण संभव नहीं हुआ और शिक्षित भारतीयों और भारत के साधारण लोगों में दुराव आता गया। भारतीय राष्ट्रवादियों ने शिक्षाव्यवस्था की रीति और उसके संगठन की भी आलोचना की।

> जनशिक्षा की उपेक्षा से स्पष्ट है कि भारत के नए शासक इस देश के सामाजिक उत्थान के लिए यहां नहीं आए थे। अंग्रेजी को इतना अधिक महत्व देने का कारण यह था कि वे स्वभावतः यही चाहते थे कि शासन में कम खर्च हो। हर किरानी और सरकारी अफसर को इंग्लैंड से बुलाना पड़े इससे आसान होगा कि यहीं निम्न श्रेणी के अफसरों का वर्ग तैयार किया जाए।
>
> इस शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य था मध्यमवर्गी भारतीय नौजवानों पर ब्रिटेन के गौरव और समृद्धि की छाप डालना और उन्हें विदेशी अफसरशाही के सुयोग्य नौकर बनाना। यह परीक्षा शिक्षा का चरम रूप था परीक्षा शिक्षा जो पाठ्यक्रम में अंग्रेजी वाक्य रचना, शेक्सपियर के छंद शास्त्र और अंग्रेज राजा रानियों के शासन काल की तिथियों पर जोर देती थी।'[9]
>
> 'शुरू से ही भारत की अंग्रेजी सरकार ने जनशिक्षा को रूपायित और नियंत्रित करने की चेष्टा की है देश में अपनी राजनीतिक सत्ता की नींव मजबूत करना उनका लक्ष्य रहा है।[0]

भारत में राष्ट्रवादी दलों ने राष्ट्रीय पद्धति पर समानांतर शिक्षा व्यवस्थाएं संगठित करने की अनेक कोशिशें कीं, लेकिन उन्हें विशेष सफलता न मिली।

राष्ट्रीय शिक्षा की योजनाओं की असफलता के कारण भी थे। सरकारी एवं निजी दोनों प्रकार की नौकरियों में बहाली के लिए सरकारी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों की उपाधियां जरूरी थीं, इसलिए स्वतंत्र राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं में, जो सरकारी विश्वविद्यालयों से संबद्ध नहीं थीं, कम ही छात्र आए। गांधी द्वारा शुरू किए गए गुजरात विद्यापीठ का अंत इनका एक उदाहरण है। कांग्रेस में रुचि रखने वाले नियोक्ता भी इस विद्यापीठ के स्नातकों को मान्य विश्वविद्यालय के स्नातकों के समकक्ष नहीं मानते थे।

जिन सिद्धांतों के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा की योजना बनाई जा सकती है, उनके विषय में भारतीय राष्ट्रवादियों में सहमति भी नहीं थी। मालवीय, गांधी और आर्यसमाजियों जैसे कुछ लोगों ने सरकारी स्कूलों और कालेजों में दी जाने वाली शिक्षा के धर्मनिरपेक्ष चरित्र की आलोचना की। उन लोगों ने धर्म (हिंदुओं के लिए गीता और मुसलमानों के लिए कुरान) को शिक्षा का अनिवार्य अंग माना। जवाहरलाल जैसे नेताओं ने पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष शिक्षा को महत्व दिया,

पाते हैं और अधिकांश समय हर पांच में चार बालक सबसे नीचे की कक्षा में ही पड़े रहते हैं। फलस्वरूप शिक्षा की स्वल्प अवधि के अंत में प्रायः फिर निरक्षरता की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति रहती है।'[6]

जनसाधारण की निरक्षरता और तज्जन्य अज्ञान के कारण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रगति अवरुद्ध रही।

1941-42 में उच्च शिक्षा की संस्थाओं के अध्येताओं की संख्या 1,59,254 थी, सारी आबादी का लगभग 0.5 प्रतिशत। पिछड़े हुए देश के आर्थिक विकास के लिए तकनीकी विषयों के जानकारों की आवश्यकता होती है। 1934-35 में इंजीनियरिंग, कृषि और वाणिज्य के स्नातक शिक्षार्थियों की संख्या केवल 960 थी। सबसे अधिक अभाव तकनीकी शिक्षा के ही क्षेत्र में था, कृषि वाणिज्य और अभियांत्रिकी जैसे क्षेत्रों में अमरीका के क्षीण आबादी वाले आइयोवा जैसे राज्य में भी जहां की आबादी ब्रिटिश भारत की आबादी का एक प्रतिशत मात्र है, भारत से अधिक छात्र हैं।[7]

राष्ट्रवादियों ने आधुनिक शिक्षा की इसलिए भी आलोचना की कि यह अत्यधिक व्ययसाध्य है। अत्यंत निर्धन भारतीय जनता के लिए खर्चीली शिक्षा का भार उठाना मुश्किल था। इसीलिए लार्ड कर्जन के विश्वविद्यालय सुधार का, जिसके अनुसार शिक्षा अधिक फलोत्पादक लेकिन साथ ही अधिक व्ययसाध्य भी हो रही थी, व्यापक विरोध हुआ। भारतीय राष्ट्रवादियों का यह मत भी था कि लार्ड कर्जन शिक्षा को समर्थ और सक्षम बनाने के नाम पर उसे सीमित और संकुचित करना चाहते हैं क्योंकि कर्जन का मत था कि शिक्षा के प्रसार से राजद्रोह की भावना का जन्म होता है। कुछ भारतीयों ने भी इस बात की चर्चा की थी कि ब्रिटिश अफसर राजनीतिक विक्षोभ के लिए अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार को जिम्मेदार मानते थे। भारत में बहुतेरे अफसरों का सचमुच यह विश्वास था कि शिक्षा से अशांति बढ़ेगी और प्रशासन का कार्य अधिक कठिन हो जाएगा। यह (शिक्षा प्रसार के विरुद्ध) मूल तर्क आर्थिक था।[8] व्ययसाध्य होने के कारण उच्च शिक्षा अधिकांश भारतीयों की पहुंच से बाहर था।

भारतीय राष्ट्रवादियों ने इस बात की भी आलोचना की कि शिक्षा संबंधी सरकारी बजट की राशि बहुत कम थी। शिक्षा तथा अन्य सरकारी सेवाओं की तुलना में उपेक्षिता सी रही। सरकारी आय का औसतन एक तिहाई सेना पर खर्च होता था, लेकिन शिक्षा के मद में बहुत कम राशि ही खर्च होती थी।

अन्य बुनियादी मुद्दों पर भी राष्ट्रवादियों ने आधुनिक शिक्षा की आलोचना की। उनके अनुसार इस शिक्षा का भारतीय जनजीवन से कोई संबंध नहीं था। इसमें भारतीय जीवन की झलक नहीं मिलती थी, न राजनीतिक गुलामी का और न भारतीय समाज के आर्थिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन के कारणों की। इसने भारतीय संस्थाओं के प्रस्तुतीकरण और भारतीय दृष्टिकोण से उनको समझाने का कोई प्रयास नहीं किया। इसने भारतीय इतिहास का विकृत चित्रण

प्रस्तुत किया, भारत के ब्रिटिश विजेताओ का गुणगान किया और अंग्रेजो को भारत का सभ्य बनाने वाला बतलाया। इसन राष्ट्राभिमान और आत्मसम्मान के भाव का दुबल करने की कोशिश की। फिर, चूकि अंग्रेजो की जरूरतो को पूरा करने के लिए विदेशी भाषा अंग्रेजी के माध्यम स यह शिक्षा दी जाती थी, इसलिए ज्ञान का शीघ्र और सम्यक स्वागीकरण सभव नही हुआ और शिक्षित भारतीयो और भारत के साधारण लोगो म दुराव आता गया। भारतीय राष्ट्रवादियो ने शिक्षाव्यवस्था की रीति और उसके सगठन की भी आलोचना की।

'जनशिक्षा की उपेक्षा से स्पष्ट है कि भारत के नए शासक इस देश के सामाजिक उत्थान के लिए यहा नही आए थे। अंग्रेजी को इतना अधिक महत्व देने का कारण यह था कि वे स्वभावत यही चाहते थे कि शासन म कम खर्च हो। हर किरानी और सरकारी अफसर को इग्लैंड से बुलाना पडे इससे आसान होगा कि यही निम्न श्रेणी के अफसरो का वर्ग तैयार किया जाए।

इस शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य था मध्यमवर्गी भारतीय नौजवानो पर ब्रिटेन के गौरव और समृद्धि की छाप डालना और उन्हे विदेशी अफसरशाही के सुयोग्य नौकर बनाना। यह पदोवर शिक्षा का चरम रूप था पदोवर शिक्षा जो पाठयक्रम म अंग्रेजी वाक्य रचना, शेक्सपियर के छद शास्त्र और अंग्रेज राजा रानियो के शासन काल की तिथियो पर जोर देती थी।'[29]

'शुरू स ही भारत की अंग्रेजी सरकार न जनशिक्षा को रूपायित और नियन्त्रित करने की चेष्टा की है देश म अपनी राजनीतिक सत्ता की नीव मजबूत करना उनका लक्ष्य रहा है।[30]

भारत क राष्ट्रवादी दलो ने राष्ट्रीय पद्धति पर समानातर शिक्षा व्यवस्थाए सगठित करने की अनक कोशिशें की, लेकिन उन्हे विशेष सफलता न मिली।

राष्ट्रीय शिक्षा की योजनाओ की असफलता क कारण भी थे। सरकारी एव निजी दोनो प्रकार की नौकरियो म बहाली के लिए सरकारी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयो की उपाधिया जरूरी थी, इसलिए स्वतत्र राष्ट्रीय शिक्षा सस्थाओ म, जो सरकारी विश्वविद्यालयो से सबद्ध नही थी, कम ही छात्र आए। गाधी द्वारा शुरू किए गए गुजरात विद्यापीठ का अत इसका एक उदाहरण है। काग्रेस म रुचि रखने वाले नियोक्ता भी इस विद्यापीठ के स्नातको का बाद विश्वविद्यालय क स्नातको के समकक्ष नही मानते थ।

जिन सिद्धाता क आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा की योजना बनाई जा सकती है, उनके विषय म भारतीय राष्ट्रवादियो म सहमति भी नही थी। मालवीय, गाधी और आयसमाजियो जसे कुछ लोगो न सरकारी स्कूल और कालेजो म दी जाने वाली शिक्षा क धर्मनिरपेक्ष चरित्र की आलोचना की। उन लोगो न धर्म (हिंदुओ क लिए गीता और मुसलमानो क लिए कुरान) को शिक्षा का अनिवार्य अग माना। जवाहरलाल जसे नताओ न पूर्णत धर्मनिरपेक्ष शिक्षा को महत्व दिया

क्योंकि शिक्षा का आधार बौद्धिक होना चाहिए जबकि धर्म आस्था और अन्तर्दृष्टि पर आधारित है।

सरकारी शिक्षा के धर्मनिरपेक्ष चरित्र पर आघात कर गांधी जैसे नेताओं ने उस शिक्षा के प्रगतिशील तत्वों पर हमला किया। पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा का भी स्थान हो, इस तरह का उनका सुझाव प्रतिक्रियावादी था। गांधी ने विद्या मंदिर योजना को विकसित किया। उन्होंने इसको शिक्षा की बहुशिल्पीय योजना कहा, क्योंकि इसमें व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए सैद्धांतिक और प्रायोगिक शिक्षा दोनों का स्थान था। बहुशिल्पीय शिक्षा का सिद्धांत तो प्रगतिशील था लेकिन जब यूरोप में इस शिक्षा का सिद्धांत निरूपित हुआ, तो उसका अर्थ था आधुनिक सैद्धांतिक ज्ञान और आधुनिक उद्योग का समन्वय। लेकिन गांधी ने आधुनिक शिक्षा पर धर्म का मुलम्मा चढ़ाया, और उसे बीते हुए युग के हस्तशिल्प से जोड़ दिया। आधुनिक शिक्षा आधुनिक सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में जन्मी थी और उनका पथप्रदर्शन कर रही थी। गांधी का प्रयोग पुरातन शिल्पों और आधुनिक शिक्षा का अनैतिहासिक संयोग प्रस्तुत करता है। अवास्तविकता और अनैतिहासिकता पर आधारित ऐसी शिक्षा संबंधी योजनाओं को व्यापक समर्थन नहीं मिल सकता था और न मिला। फिर जिस तरह की शिक्षा का प्रबंध आधुनिक स्कूलों में था, उसकी राष्ट्रवादी आलोचना काफी सही थी।

जनशिक्षा पर भी भारतीय राष्ट्रवादियों का ध्यान गया। स्पष्ट है कि अज्ञान रत निरक्षर राष्ट्र ठोस प्रगति नहीं कर सकता और जिंदगी की दौड़ में अवश्य पीछे पड़ जाएगा। इसलिए हमें सबसे पहले प्राथमिक शिक्षा के पूरे विस्तार और जनसाधारण के लिए प्राथमिक स्कूलों की कारगर और व्यापक व्यवस्था की नितांत आवश्यकता है। इस काम में जितनी ही देर होगी दुनिया के राष्ट्रों में अपना सही स्थान प्राप्त करना हमारे लिए उतना ही कठिन होगा।[31] राष्ट्र की तरक्की के लिए जनशिक्षा की स्पष्ट आवश्यकता बताई गई और कई प्रगतिशील भारतीयों ने इस दिशा में अधिकाधिक प्रयास किए। निरक्षरता को समाप्त करने के लिए आन्दोलन का संगठन हुआ। छात्र दल साक्षरता के प्रसार के लिए गर्मी की छुट्टियां देहातों में बिताते थे। इसी उद्देश्य से शहरों में मजदूरों के लिए रात्रि पाठशालाओं का प्रबंध किया गया। इंडियन नेशनल कांग्रेस, मुस्लिम लीग, अखिल भारतीय विद्यार्थी संगठन और ऐसी अन्य बहुत सारी संस्थाओं ने इस दिशा में काम किए। लेकिन यह इतना वृहद कार्यक्रम था कि सारे प्रयास केवल समस्या को छूकर रह गए।

आधुनिक शिक्षा के प्रगतिशील तत्व

ऊपर [illegible] मुद्दों की [illegible] जा चुकी है [illegible] भारत में आधुनिक शिक्षा की शुरुआत ब्रिटिश शासन का प्रगतिशील [illegible]। यह [illegible] धर्म-निरपेक्ष [illegible] ब्रिटिश शिक्षा [illegible]

और धम का खयाल किए बिना सवसुलभ थी। सर्वोपरि, इनम भारतीयो क लिए आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के बुद्धिवादी और प्रजातात्रिक विचारा के विशाल भडार का द्वार खाल दिया। यह मात्र सयोग नही कि भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारभिक और परवर्ती नेता सभी शिक्षित वर्गों से आए।

> 'उदीयमान पीढी न यूरोपीय शिक्षा का विस्मयकारक ग्रहणशीलता के साथ आत्मसात किया। इस पीढी के लोग तेजी से राष्ट्रवादी, गणतत्रवादी और समाजवादी हुए।
>
> 'कॅवूर मजिनी, काराथ, पार्नेल मिल का उन्होन अपने शिक्षक और नायक के तौर पर स्वीकार किया। अग्रेजी सरकार ने उन्नीसवी सदी के यूरापीय साहित्य की पढाई की भारतीय स्कूला म मनाही कर दी। लेकिन काफी देर हा चुकी थी। जो प्रक्रिया शुरू हो गई थी उस रोकना सभव नही था, आर इस बिंदु पर इस प्रक्रिया का नई दिशा मिली। यूरोपीय सस्कृति का घनिष्ठ परिचय प्राप्त हा गया था और उसकी अधस्वीकृति समाप्त हो चुकी थी रस्किन, कार्लाइल टालसटाय आदि जिन यूरापीय लेखको न स्वय यूरोप की आलोचना की थी उनकी इस दिशा म यह महत्वपूर्ण भूमिका रही।'

शिक्षित भारतीया ने अपन अग्रेजी ज्ञान के कारण यूरोप के राजनीतिक साहित्य से जा अतिवादी राजनीतिक विचार ग्रहण किए उनके प्रचार स अग्रेजी सरकार प्राय सत्रस्त हा जाती थी। इसने प्रशासनिक कारवाइ की और भारत म विदेशी साहित्य के आगमन पर रोक लगाई। इटालियन राष्ट्रवाद क नेता मजिनी के जीवनचरित सबधी साहित्य क भारत आन पर निषध लगा। कुछ खास किस्म क आधुनिक यूरापीय विचारो क आगमन पर सरकारी प्रतिबध क बावजूद यह ता मानना ही हागा कि अग्रेजी ज्ञान के कारण ही भारत म आधुनिक यूरोपीय साहित्य का अध्ययन सभव हुआ। सब प्रकार के आधुनिक यूरापीय विचारा म उन्मुक्त सपर्क की आजादी क लिए भारतीय राष्ट्रवाद न सदा सघर्ष किए।

इस तरह आधुनिक शिक्षा की विरोधी, द्वैत भूमिका रही। इसकी शुरुआत तो की गई भारत की राजनीतिक और प्रशासनिक जरूरता को पूरा करन क लिए और भारत पर विदेशिया क आधिपत्य का मजबूत करन क लिए, लेकिन इस शासन क विरुद्ध सघर्ष म भारतीय राष्ट्रवाद का इस शिक्षा पद्धति स मदद भी मिली।

भारतीय राष्ट्रवाद आधुनिक शिक्षा का परिणाम नही

अनेक ब्रिटिश राजनेताओ और लेखको न दावा किया है कि भारतीय राष्ट्रवाद भारत म अग्रेजा द्वारा लाइ गइ आधुनिक शिक्षा का परिणाम है। उन्होन इस बात पर जार दिया कि आधुनिक शिक्षा न भारतीयो का पाश्चात्य लेखका द्वारा प्रतिपादित स्वतत्रता व जो सिद्धाता स परिचित कराया और इसलिए भारतीय जनता म राष्ट्रीय स्वातत्र्य की इच्छा पैदा हुई। शिक्षा का प्रगतिशील भूमिका का

मानते हुए भी यह समझ लेना गलत होगा कि भारतीय राष्ट्रवाद इस शिक्षा की संतति है।

भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म वस्तुतः नई सामाजिक-भौतिक स्थितियों के कारण हुआ, उन नई सामाजिक शक्तियों के कारण जो अंग्रेजों की भारत विजय के बाद पैदा हुईं। यह विभिन्न स्वार्थों के वस्तुनिष्ठ संघर्ष का परिणाम था— अंग्रेजों का स्वार्थ जो भारत को राजनीतिक और आर्थिक तौर पर गुलाम बनाए रखने में था और भारतीय जनता का हित जो ब्रिटिश शासन से मुक्त भारतीय समाज के स्वतंत्र राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास में निहित था।

भारतीय राष्ट्रवाद ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में एक राष्ट्रीय आंदोलन का रूप लिया। उस वक्त तक देश में एक शिक्षित वर्ग तैयार हो गया था और भारतीय उद्योगों के उदय के साथ ही भारतीय औद्योगिक बुर्जुआजी का भी जन्म हो चुका था। इन्हीं वर्गों ने राष्ट्रीय आंदोलन का संगठन किया और अपनी विरोध पताका में निम्नांकित नारे लिखे, सरकारी नौकरियों का भारतीयकरण, भारतीय उद्योगों के लिए सुरक्षा, वित्तीय स्वायत्तता आदि। आर्थिक एवं अन्य क्षेत्रों में ब्रिटिश और भारतीय हितों के संघर्ष के कारण यह आंदोलन शुरू हुआ। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के जन्म का उत्पत्तिमूलक कारण यही हितों का संघर्ष था।

'भारत का राष्ट्रीय आंदोलन साम्राज्यवाद और इसकी शोषण व्यवस्था से पैदा हुआ। शिक्षा व्यवस्था चाहे जो भी रहती भारतीय बुर्जुआजी का उदय और ब्रिटिश बुर्जुआजी के प्रभुत्व के खिलाफ इसकी बढ़ती हुई प्रतिद्वंद्विता अवश्यंभावी थी। अगर भारतीय बुर्जुआजी को संस्कृत में लिखे गए वेदों की ही शिक्षा मिली रहती दूसरी सारी विचारधाराओं से अलग, तो उन्हें वहीं अपने संघर्ष के सिद्धांत और नारे मिल जाते।'[33]

वस्तुतः विपिनचंद्र पाल जैसे बुद्ध वामपंथी राष्ट्रीय नेताओं के लिए उपनिषद भाषित हिंदू धर्म राष्ट्र धर्म था और काली इस राष्ट्रीयता की दैवी प्रतिमूर्ति थी।

ब्रिटेन के खिलाफ विभिन्न वर्गों की अपनी शिकायतें अलग-अलग थीं। उद्योगपति भारत का निर्बाध उद्योगीकरण और देशी उद्योगों के लिए सुरक्षा चाहते थे। शिक्षित वर्ग नौकरियों का भारतीयकरण चाहते थे, क्योंकि ऊंचे ओहदे केवल अंग्रेजों के लिए थे। किसान भूमिकर कम करना चाहते थे। मजदूर काम की अच्छी हालत और जीवन यापन के लिए भरपूर मजदूरी की मांग करते थे। राष्ट्र अपनी समग्रता में प्रेस और संगठन की आजादी चाहता था, विधान सभा, निर्वाचित विधायक, प्रतिनिधि संस्थाएं स्वशासित उपनिवेशों की हैसियत स्वशासन और फिर अंततः पूर्ण स्वतंत्रता चाहता था। ब्रिटेन और भारत के इन विरोधी स्वार्थों की टक्कर से ही भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।

लेकिन यह मानना होगा कि आधुनिक शिक्षा के कारण अनेक राष्ट्रवादी नेता पश्चिम के आधुनिक सामाजिक विचारों को आत्मसात कर सके और इस नए राष्ट्रीय आंदोलन को सामाजिक रूप और उद्देश्य मिला। पश्चिम के सामाजिक

विचारो से प्रभावित नेताओ के पथप्रदशन के कारण राष्ट्रीय आदोलन ने स्वराज्य प्राप्ति के बाद प्राक ब्रिटिश काल के राजतत्रवाद और सत्तावादी सामाजिक व्यवस्था का फिर से स्थापित करने की कामना नही की। राष्ट्रीय आदोलन मूलत चुनाव, प्रजातात्रिक कमटिया, बहुसख्यक मत द्वारा किए गए निणय आदि आधुनिक उदारवादी सिद्धातो पर आधारित था। इसन स्वतत्र भारत के लिए लोकतात्रिक सिद्धातो पर आधारित प्रतिनिधि सस्थाओ की कल्पना की। इस तरह आधुनिक शिक्षा न, परोक्षत ही सही, भारतीय राष्ट्रवाद को प्रजातात्रिक दिशा दी।

आधुनिक शिक्षा के लाभ

अग्रेजी के नान के अनगिनत फायदे थे। इसन आधुनिक अग्रेजी साहित्य के द्वार भारतीयो के लिए, और यह अगर विश्व का सर्वोत्तम साहित्य नही था तो विश्व के सर्वोत्तम साहित्यो म तो इसकी गिनती हो ही सकती है। यह ब्रिटिश राष्ट्र का साहित्य था, इतिहास का पहला आधुनिक राष्ट्र, जिसने अठारहवी सदी के अत तक मध्ययुगीन परपरा को समाप्त कर दिया था। मध्ययुग के विरुद्ध सघष म इसने आधुनिक प्रजातात्रिक, वनानिक बुद्धिवादी सस्कृति की नीव डाली, और अपने गौरवशाली अस्तित्व के अगले चरण म इसे और अधिक विकसित किया। राजाओ के दवी अधिकार क सिद्धात पर आधारित मध्यकालीन राज्य की निरकुशता के विरुद्ध अपने सघष मे अग्रेजी राष्ट न जनता की सावभौम सत्ता और लोकतात्रिक राष्ट्र के सिद्धात की बुनियाद डाली। मध्यकालीन दकियानूसी और धार्मिक विचार पद्धति के विरुद्ध इसने आधुनिक बुद्धिवाद का शस्त्र तयार किया। कृषिदास प्रथा और उत्तराधिकार के सिद्धात पर आधारित मध्यकालीन पदानुक्रमित सामाजिक सरचना क विरुद्ध इसन व्यक्ति स्वातत्र्य का सिद्धात घोषित किया। इसने सुसपन्न वैज्ञानिक और तकनीकी सस्कृति का विकसित किया और आधुनिक प्राकृतिक विज्ञानो जस भौतिकी, रसायन प्राणिशास्त्र, कृषिशास्त्र आदि को जन्म दिया। औषधि और अभियत्रण के क्षेत्र म इसने कापी प्रगति की। इसन आधुनिक समाजशास्त्र के जरिए समाज का भी वज्ञानिक अध्ययन शुरु किया।

सामाजिक क्रियाकलाप के प्रत्येक क्षेत्र म सोलहवी सदी स ही ब्रिटन म सामाजिक उद्यम के प्रत्यक क्षेत्र म अनक महान विचारक पदा हुए। बकन न सामाजिक और प्राकृतिक दोना प्रकार क तथ्यो और उक्त क्रियाओ के अध्ययन के लिए आगमनात्मक तकशास्त्र की वज्ञानिक पद्धति दी। उसन स्पष्ट शब्दो म कहा कि प्रयोग ही वज्ञानिक सिद्धात का आधार और उसकी कसौटी है। इसन प्रागनुभव और निगमनिक तकशास्त्र पर सायातिक प्रहार किया जिसकी बडी आवश्यकता थी, और इस तरह समाज और प्रकृति दाना क्षेत्रो म तीव्र और वास्तविक प्रगति क लिए पथ प्रशस्त किया। बकन के बाद और भी अनक गभीर विचारक ब्रिटन म पदा हुए। ग्राह महान वज्ञानिक था और न्यूटन गणितज्ञ, भौतिकशास्त्री एव विचारक, एडम स्मिथ न आधुनिक अथशास्त्र को जन्म दिया

मानते हुए भी यह समझ लेना गलत होगा कि भारतीय राष्ट्रवाद इस शिक्षा की सतति है।

भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म वस्तुत नई सामाजिक भौतिक स्थितियो के कारण हुआ, उन नई सामाजिक शक्तिया के कारण जो अग्रेजा की भारत विजय के बाद पदा हुइ। यह विभिन्न स्वार्थों के वस्तुनिष्ठ सघष का परिणाम था—अग्रेजा का स्वाथ जो भारत का राजनीतिक और आर्थिक तौर पर गुलाम बनाए रखने म था और भारतीय जनता का हित जो ब्रिटिश शासन से मुक्त भारतीय समाज के स्वतत्र राजनीतिक, आर्थिक और सास्कृतिक विकास म निहित था।

भारतीय राष्ट्रवाद न उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध म एक राष्ट्रीय आदोलन का रूप लिया। उस वक्त तक देश म एक शिक्षित वग तयार हो गया था और भारतीय उद्योगो के उदय के साथ ही भारतीय औद्योगिक बुर्जुआजी का भी जन्म हो चुका था। इन्ही वर्गों न राष्ट्रीय आदोलन का सगठन किया और अपनी विरोध पताका म निम्नाकित नारे लिखे, सरकारी नौकरियो का भारतीयकरण, भारतीय उद्योगो के लिए सुरक्षा, वित्तीय स्वायत्तता आदि। आर्थिक एव अन्य क्षेत्रो म ब्रिटिश और भारतीय हितो के सघष के कारण यह आदोलन शुरू हुआ। भारत के राष्ट्रीय आदोलन के जन्म का उत्पत्तिमूलक कारण यही हितो का सघष था।

> 'भारत का राष्ट्रीय आदोलन साम्राज्यवाद और इसकी शोषण व्यवस्था से पदा हुआ शिक्षा व्यवस्था चाहे जो भी रहती, भारतीय बुर्जुआजी का उदय और ब्रिटिश बुर्जुआजी के प्रभुत्व के खिलाफ इसकी बढती हुई प्रतिद्वद्विता अवश्यभावी थी। अगर भारतीय बुर्जुआजी को सस्कृत म लिखे गए वेदो की ही शिक्षा मिली रहती, दूसरी सारी विचारधाओ से अलग, तो उन्ह वही अपने सघष के सिद्धात और नारे मिल जात।[33]

वस्तुत विपिनचद्र पाल जसे वृद्ध वामपथी राष्ट्रीय नेताओ के लिए नवपरिभाषित हिंदू धम राष्ट्र धम था और काली इस राष्ट्रीयता की दैवी प्रतिमूर्ति थी।

ब्रिटन के खिलाफ विभिन्न वर्गो की अपनी खास अलग-अलग शिकायत थी। उद्योगपति भारत का निर्बाध उद्योगीकरण और देशी उद्योगो के लिए सुरक्षा चाहते थे। शिक्षित वग नौकरियो का भारतीयकरण चाहते थे, क्योकि ऊचे ओहदे केवल अग्रेजो के लिए थे। किसान भूमिकर कम करना चाहते थे। मजदूर काम की अच्छी हालतो और जीवन यापन के लिए भरपूर मजदूरी की माग करते थे। राष्ट्र अपनी सपूणता म प्रेस और सगठन की आजादी चाहता था, विधान सभा निर्वाचित विधायक, प्रतिनिधि सस्थाए स्वतत्र उपनिवेश की हैसियत स्वशासन और फिर अतत पूर्ण स्वतत्रता चाहता था। ब्रिटेन और भारत के इन विरोधी स्वार्थों की टक्कर से ही भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।

लेकिन यह मानना होगा कि आधुनिक शिक्षा के चलते अनेक राष्ट्रवादी नेता पश्चिम के आधुनिक लोकतांत्रिक विचारो को आत्मसात कर सके और इस तरह राष्ट्रीय आदोलन को लोकतांत्रिक रूप और उद्देश्य मिला। पश्चिम के लोकतांत्रिक

भारतीय ५। ावित नेताओ के पथप्रदशन के कारण राष्ट्रीय आदोलन न स्वराज्य
विचारो से प्र द प्राक ब्रिटिश काल के राजतत्रवाद और सत्तावादी सामाजिक
प्राप्ति के बा फिर से स्थापित करन की कामना नही की। राष्ट्रीय आदालन मूलत
व्यवस्था को ात्रिक कमटिया, बहुसख्यक मत द्वारा किए गए निणय आदि आधुनिक
चुनाव, प्रजात द्धातो पर आधारित था। इसन स्वतत्र भारत के लिए लोकतात्रिक
उदारवादी शि आधारित प्रतिनिधि सस्थाओ की कल्पना की। इस तरह आधुनिक
सिद्धातो पर क्षत ही सही, भारतीय राष्ट्रवाद को प्रजातात्रिक दिशा दी।

शिक्षा न, पर शिक्षा के लाभ

आधुनिक न क अनगिनत फायदे थे। इसन आधुनिक अग्रजी साहित्य के द्वार
अग्रेजी के द्वा लिए और यह अगर विश्व का सर्वोत्तम साहित्य नही था तो विश्व
भारतीयो के ाहित्यो म तो इसकी गिनती हो ही सकती है। *यह ब्रिटिश राष्ट्र का*
के सर्वोत्तम स तिहास का पहला आधुनिक राष्ट्र जिसन अठारहवी सदी के अत तक
साहित्य था, रपरा को समाप्त कर दिया था। मध्ययुग के विरुद्ध सघप म इसन
मध्ययुगीन प ातात्रिक वज्ञानिक, बुद्धिवादी सस्कृति की नीव डाली, और अपने
आधुनिक प्र अस्तित्व के अगल चरण म इसे और अधिक विकसित किया। राजाओ
गौरवशाली ार क सिद्धात पर आधारित मध्यकालीन राज्य की निरकुशता क
के दबी अधि सघप म अग्रजी राष्ट्र न जनता की सावभौम सत्ता और लाकतात्रिक
विरुद्ध अपने ात की बुनियाद डाली। मध्यकालीन दकियानूसी और धार्मिक विचार
राष्ट्र के सिद्ध द्ध इसने आधुनिक बुद्धिवाद का ग्रस्त तयार किया। रूढिदास प्रथा
पद्धति के वि धकार के सिद्धान पर आधारित मध्यकालीन पदानुक्रमित सामाजिक
और उत्तरा रुद्ध इसन व्यक्ति स्वातत्र्य का सिद्धान घोषित किया। इसने सुमपन
सरचना के र तकनीकी सस्कृति का विकसित किया और आधुनिक प्राकृतिक
वैज्ञानिक औ भौतिकी, रसायन प्राणिशास्त्र, कृषिशास्त्र आदि को जन्म दिया।
विज्ञाना अर अनियत्रण के क्षेत्र म इसन काफी प्रगति की। इसने आधुनिक समाज-
औषधि और रए समाज का भी वज्ञानिक अध्ययन शुरू किया।

शास्त्र के अ व क्रियाकलाप के प्रत्यक क्षेत्र म सोलहवी सदी स ही ब्रिटन म
सामा उद्यम क प्रत्यक क्षत्र म अनक महान विचारक पदा हुए। बकन न
सामाजिक और प्राकृतिक दाना प्रकार के तथ्यो और उक्त क्रियाओ के
सामाजिक लिए आगमनात्मक तकशास्त्र की वज्ञानिक पद्धति दी। उसन स्पष्ट
अध्ययन के हा कि प्रयाग ही वज्ञानिक सिद्धात का आधार और उसकी कसौटी
शब्दो म क अनुभव और निगमनिक तकशास्त्र पर सापातिक प्रहार किया, जिसकी
है। इसन प्र कता थी, और इस तरह समाज और प्रकृति दोना क्षेत्रो म तीव्र और
बडी आवश्य गति क लिए पथ प्रशस्त किया। बकन के बाद और भी अनक गभीर
वास्तविक प्र क्ष म पदा हुए। ताक महान वज्ञानिक था और न्यूटन गणित,
विचारक जो एक विचारक एडम स्मिथ न आधुनिक अथशास्त्र का जन्म दिया
नीतिशास

और गाडविन दार्शनिक अराजकतावाद का प्रणेता था। गिब्बन और बक्ल आधुनिक काल के महान इतिहासज्ञ हुए है, रिकार्डो सर्वाधिक निर्भीक ब्रिटिश अर्थशास्त्री था। जान स्टुअर्ट मिल सत्तावाद का निष्कलुष शत्रु था और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य एव जनगण की सार्वभौमता का महान पक्षधर। कार्लाइल और रस्किन ने समस्याओ का सभवत प्रतिक्रियावादी अतीतोन्मुख समाधान दिया लेकिन दोनो ने अपने युग की सामाजिक अनीति की निमम आलोचना की। डार्विन ने जीवो विशेषकर मानव जाति के विकास के सिद्धात का प्रतिपादन किया और इस तरह उन धार्मिक किंवदंतियो पर जो मानव जन्म के बारे म दकियानूसी सिद्धात प्रचलित करती आई थी गहरी चोट पडी। स्पेन्सर विद्वान समाजशास्त्री था। हाब हाउस, रिवर्स ब्रिफोल्ट, गार्डन चाइल्ड गिसबर्ग जसे समाजशास्त्री, बर्ट्रेण्ड रसल जसे विश्व विश्रुत गणितज्ञ और दार्शनिक एच० जी० वल्स जसे प्राकृतिक ऐतिहासिक और सामाजिक ऐतिहासिक विकास के सजीव शब्द चित्रकार जिसने चमत्कारपूर्ण और कल्पना प्रसूत रोचक सामाजिक उपन्यास लिखे अमर सामाजिक व्यग्यकार बर्नार्ड शा, विश्वविख्यात एडिंग्टन और जीन्स जसे खगोल शास्त्री और हाल्डेन जसा प्राणिशास्त्री जो बाद म भारतीय नागरिक हुआ आल्डुअस और जुलियन हक्सल लेवी और बनल जस वज्ञानिक, और एसे और भी कितने लोग ब्रिटेन म पैदा हुए। इन महान विचारको ने विभिन्न क्षेत्रो म मानव ज्ञान को विकसित किया है और आधुनिक विश्व संस्कृति के निर्माण म योगदान दिया है।

शिक्षित भारतीयो ने अंग्रेजी लोकतांत्रिक साहित्य का अध्ययन किया और लोकतांत्रिक सिद्धात को आत्मसात किया। इससे उन्हे व्यक्ति को गुलाम बनाने और उसकी मुक्त पहल शक्ति का दमन करने का प्रयास करने वाले सत्तावादी दशन और बीते युग की जाति जसी प्रतिक्रियावादी सामाजिक संस्थाओ और तदरूप दृष्टिकोण के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा मिली। उन्होने जनतांत्रिक आधार पर भारतीय जनता के मुक्त राष्ट्रीय अस्तित्व की बात सोचनी शुरू की। इसके कारण भारतीय राष्ट्रीयता के आदोलन को जो ब्रिटिश शासन के अतगत औपनिवेशिक स्थिति की ही उपज था जनतांत्रिक दिशा मिली। यह आदोलन चुनाव और निर्वाचित समितिया जैसे जनतांत्रिक सिद्धात एव व्यवहार और मताधिकार के विस्तार, समाचार पत्रो व्याख्यान और सगठन की स्वतत्रता, प्रतिनिधि सरकार, जनता के प्रति उत्तरदायी कायकारिणी आदि की माग के आधार पर विकसित हुआ।

अंग्रेजी भाषा के अध्ययन से उस भाषा म उपलब्ध सामाजिक समता और प्राकृतिक वैज्ञानिक बुद्धिवादी दशन सबधी साहित्य के अध्ययन मनन का मौका मिला, जिसने जनतांत्रिक और बुद्धिवादी दृष्टिकोण को प्रश्रय दिया। सामाजिक समता सबधी दशन से व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वतत्रता की प्राप्ति सरल हुई। बुद्धिवादी दशन की मदद से मन गहन अधविश्वास और हजारो लाखो देवताओ एव भाग्यवाद और परलोकवाद की जकड से बाहर निकल सका।

प्राक ब्रिटिश भारतीय साहित्य म, चाहे वह हिंदू साहित्य हो या मुस्लिम, राष्ट्रवाद पर कोई पुस्तक नही थी। इसका एतिहासिक कारण यह है कि आर्थिक पिछडेपन की वजह से भारतीय जन सामाजिक और राजनीतिक तौर पर एक राष्ट्र क अभिन्न अग नही हो सके थे।

अग्रेजी भाषा के अध्ययन से बहुमूल्य ग्रथो म सकलित प्रजातात्रिक और राष्ट्रीय विचार क खजाने खुल गए ब्रिटिश शासन के अधीन रहने से ही नवजात राष्ट्रीयता का जन्म हुआ, लकिन इस साहित्य के अध्ययन से यह नवजात राष्ट्रीयता पल्लवित-पुष्पित हुई थी। अग्रेजी भाषा के ज्ञान से ही शिक्षित भारतीयो को गैर अग्रेजी साहित्य क महत्वपूर्ण तत्वो, जैसे उनकी वैज्ञानिक, दार्शनिक, समाजशास्त्रीय, साहित्यिक और कलात्मक उपलब्धियो का भी परिचय प्राप्त हुआ।

अग्रेजी अनुवाद के माध्यम स ही वे डमोक्राइटस, हराक्लाइटस, प्लटो, अरिस्टोटल स्पिनोजा, डेकार्त लाइबनिट्ज, काट, कामटे नित्शे, हीगल, मक्स स्टनर, बनिडेटो क्रोचे, आसवल्ड स्पेंगलर, कार्ल मार्क्स, आदि की दार्शनिक पद्धतियो का अध्ययन कर सके और प्लटो मेकियावेलि, दिदरो हालबाख, हल वेसियस, वाल्टेयर और अट्ठारहवी सदी के अन्य विचारको एव आगस्ट कामट सेंट साइमन, समाजवादी मार्क्स और एगल्स, अराजकतावादी बाकुनिन सिंडिकलिस्ट प्रूधो, आदि क सामाजिक सिद्धाता को आत्मसात कर सके। आइन्स्टाइन, डिराक, श्रोडिंगर, हाइसनबर्ग जैसे गर अग्रेजी भाषाभाषी विश्व विश्रुत गणितज्ञो भौतिकशास्त्रियो और दार्शनिको की रचनाओ के अनुवाद पढ़न स भारतीयो का वैज्ञानिक ज्ञान बढ़ा। वे अनुवाद के ही माध्यम स चखव, दास्तवस्की, तुर्गनव, गागोल गोर्की, जोला, बालजाक, फ्लावयर, हाइने, मापासा अनातोल फ्रास, विक्टर ह्यूगो, मोलिए गेटे इब्सन, मेटरलिंक, मैडम जन्मे साहित्यकारो की रचनाओ का आनद ले सके। इस तरह अग्रेजी के अध्ययन द्वारा शिक्षित भारतीय गैर अग्रेजी भाषा-भाषियो की सास्कृतिक उपलब्धियो का भी फायदा उठा सके।

विश्व संस्कृति क सपर्क म आने स शिक्षित भारतीयो का ज्ञानवर्द्धन तो हुआ ही, उन्ह एक विश्वजनीन दृष्टिकोण भी प्राप्त हुआ। इसस उन्ह विश्व क विकास की एकत्र प्रक्रिया की जानकारी हुई और वे भारत के सामाजिक विकास क पृथकत्व की गलत धारणा स मुक्त हो सके और यह समझ सके कि भारतीय राष्ट्रीय विकास विश्व क ही विकास का अग है। धीरे धीरे उनकी यह गलत समझदारी खतम हो गई कि भारत के विकास का अपना स्वतत्र और विशिष्ट नियम है और विश्व के विकास स इसका कोई सबध नही है। राष्ट्रीय विशिष्टताओ की उपेक्षा किए बिना भी, उन्होन यह समझा कि जिन नियमो स दूसर समाजो का विकास होता है, उन्ही नियमो स भारतीय समाज का भी विकास होता है।

भारत पर अग्रेजो की विजय और उनके शासन न जिन नए राजनीतिक एव आर्थिक वातावरण की सृष्टि की उसक कारण भारतीयो को एसी नई समस्याओ का सामना करना पडा जिनका समाधान पुरानी भारतीय सस्कृति म नही था।

और गाडविन दार्शनिक अराजकतावाद का प्रणेता था। गिब्बन और बक्ल आधुनिक काल के महान इतिहासज्ञ हुए है रिकार्डो सर्वाधिक निर्भीक ब्रिटिश अर्थशास्त्री था। जान स्टुअर्ट मिल सत्तावाद का निष्ठुर शत्रु था और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य एवं जनगण की सार्वभौमता का महान पक्षधर। कार्लाइल और रस्किन ने समस्याओ का संभवत प्रतिक्रियावादी अतीतोन्मुख समाधान दिया लेकिन दोनों ने अपने युग की सामाजिक अनीति की निर्मम आलोचना की। डार्विन ने जीवों विशेषकर मानव जाति के विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया और इस तरह उन धार्मिक किंवदंतियो पर जो मानव जन्म के बारे में दकियानूसी सिद्धात प्रचलित करती आई थी गहरी चोट पड़ी। स्पेन्सर विद्वान समाजशास्त्री था। हाब हाउस, रिवर्स ब्रिफोल्ट, गोर्डन चाइल्ड गिंसबर्ग जैसे समाजशास्त्री, बर्ट्रेण्ड रसल जैसे विश्व विश्रुत गणितज्ञ और दार्शनिक एच० जी० वेल्स जैसे प्राकृतिक-ऐतिहासिक और सामाजिक-ऐतिहासिक विकास के सजीव शब्द चित्रकार जिसने चमत्कारपूर्ण और कल्पना प्रसूत रोचक सामाजिक उपन्यास लिखे अमर सामाजिक व्यंग्यकार बर्नार्ड शा, विश्वविख्यात एडिंग्टन और जीन्स जैसे खगोल-शास्त्री और हाल्डेन जैसा प्राणिशास्त्रज्ञ जो बाद में भारतीय नागरिक हुआ, आल्डुअस और जुलियन हक्सले लेवी और बर्नल जैसे वैज्ञानिक, और ऐसे और भी कितने लोग ब्रिटेन में पैदा हुए। इन महान विचारकों ने विभिन्न क्षेत्रों में मानव ज्ञान को विकसित किया है और आधुनिक विश्व संस्कृति के निर्माण में योगदान दिया है।

शिक्षित भारतीयों ने अंग्रेजी लोकतांत्रिक साहित्य का अध्ययन किया और लोकतांत्रिक सिद्धांत को आत्मसात किया। इससे उन्हें व्यक्ति को गुलाम बनाने और उसकी मुक्त पहल शक्ति का शमन करने का प्रयास करने वाले सत्तावादी दर्शन और बीते युग की जाति जैसी प्रतिक्रियावादी सामाजिक संस्थाओं और तदरूप दृष्टिकोण के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा मिली। उन्होंने जनतांत्रिक आधार पर भारतीय जनता के मुक्त राष्ट्रीय अस्तित्व की बात सोचनी शुरू की। इसके कारण भारतीय राष्ट्रीयता के आंदोलन को, जो ब्रिटिश शासन के अंतर्गत औपनिवेशिक स्थिति की ही उपज था जनतांत्रिक दिशा मिली। यह आंदोलन चुनाव और निर्वाचित समितियां जैसे जनतांत्रिक सिद्धांत एवं व्यवहार, और मताधिकार के विस्तार, समाचार पत्रों व्याख्यान और संगठन की स्वतंत्रता, प्रतिनिधि सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी कार्यकारिणी, आदि की मांग के आधार पर विकसित हुआ।

अंग्रेजी भाषा के अध्ययन से उस भाषा में उपलब्ध सामाजिक समता और प्राकृतिक वैज्ञानिक बुद्धिवादी दर्शन संबंधी साहित्य के अध्ययन मनन का मौका मिला, जिसने जनतांत्रिक और बुद्धिवादी दृष्टिकोण को प्रश्रय दिया। सामाजिक समता संबंधी दर्शन से व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति सरल हुई। बुद्धिवादी दर्शन की मदद से मन गहन अंधविश्वास और हजारों लाखों देवताओं एवं भाग्यवाद और परलोकवाद की जकड़ से बाहर निकल सका।

प्राक ब्रिटिश भारतीय साहित्य म चाहे वह हिंदू साहित्य हो या मुस्लिम, राष्ट्रवाद पर कोई पुस्तक नही थी। इसका ऐतिहासिक कारण यह है कि आर्थिक पिछडेपन की वजह स भारतीय जन सामाजिक और राजनीतिक तौर पर एक राष्ट्र क अभिन्न अग नही हो सके थे।

अग्रेजी भाषा के अध्ययन से बहुमूल्य ग्रथा म सकलित प्रजातान्त्रिक और राष्ट्रीय विचार क खजान खुल गए ब्रिटिश शासन के अधीन रहन से ही नवजात राष्ट्रीयता का जन्म हुआ, लकिन इस साहित्य के अध्ययन स यह नवजात राष्ट्रीयता पल्लवित पुष्पित हुई थी। अग्रजी भाषा के ज्ञान से ही शिक्षित भारतीयो को गैर अग्रेजी साहित्य के महत्वपूण तत्वो, जसे उनकी वैज्ञानिक, दाशनिक समाजशास्त्रीय, साहित्यिक और कलात्मक उपलब्धिया का भी परिचय प्राप्त हुआ।

अग्रेजी अनुवाद के माध्यम से ही व डेमोक्राइटस, हराक्लाइटस, प्लेटो, अरिस्टोटल स्पिनाजा डेकात, लाइबनिटज काट, कामटे, नित्श, हीगल, मक्स स्टनर, बनिडेटा क्रोचे आसवल्ड स्पेंगलर, काल माक्स आदि की दाशनिक पद्धतिया का अध्ययन कर सके और प्लटो मेकियावलि दिदरो, हालबाख हल वेसियस, वाल्टयर और अटठारहवी सदी के अन्य विचारका एव आगस्ट कामट, सेंट साइमन, समाजवादी माक्स और एगल्स, अराजकतावादी बाकुनिन सिंडिकलिस्ट प्रूधा, आदि के सामाजिक सिद्धातो का आत्मसात कर सके। आइस्टाइन, डिराक श्रोडिगर हाइसनबग जस गैर अग्रेजी भाषाभाषी विश्व विश्रुत गणितना भौतिकशास्त्रिया और दाशनिको की रचनाआ के अनुवाद पढने मे भारतीया का वैज्ञानिक ज्ञान बढा। वे अनुवाद के ही माध्यम स चखव, दास्तवस्की, तुगनेव, गोगोल गोर्की, जाला बालजाक फ्लावयर हाइने, मोपासा, अनातोल फ्रास, विक्टर ह्यूगा, मोलिए गट इब्सन मेटरलिक, सैंडस जसे साहित्यकारो की रचनाआ का आनद ले सके। इस तरह अग्रेजी के अध्ययन द्वारा शिक्षित भारतीय गर अग्रेजी भाषा-भाषिया की सास्कृतिक उपलब्धियो का भी फायदा उठा सके।

विश्व सस्कृति के सपक मे आने से शिक्षित भारतीयो का ज्ञानवद्धन तो हुआ ही, उन्ह एक विश्वजनीन दष्टिकोण भी प्राप्त हुआ। इससे उन्ह विश्व के विकास की एकल प्रक्रिया की जानकारी हुई और वे भारत के सामाजिक विकास के पृथक्त्व को गलत धारणा स मुक्त हा सके और यह समझ सके कि भारतीय राष्ट्रीय विकास विश्व के ही विकास का अग है। धीरे धीरे उनकी यह गलत समझदारी खतम हो गई कि भारत के विकास का अपना स्वतन्त्र और विशिष्ट नियम है और विश्व के विकास स इसका कोई सबध नही है। राष्टीय विशिष्टताओ की उपेक्षा किए बिना भी, उन्होन यह समझा कि जिन नियमो से दूसरे समाजा का विकास होता है, उन्ही नियमा मे भारतीय समाज का भी विकास होता है।

भारत पर अग्रेजो की विजय और उनक शासन न जिस नए राजनीतिक एव आर्थिक वातावरण की सष्टि की उसके कारण भारतीयो का ऐसी नई समस्याओ का सामना करना पडा जिनका समाधान पुरानी भारतीय सस्कृति म नही था।

उदाहरणाथ, वृहत्तर उद्योगीकरण और उन्नतिशील कृषि के विकास स जिन आर्थिक समस्याओ का सजन हुआ उनके समाधान के लिए गोखले रानाडे, गाडगिल, या के० टी० शाह जसे भारतीय अथविदो का ऐडम स्मिथ, रिकार्डो लिस्ट या माक्स के अथशास्त्र सबधी सद्धातिक निरूपणो की शरण लनी पडी। अथशास्त्र के रचयिता चाणक्य या महाभारत के कवि वेदव्यास के पास इन नइ आर्थिक समस्याओ का कोई समाधान नहीं था।

प्रबुद्ध लोगो के वग का साधारण जनता पर बहुत वडा वचारिक प्रभाव पडता ह। भारत म आग बढे बुद्धिवादी लाग जिन्होने अग्रेजी के माध्यम मे विश्व का आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान आत्मसात किया, यह ज्ञान अपनी जनता का भी दने लग। इनम स कुछ न विभि न देशी भाषाओ मे वज्ञानिक ग्रथो कला का दष्टि से श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओ और राजनीतिक, आर्थिक और समाजशास्त्रीय महत्व की पुस्तका का अनुवाद भी किया। अग्रेजी किताबो स मिले विचारो और वैज्ञानिक तथ्यो के आधार पर उन्होने स्वतत्र रचनाए भी की। उन्होने जनता के उस वग को जो पढा लिखा तो था लकिन जिसे अग्रजी का ज्ञान नहीं था, ससार का ज्ञान प्राप्त करन म मदद दी। वार्ताओ और व्याख्यानो द्वारा इस नए विद्वत्समाज न नए विचार और तथ्य निपढ और निरक्षर लोगो का भी दिए। इससे साधारण जनता की भी दष्टि व्यापक हुइ और उनका ज्ञानवद्धन हुआ।

अग्रेजी भाषा न देश भर म शिक्षित भारतीयो के बीच सधारण सप्रेषण के माध्यम के रूप म, सामाजिक राजनीतिक और वज्ञानिक रुचि के विभिन्न विषयो पर राष्टीय स्तर पर विचारो के आदान प्रदान के माध्यम के रूप म काम किया। शुरू क दिनो म राष्ट्रीय काग्रेसो और सम्मलनो म अभिव्यक्ति क माध्यम के तौर पर इसका बहुमूल्य योगदान रहा।

आधुनिक शिक्षा और तज्जन्य पाश्चात्य सस्कृति से सपक की अत्यत प्रगति शील भूमिका थी और इसका सबस बडा प्रमाण तो यही है कि आर्थिक राज नीतिक, सामाजिक धार्मिक और सास्कृतिक सारे प्रगतिशील आन्दोलनो क लगभग सभी नता अग्रेजी शिक्षा प्राप्त बुद्धिवादी वग के थे। लगातार बढत हुए और गहर होते हुए राष्ट्रीय आदोलन क नताओ म अधिकाश आधुनिक पद्धति से ही शिक्षित हुए थे।

आधुनिक शिक्षा की उन्नति की आवश्यक शर्ते

आधुनिक बुद्धिजीवी और शिक्षित मध्यम वग के विकास के बावजूद अधिकाश भारतीय निरक्षर थे। उनकी गरीबी ही इसका मुख्य कारण थी। जनसाधारण की निरक्षरता का सवाल उनकी गरीबी के सवाल स जुडा हुआ था और इसलिए उनकी निरक्षरता का खतम करन के लिए गरीबी को खतम करना जरूरी था।

हम दख चुके है कि इस गरीबी का कारण था भारतीय अथव्यवस्था का उपनिवेशी रूप, उसके चलत उत्पादन की शक्तियो का स्वल्प विकास और परपरा

से चली आ रही भूमि व्यवस्था और पुराने आर्थिक संबंध। इसलिए लोगों की गरीबी खतम करने का अर्थ था राष्ट्रीय स्वातंत्र्य, निहित स्वार्थों के बदले भारतीय जनता के हाथों में शक्ति और राष्ट्रीय सामाजिक-आर्थिक नवनिर्माण के लिए व्यापक परियोजना। जब उत्पादन के साधन समाज के हाथ में हों, तभी ऐसी योजना पूरी तरह सार्थक हो सकती है। स्वतंत्र और आर्थिक तौर पर समृद्ध देश ही ऐसा बजट बना सकता है जो जनसाधारण की शिक्षा और सामाजिक सेवाओं पर भरपूर ध्यान दे सके।

जनसाधारण की निरक्षरता के पूर्ण समाधान और लोगों के बीच अर्वाचीन युग के समृद्ध वैज्ञानिक और कलात्मक संस्कृति के व्यापक प्रसार का सवाल राष्ट्रीय आजादी और उत्पादन के साधनों के समाजीकरण के प्रश्न से जुड़ा हुआ था।

संदर्भ

1 ट्रिवेलियन पृ० 168।
2 मैकाले ज मिनिट 1935 टामसन एंड गैरेट द्वारा उद्धृत पृ० 66।
3 आ मला पृ० 134।
4 वही पृ० 138।
5 वही पृ० 139।
6 सैयद नूरुल्ला एंड नायक पृ० 92।
7 देखें टामसन एंड गैरट।
8 हास काहन पृ० 34-35।
9 आ मत्री पृ० 658 59।
10 राजा राममोहन राय 471 74।
11 लास्की पृ० 18 और उसके आगे।
12 देखें हाम काहन पृ० 117।
13 सैयद नूरुल्ला एंड नायक पृ० 67।
14 सिलेक्शन फ्राम एजुकेशनल रेकार्ड्स जिल्द I पृ० 130 31।
15 वही जिल्द II पृ० 16 17।
16 सैयद नूरुल्ला एंड नायक पृ० 179।
17 वहा पृ०181।
18 वही।
18 वही।
20 गोखले स्पीचेज पृ० 23 35।
21 रिपोर्ट आफ द हार्टोग कमेटी पृ० 31 क्विनक्वेनियल रिव्यू आफ द प्रोग्रेस आफ एजुकेशन इन इंडिया 1927 32 जिल्द I पृ 3।
22 परुलकर पृ० 110-11।
23 दत्त पृ० 78।
24 मारल एंड मटीरियल प्रोग्रेस आफ एजुकेशन इन इंडिया 1923 24 पृ० 22।

25 ब्युकनन पृ० 479।
26 वही, पृ० 480।
27 शलवक्र पृ० 54 55।
28 वी० सी० पाल बक द्वारा उद्धत पृ० 150।
29 गाखले पृ० 74 75।
30 हास काहन पृ० 118।
31 दत्त पृ० 271।

10

ब्रिटिश शासन काल मे भारत का राजनीतिक और प्रशासनिक एकीकरण

प्राक्-ब्रिटिश भारत मे आधारभूत राजनीतिक और प्रशासनिक एकता का अभाव

केंद्रीय राज्य सत्ता की स्थापना ब्रिटेन की भारत विजय का एक महत्वपूर्ण परिणाम था और इसके कारण भारत के इतिहास म पहली बार देश का वास्तविक और आधारभूत राजनीतिक एव प्रशासनिक एकीकरण हुआ। प्राक ब्रिटिश भारत म ऐसी एकता का सवथा अभाव था और यह निरतर विभिन्न सामती प्रदेशो म बटा रहा, जो अपनी सीमाए बढाने के लिए प्राय आपस म लडते रहते थे। अशोक, समुद्रगुप्त और अकबर जस महान राजाओ के शासन काल म सारे भारत को एक राजकीय सत्ता और प्रशासनिक व्यवस्था म लाने के प्रयत्न अवश्य हुए थे। भारत के बहुत बडे भूखड को ये सम्राट अपने शासनसूत्र मे बाध भी सके, लेकिन जो राज नीतिक और प्रशासनिक एकता ये ला सके वह नाममात्र की ही रही, क्योकि जिन हजारो लाखो स्वशासित गावो म भारत की बहुसख्यक जनता रहती थी उनमे कोई चरित्रगत परिवतन नही आया। ये गाव चिरकाल स स्वशासित गणतत्र थ। इन गावो का वास्तविक शासन गाव और जाति की पचायतें चलाती थी।

'गाव आत्मपोषक और स्वशासित इकाइयो के रूप मे सगठित थे। उनकी स्वायत्तता एक शिथिल शासन व्यवस्था का अग थी। सावभौम सत्ता स्थानीय जाति सगठनो को अपने सीमित क्षेत्रो म काय करने के लिए स्वतत्र छाड देती थी। प्रत्येक गाव अपन निवासियो के सामाजिक क्रियाकलाप को सगठित करता था और स्वतत्र इकाई था।'[1]

एकीकृत राष्ट्रीय अथतत्र और आवागमन के व्यापक एव समथ साधनो के अभाव म प्राक ब्रिटिश युग म भारत का सार्थक राजनीतिक और प्रशासनिक ऐक्य सभव भी नही था। यूरोप के केंद्रीभूत राज्यो के उदय के इतिहास से स्पष्ट है कि ऐसे राज्यतत्र का विकास एकीकृत राष्ट्रीय अथतत्र और तीव्र आवागमन के सुचारु साधन से अभिन्न तौर पर जुडा हुआ है।[2]

प्राक ब्रिटिश भारत मे भी एकता की भावना विद्यमान थी और फली फूली

भी। लेकिन यह देश की भौगोलिक एकता और हिंदुओं की धार्मिक सांस्कृतिक एकता की धारणा थी। भारत 'भौगोलिक और धार्मिक दृष्टि से अविच्छिन्न था।'[3] जा मेली न कहा है जिनकी अपनी एक सम्मिलित भाषा नहीं, जो सामाजिक और राजनीतिक तौर पर खंडों म विभाजित थे लेकिन जिनकी सहानुभूति समधर्म पर आधारित थी, उनमे परस्पर एकता लाने का काम हिंदू धर्म ने किया।[4]

लेकिन ऐसी सामाजिक और ऐतिहासिक स्थिति म समस्त भारतीय जनता की राजनीतिक एकता का प्रश्न ही नहीं था। लोग सामाजिक और आर्थिक तौर पर भी एक नहीं थ। अंग्रेजों ने भारत मे जिस नए प्रकार के केंद्रीय राज्यतंत्र की स्थापना की वह सारे देश म परिव्याप्त था।

न्यायिक एकता

अंग्रेजों ने सारे देश म समरूप न्यायतंत्र की स्थापना की। उन्होंने कानून बनाए और उन्हें संहिताबद्ध किया। ये कानून राज्य के सभी नागरिकों पर लागू थे और न्यायालयों की श्रेणीबद्ध व्यवस्था द्वारा लागू किए जाते थे। सरकार के न्यायिक पदाधिकारी सरकारी न्याय की व्याख्या करते और हर गाव और शहर म उसका सपोषण संरक्षण करते थ। इस तरह देश म लोअर कोर्ट, डिस्ट्रिक्ट कोर्ट हाई कोर्ट और अंतत फेडरल कोर्ट और प्रिवी काउंसिल की व्यवस्था कायम हुई।

कानून और कचहरियों की नई व्यवस्था स्थापित कर अंग्रेजों न परंपरागत विधि व्यवस्था को स्थानच्युत कर दिया और गाव और जाति की पंचायतों स पुराने कानून को लागू करने वाले अधिकार ले लिए। समरूप विधि व्यवस्था के अभाव म पुराने कानून हर जगह भिन्न भिन्न थे।

अंग्रेजों द्वारा लाया गया न्यायतंत्र परंपरागत विधि व्यवस्था से अधिक समतावादी था क्योंकि पुरानी व्यवस्था म जाति जाति म और संप्रदाय संप्रदाय म विभेद था, जिसे धर्म का समर्थन प्राप्त था। धर्म श्रेणीबद्ध जाति व्यवस्था और अन्य विभेदों को पवित्र मानता था।

नई व्यवस्था कानून की दृष्टि म सभी नागरिकों की समानता के गणतांत्रिक सिद्धांत पर आधारित थी। प्राक ब्रिटिश भारत मे एक ही अपराध के लिए ब्राह्मणों को गैर ब्राह्मणों से हलकी सजा मिलती थी। किसी की जाति और उसका धर्म चाहे जो हो नए कानून की दृष्टि म प्रत्येक नागरिक बराबर था। और ये कानून राज्य के सारे भूभाग म लागू थे। इस तरह भारतीय इतिहास मे पहली बार, अंग्रेजों के शासन काल म यूरोपीयों के लिए पक्षपातपूर्ण विभेद के बावजूद जनतांत्रिक आधार पर भारत का न्यायिक एकीकरण हुआ।

प्रशासनिक एकता

अंग्रेजों ने एक और प्रगतिशील काम किया। उन्होंने श्रेणीबद्ध लोकसेवाओं की स्थापना द्वारा देश का प्रशासनिक एकीकरण संपन्न किया। इस तरह साम्राज्यिक,

प्रादेशिक और अवर (अधीनस्थ) सेवाओ का निर्माण हुआ जो केंद्रीय राज्य सत्ता का कार्यकारिणी पक्ष था। प्राक ब्रिटिश भारत म जब देश का बहुत बडा भाग राजा के मातहत रहा, तब भी देश का मूलभत वास्तविक प्रशासनिक एकीकरण नही हुआ था, क्योकि सम्राट के प्रतिनिधियो और पदाधिकारियो का देश के दूर-दूर के भागो म रहने वाले साधारण लोगो के जीवन से कोई सबध नही रहा, सिवा इसके कि व गावो से लगान वसूल करें, सना जमा करें, सम्राट के लिए खिराज इकट्ठा करें, नागरिको से उनके प्रतिनिधियो या सगठनो के जरिए सिंचाई और सडक निर्माण जसे कुछ काम करावें या कभी कभी खुद एसे काम करें। गावो म गाव और जाति की पचायतें ही वस्तुत सरकार या प्रशासन का सारा काम करती थी। ये पचायतें ही गाव के किसान परिवारो म जमीन का बटवारा करती थी, कारीगरो और किसानो के सबध का नियमन करती थी शिक्षा, सफाई, झगडा के फैसले आदि के काम को अजाम देती थी। राज्य केवल फसल म अपन हक का दावेदार था और गाव के प्रशासन का काम ग्राम समुदाय के जिम्मे था। अग्रेजो न जो प्रशासनिक पद्धति शुरू की वह इसके विपरीत थी सरकार ने गाव और जाति की पचायतो स उनका काम ले लिया और गाव की अदरूनी हालत की देख भाल का भी जिम्मा अपने पर ल लिया। अब सरकार द्वारा बहाल अफसर गाव के हर काम की देखभाल करत थ और वे गाव की जनता के बदले केंद्र की सरकार के प्रति जवाबदेह थे। स्वशासक गाव अब देशव्यापी प्रशासनतत्र की इकाई भर रह गया।

भारतीय इतिहास मे पहली बार ब्रिटिश शासन की स्थापना के कारण देश का व्यापक और मूलभूत राजनीतिक, प्रशासनिक और न्यायिक एकीकरण हो सका। भारत मे जो नई अर्थव्यवस्था कायम हुई उसके कारण इस तरह का शासन-तत्र आवश्यक था। भारत के पूजीवादी आर्थिक परिवर्तन न गावो के क्षुद्र पथक विभिन्न अर्थतत्रो को समाप्त कर दिया, नए विनिमय सबधो द्वारा भारतीय जनता का आर्थिक रूप से समन्वित किया और अनुबध को आर्थिक सबधो का मूलाधार बनाया। ब्रिटिश सरकार ने व्यक्तिगत सपत्ति के सिद्धात के आधार पर एक नई भूमि व्यवस्था की स्थापना की और मुद्रा-अर्थ की शुरुआत की। नए भूमि सबधो की स्थापना और उनके नियमन के लिए समरूप न्यायिक व्यवस्था की आवश्यकता थी और नई व्यवस्था से नए आनुबधिक क्रियाकलाप जसे क्रय विक्रय, जमीन का गिरवी बधक रखने आदि की जरूरत पडी।

समरूप मुद्रा व्यवस्था

ब्रिटिश शासन काल म केवल पण्य वस्तुओ का उत्पादन होता था। भारत दुनिया की मडी से पहल की अपेक्षा अधिक व्यापक रूप म सबद्ध हो गया था। भारत के देशी और विदेशी व्यापार क क्षेत्र और परिमाण दोनो बढे। पूजीवादी आधार पर आधुनिक उद्योग लगातार विकसित हुए। एसी आर्थिक व्यवस्था के कारण जो

नए आनुवंशिक और अन्य प्रकार के जटिल संबंध विकसित हुए उनके नियमन के लिए नए राज्य को तरह तरह के कानून बनाने पड़े। किसान और जमींदार मजदूर और मालिक, उद्योगपति व्यापारी और बैंकर (धनपति) आदि के पारस्परिक संबंधों के निरूपण और संचालन के लिए तथा भारत और विदेशों के व्यापारिक और अन्य प्रकार के संबंधों के लिए नए कानून बने। देश में नई समरूप मुद्रा व्यवस्था की भी आवश्यकता पड़ी।

नए राज्य ने शिक्षा का भी उत्तरदायित्व संभाला। यह आवश्यक भी था क्योंकि नए अर्थतंत्र और प्रशासनतंत्र के लिए आधुनिक उदारवादी, वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा में प्रवीण लोगों की आवश्यकता थी। अंग्रेजों द्वारा स्थापित नए राज्य ने भारत और भारत के लोगों को एकताबद्ध किया, जैसा इसके पहले कभी कोई शासन या राज्यतंत्र नहीं कर सका था। पहली बार भारत की जनता के आर्थिक और सामाजिक जीवन का अधिकांश विश्वजनीन और समरूप विधि व्यवस्था द्वारा संचालित हुआ।

एकीकरण की त्रुटियां

ब्रिटिश शासन ने भारतीय जनता का जो राजनीतिक न्यायिक और प्रशासनिक एकीकरण किया अब हम उसकी प्रमुख त्रुटियों की चर्चा करेंगे। 1857 तक भारतीय भूभाग के अधिक से अधिक अंश को सीधे ब्रिटिश शासन के मातहत लेने की प्रक्रिया लगातार चलती रही। लेकिन जब भारत का शासन ईस्ट इंडिया कंपनी से ब्रिटिश सरकार ने ले लिया तो रानी विक्टोरिया की घोषणा द्वारा यह तय हुआ कि बाकी बचे देशी राजाओं के राज्यों पर अब कब्जा नहीं किया जाएगा। ये देशी राज्य अंग्रेजों की श्रेष्ठतर शक्ति द्वारा समाप्त किए जा सकते थे लेकिन ये बचे रह गए और ब्रिटिश शासन के छोटे छोटे स्तंभ के तौर पर काम करते रहे।

इन छोटे और बड़े बहुतेरे सामंती राज्यों के रहने के कारण एक राज्यतंत्र के रूप में भारत के राजनीतिक और प्रशासनिक एकीकरण की प्रगतिशील प्रक्रिया सीमित सी रही। भारत दो भागों में विभाजित रहा एक देशी रजवाड़ों द्वारा शासित, दूसरा ब्रिटिश सरकार द्वारा। इस विषय पर कापलैंड का कहना है इन दो विभिन्न क्षेत्रों में सरकार के आधार और रूप बिल्कुल भिन्न थे।" कोपलैंड ने आगे यह भी कहा है कि, देशी राज्यों और ब्रिटिश भारत का यह विभाजन भूगोल के परे है देशी राज्य बेतरतीब तौर पर नक्शे पर बिखरे हैं जहां तहां ब्रिटिश भूखंड उनके क्षेत्रों से बिल्कुल जुड़ा हुआ है।'[6]

इन देशी राज्यों के शासक निरंकुश और स्वेच्छाचारी थे लेकिन इनकी आर्थिक संरचना में परिवर्तन हुए। ब्रिटिश भारत में भूमि और भूमिकर की जो नई व्यवस्था स्थापित हुई, उसे उन्होंने अपने यहां भी लागू किया। आत्मनिर्भर और स्वशासित गांव इन राज्यों के क्षेत्रों में भी खतम हुए। बड़ौदा, मैसूर और त्रावनकोर जैसे कुछ आगे बढ़े राज्यों ने अपने यहां लगभग वही प्रशासनिक व्यवस्था

चालू की जो ब्रिटिश भारत म चल रही थी। उन्होने समरूप विधिव्यवस्था भी स्थापित की और कानून की पाबदी के लिए कचहरिया की स्थापना भी की। फिर भी, ये राज्य पथक सरकारी एव प्रशासनिक इकाइया थे और य ब्रिटिश भारत एव एक दूसरे से भी पथक रहे।

ब्रिटिश भारत के राजनीतिक एव प्रशासनिक एकीकरण की एक चारित्रिक विशेषता यह भी थी कि जिस राज्यतत्र ने यह प्रगतिशील काम किया वह विभिन्न चरणो म ब्रिटिश पार्लियामट क अधिनियमो द्वारा निरूपित सविधान के अनुसार विकसित हुआ था। जिस सविधान ने ब्रिटिश भारत क राज्यतत्र का निरूपण किया, वह भारतीय जनता के चुने हुए प्रतिनिधियो की सविधान सभा द्वारा पारित नही हुआ था। फलस्वरूप भारत की ब्रिटिश सरकार कानूनन और नियमत ब्रिटिश पार्लियामट क प्रति जिम्मेदार थी, न कि भारतीय जनता के प्रति जिस पर यह शासन करती थी। भारत म अग्रेजो द्वारा स्थापित राज्यतत्र का यह एक अवश्यभावी अजनतात्रिक वैशिष्ट्य था।

चूकि यह नया राज्य ब्रिटेन की भारत विजय का परिणाम था। इस लिए ऊपर गिनाई गई त्रुटिया अवश्यभावी थी। यह राज्य मूलत और प्रथमत ब्रिटिश पूजी की राजनीतिक आर्थिक और युद्धनीतिक आवश्यकताओ और उसके हितो की पूर्ति क लिए बनाया गया था। इसलिए ऐतिहासिक दष्टि से प्रगतिशील कुछेक तत्वो के बावजूद इसम त्रुटिया और कमजोरियो का होना लाजिमी था।

देशी आबादी पर विदेशी सरकार का शासन, यह विरोध भारतीय राष्ट्रवादी आदोलन के जन्म का एक मूल कारण था।

> 'अग्रेजो न सारे भारतीयो को कायक्षम राज्य व्यवस्था के अधीन लाकर और उन्हे पश्चिम के विचारो स परिचित कराकर तो उनमे राष्ट्रीय चेतना जगाई ही, साथ ही एक विदेशी जाति के साथ सपक का जो स्वय अपनी राष्ट्रीयता और अपने वण भाव से उत्प्रेरित थी, यह स्वाभाविक असर पडा कि विजित जाति म भी एसे ही भावो का उद्भव हुआ ।
>
> ब्रिटिश शासन स भारतीयो को यह जानकारी तो प्राप्त हुई थी कि उनकी अपनी कुछ सम्मिलित पारस्परिक विशिष्टताए है, उनक अपने सम्मिलित स्वाथ भी बन और विरोध का सम्मिलित आधार भी प्रस्तुत हुआ।'[7]

भारतीय जनता मे ज्यो ज्यो राजनीतिक चेतना आई वस वस उ होन प्रशासनिक सुधार, नौकरियो के भारतीयकरण प्रतिनिधि सस्थाए, जातिगत पक्षपात और भेदभाव की समाप्ति मताधिकार, निर्वाचित विधायिका सभाए इन विधायिका सभाओ क प्रति जवाबदेह कायकारिणी, नागरिक स्वातत्र्य, आत्म शासित उपनिवेशो जसे सविधान, और फिर भारतीय जनता के लिए सविधान

बनाने व एकमात्र अधिकारी संविधान सभा की स्थापना आदि मांगों के लिए आंदोलन का संगठन किया।*

वस्तुतः इन लोगों ने राज्य व्यवस्था के लोकतंत्रीकरण का प्रयास किया और इस बात की कोशिश की कि प्रशासनिक अगुआई और राजनीतिक सत्ता धीरे धीरे अंग्रेजों के हाथ से हटकर भारतीय जनता के हाथ में आ जाए। इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन मूलतः जनतांत्रिक आंदोलन था।

इस बात का खयाल रखना चाहिए कि राष्ट्रीय आंदोलन ने अंग्रेजों द्वारा स्थापित भारत के राजनीतिक और प्रशासनिक एकीकरण को कायम रखना चाहा, क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से यह आगे बढ़ा हुआ कदम था। इसने आत्म शासित गांव और प्राक् ब्रिटिश इंडिया के सामंती भारत के राजनीतिक और प्रशासनिक अनैक्य को पुनर्जीवित करने का प्रयास नहीं किया। भारतीय राष्ट्रवादियों ने राज्य व्यवस्था का जनतांत्रिक आधार देने की कोशिश की। इनमें सबसे आगे बढ़े हुए तत्वों ने अंततः भारतीय जनता के लिए स्वतंत्र सार्वभौम राज्यसत्ता का उद्देश्य सामने रखा।

संदर्भ

1 आ मनी पृ० 34।
2 देखकार।
3 आ मनी पृ 1।
4 वही।
5 वापनड पृ० 7।
6 वही पृ० 14।
7 कार पृ० 153।

*भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का आधार बहुवर्गीय था और यह विदेशी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध था। प्रत्येक सामाजिक वर्ग या दल ने अपनी मांग सामने रखी जो उस वर्ग के हितों आकांक्षाओं का प्रतिफल था। लेकिन प्रायः ये दल नागरिक स्वातंत्र्य स्वराज्य और ऐसी अन्य सम्मिलित मांगों के सवाल पर एकजुट थे।

भारत का राष्ट्रीय आंदोलन भारत की जनता के लिए स्वतंत्र सार्वभौम राज्य की मांग करने की स्थिति में पहुंच गया था लेकिन भारत के भावी राज्यतंत्र के बारे में विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले विभिन्न दलों की अपनी अलग-अलग राय थी। मुस्लिम लीग तो इस पक्ष में थी कि भारत का हिंदू और मुस्लिम सार्वभौम राष्ट्रों में विभाजन हो जाए लेकिन बाकी सारे दल और संगठन अल्पसंख्यकों के लिए आत्मनिर्णय का सिद्धांत मानते हुए भी, ब्रिटेन द्वारा लाए गए एक राष्ट्र और एक राज्य के अस्तित्व को बनाए रखना चाहते थे। फिर भी कुछ लोग तो आधुनिक पूंजीवादी अवधारणा पर आधारित जनतांत्रिक भारतीय राज्य चाहते थे जबकि दूसरे कुछ दल जैसे आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस और समाजवादी अवधारणा पर आधारित समाजवादी राज्य चाहते थे।

11

भारत मे नए सामाजिक वर्गो का उदय

नए सामाजिक वर्गो का असमान उदय

नए मामाजिक वर्गों का उदय अग्रेजी शासनकाल म नए सामाजिक अ र्थतत्र नई राज्य व्यवस्था नए प्रशानतत्र और नई शिक्षा का सीधा परिणाम था।[1] अतीत के भारतीय समाज म नए वग नही थ। ये तो नई पूजीवादी व्यवस्था की देन है जो अग्रेजो की भारत विजय और विदेशी अथतत्र के भारत पर पडे प्रभाव के कारण इस देश मे आइ। भारतीय समाज क मूलभूत पूजीवादी आर्थिक रूपातरण के फलस्वरूप यहा की जनता अब नए सामाजिक दलो और नए वर्गो म नए सिरे से सगठित हुई।

लेकिन देश के विभिन्न भागो और विभिन्न समुदायो म नए सामाजिक वर्गो के उदय की प्रक्रिया वडी विपम रही। इसका कारण यह था कि नया सामाजिक अथतत्र, समय और क्षिप्रता दोनो दष्टियो स, असमान रूप मे विकसित हुआ, क्योकि इसका प्रसार भारत म अग्रेजो की राजनीतिक प्रभुता के प्रसार पर निभर रहा। भारत पर अग्रेजो की विजय जिसके कारण भारत की अथव्यवस्था म आमूल परिवतन हुए कोइ समकालिक घटना नही थी। भारत पर ब्रिटेन न अपनी प्रभुता कई किस्तो और कई चरणो म स्थापित की। देश के विभि न भाग अपनी राजनीतिक दासता के क्रम म पूजीवादी परिवतन की दिशा म आग बढे। इसलिए जो प्रात अग्रेजो के प्रभाव म पहले आए वहा इन नए सामाजिक वर्गो का जन्म पहले हुआ। बगाल मे अग्रेजो का शासन सबसे पहले कायम हुआ और यही अग्रेजी मरकार न भारतीय इतिहास मे पहली बार जमीदारी के रूप म निजी सपत्ति की सृष्टि की। इसलिए बगाल म ही सवप्रथम पटटेदार और जमीदार जसे दो नए वर्गो की स्थापना हुई। बगाल और बम्बई म ही सवप्रथम जूट और सूती कपडे के कारखानो जस उद्योगो की स्थापना हुई और सवहारा और उद्योगपति जैसे नए वर्गो का जन्म हुआ। इसी वजह से सबस पहले इन्ही प्रातो म ब्रिटेन ने व्यापक और जटिल प्रशासनिक व्यवस्था कायम की और नई शिक्षण सस्थाओ का निमाण किया, जहा आधुनिक विज्ञान औषधि शास्त्र, कानून इत्यादि की शिक्षा दी गई,

जिससे इन प्रातो म ही सबस पहल पशेवर वर्गा का ज म हुआ।

फिर भी चूकि अत म अग्रेजो न सपूण भारत पर कब्जा कर लिया, इसलिए नए सामाजिक अथतत्र प्रशासनिक व्यवस्था और आधुनिक शिक्षा का सारे दश म प्रचार हुआ और सारे दश म नए सामाजिक वर्गा का उदय हुआ।

विभिन्न समुदायो म भी नए सामाजिक वर्गा क उदय की प्रक्रिया विषम रही। इसकी वजह यह थी कि कुछ समुदाय प्राक ब्रिटिश काल म भी विशिष्ट आर्थिक सामाजिक और शक्षिक पशा म लग थे। उदाहरणाथ बनिया लाग व्यापारी और सर्राफ का काम करते थ और ब्राह्मण लोग हिंदुओ की शिक्षा दीक्षा के लिए जिम्मेदार थे। नए सामाजिक पर्यावरण म बनिया लोग (पारसी लाग भी) सबसे पहले आधुनिक पूजीवादी व्यापार और बैंकिंग क क्षेत्र म आग आए और इस तरह वाणिज्यिक और वित्तीय बुजुआजी का ज म हुआ। इसी तरह ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाए गए नए शिक्षातत्र को सबस पहल ब्राह्मणो ने ही अपनाया और इस तरह उनके बीच आधुनिक बुद्धिवादी और शिक्षित मध्यम वग का ज म हुआ। प्राक ब्रिटिश काल म मुसलिम समुदाय के अभिजात वग का रुपए के लेन-देन या मध्ययुगीन व्यापार तत्र स काइ सबध नही था। इस वग क लाग मुख्यत प्रशासनिक और अय सवाआ म लगे थे। य प्राय उत्तरी भारत म रहते थे जो बहुत बाद म अग्रेजो के प्रभाव म आए। बगाल की बहुसख्यक मुसलिम आबादी मुख्यत गरीबो की थी। इसलिए आधुनिक बुद्धिवादी वग, शिक्षित मध्यम वग और बुजुआजी का ज म मुसलिम सप्रदाय म हिंदू सप्रदाय की अपक्षा बहुत बाद मे हुआ।[5] (दखे अध्याय 9 और 19)।

नए सामाजिक वर्ग

अब हम उन सामाजिक वर्गो क नाम गिनाएग जो ब्रिटिश शासन के दिना म भारत म आविर्भूत हुए। कृषि के क्षेत्र म मुख्यत ये वग थे (1) ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाया गया जमीदार वग (2) अयत्रवासी भूस्वामी (3) जमीदार और अ यत्रवासी भूस्वामिया के मातहत पटटेदार, (4) काश्तकार मालिको का वग, जिसकी उच्चतम मध्यम और निम्न तीन श्रणिया थी, (5) खतिहर मजदूर (6) व्यापारिया का नया वग, और (7) सूदखोर महाजना का नया वग।

नगरो मे ये वग मुख्यत निम्नलिखित थ (1) वाणिज्यिक और वित्तीय पूजीपतियो आर उद्योगपतिया का वग (2) औद्योगिक आवागमन के साधन सबधी खनिज विषयक और ऐसे अ य कार्या म लग आधुनिक मजदूर वग, (3) आधुनिक पूजीवादी अथव्यवस्था से बधा छोटे व्यापारिया और दुकानदारा का वग, (4) पेशेवर वग, टेक्नीशियन, डाक्टर वकील प्रोफेसर, पत्रकार मनजर, किरानी और अय लोगा का पशेवर वग, जिसम बुद्धिवादिया आर शिक्षित मध्यम वग के लोग ह।

नए वर्गो के उदय के कारण

मूलत ब्रिटिश सरकार के अधिनियमो (जसे नए प्रकार के भूमि सबध) द्वारा लाए गए आधारभूत आर्थिक परिवतन, भारतीय समाज मे बाहर की पूजीवादी दुनिया के वाणिजियक और अय प्रकार के तत्वो के प्रवेश और भारत म नए उद्योगो की स्थापना क कारण ही य नए वग उदित हुए।

ब्रिटिश सरकार ने जमीदारी और रयतवारी प्रथा के द्वारा जमीन पर निजी मिलकियत की शुरआत की और इससे जागीरो क मालिका एव जमीदारो और खेतिहर मालिका के वग का जम हुआ। फिर, जमीन को पटटे पर देने के अधिकार की गुरुआत स बटाईदारो और पटटेदारा के वर्गों का जम हुआ, तथा जमीन की खरीद बिकी क अधिकार और जमीन पर मजदूर लगान क अधिकार की शुरुआत के कारण अन्यत्रवासी जमीदारा आर कृपक सवहारा वग के उदय क लिए स्थिति तैयार हुई।

1853 म मावस न लिखा जमीदारी और रयतदारी दोना व्यवस्थाए अग्रेजा द्वारा लाइ गइ कृपिक क्रातिया थी, और एक दूसरे की विरोधी थी। इनम पहली अभिजातनत्रीय और दूसरी जनतात्रिक थी। जमीदारी प्रथा अग्रेजी भूस्वामित्व का विकृत रूप थी आर बटाईदारी प्रथा फ्रासीसी किसान मिलकियत का। हालांकि दाना व्यवस्थाए थी, बिल्कुल विराधी तत्वा के सम्मिश्रण स कोई भा न तो जमीन जोतने वालो के हित म थी और न जमीन के मालिक के हित म। केवल भूमि कर लगान वाली सरकार को इन व्यवस्थाओ से फायदा थ।'[4]

इस नई आर्थिक व्यवस्था की आर्थिक तार्किक परिणति के रूप मे जमीदारी क्षेत्रा म जमीदारा और खेती करने वाल किसाना के बीच मध्यस्थो की श्रेणीबद्ध श्रृखला का विकास हुआ, और रयतदारी क्षेत्रा म खेती करने वाले किसानो और राज्य के बीच सूद पर रुपया लगान वाल महाजनो दूरस्थ जमीदारो और बडे व्यापारिया जस मध्यस्था की श्रृखला बनी। कृषि वाले अध्याय म जिन तत्वा की गिनती और चर्चा की जा चुकी है उनक कारण भारत म इग्लड और अमरीका के पूजीपति जमीदारो के वग का उदय नही हो सका, और न फ्रास की तरह आर्थिक तौर पर स्थिर और समृद्ध सबल किसान मालिको का ही वग पनप सका।[5]

इसके विपरीत भारत मे जमीदार, पटटेदार, किसान मालिक खेत मजदूर के साथ ही खेती वाल क्षेत्रा मे बड पैमाने पर आधुनिक सूदखोर महाजन, व्यापारी जा किसान और मडी के बीच मध्यस्थ का काम करत थे दूरस्थ जमीदार जो कर की वसूली म ही रुचि रखत थे आदि के नए वग पदा हुए। प्राक ब्रिटिश भारतीय समाज म एसे वग नही थ।

प्राक ब्रिटिश भारत के देहाती क्षेत्रो म सूदखोर महाजना और व्यापारियो के वग ता थे लकिन समाज म उनके स्थान और काय पुराने समाज की तुलना म बिलकुल भिन थ। पुराने भारतीय समाज म सूद पर रुपया चलानेवालो की स्थिति

और भूमिका नगण्य थी। वे यदाकदा किसान या कारीगर को उधार पैसा देते थे, लेकिन गाव की पचायत सूद की दर निश्चित किया करती थी। फिर, अगर कोई किसान सूद की माग पूरा नही कर पाता तो सूदखोर किसान की जमीन या उसके हल-बैल पर कब्जा नही कर सकता था। इसी तरह पुरानी सामाजिक व्यवस्था मे गाव का व्यापारी बाहर की बनाई कुछेक चीजें ही लाता था। लेकिन नई भूमि व्यवस्था के लागू होने पर इन बनिया महाजनो की स्थिति बदली और उनका महत्व बढा। जब जमीन पर निजी मिलकियत आई और खेती के सामान की बिक्री होने लगी तो व्यापारी मध्यस्थ के रूप मे, देशी विदेशी बाजार मे सामान की बिक्री के लिए, किसान के लिए अपरिहार्य हो गए।

चूकि इनके काम इनकी भूमिका पहले से भिन्न थी, इसलिए कृषि के क्षेत्र मे आधुनिक व्यापारियो और सूदखोर महाजनो का वर्ग एक नया वर्ग माना जा सकता है। इनका सबध नए पूजीवादी अर्थतत्र से था और अब ये जो काम करते थे, वे प्राक ब्रिटिश मध्ययुगीन भारतीय समाज मे उनके काम से बिलकुल भिन्न थे। आधुनिक वाणिज्यिक बुर्जुआजी भी नवविकसित वर्ग था।

ब्रिटिश शासन मे कृषि उद्योग का देहाती एव शहरी सारा उत्पादन पण्य वस्तु हो गया। फलस्वरूप देशी शराब का विस्तार हुआ और देशी तिजारत करने वाले व्यापारियो का बहुत बडा वर्ग तैयार हुआ। ब्रिटिश शासन काल मे विदेशी बाजार से भी पहले की अपेक्षा अधिक बडे पैमाने पर व्यापार शुरू हुआ। इसके चलते आयात निर्यात मे लगे हुए बडे व्यापारियो के वर्ग का विकास हुआ। यह वाणिज्यिक बुर्जुआजी बहुत बडे पैमाने पर देशी विदेशी व्यापार मे लगी।

प्राक ब्रिटिश भारत मे भी देशी विदेशी व्यापार चलता था, लेकिन आयतन और विस्तार मे वह सीमित था। इसलिए प्राक ब्रिटिश भारत मे व्यापारी वर्ग बहुत छोटा था। देश के अर्थतत्र मे इसका महत्व और विशिष्ट बल बहुत कम था।

नई आर्थिक स्थिति मे जो नए वाणिज्यिक वर्ग उत्पन्न हुए वे प्राक ब्रिटिश युग के वैसे ही वर्गो से बिलकुल भिन्न थे। ये नए वर्ग कृषि और उद्योग के देहाती और शहरी सभी प्रकार के उत्पादनो की तिजारत करते थे। ये जमीदार, पट्टेदार और किसान मालिको से खेती के उत्पादनो की खरीद करते थे और उसे देशी और विदेशी बाजार मे बेचते थे। आधुनिक उद्योगो से भी वे माल खरीदते थे और भारत के अदर और बाहर उसे बेचते थे। प्राक ब्रिटिश भारत मे देश के उत्पादन का बहुत बडा अश बाजार की सीमा के बाहर था वह खरीद बिक्री के लिए नही था। इसलिए उस वक्त व्यापारी वर्ग की भूमिका नगण्य सी थी। अब उनकी भूमिका अत्यत प्रभावशाली और भव्य हो गई।

रलवे की स्थापना और भारतीय व्यापारी वर्ग एव जमीदार तथा पेशेवर वर्ग के कुछ सदस्यो के पास लाभ और बचत के पसो के जमा होने के कारण (क्योकि ये पैसे पूजी का काम कर सकते थे) भारतीय मिलकियत मे सूती कारखानो, खनिज उद्योगो और ऐसे ही अन्य भारतीय उद्योगो की स्थापना हुई और देश मे औद्योगिक

बुजुआजी के नए वग का ज म हुआ। इसके साथ ही अनिवायत आधुनिक सवहारा वग का भी ज म हुआ। भारतीय समाज म अब ऐसे नए समुदाय थे जैसे मिल मालिक, खान मालिक, नए पूजीवादी उद्योगा के अधिपति, फिर मिल मजदूर, खान मजदूर रलवे मजदूर बागान मजदूर आदि भी। ये वग और समुदाय प्राक् ब्रिटिश भारतीय समाज म न ता थे, न हो सकत थे क्योकि आधुनिक कारखाने, खान, बागान और रेलवे भारत म पहले नही थ।

भारत मे आधुनिक उद्योगा के उदय के साथ, आधुनिक बुजुआजी और मजदूर वग का भी ज म हुआ।[8] उन्नीसवी सदी के अतिम कुछेक दशका म और उसके बाद भारतीय उद्योगा की स्थापना और तरक्की हुई। जसे-जस इन उद्योगो म वद्धि हुई, वसे वैसे औद्योगिक बुजुआजी और मजदूर वग बढे।

आधुनिक वकील, डाक्टर नई शिक्षण सस्थाओ स सबधित शिक्षक और प्रोफेसर, आधुनिक वाणिज्यिक और औद्योगिक प्रतिष्ठाना मे काम करने वाल मनजर और किरानी राज्य के प्रशासन तत्र म काम करने वाले पदाधिकारी इजीनियर रसायनविद टेक्नोलाजिस्ट, कृषि अथविद, पत्रकार और अ य लोगा के नए पशेवर वग भी ब्रिटिश काल क भारत म आविर्भूत हुए। नए आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक सगठनो सस्थाओ के लिए आधुनिक कानून, टेक्नोलाजी औषधि विज्ञान, अथशास्त्र, प्रशासन विज्ञान और अ य विषयो म प्रवीण शिक्षित भारतीयो की आवश्यकता थी। नए वाणिज्यिक प्रतिष्ठाना और प्रशासनिक व्यवस्था की जरूरतो के कारण ब्रिटिश सरकार को भारत म तेजी से नई नई शिक्षण सस्थाओ को खालन के लिए बाध्य हाना पडा। नए राज्य और समाज की आवश्यकताओ को पूरा करन के लिए कानून वाणिज्य और अ य विषयो के स्कूल कालेज खोले गए। इस तरह ज्यो ज्यो नए प्रकार का समाज विकसित होता गया, वसे वैसे आधुनिक पेशेवर वर्गो का ज म और विकास हुआ। ये वग आधुनिक उद्योग कृषि, वाणिज्य, वित्त प्रशासन प्रेस और नए सामाजिक जीवन क अ य अगो उपागो से जुडे हुए थे। प्राक ब्रिटिश काल म इनका अस्तित्व नही था क्योकि उस वक्त इस तरह की सामाजिक, आर्थिक और वर्गीय व्यवस्था नही थी।

प्राक ब्रिटिश भारत म गाव और जाति की पचायत ही गावो के न्यायिक, प्रशासनिक और आर्थिक काय सपादित करती थी। गावो का बुद्धिजीवी वग महज देहाती शिक्षको और पुरोहितो का वग था जो सारे ग्रामीण समुदाय का सेवक था और लोगो के सास्कृतिक धार्मिक क्रियाकलाप के लिए जिम्मेदार था। शहरो म पढे लिखे, पडित और मौलाना, महान कलाकार और साहित्यिक, ज्योतिषि और खगोलशास्त्री, वैद्य और हकीम कारीगर और हस्तशिल्पविद रहत थे। लेकिन ये रजवाडो अभिजातवर्गीय लोगो और धनी व्यापारियो के मातहत काम करत थे और प्राय अपने मालिकों की जरूरतो को पूरा करन म लगे रहत थे। वे साधारण जनता के लिए अपन ज्ञान का उपयोग नही करत थे जनसाधारण को उनसे बहुत लाभ नही था। उनकी कलात्मक, वैज्ञानिक और तकनीकी सामर्थ्य

का लाभ मुख्यत उनके मालिकों का ही हो पाता था।[10]

आधुनिक पेशेवर वर्ग ब्रिटिश शासन काल में आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के प्रसार और नए समाज की जरूरतों के आधार पर विकसित हुए थे और प्राक ब्रिटिश काल के ऐसे ही दलों से बिल्कुल भिन्न थे। आर्थिक दृष्टि से उनका ज्ञान और उनकी कलात्मक वैज्ञानिक और तक्नीकी कार्यकुशलता अब उस नागरिक के लिए थी जो इसके लिए पैसा दे सकता था। सामाजिक तौर पर ये नवविकसित पूंजीवादी समाज के अभिन्न अंग थे। फिर, इनके पास आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान और कला का ज्ञान था। वकीलों ने ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाए और लागू किए गए कानून और विधिशास्त्र का अध्ययन किया, डाक्टरों ने आधुनिक औषधि विज्ञान का मनन किया इंजीनियर आधुनिक टेक्नालाजिकल विज्ञान से परिचित हुए, शिक्षकों ने आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, प्राकृतिक आदि विज्ञानों को पढा पढाया। पत्रकारों और लेखकों ने किताबें लिखी और अखबारों का संपादन किया जो बाजार में बिके और जिन्हें लोगों ने हजारों लाखों की तादाद में पढा मनेजरों और अफसरों ने राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से एकीकृत भारत के जटिल और विशद आर्थिक और प्रशासनिक राज्यतंत्र को चलाया और सारे राष्ट्र की जीवन संबधी समस्याओं को सुलझाया। यह एक नया सामाजिक वर्ग था जो इसी तरह के प्राक ब्रिटिश भारत के स्वल्प वर्ग से भिन्न था, क्योंकि उन दिनों शिक्षक वैद्य या कलाकार की प्रतिभा और क्षमता सीमित थी और उन पर या तो राजे-रजवाडों का एकाधिकार था या छोटे से ग्राम समुदाय का।

ऊपर गिनाए गए नए वर्गों के अलावा, नागरिक क्षेत्रों में हर शहर और महानगर में, छोटे दुकानदारों और बनियों का भी एक बहुत बडा वर्ग था जो आधुनिक शहरों और महानगरों के विकास का परिणाम था।

उत्तरजीवी पुराने वर्ग और उनकी परिवर्तित स्थिति

ब्रिटिश काल में भारत का सामाजिक अर्थतंत्र मध्ययुगीन आधार से आधुनिक पूंजीवादी आधार पर प्रतिष्ठापित हो चुका था और यह ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय समाज का आगे बढा हुआ कदम था। लेकिन यह परिवर्तन उतना व्यापक और गहरा नही था जितना फ्रांस इंग्लैंड और अमरीका जैसे देशों में हुआ था। भारतीय अर्थतंत्र विषयक पहले के एक अध्ययन में इस संकुचित विकास के कारणों की चर्चा हो चुकी है।

अपर्याप्त औद्योगिक विकास के कारण पुरानी आर्थिक व्यवस्था के अवशेष जैसे प्राक पूंजीवादी हस्तशिल्प और ग्रामीण कारीगर के उद्योग अभी बचे रह गए थे। पुराने अर्थतंत्र के इन अवशेषों के अनुसंगी प्राक पूंजीवादी भारतीय समाज के कुछ वर्ग, जैसे ग्रामीण कारीगर और शहरी हस्तशिल्पविद भी अभी भारत के नए वर्गों के साथ विद्यमान थे।

लेकिन यह ध्यान दने की वात है कि पुरान वर्गों के ये अवशेप काय और लक्षण की दृष्टि स पुरान वर्गों के समरूप नही थे। पूजीवादी पर्यावरण से घिरे हाने के कारण इनके कुछ नए लक्षण भी ये अव वे ग्राम समुदाय के भृत्य की तरह काम नही करते थ लेकिन अपनी वनाई हुई चीजो को वाजार म लाने लगे थ। उसी तरह से नागरिक हस्तशिल्पकार भी काफी वडी तादाद म वच रहे थे, लेकिन अव केवल रजवाडो अभिजात वग और धनी व्यापारिया के लिए ही काम नही करते थे। वे भी अपने उत्पादनो को वाजार म लाने लग थे, यद्यपि टक्नीक और सगठन की दृष्टि स उनक पुराने वगगत लक्षण बने रह।

छोटे बडे भारतीय रजवाडा का वग भी जा भारतीय भूभाग के लगभग एक तिहाई हिस्से पर शासन करता था प्राक ब्रिटिश काल का ही उत्तरजीवी अवशेप था। यह वग इसलिए वचा रह गया था कि ब्रिटिश सरकार ने राजनीतिक कारणों स इसे बनाए रखने का फसला किया था। ये रजवाडे अपने दरवार लगात थ और दूसरे प्रकार से भी अपनी पुरानी कायप्रणाली और साज सज्जा को वनाए रखे थे। लेकिन वे प्राक ब्रिटिश काल के रजवाडा से कई वातो म भिन्न थे। उनके सारे प्रकाय परम सर्वोच्च ब्रिटिश सत्ता द्वारा अपहृत हो चुके थे या नियत्रित थे। इन राज्या की आर्थिक सरचना भी पहले से भिन्न थी। कृपिदास प्रथा जैसे पुराने आर्थिक और सामाजिक सबधो के अवशेष के वावजूद, मूलत इन राज्यो के अथ तत्र देश क राष्ट्रीय अथतत्र के अग हा चुके थ। इन राज्या म से कुछ म एकाधिकारवाद चलता रहा फिर भी कुछ प्रगतिशील अग्रणी राज्यो म नई विधि व्यवस्था लागू हुई। इन राज्यो म जनतान्त्रिक स्वतन्त्रता थी ही नही या बहुत कम माना म थी जिसके फलस्वरूप इन राज्यो के वाशिदो का सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक विकास वडा सकुचित रहा।

इन कारणो से इन राज्यो के शासका का वग प्राक ब्रिटिश काल के रजवाडा के वग से अभिन्न नही माना जा सकता। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सास्कृतिक दृष्टि से इन राज्यो का आधुनिकीकरण नही हो सकता था, फिर भी ये अग्रेजा के आने के पहले के राज्यो के प्रतिरूप नही माने जा सकत है।[11]

भारतीय रजवाडे मध्ययुगीन अभिजात वग के भी शुद्ध सदस्य नही मान जा सकत वे भूमि से प्राप्त कर पर ही जीवन यापन करत थ। नए रजवाडो म कई एक ने आधुनिक वाणिज्यिक, औद्योगिक वित्तीय उद्यागो म पैसा लगाया ऐसे उद्योगा म भी जो उनकी अपनी राज्य सीमा के वाहर थ। इस तरह से कुछ हद तक यह वग आधुनिक पूजीपतियो के वग म परिवर्तित हो रहा था, जिसका नए पूजीवादी अथतत्र स सबध था।

उत्तरजीवी नए रजवाडा का वग रजवाडो के पुराने वग का ही परिशोधित रूप था और अपने नए रूप म भारतीय समाज के अन्य नए वर्गों क साथ ही रह रहा था।

पुराने वर्गों के अवशेप वदल हुए रूप म नए वर्गां के साथ रह रहे थे, और

इसका कारण भारतीय समाज संश्लिष्ट अवयवी था, जिसमें विभिन्न और विरोधी सामाजिक शक्तियां अपने विभिन्न हितों के लिए एक दूसरे के साथ संघर्ष करती रहीं। नया भारतीय समाज नए पुराने वर्गों का बेतरतीब जमाव था। यह नए पुराने सामाजिक तत्वों और दलों में बना था। इसके चलते नई पुरानी विचार धाराएं एक दूसरे से अजीब तौर पर मिली जुली चल रही थीं। राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय एकता की धीमी प्रगति का यह एक कारण था। अब हम ऊपर बताए गए वर्गों में जो प्रमुख थे उनके हितों, चारित्रिक विशेषताओं, समस्याओं, कार्यक्रम, संगठन और आंदोलनों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

जमींदार वर्ग के हित और संगठन

हम देख चुके हैं कि जमींदारों का वर्ग मुख्यतः ब्रिटिश सरकार का बनाया हुआ था।[1] एन० एन० घोष ने लिखा है, 'जमींदार जिसके साथ स्थाई बंदोबस्त (पर्मानेंट सेटलमेंट) किया गया लार्ड कार्नवालिस द्वारा निर्मित अभिजात वर्ग था। वे राज्य की सृष्टि थे।[13] चूंकि ब्रिटिश सरकार ने उनकी सृष्टि की थी इसलिए उन्होंने प्रायः हरदम उसकी मदद की और उसका तभी विरोध किया जब उनकी अपनी जमींदारी के अधिकारों पर किसी तरह का आघात हुआ। अपनी ओर से अंग्रेजी सरकार ने भी उन्हें भरोसे का राजभक्त माना और उनका पक्ष लिया।' 'सर लारेंस ने तालुकदारों को अपनी शक्ति भर सारा मान सम्मान दिया।'[14] लार्ड लिटन ने साफ शब्दों में कहा कि अंग्रेजी शासन को भारतीय समाज के भूस्वामी अभिजातवर्ग जैसी अनुदार रूढ़िवादी शक्तियों का समर्थन मिलना चाहिए (देखें अध्याय 10)। सुधार और संविधान की योजनाओं में अंग्रेजी सरकार ने जमींदारों को विशिष्ट प्रतिनिधित्व दिया (देखें अध्याय 10) और विधायिका सभाओं में और बाहर भी इस वर्ग ने राष्ट्रवादी शक्तियों के विरुद्ध सरकार की सब तरह से मदद की। जब कभी इंडियन नेशनल कांग्रेस ने उदारवादियों, अतिवादियों या गांधी के नेतृत्व में प्रजातांत्रिक अधिकारों, प्रशासनिक सुधार या स्वराज्य की मांग रखी और इसके लिए संसदीय गैर संसदीय संघर्षों का संगठन किया तब तब अभिजात वर्ग ने सरकार का पक्ष लिया (देखें अध्याय 18)। इसकी वजह थी कि भूसंपन्न आभिजात्य को यह भय था कि अगर देश का सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक पुनर्निर्माण जनतांत्रिक आधार पर हुआ तो उनके वर्ग स्वार्थों और वर्ग अस्तित्व पर भी खतरा आएगा।

जमींदार लोग मूलतः रूढ़िवादी और अनुद्यमशील थे। 1851 में उन्होंने ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन नाम से अपना मुख्य संगठन कायम किया। इ० एस० मांटेग्यु ने 1930 में प्रकाशित अपनी इंडियन डायरी में इस संगठन की यों चर्चा की है 'ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन बहुत हद तक रूढ़ीवादी अनुदार संस्था है जिसके मुखिया हैं बर्दवान के महाराजा जो रूढ़िवादी भारतीय के सर्वोत्तम प्रतीक हैं। ब्रिटिश संबंधों से उन्हें घोर प्यार है, उनके प्रति निष्क्रिय मौन सहमति

नही, वरन उनम दढ आस्था है व विशाल और मपन्न जमीदार है आर स्वतन्त्र प्रभुत्व की सत्ता चाहत है।[15]

भारत म अग्रजो न जो राज्यतन्त्र स्थापित किया, उसम सबस पहले इन्ही देशी राजाओ को स्थान मिला। 1862 म पटियाला क महाराजा और बनारस के राजा गवनर जनरल की विधान परिषद म मनोनीत हुए। मनोनयन के दूसरे चरण म जमींदार लिए गए। इस विषय म क० वी० कृष्ण ने लिखा है, 'राजा जमीदार, सेवा निवृत्त सरकारी पदाधिकारी, व्यापारी और पशेवर वग इसी क्रम म भारतीय विधान परिषद म मनोनीत हुए।[16]

देश के जनजीवन सबधी महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर जमीदारो ने प्राय अजनतान्त्रिक कदम उठाए। बी० सी० पाल ने लिखा है लिटन क प्रस ऐक्ट का विरोध करने क लिए इडियन एसोसिएशन टाउन हाल म कलकत्ता के बाशिदो की एक आम सभा बुलाई। बगाल के जमीन्दारो का प्रतिनिधित्व करने वाली ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन न इस सभा म आन स इकार कर दिया। लकिन कलकत्ता और बगाल ही नही वरन दूसरे प्रदेशो के भी शिक्षित मध्यम वग के इडियन एसोसिएशन द्वारा किए गए विरोध का समथन किया।'[17]

चूकि जमीन से होने वाली आय का बहुत बडा हिस्सा जमीदार हडप लते थे इसलिए जमीदारी वाल क्षत्रो म साधारण बटाईदारो की हालत दिन पर दिन बुरी होती गई। य अधिकाधिक गरीब होत गए और अच्छी खाद अच्छे बीज आदि के अभाव म कृषि का भी ह्रास होता गया। राष्ट्रवादियो एव ब्रिटिश राजनताओ ने भी जमीदारी वाल क्षत्रो म कृपक अथतन्त्र की ओर बटाईदारो की विपन्नता का देखा-समझा।

भूमप न आभिजात्य के देशी और विदेशी आलोचको ने यह टिप्पणी की कि भारत क अथतन्त्र म जमीदारो की कोई उत्पादक भूमिका नही है। भारत की आबादी के बहुत बडे अश की आर्थिक स्थिति कृषि पर निभर थी और इसके पुनरुद्धार और विकास क लिए एक बहुत जरूरी शत यह थी कि जमीदारी पद्धति का निर्मूलन नही तो कम से कम उसका वनानिक पुनगठन तो अवश्य हो।[18]

सामाजिक क्षेत्र म जमीदारो ने प्राय आमूल सामाजिक सुधार का विरोध किया। दरभगा महाराज ने जाति जसी अजनतान्त्रिक प्रथा को बनाए रखने के पक्ष म यह दलील दी कि मानव सभ्यता के सामने आज जो दुरूह विपत्ति आ खडी हुई है उससे बचाव का एकमात्र उपाय है। (देखे अध्याय 14 जाति प्रथा के विरुद्ध धमयुद्ध)। कुछ प्रबुद्ध जमीदारो न जनतान्त्रिक-सामाजिक प्रगति का समथन किया और बस आदोलन की मदद की, लेकिन वगत उनका रुख दकियानसी विरोध का ही था। रिलिजन एड दि राइज आफ कैपिटलिज्म' म टोनी ने लिखा है मुख्यत भूमि पर आश्रित राष्ट्र का मनोविज्ञान वाणिज्यिक समाज क मनोविज्ञान के बिलकुल विपरीत होता है। वाणिज्यिक समाज म, अगर ठीक हो तो अविरल विस्तार जीवन का विधान माना जा सकता है

सामने आते रहते है और 'उद्यम को प्रोत्साहन' राजनीति का नारा होता है। लेकिन कृषि प्रधान समाज म जिन दरवा म हर नई आने वाली पीढ़ी फिट की जा सकती है, उनकी सख्या कम है आदोलन का अत ह अशाति, उत्पात और राजनीतिज्ञो का उद्देश्य होता है व्यक्तिगत पहलकदमी को प्रोत्साहन देने के बदले सामाजिक अव्यवस्था को रोकना।"[19] भारतीय जमीदारा न पूरी ताकत स सुधार और प्रगति का विरोध किया।

राष्ट्रवादी आदोलन भारतीय समाज के जनतात्रिक पुनगठन क कायक्रम को लेकर चला था फिर बाद म किसानो, पटटेदारा और खेत मजदूरो के भी तगडे आदोलन हुए। इसलिए जमीदार अपने स्वार्थों और अधिकारा की रक्षा के लिए पहले स अधिक ब्रिटिश सरकार का सहारा ढूढने लग। अपने सगठना क द्वारा उन्होने विधायिका सभाओ मे उचित प्रतिनिधित्व की भी माग की।

पट्टेदारा के हित और सगठन

जमीदारी की सष्टि के साथ ही भारत म पटटदारो के भी वग का जन्म हुआ। चूकि पटटदारा से बहुत अधिक लगान वसूला जाता था इसलिए वे गरीब होते गए। वे जमीदारा द्वारा लगातार सताए जाते रहे। जसे जैसे समय बीता, जमीदार और खेतिहर बटाईदार के बीच अनकानेक मध्यस्थो के वग बनते गए और खेतिहर बटाईदारा की हालत दिन पर दिन और बिगडती गई। 1859 और 1885 के बगाल टेनेंसी एक्ट ने बटाईदारा की हालत सुधारने की दिशा म काम किया। फिर भी इसके अधिनियमा स बहुत फायदा नही हुआ। अधिकाश बटाईदारा की हालत दिन ब दिन बुरी ही होती गइ। जमीदारी क्षेत्र म बटाईदारो के वग के अतिरिक्त रयतवारी क्षेत्रो म भी बटाइदारो का नया वग उत्पन्न हआ। खेत मालिको की बढती हुई गरीबी के कारण जमीन लगातार अन्यत्रवासी भूस्वामियो के हाथ म जाने लगी।

धीरे धीरे विभिन्न प्रदेशा के बटाईदारा म जागरण आने लगा।[20] उत्तर प्रदेश बिहार बगाल और दूसरे क्षेत्रा म उन्होने अपना अलग सगठन कायम किया था वे किसान सभाओ मे शामिल हुए। किसान सभाए सब जगह सगठित हो रही थी और इनम किसान बटाईदार और खेत मजदूर खेत म काम करनेवाले सब प्रकार के लोग शामिल थे। बटाइदारो के इन सगठनो और किसान सभाओ ने बटाइदारा की विशेष मागो और शिकायतो की सूची बनाई और इन मागो के समथन म आदोलन भी सगठित किए। इन सघो, सभाओ, आदोलनो के सगठनकर्ता जवाहरलाल नेहरू, प्रोफेसर एन० जी० रगा स्वामी सहजानद जसे घोर राष्ट्रवादी नेता थे। इसलिए जमीन पर काम करने वाले अन्य लोगो के साथ बटाईदार भी राष्ट्रवादी प्रचार से प्रभावित हुए और अपने वग की मागो के साथ एव अपने झडे के नीचे वे राष्ट्रवादी आदोलन म सम्मिलित हुए। आर्थिक और सास्कृतिक तौर पर पिछड़े हुए इन बटाईदारो म भी धीरे धीरे राष्ट्रवाद की भावना का

प्रवेश हुआ। किसान सभाओ और बटाईदार सघो ने केवल ब्रिटिश सरकार की ही आलोचना नही शुरू की वरन इडियन नेशनल काग्रेस की भी आलोचना की, क्योकि इनके अनुसार यह मुख्यत जमीदारो के स्वार्थो की रक्षा करना चाहती थी। उन्होने अपनी मागो का कार्यक्रम बनाया मालगुजारी कम करना, अधिक कर या गैर कानूनी पावना वसूल करने के रिवाज को खतम करना, आदि। किसान सभाओ ने जमीदारी प्रथा को खर्चीला और अक्षम, अकुशल और अन्यायपूर्ण एव राष्ट्र विरोधी बताया।

किसान मालिको के विभिन्न उपभाग, हित और सगठन

रैयतवारी के रूप म भूमिगत सपत्ति की सष्टि के कारण भारत म किसान मालिका का वग पदा हुआ। यह मोटे तौर पर अपनी आर्थिक सामथ्य के अनुसार तीन मुख्य श्रेणियो म विभाजित था, ऊपरी मध्यम और निम्न। भूमिकर की ऊची दर, ऋणग्रस्तता और ऊपर गिनाए गए अन्य कारणो की वजह से यह वग अपने अस्तित्व काल से ही अधिकाधिक दरिद्र होता गया था। यह स्थाई विघटन की स्थिति म था। इस वग म विशिष्टीकरण की प्रक्रिया लगातार जारी रही। किसान मालिको के दल का अल्पाश धनी किसाना की श्रेणी म समाहित होता रहा और अधिकाश गरीब किसाना, अन्यनवासी भूस्वामियो के बटाइदारो या खेत मजदूरो की श्रेणी म। जसे जसे किसानो के दरिद्रीकरण की गति तेज हुई वसे वसे विभेदीकरण की यह प्रक्रिया भी तीव्र होती गई। इस तरह जमीन तेजी से किसान मालिको के हाथ से निकलकर साहूकारो, व्यापारियो आदि के हाथ से जाती रही और दूरस्थ भूस्वामियो के नए वग का जन्म हुआ। किसाना का मध्यम तबका तेजी से विनष्ट होता गया, और ज्यो ज्यो इनमे से अधिकाश निम्न किसान या दरिद्रो या कृषक सवहारा की श्रेणी म मिलते गए इनकी सख्या कम होती गई। जसा कृषि वाले अध्याय मे हमने देखा है दूरस्थ भूस्वामियो और कृषक सवहारा वग बाद के वर्षो म बडी तेजी से बढते रहे।

किसान मालिका म बटाइदारो की अपेक्षा पहले राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। इसकी वजह थी कि किसान मालिको का सीधा सबध राज्य स था। किसान मालिक सीधे राज्य को भूमिकर देते थे। उसके विपरीत कर के मामले म बटाइदारो का सीधा सघष जमीदारो से था, सरकार से नही।

एक और वजह थी जिसके कारण किसान मालिको मे बटाईदारो की अपेक्षा पहले राजनीतिक चेतना आई। इडियन नेशनल काग्रेस गाधी की अगुआई म वग समन्वय की गाधीवादी विचारधारा द्वारा शासित थी और उसी विचारधारा के आधार पर अपना कायक्रम बनाती थी।[1] बटाईदारो की मागो के लिए सघष का कायक्रम उस वग का समथक और जमीदारो का विरोधी होता। और चूकि जमीदार और बटाईदार दोनो भारतीय थे इसलिए गाधीवादी विचार के अनुसार स्वराज के सघष के लिए बने सभी वर्गो के राष्ट्रीय सयुक्त मोर्चे को बटाईदारो की

मांगो के प्रश्रय से नुकसान होता। फिर भी, किसान आंदोलन का इंडियन नेशनल कांग्रेस पर कुछ प्रभाव पड़ा और इसे बटाईदारों की मांगो का कार्यक्रम अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ा। लेकिन स्वामी सहजानंद, एन० जी० रंगा, इंदुलाल याज्ञिक और किसान आंदोलन के अन्य नेताओं की यह शिकायत थी कि कांग्रेस के नेतृत्व ने इस कार्यक्रम में रुचि नहीं ली। उन्होंने यह भी कहा कि बिहार और कुछ अन्य प्रदेशों में गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित दक्षिणपंथी नेता बटाईदारों के खिलाफ जमींदारों से मिल गए थे, और कांग्रेसी सरकार ने बटाईदारों के न्यायसम्मत संघर्ष के विरुद्ध राज्यसत्ता का दमनात्मक प्रयोग किया।[22]

भारतीय किसानों के प्रमुख आंदोलन

अब हम संक्षेप में ब्रिटिश शासन काल के भारतीय किसानों, मालिक किसानों, बटाईदारों और खेत मजदूरों के मुख्य आंदोलनों और संगठनों की चर्चा करेंगे।

1918 के बाद किसानों में राजनीतिक चेतना की शुरुआत हुई। वे संगठित राष्ट्रीय संघर्षों में भाग लेने लगे और बाद में उन्होंने अपने झंडे और कार्यक्रम के साथ अपने संगठन भी बनाए और अपने ही नेताओं की अगुआई में अपने कार्यक्रम की पूर्ति के लिए संघर्षों का संगठन किया। लेकिन 1918 के पहले भी कुछ किसान आंदोलन हुए थे जो स्वतःस्फूर्त और अनियमित थे और जिनके सीमित, स्थानीय आर्थिक उद्देश्य थे।

1870 और 1897 के बीच भारत में कई बहुत बड़े दुर्भिक्ष पड़े, जिनमें 1870, 1896 और 1897 के अकाल सबसे अधिक विनाशकारी थे। अकाल वाले क्षेत्र में किसानों को बड़ी तकलीफों का सामना करना पड़ा। बीच-बीच में होने वाले आर्थिक संकट के कारण भी उनकी बड़ी तबाही हुई। फलस्वरूप समय समय पर जमींदारों, साहूकारों और सरकार के विरुद्ध किसानों के संघर्ष उभरते रहे।

1870 में बंगाल के बटाईदार आर्थिक संकट की गहरी चपेट में आए और उनकी गरीबी गुरुतर हो गई। हजारों ने जानबूझ कर लगान देने से इंकार कर दिया, कचहरियों के हुकमनामों का उल्लंघन किया, बेदखली का विरोध किया और हथियार प्राप्त कर उन्होंने लड़ाई की। बंगाल और संथाली देहाती इलाकों के बहुत बड़े हिस्से में लगभग अराजकता की स्थिति थी। विद्रोह को तो सरकार ने दबा दिया, लेकिन उसने एक कमीशन बैठाया और बाद में 1885 का बंगाल टेनेंसी ऐक्ट बना।

अमरीकी गृहयुद्ध के बाद रूई की कीमत में मंदी आने से भी भारतीय किसानों की हालत खराब हुई। फलस्वरूप उन पर ऋण का बोझ बढ़ा और 1875 में डेक्कन में मराठा किसान साहूकारों के खिलाफ उठ खड़े हुए क्योंकि साहूकारों ने कचहरी की मदद से बेदखली का डर दिखाया। उन्होंने सूदखोरों के घरों पर हमला किया, कर्जे के कागजात नष्ट कर दिए और कुछ लोगों को जान से भी मार डाला। बलवा शांत कर दिया गया, लेकिन सरकार ने किसानों के लिए

रिलीफ की जरूरत समझी और 1879 का डेक्कन एग्रीकल्चरिस्ट रिलीफ ऐक्ट पारित हुआ।

उन्नीसवी सदी के अतिम दशक मे, जब सूदखोरो ने बेदखली का भय दिखाया, तो पजाब म भी किसान विद्रोह कर उठे। स्थिति को शात करने के लिए सरकार ने 1902-3 म पजाब एलियनेशन ऐक्ट पारित किया। लाड कर्जन के जमाने म भूमिकर नीति पर सरकार ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसका उद्देश्य था जमीदारो की मागो के दबाव से बटाइदारो की रक्षा करना।

इडियन नेशनल काग्रेस ने 1905 19 की अवधि मे किसानो को राहत देने की जरूरत पर उतना जोर नही दिया जितना भारतीय उद्योगपतियो की जरूरतो पर, जैसे वाणिज्यिक सुरक्षा के प्रश्न पर।[23] राष्ट्रवादी लोग साधारणत जमीदारी तत्र मे रहने वाले बटाईदारो की चर्चा से अलग रहे। काग्रेस के एक भूतपूर्व सभापति रमेशचद्र दत्त को दी गई लार्ड कर्जन की इस चुनौती का कि जमीदारो की धनप्रियता से बटाईदारो को बचाने की सरकार ने औरो से अधिक कोशिश की है जवाब नही दिया जा सका था।[4]

1917 18 म गाधी के नेतृत्व म बिहार के चपारन जिले म किसानो ने नील बगीचो के मालिको जो अधिकाशत यूरोपीय थे, के खिलाफ सघर्ष किया। यहा पहली बार गाधी ने सत्याग्रह के अपने अस्त्र का प्रयोग किया। सरकार ने एक जाच कमेटी बठाई जिसके गाधी भी सदस्य थे और इस कमेटी के प्रतिवेदन के आधार पर जो अधिनियम बना उससे किसानो को कुछ राहत मिली। एन० जी० रगा इस सघर्ष म गाधी के नेतृत्व के विरुद्ध थे और उन्होने कहा जिस तरह रमेशचद्र दत्त के नेतृत्व म अस्थाई बदोबस्ती के खिलाफ चलाए गए आदोलन ने जमीदारो द्वारा किसानो के शोषण की बात नही की वैसे ही चपारन म गाधी के नेतृत्व वाला आदोलन भी चपारन के किसानो की गरीबी और तकलीफ के मूल कारणो के विरुद्ध सघर्ष का रूप नही ले सका। ये मूल कारण थे, अत्यधिक लगान और ऋणभार यह बडा महत्वपूर्ण तथ्य है कि गाधी और राजेन्द्र प्रसाद दोनो जमीदारी व्यवस्था के अन्याय के विरुद्ध धर्मभीरुओ की तरह चुप रहे[25]

इसके बाद गाधी ने कर की वसूली के विरुद्ध खेरा के किसानो का सत्याग्रह आदोलन सगठित किया। ये किसान फसल मारे जाने की वजह से लगान का भुगतान नही कर पाए थे। 1919 के असहयोग आदोलन के पहले के ये ही कुछ प्रमुख किसान आदोलन थे। इन आदोलनो मे राजनीतिक तथ्य का अभाव था, और ये प्राय अनियमित और अराजक थे।

असहयोग आदोलन के दिनो म भारतीय किसानो के कुछ अशो म राजनीतिक चेतना आई। इडियन नेशनल काग्रेस ने भूमिकर न देने का नारा दिया और इसका बहुत गहरा असर पडा। किसानो ने स्वराज्य के राजनीतिक सघर्ष को भूमिकर के विरुद्ध सघर्ष माना और उनमे से कुछ ने इस आदोलन के साथ नुभूति दिखाई उसे समर्थन दिया और उसमे भाग लिया। ...त राजनी...

आदोलन म भारतीय किसाना ने पहली बार हिस्सा लिया।

असहयोग आदोलन के दिना म किसाना के ऐसे भी सघप हुए जिन्हे काग्रस न नही सगठित किया था जस कर्नाटक के गुटूर जिले म 1921 का अवध रेंट ऐक्ट भी इसी काल म पारित हुआ था और इससे किसाना की बहुत सारी मागो की पूर्ति हुइ।

1922 के मोपला विद्रोह का आधार साप्रदायिक और आर्थिक दोना था। मोपला मुख्यत मुसलिम किसान थे और मालाबार के नम्बूदिरी ब्राह्मण जमीदार उनका शोषण करत थे। मोपला के असतोष को मुसलिम सप्रदायवादिया ने साप्रदायिक दिशा दी, जिसके फलस्वरूप जा आदोलन तत्वत आर्थिक था उसका रूप धार्मिक हो गया और इससे जान-माल का ददनाक, गैर जरूरी नुकसान हुआ। जहा भूस्वामी हिंदू और किसान मुसलमान थे वहा सप्रदायवादियो की उत्प्रेरणा और उनके द्वारा भडकाए जाने से आर्थिक वग सघप ने साप्रदायिक रूप लिया।

दो और किसान सघर्षों की चचा आवश्यक है। एक ता नरसिपत्तन तालुका के कोया लागा का सघप जिसके नता थे सीताराम राजू दूसरा रायबरेली सीतापुर और उत्तर प्रदेश के अ य जिला के किसानो का सघप। लेकिन य सघप स्वत स्फूत थे, उन्नीसवी सदी के सघर्षों जैसे।

असहयोग आदोलन के बाद ही किसाना के स्वतत्र वग सगठन के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई। आध्र म 1923 मे रैयता और खेतिहर मजदूरा के अपन अलग सगठन बने। 1926 27 म पजाब बगाल और उत्तर प्रदेश के कुछ इलाको म किसान सभाओ की स्थापना हुई। 1920 मे बिहार और उत्तर प्रदेश की किसान सभाओ के प्रतिनिधियो ने मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता म होने वाल सवदलीय सम्मेलन का एक स्मार पत्र दिया जिसम सावजनीन मताधिकार, आधारभूत जनतात्रिक अधिकार और राष्ट्रीय स्वतत्रता की माग प्रस्तुत की गइ थी। 1928 म आध्र प्रदेश क रयता का सगठन बना।

गुजरात म बारदोली जिले के किसाना ने दो सघप हुए, एक 1928 29 म और दूसरा 1930 31 म। पहले के नेता वल्लभ भाई पटल थ और सरकार से अधिकाश मागा को मनवा लेने म इस आदोलन को जो सफलता मिली उसस किसान आदालन को बडा बल मिला।

1930 म गाधी काग्रेस के निर्विवाद नता थ। उन्होन समझौते क लिए अग्रेजी सरकार के सामन अपनी ग्यारह सूत्री माग रखी। वामपथी राष्ट्रवादियो और समाजवादिया ने उनकी इस आधार पर आलोचना की कि इन ग्यारह मुद्दो म भारतीय पूजीपतिया की सभी मुख्य मागे शामिल थी, लेकिन भारतीय मजदूरा और किसाना की कोइ माग नही थी।[6] एन० जी० रगा न लिखा है महात्मा जी ये मागे ता रख ही सकत थे कि जमीदारा द्वारा वसूल किए जान वाल लगान म कमी की जाए, किसाना को ऋण से छुटकारा दिलाया जाए मजदूरा के लिए यूनतम मजदूरी निश्चित की जाए मूल उद्योगा का राष्ट्रीयकरण किया

जाए वग सहयाग की अपनी नीति और अपनी इस चिता के कारण कि लोग आर्थिक स्वार्थों के आधार पर राजनीतिक दलो म विभक्त न हो जाए गाधी इस तरह की माग रख भी नही सकते थे।' 7

1929 म सारी दुनिया म जो कृषिक और अय प्रकार के आर्थिक सकट उसका भारतीय किसान समुदाय पर बडा गहरा असर पडा। इस विक्षुब्ध किसान समुदाय ने काग्रस द्वारा सगठित आदोलना और सभाओ म भाग लिया। उत्तर प्रदेश, आध्र, गुजरात कर्नाटक और अय भागो म किसान आदोलन हुए जिनम कुछ को काग्रेस का समथन मिला कुछ को नही। 8

नागरिक अवना आदोलन क बाद किसाना के स्वतत्र सगठनो के निर्माण की प्रक्रिया म तजी आई। किसान आदोलन के आग बढे हिस्सा और उग्र राष्ट्रवादियो म यह धारणा घर करती जा रही थी कि काग्रेस का नेतृत्व पूजीपतियो और बडे बडे भूस्वामियो के स्वार्थो के प्रति अत्यधिक जागरूक था। उनका खयाल था कि किसानो के हित की रक्षा के लिए उनके स्वतत्र वग सगठनो और नेतत्व की आवश्यकता है। उनका यह भी खयाल था कि जब किसान अपन वग की मागो के साथ स्वराज्य के राष्ट्रीय सघप म भाग लेग तभी यह सघप सफल हो सकेगा। काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी और जवाहर लाल जैसे वामपथी राष्ट्रवादियो ने दश म किसान सगठनो के निर्माण की आवश्यकता पर जोर दिया।

इस सदी के चौथ दशक म किसान आदोलन ताकतवर होने लगा। किसान आदोलन क सक्रिय कायकर्ताओ को प्रचार और आदोलन का प्रशिक्षण देने के लिए 1938 म निदुब्रोल म पहला भारतीय किसान स्कूल खोला गया। 1935 म मद्रास प्रेसीडेसी रयतस एसोसिएशन कायम हुआ, और 1937 म मद्रास प्रेसीडेसी एग्रीकलचरिस्ट एसोसिएशन।

किसानो का साप्रदायिक आधार पर भी सगठित करने की चेष्टा हुई। मुसलिम किसानो का गोलबद करने के लिए सर अब्दुररहीम और फजलुलहक ने बगाल म प्रजा पार्टी का सगठन किया। बाद मे इसका नाम कृषक प्रजा पार्टी हुआ। इसने कृषि सबधी सुधारो और जमीदारी उमूलन का कायक्रम बनाया। बगाल के मुसलमान किसाना म इस पार्टी का काफी प्रभाव था।

1927 म बिहार किसान सभा बनी। 1934 के बाद यह सगठन काफी व्यापक हो गया था। इसका श्रेय स्वामी सहजानद सरस्वती का है। आल इडिया किसान सभा का, जो बाद म बनी, सबसे मजबूत अग बिहार किसान सभा ही थी। उत्तर प्रदेश प्रातीय किसान सभा 1935 म बनी। इसके कायक्रम म जमीदारी व्यवस्था के उमूलन की भी माग थी। दश क दूसरे भागो म भी किसान सभाए बनी।

किसानो को राहत देने के लिए सरकार न कई नए कदम उठाए। उत्तर प्रदश म 1934 मे पाच डेट रिलीफ एक्टस बन, पजाब म 1934 म ही रगुलशन आफ एकाउटस ऐक्ट पारित हुआ बगाल म 1933 म मनीलेंडस एक्ट पास हुआ और 1935 म रिलीफ आफ इडेब्टेडनेस एक्ट। इन सबके बावजूद किसानो की हालत

बहुत सुधार नही हुआ। इसलिए उनका असतोष बढता गया और किसान आदोलन म तीव्रता आती गई।

1935 मे लखनऊ म पहल आल इडिया किसान काग्रेस की बठक हुई और यह तय हुआ कि यह काग्रेस देश म सर्वोपरि किसान सगठन हो। जवाहरलाल नेहरू ने इस काग्रेस के प्रति सहानुभूति और समथन का इजहार किया।

आल इडिया किसान काग्रेस देश की सारी कृषक आबादी का अपन प्रभाव म नही ला सका, लेकिन इसकी स्थापना का एतिहासिक महत्व है। सम्मिलित मागो के कायक्रम और सार किसानो की समवेत आकाक्षाओ के आधार पर देश के इतिहास मे पहली बार किसानो का अखिल भारतीय सगठन बना। यह सगठन नइ उच्चतर चतना के उदय का परिचायक था और इस तरह प्राक ब्रिटिश भारतीय किसान के स्थानीय परिप्रेक्ष्य की जगह राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य का जन्म हुआ।

आल इडिया किसान सभा ने भारतीय किसानो के बीच बहुत बडे पमाने पर शिक्षा और प्रचार का काय किया। इसने देश म अपने सगठन का विस्तार भी किया। इसने इडियन नशनल काग्रेस से सामुदायिक सबद्धता की भी माग की। लेकिन काग्रेस इस माग को स्वीकार नही कर सकी।

1937 म नए सविधान के आधार पर प्रातीय विधायिका सभाओ के लिए होन वाले चुनाव के पहले, इडियन नशनल काग्रेस न एक चुनाव घोषणा पत्र प्रकाशित किया जिसमे नागरिक स्वातत्र्य सबधी जनतात्रिक मागा और किसानो की हालत मे सुधार की मागें भी थी। किसानो को इस घोषणा पत्र स काफी बल मिला और काग्रेसी उम्मीदवारा क पक्ष म इनका मतदान चुनाव म उनकी जीत के लिए बहुत दूर तक उत्तरदाई है।

बाद मे कई प्रातो म जो काग्रेसी सरकारें बनी उन्हान किसानो स किए गए वादो को पूरा नही किया। कुछ प्राता म उन्होने कृषि सबधी कुछ अधिनियम पारित किए (विस्तार के लिए दखे अध्याय 10), लेकिन इनसे किसानो के निम्न तम स्तर को कोइ फायदा नही हुआ। काग्रेसी सरकार से किसानो के असतोष की अभिव्यक्ति विरोध सभाओ सम्मेलना और प्रदशनो म हुई। इन सभाओ, सम्मेलना म किसान नताओ को गिरफ्तारी, किसाना की सभाओ पर प्रतिबध, और खासकर बिहार मे किसाना के विरुद्ध पुलिस की ताकत के प्रयाग आदि के लिए सरकार की आलोचना की गई।

अपनी माग मनवान के लिए सरकार पर दबाव डालन क लिए काग्रेसी सरकारा क जमान म किसान सभाओ ने बहुत सी सभाओ सम्मेलना और किसान मोर्चो का सगठन किया। काग्रेस के दक्षिण पथी नताओ और काग्रसी मत्रियो को इस बात स शिकायत थी कि जब काग्रेसी सरकारे काम कर रही थी, उस वक्त गर ससदीय विरोध का सगठन किया गया। 1934 के बाद किसान आदोलन के विकास काल म कई जगहा पर किसानो के बीच स्वयसवक सगठन भी बन।

किसानों के विशिष्ट मानसिक और चारित्रिक लक्षण

मालिक किसानो, बटाईदारो और खेत मजदूरो के विकास, उनकी हालता और उनके आदोलनो और सगठनो की चचा के बाद अब हम इन सामाजिक वर्गों के विशिष्ट मानसिक एव अन्य चारित्रिक लक्षणो की चर्चा करेंगे।[29]

मालिक किसाना की अपनी जमीन थी जिस पर वे काम करते थे और जिसकी उपज वे बाजार म बेचते थे इन आधारो पर बनी उनकी अपनी मनश्चेतना थी। चाहे कम ही सही किसान मालिको को अपनी सपत्ति तो होती है, इसलिए साधारणत उनका दष्टिकोण रूढिवादी होता है और उनम वह साहसिकता नही होती जो सपत्तिहीन मिल मजदूरो म होती है। विभिन्न देशा का यही साधारण अनुभव है। फिर वैयक्तिक उत्पादन की रीति जिससे मालिक किसान खेती करता है, उसके कारण भी वह व्यक्तिवादी हो जाता है और किसी भी सहयोगी प्रयास म सम्मिलित होना उसके लिए कठिन होता है। इस मुद्दे पर किसान और मिल म काम करने वाले मजदूर मे अतर है क्योंकि मिल का काम व्यापक श्रमविभाजन पर आधारित है। इसीलिए किसाना क सगठना के पहले मजदूरो के ट्रेड यूनियन बने। इसीलिए यद्यपि किसाना की स्थिति प्राय मजदूरा से बुरी रही है फिर भी उनकी अपेक्षा मजदूर वग म सहयोगी, सगठित आर्थिक और राजनीतिक काम अधिक हुए है।

किसान बहुत बडे क्षेत्र म बिखरे हुए हैं। इसलिए भी किसाना के बीच सगठनात्मक काम अधिक मुश्किल रहा है।[30] फिर किसान देहात म रहते है जो सास्कृतिक तौर पर पिछडा हुआ इलाका है, और जहा जिंदगी मद्धिम एकरस गति से चलती है, जबकि शहरो म देश की सस्कृति केंद्रीभूत है समसामयिक जीवन की गत्यात्मक प्रक्रियाए कायरत है सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक और अन्य आदोलन जमत बढत है। नागरिक सस्कृति और आधुनिक जीवन की गत्यात्मक प्रक्रियाओ स पथक, और सास्कृतिक रूप से विपन्न देहात मे पला-पोसा किसान अपेक्षाकृत सुस्त मदबुद्धि और अशिक्षित होता है। शक्षिक एव सास्कृतिक कार्यकर्ताओ और राष्ट्रवादी प्रचारको ने शहरी आबादी के निम्नतम स्तर की अपेक्षा किसानो म व्यापक सामाजिक राजनीतिक एव अन्यान्य प्रकार क काम करना अधिक कठिन पाया।

देश के कुछ अन्य पिछडे हुए लोगो की तुलना म किसाना के अधिक अधविश्वासी एव शिथिल होने का एक और कारण है। उद्योग के विपरीत कृषि मुख्यत वर्षा जसी प्राकृतिक शक्तिया पर निभर है और इन पर विज्ञान और टेक्नालाजी का पूरा नियत्रण नही हो सका है। अच्छी जमीन अच्छे बीज अच्छे हल बैल और अपना श्रम फसल के लिए केवल इन्ही की जरूरत नही है, अच्छी फसल अतत प्रकृति की अनियत्रित शक्तियो पर निभर है। इसके कारण किसान अधिक अधविश्वासी हो जाता है और कुछ हद तक अधिक आत्मसशयी और

पराजयवादी भी। इसीलिए देहात की आबादी में अंधविश्वास पलते हैं। सुसंगठित, सामूहिक कार्य द्वारा जीवन संघर्ष में रत होने के बदले किसान निस्सहाय से संकट के सामने नतमस्तक हो जाते हैं, या फिर जब वे स्वतःस्फूर्त, असंगठित और निष्फल विद्रोह का रास्ता अपनाते हैं तो निराशोन्मत्त आदमी के अंधे साहस के प्रतीक के रूप में।*

राष्ट्रीय आंदोलन का विकास, सामाजिक, राजनीतिक और अन्य प्रकार के कार्यकर्ताओं के शैक्षिक और प्रचारात्मक कार्य, उनकी अपनी बढ़ती हुई गरीबी, आदि महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कारणों से, शिथिल, गतिशील, क्रियाहीन भारतीय किसान की सामाजिक और मानसिक जड़ता और अकर्मण्यता समाप्त होने लगी। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, धीरे धीरे ही सही, वे अपने संगठन बनाने लगे, अपनी मांग को रूप देने लगे और अपने वर्ग एवं राष्ट्र के आंदोलनों में भाग लेने लगे। इसकी यह भी वजह थी कि भारतीय राष्ट्रवादी यह समझने लगे थे कि किसानों की मदद के बिना वे स्वतंत्रता नहीं प्राप्त कर सकते और इस तरह वे उन पर अधिक ध्यान देने लगे। कांग्रेसी, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट आदि सब लोगों ने किसानों के बीच काम करना शुरू किया।

कृषक आबादी के बीच विभेदीकरण की तीव्र प्रक्रिया के कारण खेत मजदूरों का वर्ग तेजी से बढ़ रहा था। इस वर्ग के पास कोई संपत्ति नहीं थी, ये गरीब थे, अपने पिछड़ेपन की वजह से इनमें अब भी पूरी चेतना का विकास भी नहीं हो सका था। लेकिन किसान आंदोलन और राष्ट्रीय आंदोलनों की चपेट में ये भी आ रहे थे।

आधुनिक बुद्धिवादी वर्ग का उदय

अब हम भारतीय जनता की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास परंपरा में बुद्धिवादियों की भूमिका का अवलोकन करें।

भारत में आधुनिक उद्योगों की स्थापना और औद्योगिक बुर्जुआजी के उदय के कई दशक पहले ही आधुनिक बुद्धिवादी वर्ग का जन्म हो चुका था।[31] भारत में

---

*बहुत बड़े क्षेत्र में बिखराव, विभिन्न प्रकार के सामाजिक संगठन और रूढ़िवादिता जैसी आर्थिक, सामाजिक, मानसिक जन्मजात कमजोरियों के कारण सामाजिक संघर्षों के इतिहास में किसानों की अपनी कोई स्वतंत्र भूमिका नहीं होती। आधुनिक काल में यह या तो बुर्जुआजी की या फिर मजदूर वर्ग की अगुआई में रहा। 1789 की फ्रेंच क्रांति में कृषिदासों ने उर्ध्वोमुखी बुर्जुआजी का नेतृत्व माना जिसने सामंती आभिजात्य के विरुद्ध अपने संघर्ष में उनके सहयोग के लिए उन्हें स्वतंत्रता और जमीन प्रदान करने का वादा किया। 1917 की रूसी क्रांति में किसानों ने बोल्शेविक पार्टी का समर्थन किया। केवल रूस के मजदूर वर्ग की इस पार्टी ने ही उन्हें जमीन दिलवाने का वादा किया। सोशल रिवाल्युशनरी पार्टी जो विभिन्न तबकों के किसानों का प्रतिनिधित्व करती थी टूट गई और उसका वामपंथी भाग बोल्शेविक लोगों से मिल गया।

बुद्धिवादियो की पहली पीढी के राजा राममोहन राय और उनके दल न पाश्चात्य सस्कृति का अध्ययन किया और इस सस्कृति के बौद्धिक और प्रजातान्त्रिक सिद्धातो, धारणाओ और सत्य का अगीकृत किया।

उन्नीसवी सदी के प्रथम कुछ दशको म शिक्षित भारतीयो की सख्या बहुत कम थी। जब अग्रेजी शासन ने अधिकाधिक स्कूल कालेज खोले और उनके साथ ईसाई मिशनरियो ने भी इस दिशा म प्रयास किए तभी उन्नीसवी सदी के उत्तराद्ध म शिक्षित भारतीयो के बहुत बडे वग का जन्म हुआ और उससे बुद्धिवादियो का बहुत बडा वग उभर कर सामने आया।

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास म बुद्धिवादियो की भूमिका निर्णायक रही है। बहुत दूर तक उन्होने भारतीय जनता का आधुनिक राष्ट्र के रूप मे एकान्वित किया और अनेक प्रगतिशील सामाजिक धार्मिक सुधार आदोलनो का सगठन किया। ये सारे राजनीतिक राष्ट्रवादी आदोलनो के जनक, प्रणेता, सगठन कर्ता और अग्रणी थ। घोर आत्मत्याग और अनेक कष्टो के बावजूद उन्होने जनता के बीच शक्षिक और प्रचारात्मक काय के द्वारा स्वतन्त्रता और राष्ट्रवाद के विचारा का अधिकाधिक लोगो तक पहुचाया। उन्होन राष्ट्रीयता और जनतन्त्र की भावनाओ से ओत प्रोत सपन्न प्रादेशिक साहित्य और सस्कृति की सृष्टि की। इनके बीच स महान वैज्ञानिक, कवि, इतिहासज्ञ, समाजशास्त्री, साहित्यिक दाशनिक और अथशास्त्री उत्पन्न हुए। प्रगतिशील बुद्धिवादी वग न आधुनिक पाश्चात्य जनतान्त्रिक सस्कृति का स्वागीकरण किया और नवजात भारतीय राष्ट्र की जटिल समस्याओ को समझा। वस्तुत व ही आधुनिक भारत के निर्माता थे।

1851 और 1884 क बीच पशेवर वर्गो न देश म तीन सगठन बनाए मद्रास नेटिव एसोसिएशन, बाब एसोसिएशन और इडिया एसोसिएशन (*अध्याय* 10 देखें)। इन्होने नौकरियो के भारतीयकरण के लिए सरकार पर जोर डाला। इनका तक था कि किसी देश का राजतन्त्र वही के देशवासियो द्वारा चलाया जाना चाहिए, विदेशियो द्वारा नही। इस तक म उनका अपना वग स्वाथ भी निहित था।

1857 के बाद देश म विश्वविद्यालयो की स्थापना हुई तो शिक्षित भारतीयो की सख्या तेजी से बढी। राष्ट्रीय चेतना सबसे पहले इन्ही शिक्षित भारतीयो म आई। बुद्धिजीवी वग के अग्रणी नेताओ ने वाणिज्यिक और आरभिक औद्योगिक बुर्जुआजी के समथन और बल पर 1885 म भारतीय जनता का पहला राष्ट्रीय राजनीतिक सगठन कायम किया, इडियन नेशनल काग्रेस। काग्रेस ने अग्रेजी को अपनी भाषा बनाया और इस तरह प्रबुद्ध शिक्षित वग के लोग ही सबसे पहले इसके नेता हुए (देखे *अध्याय 10*)।

भारत का राष्ट्रीय आदोलन मुख्यत इडियन नेशनल काग्रेस के नेतृत्व म बीसवी सदी के पहले दशक म व्यापक मध्यमवर्गीय आधार पर और 1918 के बाद और अधिक व्यापक जन आधार पर विकसित हुआ इसका बाद का इतिहास राजनीति वाले अध्याय म चर्चित है। अभी ध्यान देने की मुख्य बात यह है कि अपने

विकास के प्रत्येक चरण में प्रबुद्धवर्ग ने ही इस आंदोलन का नेतृत्व किया, इस वर्ग के चाहे जिस अंग ने जिस किसी विचार पद्धति, क्रिया प्रणाली और कार्यक्रम के साथ यह काम किया हो। उदारवादी चरण मे राष्ट्रीय आंदोलन की अगुआई आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त गोपालकृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, एस० बनर्जी एम० जी० रानाडे, फिरोजशाह मेहता आदि उदारवादी नेताओं ने की। दूसरे लड़ाकू चरण मे बाल गंगाधर तिलक, बी० सी० पाल, अरविन्द घोष, लाला लाजपतराय जैसे अंग्रेजी के ही जानकार प्रबुद्ध वर्ग के लोगो और महान आत्म त्यागी नेताओं ने इस आंदोलन की अगुआई की। आतंकवादी आंदोलन में अपेक्षा कृत कम लोगो ने सक्रिय भाग लिया लेकिन इसकी भी शुरूआत और अगुआई मध्यमवर्गीय युवक वर्ग ने ही की जिन्होंने आइरिश आतंकवादी और रूसी शून्य वादी (निहिलिस्ट) आंदोलनो का अध्ययन किया था। 1918 के बाद भी, जब राष्ट्रवादी आंदोलन कई ऐतिहासिक कारणो से (देखें अध्याय 10) जन साधारण में फैल चुका था, इसका नेतृत्व गांधी, सी० आर० दास मोतीलाल नेहरू बिट्ठल भाई पटेल सी० राजगोपालाचारी राजेन्द्रप्रसाद, जवाहरलाल नेहरू सुभाष बोस और समाजवादी और साम्यवादी बुद्धिवादियों जैसे शिक्षित वर्ग के ही लोगों ने किया।

हिंदुओं मुसलमानों और अन्य सप्रदायो में जो विभिन्न सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलन हुए उनका भी संगठन उन सप्रदायों के शिक्षित लोगों ने ही किया। उदाहरणार्थ शिक्षित वर्ग के ही सदस्य बी० आर० अंबेदकर ने दलित जातियों के बीच सामाजिक सुधार और राजनीतिक शिक्षा के आंदोलन का नेतृत्व किया। वस्तुतः ब्रिटिश शासनकाल मे भारत में जितने भी प्रगतिशील सामाजिक राजनीतिक सांस्कृतिक आंदोलन हुए वे शिक्षित लोगों के ही काम थे जिन्होंने नई पाश्चात्य संस्कृति और शिक्षा का अध्ययन मनन किया था।

आधुनिक जगत मे सब देशो में प्रबुद्ध वर्ग ने ही प्रगतिशील आंदोलनों का संगठन और नेतृत्व किया है। चीन भारत और ऐसे कुछ अन्य देशो में जहां साधारण जनता अधिकांशतः अशिक्षा और अज्ञान के गर्त मे पड़ी है, वहां प्रबुद्ध वर्ग की भूमिका और अधिक विशिष्ट और महत्वपूर्ण है क्योंकि इन देशों की जनता आत्म संगठन और आत्म प्रबोध में न्यूनतम पहलकदमी भी नहीं ले सकती। शिक्षित भारतीयो ने ही दूसरे देशो में हुए किसान और मजदूर आंदोलनों की जानकारी और उनके अध्ययन के आधार पर भारतीय किसानो और मजदूरो का पथ प्रदर्शन किया और अपने संगठन और आंदोलन बनाने में उनकी मदद की। अगर भारतीय जनता शिक्षित रही होती तो वह स्वाध्याय द्वारा दूसरे देशों के मजदूर एवं अन्य आंदोलनों की जानकारी हासिल कर सकती थी और अपनी पहलकदमी पर वैसे संगठन बना सकती थी। शिक्षित भारतीयों ने जनतन्त्र और स्वतन्त्रता के आधुनिक विचारो को भी आत्मसात किया था और उन्हें दूसरे देशो की सामाजिक सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियों का ज्ञान था। इस

लिए उन्होने अशिक्षित भारतीय जनता के बीच इस ज्ञान का भी प्रचार किया।

भारत मे अग्रेजी शासन द्वारा चलाई गई शिक्षा पद्धति के फलस्वरूप इस शिक्षित मध्यम वर्ग का जन्म हुआ था। वकील, डाक्टर, टेकनीशियन, प्रोफेसर, पत्रकार, सरकारी नौकर, किरानी विद्यार्थी इत्यादि इस वर्ग के सदस्य थे। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध म और उसके बाद भी आधुनिक शिक्षण सस्थाओ की सख्या म अनवरत वृद्धि के कारण शिक्षित मध्यम वर्ग की तादाद लगातार बढती गई। 1861 का काउसिल एक्ट शिक्षित आभिजात्य को एक तरह की रियायत थी।[1] '1892 का काउसिल ऐक्ट पेशेवर वर्गों की बढती हुई शक्ति और उनको दी गई रियायतो का एक अन्य सूचक था।[3]

भारत का आर्थिक विकास भारत म आधुनिक शिक्षा के विस्तार का समानुपाती नही था। किसी भी समाज म साधारण आर्थिक प्रगति औद्योगिक विकास से ही आती है और इस तरह उस देश की सपत्ति और समृद्धि बढती है, नौकरियो की सख्या मे वृद्धि होती है आय के अन्य साधन उपलब्ध होते है, लेकिन भारत म मुख्यत ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीति के कारण यह औद्योगिक विकास तेजी से नही हो रहा था। आर्थिक और शैक्षिक विकास म विषमता के कारण उन्नीसवी सदी के अत तक शिक्षित वर्गों म बेकारी बहुत बढ गई थी। शिक्षित बेरोजगार के कारण बढे हुए आर्थिक कष्ट से उत्पन्न राजनीतिक असतोष लडाकू राष्ट्रवाद के उदय का एक प्रमुख कारण था बालगगाधर तिलक, लाला लाजपत राय विपिनचद्र पाल, अरविन्द घोष इस लडाकू राष्ट्रवाद के प्रमुख नेता थे। शिक्षित लोगो की बेरोजगारी के कारण आतकवाद का भी जन्म हुआ।

बाद के दशक म जसे जैसे देश म शिक्षित मध्यम वर्ग बढा और अपनी वर्गीय मागो के प्रति जागरूक हुआ वैसे वसे ये लोग अपने विशिष्ट सगठन बनाने लगे और अपनी मागो को रूप देने लगे। इस तरह बढती हुई तादाद मे इन लोगो के अपने सगठन बनने लगे उनके आम सगठन के अलावा जसे नौजवान और स्वयसेवक सघ इत्यादि। 1930 के बाद यह प्रक्रिया विशेष तौर पर तीव्र हुई। इस काल म अपने हितो की रक्षा और अपनी शिकायतो को दूर करने के सघर्ष के लिए शिक्षक वकील, इजीनियर इत्यादि विभिन्न दलो के सघ और सगठन बने। ये सगठन किसान सभाओ और मजदूर सघो जैसे थे, जो मजदूरो और किसानो के वर्गीय हितो की रक्षा के लिए बने थे। 1934 के बाद छात्र सघो और सगठनो की तेजी के साथ वृद्धि हुई और उनके अखिल भारतीय सगठन भी बने।

आधुनिक भारतीय बुर्जुआजी के हित, सगठन और आदोलन

अब हम भारतीय समाज म उदित एक और नए वर्ग पर विचार करेंगे। अग्रेजी शासन काल म देशी एव विदेशी व्यापार के विस्तार और समयातर से उद्योगो और बैंको की स्थापना के कारण भारत म आधुनिक वाणिज्य औद्योगिक और वित्तीय बुर्जुआजी का जन्म हुआ। अन्य देशो की तरह यहा भी यह नय

आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से सबसे तगडा वग था।

भारतीय बुर्जुआजी की उत्पत्ति और उसका विकास व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के विस्तार से सबधित रहे हैं। आधुनिक उद्योगो वाले अध्याय म इनके विस्तार की कथा कही गई है। यहा हम इस वग के मुख्य हितो, विशिष्टताओ, समस्याओ, सगठनो और सघर्षों की चर्चा करेंगे।

ज्ञातव्य है कि व्यापार, उद्योग और बैंकिंग म यूरोपियन भी लगे हुए थे। अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए उन्होने आर्थिक उद्यम के आधार पर भारतीयो से मिलकर या फिर अलग से अपने सगठन बनाए। यूरोपियनो का पहला चेंबर आफ कामस (वाणिज्य मडल) कलकत्ता म 1834 म स्थापित हुआ, और बबई और मद्रास म 1836 म। पहला भारतीय चेंबर आफ कामस, बगाल राष्ट्रीय चेंबर आफ कामस 1887 म शुरू हुआ। इडियन मर्चेंटस चेंबर 1907 म बबई म स्थापित हुआ था। मारवाडी चेंबर आफ कामस कलकत्ता म 1900 म शुरू हुआ और मद्रास म 1909 म साउथ इडियन चेंबर आफ कामस का स्थापना हुई। जिस व्यापार वाणिज्य, उद्योग आदि म भारतीय लगे थे या जिससे उनका सबध था उसकी रक्षा के लिए 1925 म इडियन चेंबर आफ कामस की स्थापना हुई।[37]

बाद म भारतीय वाणिज्यिक समुदायो के प्रादेशिक सगठन भी बने, जसे 1927 म महाराष्ट्र चेंबर आफ कामस बना। भारतीय और यूरोपिय वाणिज्यिक वर्गों के पारस्परिक द्वद्वाघात के कारण इन दलो को अपने स्वतत्र सगठनो की आवश्यकता पडी। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि 'जहा दोनो व्यापार मे लगे थे वहा उनके स्वाथ भिन्न थे, जहा वे मिल मालिक थे या लोगो को रोज गार और नौकरी दिए हुए थे, वहा उनके स्वाथ अभिन्न थे, जैसा बबई के मिल ओनस एसोसिएशन से स्पष्ट है।'[38]

भारतीय व्यापारियो की मुख्य शिकायत यह थी कि व्यापार के क्षेत्र म भारतीयो की तुलना मे यूरोपियनो को सरकार स अधिमानिक सुविधाए प्राप्त थी और गैर ब्रिटिश देशो के साथ भारतीय तिजारत पर बहुत सारे अकुश लगे थे। भारत मे ब्रिटिश वाणिज्यिक हितो को जो विशेषाधिकार प्राप्त थे, भारतीय वाणिज्यिक समुदाय ने उनकी आलोचना की और उनके विरुद्ध सघष भी किए, जसे उन्होने तटीय पोत परिवहन म ब्रिटिश व्यवसायियो के प्राधिकारो पर हमला किया। मि० हाजी ने लेजिस्लेटिव असेम्बली म रिजर्वेशन आफ द कोस्टल ट्रैफिक आफ इडिया (भारत के तटवर्ती नौ परिवहन के अभिरक्षण) का प्रश्न उठाया। उनका तक था कि भारत के तटीय व्यापार म विदेशी एकाधिकार से भारतीय नौ परिवहन की प्रगति को बाधा पहुच रही है।

राष्ट्रवादी वैज्ञानिक सर पी० सी० राय ने कहा अग्रेज इस देश म जिस स्थिति का उपभोग करते रहे है और नए सविधान मे जो कुछ वे चाहते है, वह अधिकारो की समानता नही वरन शासक जाति के रूप म विशेषाधिकार अपनी खुद की सरकार से मिलने वाले प्राधिकारो की सुरक्षा और विद्यमान असमानताओ

की अवस्थिति। अगर य अधिकार समाप्त नही होत है तो भारतीयो को अपना आर्थिक भविष्य बनाने के अवसर नही मिलेंगे।'[35]

फिर भी वाणिज्यिक समुदायो ने ब्रिटिश सरकार का वसा प्रखर विरोध नही किया, जैसा उद्योगपतियो ने, जिनका सघष कालातर मे विकसित हुआ। इसकी वजह यह थी कि विदेशी और नवजागत भारतीय औद्योगिक स्वार्थों के बीच मडी के लिए जो अवश्यभावी सघष हुआ, उसमे ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटिश उद्योगो की रक्षा की हर सभव कोशिश की।

'बुर्जुआजी की राष्टीयता का जन्म मडी म होता है।'[36] अपन ज मकाल से ही, औद्योगिक बुजुआजी ने सरकार के विरुद्ध, नवजात भारतीय उद्योगा को सुरक्षा प्रदान करने क सवाल पर, घनघोर मोर्चाबदी की। 1880 के बाद आधुनिक उद्योग भारत म तजी से बढे और औद्योगिक बुजुआजी की ताकत बढी। राष्ट्रवादी प्रबुद्ध वग ने भारत मे राष्ट्रीय आदोलन की शुरूआत की और 1885 म प्रमुख राष्टीय राजनीतिक सगठन इडियन नशनल काग्रेस की स्थापना हुई।

1905 तक ऊर्ध्वोमुख औद्योगिक वग काफी तगडा और जागरूक हा चुका था। पशेवर वग नौकरियो और पेशो मे अग्रेजो के एकाधिपत्य को समाप्त करन के लिए पहले ही से सघष कर रहे थे। 1905 के लगभग औद्योगिक वर्गों ने भी पेशेवर वर्गो को अपना समथन प्रदान करना शुरू कर दिया।

> पशेवर वर्गो का यह उद्देश्य था कि उन अग्रेजा का स्थान ग्रहण कर सके जो मेडिसिन, कानून और पत्रकारिता के क्षेत्र म एक प्रकार से एकाधिकार जमाए हुए थे। उद्योगपतियो का वग भी औद्योगिक क्षेत्र म अग्रेजा के एकाधिकार का समाप्त करना चाहता था। सूती कपडा का उद्योग सबसे बडा भारतीय उद्योग था और यह ब्रिटिश व्यापारियो क हिता के लिए नुक्सानदेह था। भारत मे पूजीवाद का विकास औपनिवेशिक प्रकार का था। देश के सामाजिक अयतत्र और ब्रिटिश शासक वग के अनन्य मुक्त व्यापार के कारण भारत के उदीयमान उद्योगपतियो के हित को नुकसान हो रहा था। उ ह वाणिज्यिक विभेद और अबाध व्यापार के विरुद्ध सघष करना पडा। उनका नारा था स्वदेशीवाद और सरक्षणवाद। इन उदीयमान औद्योगिक वर्गों ने स्वभावत पशेवर वर्गों के साथ एकता कायम की।[37]

ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति के आलोचको का कहना था कि ब्रिटिश उद्योगो के हित म भारतीय उद्योगो के मुक्त विकास पर रुकावटें लगाई जा रही थी।[38]

इसके कारण भारत ब्रिटिश उद्योगो के लिए कच्चा माल उत्प न करने वाला कृषि प्रधान देश रह गया था। भारतीय आर्थिक विकास ब्रिटिश उद्योगा के हित की दृष्टि से अनुकूलित और अधीनस्थ था, भारतीय अयतत्र ब्रिटिश अयतत्र का औपनिवेशिक सहायक होकर रह गया था। जान ब्यूकप न कहा है कि भारत के औद्योगिक विकास पर निम्नलिखित प्रतिबध लग थ (क) यह ब्रिटिश पूजी के

नियत्रण मे रह, भारतीय पूजी की जूनियर पाटनर की स्थिति हो, (ख) भारतीय उद्योग बराबरी के स्तर पर ब्रिटिश उद्योग से होड न ले सके, और न उस कच्च माल का इस्तेमाल कर सक जिसकी ब्रिटिश उद्योगा का जरूरत हो (ग) ब्रिटन म बने सामान के भारतीय बाजार पर किसी तरह का आधात न पहुचे, और (घ) उत्पादन के साधनो का निर्माण कर सकन वाल उद्योगा का विकास न हो।'[39]

सरक्षण, अनुकूल विनिमय अनुपात वढते हुए उद्योगा के लिए अथ साहाय्य, आदि अपन खुद क नारो के साथ औद्योगिक बुजुआजी न भारतीय राष्ट्रीय आदोलन म पदापण किया। बीसवी सदी के पहले दशक म औद्योगिक पूजीपतिया न राष्ट्रीय आदोलन मे हिस्सा लना शुरू किया। इसी काल म यह वग इडियन नेशनल काग्रेस की ओर आकृष्ट हान लगा और इसने विदशी माल के बहिष्कार और स्वदेशी के कायक्रम का उत्साहपूण समथन किया, क्योकि इनसे उनका वग स्वाथ पूरा होता था। स्वदशी आदोलन सफल रहा, कुछ दिना तक, और इससे भारतीय उद्योगो का बल मिला खासकर सूती कपडा के उद्याग को।

राष्ट्रीय आदोलन अब तक प्रबुद्ध वग वाणिज्यिक बुजुआजी के कुछ अश और शिक्षित मध्यम वग तक ही मुख्यतया सीमित था लकिन 1905 क बाद इस अधिक व्यापक आधार मिला क्योकि मध्यम वग और राजनीतिक चेतनाशील उद्योगपतिया ने बडी तादाद म इसम हिस्सा लेना शुरू किया।

प्रथम विश्वयुद्ध (1914-18) के काल मे देश म औद्योगिक विकास बहुत तजी से हुआ। इसकी खास वजह यह थी कि ब्रिटिश और दूसरे विदशी उद्योग मुख्यत युद्ध की ओर लगे और भारतीय बाजार के लिए सामान न द सके। इस तरह भारतीय उद्योगो का तेजी से विस्तार हो सका। फिर, सामरिक कारणा स ब्रिटिश सरकार न स्वय भी इस्पात जसे कुछ अन्य उद्योगा को प्रश्रय दिया। इसक चलते उद्योगपतियो की सामाजिक और आर्थिक शक्ति म और अधिक वद्धि हुइ।

लकिन राष्ट्रीय आदोलन और उसके प्रमुख सगठन इडियन नेशनल काग्रेस म इस वग के बल और प्रभाव म युद्ध काल के बाद ही विशेष प्रगति हो सकी। खासकर 1919-20 के बाद काग्रेस सगठन पर इसका विशिष्ट प्रभुत्व स्थापित हुआ। अब उद्योगपतिया के प्रभाव ने काग्रेस के कायक्रम का निरूपित करना शुरू किया और इसके सघर्षों के रूप और ढग प्रकार और प्रणाली को भी निर्धारित किया। इडियन नेशनल काग्रेस पर इस वग का नियत्रण लगातार बढता ही रहा।

1919-20 म इडियन नेशनल काग्रेस गाधीवादी विचारधारा के प्रभाव म और गाधी के राजनीतिक नतृत्व म आइ। गाधी ने आधुनिक मशीनतत्र और उद्योगा से अपन अनम्य विरोध की घोषणा कर दी थी। लकिन भारतीय उद्योग पतियो की आशका तब समाप्त हो गई जब 1920 म इडियन नेशनल काग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन म गाधी न स्वदशी विषयक प्रस्ताव का समथन किया। प्रस्ताव म कहा गया था कि सूती माल में स्वदेशी का ही व्यापक रूप म उपयोग हो (देख राजनीतिक विषयक अध्याय)।

इतिहास एव अथतत्र के नियमा से परिचित इन उद्योगपतिया ने खद्दर के समातर प्रचार को अपने औद्योगिक कायक्रम के लिए खतरनाक नही माना। यह बात अजीब लग सक्ती है, लेकिन मशीन पर आधारित आधुनिक उद्योगो को चलाने बढान और उससे फायदा कमाने वाले कुछ लोगो ने भी हाथ के बुन खद्दर का इस्तमाल शुरू किया और खद्दर आदानन को आर्थिक सहायता भी दी। उन्होन यह समभा कि काग्रेस और काग्रेम द्वारा चलाए गए आदोलना मे ब्रिटिश सरकार को आर्थिक और राजनीतिक रियासत के लिए बाध्य किया जा सकता है और इससे उनके वग को फायदा है।

फिर वग मम वय सपत्ति पर पूजीपतियो की न्यासिता और पूजीवादी पिता है, मजदूर उनकी सतान' आदि सिद्धाता पर आधारित गाधीवादी समाज दशन उद्योगपतिया को भी पसद आया। वग सघप के आधार पर विकसित हा रह मजदूर आदालना से उन्ह इस दशन मे बचाव नजर आया।

वग सघप के सिद्धात का गाधी न जा अनवरत विरोध किया, उसके कारण वे उद्यागपतिया के बीच समादृत हुए। उद्यागपतियो न आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस को पसद नही किया क्योकि यह ब्रिटिश ट्रेड यूनियन काग्रेस की तरह ही वग सघप के सिद्धात पर आधारित था। लेकिन उन लोगो न मजूर महाजन का समथन किया जो अहमदाबाद के सूती मिलो के मजदूरो का गाधी द्वारा शुरू किया गया सगठन था और वग सामजस्य के सिद्धात पर आधारित था।

बिडला, बजाज, अम्बालाल, साराभाई, कस्तूरभाई लालभाई और अन्य धनाढय उद्योगपतिया न गाधी के एकछत्र नतत्व मे काग्रेस का समथन किया और इसके कायक्रमो के लिए पैसा दिया। उन्होने प्राक पूजीवादी हस्तशिल्प के पुनरुज्जीवन जैसी योजनाआ को भी आर्थिक सहायता दी। मूलत इन उद्योगपतियो द्वारा आल इडिया स्पिनस एसासिएशन और एस अन्य सगठनो को दिए गए अथ माहाय्य के कारण ही तेजी से खतम हो रहे उत्पादन के पुरान तरीको को बनावटी तौर पर अवलवन देकर जिदा रखा जा रहा था।

गाधीवादी दशन म गरीबी को गौरवान्वित किया गया और विराधी के प्रति प्रेम भावना की शिक्षा दी गई, कम मजदूरी और काम की बुरी स्थिति के कारण बढते हुए मजदूर असतोष का शायद यह दशन सबसे अच्छा काट था, और इसी लिए इसके प्रचार के लिए भी उद्योगपतियो न पसा दिया। अगर गरीबी अच्छी चीज है तो ऊचे जीवन स्तर की माग स्पष्टत गलत है।

यह बात अतर्विरोधी लग सकती है, लेकिन इन धनाढय उद्यागपतियो ने स्वय जीवन क गाधीवादी सिद्धातो का अनुकरण करन की कभी काई चेष्टा नही की। गाधीवादी का उन्होन समथन प्रदान किया लेकिन व स्वय सपत्ति और मुनाफे के प्रेम म पडे रह, और उसस चिपटे रह।

उद्योगपतिया न फिर भी गाधी के नेतृत्व म गाधीवादी सिद्धातो आधारित इडियन नशनल काग्रेस द्वारा सगठित जन आदोलना का महत्व

सरक्षण, अनुकूल अनुपात (जो गाधी क ग्यारह सूत्री मागा म एक था, दखे अध्याय 10) जसी अपनी मागा की पूर्ति के लिए उद्योगपतियो ने इन आदोलना का इस्ते माल किया।

कृषि सबधा के रूप और प्रकार के कारण भी भारत का तेज आर्थिक विकास सभव नही हो पा रहा था। कृषि के पुनर्निर्माण के लिए और कृपक आबादी की आर्थिक स्थिति म सुधार के लिए, जिससे लोगा की क्रय शक्ति म वद्धि हा, मूल भूत सुधार की आवश्यकता थी। भारतीय उद्याग तेजी से तरक्की करे इसके लिए आवश्यक था कि उनके उत्पादनो को खरीदने वाली कृपक आबादी समृद्ध हो।

लेकिन भारतीय उद्योगपतियो ने मूलभूत कृषि सबधी सुधारो के कायक्रम म कोई दिलचस्पी नही दिखाइ। इसकी वजह थी कि भारत म जमीदार और पूजी पति वग एक दूसरे स जुडे हुए थ। जमीदारा ने उद्यागो और बका मे पसा लगाया और बकर और उद्योगपतियो को भी जमीन जायदाद थी।

1937 म जो काग्रेस सरकारे बनी, उनकी वामपथी राष्ट्रवादियो न पूजीवादी झुकान रझान क लिए आलोचना की (देखे अध्याय 10)। इन आलोचका का विचार था कि उद्योगपतिया न काग्रेस का इसीलिए समथन किया कि काग्रेस न उनके हितो की रक्षा की।

बबइ के सूती मिल मजदूरा की हडताल के वक्त सरकार द्वारा पुलिस का इस्तेमाल ट्रेडस डिस्प्युटस एक्ट, अहमदाबाद और शोलापुर म मजदूरा की सभाओ पर प्रतिबध विभिन्न प्रातो म काग्रेसी सरकारो द्वारा कुछ मजदूर नताओ का जेल म डालना या देश निकाला देना, आलोचका न इन बातो की तरफ लोगा का ध्यान आकर्पित कर यह सिद्ध किया कि काग्रेसी सरकारें पूजीवादी हिता का समथन करती थी।[40]

दूसरे वर्गों की तरह औद्योगिक बुजुआजी न भी अपन हितो की रक्षा के लिए और अपनी मागा को आग बढान क लिए कई सगठन बनाए। 1875 म बाब मिल ओनस एसोसिएशन 1881 म इडिया टी एसोसिएशन 1884 म इडियन जूट मिल एसोसिएशन 1891 म अहमदाबाद मिल ओनस एसोसिएशन बना 1927 म इडियन चेंबस आफ कामस एड इडस्ट्री का महासघ 1920 म सदन इडिया एम्प्लायस फेडरशन 1933 म आल इडिया आगनाइजेशन आफ इडस्ट्रियल एम्प्लायस और 1933 म एम्प्लायस फेडरशन आफ इडिया बना।

भारतीय अथतत्र विकास के एकाधिकार पूजी वाले चरण म पहुच चुका था। उद्यागा वाले अध्याय म इस बात की चर्चा की गई है कि कस उद्यागपतियो की दिनानुदिन घटती हुई सख्या म यह प्रवत्ति बढती गइ कि उद्याग की किसी विशेष शाखा पर या किसी उद्योग की समष्टि पर या उद्यागा क समुदाय पर ही एकाधिकार स्थापित कर लिया जाए। इसके कारण देश की जनता के आर्थिक ही नही वरन सामाजिक, बौद्धिक राजनीतिक जीवन पर भी कुछ थाडे उद्योगपतियो और अथ पतिया की जकड मजबूत हाती गई। अखबारा के उदाहरण स इस स्थान का साग

तौर पर समझा जा मकता है। बिडला ने बहुत सारे अखबार खरीद लिए जिससे उसे इन अखबारो को पढने वाली जनता के विचार और दष्टिकोण का अपने इच्छानुसार मोड सकने की ताकत मिली। यह स्थिति पहले की स्थिति से भिन्न थी, अब सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आगरकर तिलक और अन्य य लोग अखबार चला सकते थे और अपने विचारो का स्वतन्त्र प्रचार कर सकते थे। बडे बडे व्यवसायियो ने अधिकाधिक अखबारो पर अपना शासन और प्रबंध कायम किया और इस तरह जनसमुदाय के विचारो पर नियन्त्रण प्राप्त किया। दूसरे उद्योगो म भी यही प्रवत्ति देखी जा सकती है। आर्थिक एकाधिकार के कारण लोगो के बौद्धिक, राजनीतिक और सामाजिक जीवन पर भी एकाधिकार का नियन्त्रण बढता जा रहा था।

भारत मे आधुनिक सर्वहारा वर्ग का उदय

अब हम भारत के आधुनिक मजदूर वर्ग की चर्चा करेंगे जो कई अन्य वर्गों की तरह नया वर्ग था। भारत म अंग्रेजी शासन काल म आधुनिक उद्योग धधो, यातायात के आधुनिक साधनो और बागानो की स्थापना हुई, जिसके कारण आधुनिक मजदूर वर्ग का जन्म हुआ। जैसे जैसे बागानो आधुनिक कल कारखानो, खनिज उद्योगो, आवागमन के साधनो आदि म वद्धि हुई वसे-वसे इस वर्ग की सख्या म भी वद्धि हुई। भारतीय सर्वहारा वर्ग मुख्यत उन किसानो और हस्त शिल्पकारो से निर्मित हुआ जो दरिद्र हो गए थे और अब मजदूरी कमाने लगे थे।[41] भारतीय मजदूरो के जीवन यापन और काय के हालात इतने निम्न स्तर के थे कि सरकारी और गैर सरकारी दोनो प्रकार के लेखको ने इसकी चर्चा की।

> सब तरह की जाच पडताल म यही पता चलता है कि भारत के अधिकाश मजदूर एक शिलिंग प्रतिदिन से अधिक नही कमाते ह।[4]
>
> हम लोग जहा कही भी ठहर, वहा हमने मजदूरो के घर देखे, और अगर हम इन्ह नही देख होते तो हम यह विश्वास नही कर पाते कि इतनी बुरी जगह भी कही ह
>
> हर जगह लोगो की भीड और अस्वास्थ्यकर हालतें इनसे पता चलता है कि सरकारी पदाधिकारियो न अपने स्पष्ट कर्तव्यो की निमम उपेक्षा की है।[43]

1938 म जिनेवा म हुए इंटरनेशनल लेबर कान्फरेंस म भारतीय मजदूरो के प्रतिनिधि एस० पी० परुलेकर ने अपने भाषण म कहा भारत म अधिकाश मजदूरो को जो मजदूरी मिलती है वह इसके लिए भी काफी नही कि उन्ह जीवन की न्यूनतम आवश्यकताए उपलब्ध करा सके बीमारी बेरोजगार बुढापा और मृत्यु के विरुद्ध भारत के मजदूरो को कोई सुरक्षा नही प्राप्त है।[44]

जितनी कम मजदूरी उन्ह मिलती थी उसके आधार पर वे अपने और अपने परिवार का भरण पोषण करने म असमर्थ थे। इसलिए उनम से अधिकाश ऋण ग्रस्त थे। ह्विटली कमीशन ने अपने निष्कर्ष म कहा, अधिकाश औद्योगिक केंद्रो

मे दो तिहाई परिवार और व्यक्ति कर्ज मे है।[1] खान मजदूरो के जीवन और श्रम की हालते खास तौर पर बुरी थी।[46]

बागानो मे अधिकाश यूरोपियन लोगो की मिलकियत थी और वहा के मजदूरो को शायद सबसे कम मजदूरी मिलती थी। इसके बारे मे शिवराव ने लिखा है, 'आसाम घाटी के चाय बागानो मे बसे मद मजदूरो की औसत माहवारी आमदनी कुल 7 रुपया 3 आने थी, औरतो और बच्चो की क्रमश 5 रुपए 14 आने और 4 रुपए 4 आने थी।'[47]

सरकार ने मजदूरो की सुरक्षा के लिए कुछ कानून बनाए जसे 1931 का इंडियन पोर्टस ऐक्ट, 1934 का वर्कमंस कपनसेशन एक्ट, 1934 का फैक्टरीज ऐक्ट, 1935 का माइन्स ऐक्ट 1936 का पेमेंट आफ वेजेज ऐक्ट, इत्यादि।

लेकिन सरकार द्वारा पारित श्रम और समाज सबधी विधेयको को बहुत सारे लेखको ने अपर्याप्त बतलाया है।

> कारखानो खानो बागानो जहाजी मालघाट रेलवे, बंदरगाह इत्यादि मे काम करने वाले सारे मजदूरो के बारे मे पारित विधेयको का लेखा जोखा लिया जाए तो कुल मिलाकर महज सत्तर या अस्सी लाख मजदूरो को ही इससे सरक्षण मिल सका। शेष मजदूर जो बहुत बडी सख्या मे है, वे क्षुद्र उद्योग या जिन्हे अनियन्त्रित उद्योग कहा जा सकता है उनमे लगे है।[48]

जीवन और श्रम की इन बुरी शर्तो के कारण भारत मे 1918 के बाद मजदूर वर्ग के आदोलन काफी तेजी से बढे।

भारतीय मजदूर वर्ग मे राष्ट्रीय और वर्गीय चेतना प्रबुद्ध वर्ग शिक्षित मध्यम वर्ग और बुर्जुआजी के बाद आई। इसका कारण था कि मजदूर वर्ग सास्कृतिक तौर पर पिछडा हुआ वर्ग था, लगभग निरक्षर। मजदूरो की पहली कुछ पीढिया, दरिद्र किसान और बर्बाद ग्रामीण कारीगर, शहरो मे आने और मजदूर हो जाने के बाद भी गावो के पिछडेपन से आक्रात रही। बाद मे भी अधिकाश मजदूरो के सबध गावो मे बने रहे।

आधुनिक सर्वहारा, इसकी चरित्रगत विशिष्टताए

अपने जीवन और श्रम की हालतो के ही कारण मजदूर वर्ग की अपनी चारित्रिक विशिष्टताए और शक्तिया विकसित होती है जो उन्हे किसानो और नागरिक मध्यम वर्ग से अलग करती है। उन्ही के कारण उनके लिए अपने वर्ग स्वार्थो के लिए सगठित और एकजुट होना और अपना सामूहिक सघर्ष चलाना आसान होता है। सर्वप्रथम सर्वहारा सपत्तिहीन होने के कारण किसान से अधिक लडाकू होता है। किसान के पास थोडी ही सही जमीन तो होती है जिससे उसका लगाव हो जाता है और वह विद्रोह से हिचकता है। दूसरे कारखानो और मिलो मे एव अन्य औद्योगिक केंद्रो मे मजदूर बहुत बडी तादाद मे एक साथ रहते है। इससे

कारण किसानो की अपेक्षा मजदूरो का सगठित होना आसान होता है। किसान बहुत बडे क्षेत्र मे फल होत है और एक सघ की छत्रछाया म नही लाए जा सकते। फिर, मजदूर आधुनिक शक्ति चालित यत्रा मे काम लेत है और अपने श्रम की सिद्धि के लिए वे प्रकृति की स्वेच्छाचारी शक्तियो पर निभर नही ह। इसलिए जहा किसान के मन म आत्मसशय और पराजय घर किए है, वहा मजदूर इसके विपरीत आत्म विश्वासी तकशील और साफ सोचन वाला हाता है। श्रम की जिस प्रक्रिया म मजदूर लगे ह वहा जटिल और व्यापक श्रम विभाजन लागू है। रोज रोज आपस म एक साथ मिलकर काम करने की जरूरत के चलते धीरे धीरे मजदूरो म सामूहिक भाव और सहयोग की योग्यता आ जाती है। यही कारण है कि मजदूर मगठन तेजी स उत्पन्न होते है और किमान मगठन और किसान आदालनो की तुलना म मजदूरा की हडताले और मामूहिक मघप अधिक जल्दी जल्दी होत ह।

यह भी खयाल रखना चाहिए कि आधुनिक समसामयिक समाज म मजदूर की स्थिति अत्यत महत्वपूण है। यह मिला और कारखानो को एव रेलवे और बसा को चलाता हे गैस और बिजली जसे शक्ति स्रोता का मृजन करता है, कोयला खोद लाता है और डाक तार से सूचना भेजता है। आधुनिक समाज क मचालन क लिए ये काय सामाजिक और आर्थिक दष्टियो से अत्यत महत्व के ह। इसके कारण अपनी साख्यिक शक्ति की तुलना म आधुनिक मजदूर वग का विशिष्ट सामाजिक बल बहुत अधिक है।

दूसरे दशो के मजदूर वग की तरह भारतीय वग भी उत्पादन के आधुनिक साधनो से वचित है, यद्यपि इन साधनो के सचालन का उत्तरदायित्व उसी पर है, और वह धीर धीरे समाजवादी व्यवस्था की धारणा एव कायक्रम की ओर झुकन लगा। यह आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस के सविधान म परिलक्षित होता है जिसने भारत म समाजवादी राज्य की स्थापना अपना उद्देश्य माना। ब्रिटन फ्रास और दूसर दशो के इतिहास से पता चलत है कि आधुनिक समाज म अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण, मजदूर वग इस अतिम उद्देश्य की ओर आकृष्ट होकर उसके लिए सघप करता है। समसामयिक भारतीय समाज क अन्य वग महज राष्ट्रीय स्वातत्र्य की कामना करत थे लेकिन भारतीय श्रमिक शुरू से ही स्वतत्र समाजवादी भारत का मपना साकार करना चाहते थ।

मजदूरो के जीवन और श्रम की स्थिति के कारण उनके आत्म मगठन की प्रक्रिया को बल मिला। लकिन उनका सास्कृतिक पिछडापन उनके जाति और समुदाय गत विभद, धार्मिक अधविश्वास जीवन के प्रति भाग्यवादी दष्टिकोण जिनके कारण निभय हाकर काय करने की इच्छा शक्ति कमजोर होती है, इन कारणो से आत्म सगठन की प्रक्रिया म रुकावट भी आइ। फिर भी सब मिलाकर भारतीय मजदूर वग के टड यूनियन और उनके राजनीतिक और सास्कृतिक आदोलन बढत रह।

मजदूर आदोलनो का विकास

सगठित आदोलन के रूप म भारतीय मजदूर आदोलन 1914 18 के विश्वयुद्ध क बाद ही शुरू हुआ। लेकिन उसके पहले भी यदा कदा भारतीय मजदूरा के सघष होते रह थे। ये सघष स्वत स्फूत थे, और उनका कोई निश्चित, जागरूक और सचत वग उद्देश्य नही था।

अमलगमेटेड सासाइटी आफ रेलवे सर्वेन्ट्स की स्थापना 1893 म हुइ थी। लेकिन रेलवे के उच्च अफसर, प्राय एग्लो इडियन ही इसके सदस्य थे। बीसवीं सदी के पहल दशक मे कलकत्ता म प्रिटर्स यूनियन और बम्बई म पोस्टल यूनियन जसे कुछ मजदूर सघो की स्थापना हुई। लेकिन इनकी सदस्य सख्या कम थी और इनका समुचित सद्धातिक या कायक्रम सबधी कोई आधार नही था। 1918 के पहले कुछ औद्योगिक हडताले भी हुई थी। य प्राय स्वत स्फूत, और असगठित थी, और इनकी काई विशिष्ट मजदूर सघीय चेतना भी नही थी।[49]

राजनीतिक तौर पर भी 1918 तक भारतीय मजदूर वग लगभग सुप्त और निष्क्रिय रहा। केवल एक ही अपवाद था। 1908 मे जनप्रिय राष्ट्रवादी नेता बालगगाधर तिलक की गिरफ्तारी के विरोध म बबई के सूती मिलो के मजदूरो न हडताल की। भारतीय मजदूरा की यह एकमात्र राजनीतिक कायवाही थी। लनिन ने उनकी बढती हुई राजनीतिक चेतना के प्रतीक के रूप म इसका अभिनन्दन किया था (देखे अध्याय 10)।

लेकिन 1918 के बाद भारतीय मजदूर वग न वग के आधार पर अपन को सगठित करना शुरू किया और तेजी स टेड यूनियन और राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। ह्विटली कमीशन की रिपाट म इस परिवतन की चचा है

> 1918 19 की सर्दियो क पहले भारतीय उद्याग म शायद ही कभी हडताल हुई सगठन और नेतृत्व के अभाव म और जीवन के प्रति निष्क्रिय दष्टिकोण क कारण औद्योगिक मजदूरो म अधिकाश का विचार था कि वापस गाव चल जाना औद्योगिक जीवन की कठिनाइया का एकमात्र विकल्प है। युद्ध क बाद उस स्थिति म शीघ्र परिवतन हुए। 1918-19 के जाड मे कुछ महत्वपूण हडतालें हुइ, दूसरे साल के जाडे म हडतालो की सख्या और बढी और 1920 21 के जाडे म मगठित उद्योग म औद्योगिक हडताले आम हो गइ। इसका कारण था कि तोगा न वतमान स्थिति म हडतालो की शक्ति को समझा, और इस बात का मजदूर सघो के सगठनकर्त्ताओ क आविर्भाव, जन साधारण का युद्ध से मिली शिक्षा उद्योगा के विस्तार से श्रमिका की सख्या म कमी जो इफ्लुएजा के सक्रामक हाने की वजह स और बढी, आदि कारणो स मदद मिली।[50]

1918 के बाद भारतीय मजदूर वग क सगठित आदालना की शुरूआत क निम्नाकित कारण भी थ, युद्ध क बाद का आर्थिक सकट जिसके कारण मजदूरा क

कष्ट बढे, भारत की समस्त जनता पर जिसम मजदूर वग भी था जमनी, आस्ट्रिया टर्की और अय देशा की जनतात्रिक त्रातियो और रूस की समाजवादी क्राति का प्रभाव, और देश के अदर बढता हुआ विक्षोभ।

1918 और 1920 के बीच देश भर म, बबई, कानपुर, कलकत्ता, शोलापुर जमशेदपुर, मद्रास और अहमदाबाद जसे विभिन औद्योगिक केंद्रो म लगातार कई हडतालें हुइ। पहली बार इतनी अधिक हडतालें इतने व्यापक रूप म हुई थी।[51] इन आर्थिक हडतालो के अतिरिक्त बबई और कुछ अय औद्योगिक शहरा म रौलेट एक्ट के विरुद्ध मजदूरो ने राजनीतिक हडतालें भी की और इस तरह अपनी बढती हुई राजनीतिक चेतना का परिचय दिया। इससे पता चलता है कि राष्ट्रीय आदोलन मे मजदूर वग का भी प्रवेश हो चुका था।

इसी काल म पहली बार बबई, मद्रास और कुछ अय कद्रो म विभिन उद्योगा म मजदूर सघो की स्थापना की चेष्टा हुई। कुछ ही दिनो मे देश म बहुत सारे मजदूर सघ बन गए। 1920 म एन० एम० जोशी, लाला लाजपत राय और जोसफ बैपटिस्टा के प्रयास के फलस्वरूप आल इडिया टेड यूनियन काग्रेस की स्थापना हुई। उनका उद्देश्य था देश के सारे प्रातो म मजदूरो के सारे सगठनो के कार्यो को समन्वित करना और आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक मसलो पर भारतीय मजदूर के हितो को प्रश्रय देना।[5]

भारतीय मजदूर वग के इतिहास मे आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस की स्थापना युगातरकारी घटना है। पहली बार बढते हुए टेड यूनियन आदोलन को अखिल भारतीय आधार मिला। लगभग एक दशक तक ए० आई० टी० यु० सी० का नेतृत्व एन० एम० जोशी जैस उदारवादी राजनीतिज्ञो के हाथ म रहा। आग चलकर सी० आर० दास जैसे राष्ट्रवादियो के भी इससे सबध रहे। मजदूरा के बीच होन वाला प्रचार नतृत्व के राष्ट्रवादी और सुधारवादी विचारधारा के अनुकूल था। लेकिन ए० आई० टी० यु० सी० की सदस्य सख्या बहुत कम थी।

1927 के बाद ट्रेड यूनियन आदोलन म वामपक्षी नेतृत्व विकसित हुआ और इसमे वामपथी राष्ट्रवादी, समाजवादी और साम्यवादी लोग आए। इस नए नेतृत्व ने तेजी से पुरान नेतृत्व को विस्थापित करना शुरू किया। 1922 से ही भारतीयो के बीच समाजवादी और साम्यवादी विचार फल रहे थे और इस तरह देश मे समाजवादी और साम्यवादी दलो की स्थापना हो रही थी। इन दलो न राष्ट्रीय आदोलन की सफलता के लिए मजदूर वग का महत्व समझा और वकस एड प्रेजेंटस पार्टियो का सगठन किया। इन पार्टियो के सदस्य ट्रेड यूनियन काग्रेस म अधिकाधिक प्रभावशाली होते गए। उनका उद्देश्य था ट्रेड यूनियन आदोलन वग सघष के सिद्धात का और राष्ट्रीय मुक्ति सग्राम म मजदूरो का प्रवेश। सीधे सघष के माध्यम से राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति उनका कायक्रम था।

जोशी गुट वाला पहले का नेतृत्व कुछ दिनो म कमजोर होकर रह गया, और वामपथी लोग ए० आई० टी० यु० सी० का नेतृत्व ले सकन म सफल हुए। 1929

मे रायल कमीशन आन लेबर के बहिष्कार और जिनवा के इटरनेशनल कांफ्रेंस मे प्रतिनिधित्व के सवाल पर दोनो पक्षो म घोर विभेद उठ खडा हुआ। इसक चलते आपस म फूट पड गई और कई एक ट्रेड यूनियन अलग हो गए। अब जोशी गुट के नेतृत्व मे इडियन ट्रेडस यूनियन फेडरेशन की स्थापना हुई।

ए० आई० टी० यु० सी० म 1931 म फिर फूट पड गई, लेकिन दोनो दल फिर 1935 मे एक हो गए। 1938 म ए० आई० टी० यु० सी० और इडियन टेडस यूनियन फेडरेशन भी एक हो गए और पहले से अधिक मजबूत आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस का उदय हुआ।

ए० आई० टी० यु० सी० का कायक्रम काफी आग बढा हुआ था। इसके उद्देश्य थे, भारत म समाजवादी राज्य की स्थापना, यथासभव उत्पादन के साधन एव विनिमय और वितरण का समाजीकरण और राष्ट्रीयकरण, मजदूर वग की आर्थिक और सामाजिक स्थिति मे सुधार, वाक स्वातत्र्य और प्रस, सगठन, सभा और हडताल आदि की स्वतत्रता जैसे नागरिक अधिकार मजदूरो का उपलब्ध कराना, मजदूर वग के हितो की दष्टि से राष्ट्रीय सघप म हिस्सा बटाना और जाति धम, समाज, प्रजाति और आस्था पर आधारित विशेषाधिकार की समाप्ति।[3] यह आगे बढा हुआ जनतात्रिक और समाजवादी कायकम था।

1942 म ए० आई० टी० यु० सी० जिसमे विभिन्न उद्योगो के टड यूनियन शामिल थ की समस्त सदस्य सख्या 3,37,695 थी। यह मजदूरा की समस्त सख्या का अल्पाश ही था। भारत के ट्रेड यूनियनो की सदस्य सख्या कम होन की वजह थी, मजदूरा की गरीबी और उनका सास्कृतिक पिछडापन नियोक्ताओ द्वारा दडन उत्पीडन का आतक आदि। लेकिन हडतालो के वक्त ट्रेड यूनियना को मजदूरो का अन्यतम समथन प्राप्त हुआ और उस वक्त उनकी सदस्य सख्या भी बढी।

1927 के बाद भारतीय मजदूर वग ने आर्थिक और राजनीतिक सघप के क्षत्र मे अपने क्रियाकलाप का अन्यतम विस्तार किया। 1928-30 म कुछ महान आर्थिक सघप हुए, जिनम बबई के सूती मिल के मजदूरो की हडताल भी थी। 1927 क बाद भारतीय मजदूर वग न स्वतत्र राजनीतिक हैसियत प्राप्त करनी गुरू की। उसका अपना झडा और अपना स्वतत्र वर्गीय कायक्रम था। मजदूर वग का अच्छा खासा अश सयुक्त राष्ट्रीय आदोलन म अपन खुद के नेतत्व के पीछे चला। साइमन कमीशन के विरुद्ध इडियन नशनल काग्रेस द्वारा सगठित विरोध प्रदशनो म मजदूरा न अधिकतर अपन झडे के नीचे, अपन नारो के साथ, अपने नतत्व म भाग लिया। सरकार न इसको बहुत खतरनाक माना और इस साम्यवादियो की जालसाजी का परिणाम बताया। इसलिए इसने ट्रेडस डिस्प्युट ऐक्ट बनाया और 1929 म पब्लिक सफ्टी बिल का आर्डिनेंस जारी किया। इनम स पहल कानून की मदद स सरकार न हडताल करन की स्वतत्रता को सीमित किया और दूसरे की मदद स अवाछित विद शियो का देश निकाला दन का अधिकार प्राप्त किया। बहुत सारे वामपथी मजदूर नताओ की गिरफ्तारी भी हुई और मरठ कासपिरसी केस किया गया। 1930 33

ने नागरिक अवज्ञा आदोलन म भी मजदूर वग के कुछ लोगो ने भाग लिया।

1937 के चुनावो म काग्रसी उम्मीदवारो की महान सफलता का एक यह भी कारण था कि मजदूरो ने उन्ह जोरदार समथन दिया, क्योकि काग्रेस का चुनाव घोषणा पत्र उनके मन लायक था। लकिन काग्रेसी सरकारो से शीघ्र ही उनका मोह-भग भी हुआ। मजदूरो की यह शिकायत थी कि उनकी हालत सुधारने के लिए इन सरकारो न कुछ नही किया वरन वाम्र टेडस डिस्प्युट ऐक्ट जस अजनतान्त्रिक और पूजीवादी व्यवस्था के समथक विधेयक बनाए। बबई म हडतालियो पर गोली चलवाइ, मजदूरो की सभाओ पर प्रतिबध लगाए और मजदूर नताओ को गिरफ्तार किया।

1938 क बाद देश म टेड यूनियन सगठनो की सख्या तजी स बढी। ए० आई० टी० यु० सी० से सबध ट्रेड यूनियनो की सख्या म वद्धि से इस वद्धि का परिचय मिलता है।[34] यह नया सामाजिक वग धीरे धीरे प्रभावशाली भूमिका अदा करने लगा था।

नए सामाजिक वग, उनका राष्ट्रीय चरित्र

मुख्य नए सामाजिक वर्गों क हितो, लक्षणो समस्याओ, सगठनो और आदोलनो की चर्चा करने क बाद अब हम इन वर्गों के कुछ ऐस लक्षणो की चर्चा करेंगे जो इन्ह प्राक ब्रिटिश भारत के पुराने वर्गों से पृथक करते हैं। नए वर्गों का एक उल्लेख-नीय लक्षण यह है कि वे राष्ट्रीय है। व समग्र राष्ट्रीय अथतत्र के अग है और एकल राज्यतत्र के अधीन है। इस तरह प्रत्येक नए सामाजिक वग क आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक हितो का अखिल भारतीय एकीकरण हुआ। इस वग क व्यक्ति और समुदाय जसे जसे हित साम्य की बात समथन लग (यद्यपि उनम परस्पर अपने विभिन्न हितो क लिए होड भी लगी रहती थी),वस वैसे उनम अखिल भारतीय सग ठन बनाने और अपन सम्मिलित स्वार्थों के लिए सघष करन की इच्छा बलवती हुइ।

प्राक ब्रिटिश भारत म ऐसी स्थिति नही थी, क्योकि उस वक्त देश म कोई राष्ट्रीय अथत न या राजतत्र नही था। उदाहरणाथ, प्राक ब्रिटिश भारत म किसी एक गाव क कारीगरो का दूसरे गाव के कारीगरो स कोई सयुक्त आर्थिक सबध नही था, क्योकि वह गाव की स्वायत्त स्थिति से सबधित था। वस ही, किसी शहर क हस्तशिल्पकार का दूसरे शहर के हस्तशिल्पकारो स कोई आर्थिक सबध नही था। भारत उन दिनो लगभग असबद्ध स्थानीय अथतत्रो का और अनक राज्यो का समूह था। इसलिए कारीगरो हस्तशिल्पकारो और किसानो के सम्मिलित राजनीतिक और आर्थिक स्वाथ नही थ और न ही थी राष्ट्रीय आधार पर व्यापक सगठन बनाने की इच्छा।

सम्मिलित स्वार्थो की चेतना

राष्ट्रीय अथतत्र राज्य व्यवस्था क आधार पर और उनक सरक्षण म

सामाजिक वर्ग आविर्भूत हुए वे पुराने वर्गों से बिलकुल भिन्न और विपरीत थे। उद्योगपति, मिलों और आवागमन के साधनों को चलाने वाले मजदूर, आधुनिक व्यापारी, किसान मालिक, पट्टेदार, खेत मजदूर और पेशेवर वर्ग के अपने पृथक, विभिन्न स्वार्थ थे, जैसे, संरक्षण अनुपात, मजदूरी और काम की हालतें मूल्यों का राज्यों द्वारा नियंत्रण कर निर्धारण का स्तर, मालभाड़ा नौकरियां आदि आर्थिक समस्याएं, और मताधिकार विधायिका सभाओं में प्रतिनिधित्व, अपने वर्ग स्वार्थों की उपलब्धि के लिए नागरिक स्वातंत्र्य, आदि राजनीतिक समस्याएं।

नई आर्थिक व्यवस्था ने पुराने समाज के अवशेषों के बावजूद पूंजीवादी समाज और केंद्रित राज्य सत्ता को जन्म दिया। इस व्यवस्था की स्थापना और विकास के साथ प्रत्येक नया वर्ग अपने खास स्वार्थों के वशीभूत जैसे जैसे अधिक जागरूक हुआ वैसे वैसे राष्ट्रीय अखिल भारतीय संगठन की ओर अग्रसर हुआ। बुर्जुआजी राष्ट्रीय बुर्जुआजी की तरह सोचने और काम करने लगी और उसने इंडियन चेंबर आफ कामर्स और फेडरेशन्स आफ इंडस्ट्रीज की स्थापना की। सर्वहारा ने अपना राष्ट्रीय अखिल भारतीय रूप और अस्तित्व पहचाना और कालक्रम से आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस जैसे अपने अखिल भारतीय संगठन बनाए। सांस्कृतिक तौर पर पिछड़े हुए गरीब किसानों खेत मजदूरों, खेतमालिकों और बटाईदारों, ने भी पहली बार आल इंडिया किसान सभा जैसे अखिल भारतीय संगठन बनाए।

विद्यार्थी आरत पिछड़े हुए वर्ग, डाक्टर संपादक और अन्य ऐसे सामाजिक दल जैसे-जैसे अपने सम्मिलित हितों के प्रति जागरूक हुए, वैसे वैसे उन्होंने आल इंडिया वीमेंस कांफरेंस आल इंडिया मेडिकल प्रक्टिशनर्स एसोसिएशन, आल इंडिया जर्नलिस्ट और एडिटर्स कांफरेंस आदि संगठन बनाए। अपने नए रूपों में पुराने वर्गों ने भी अपने को अखिल भारतीय स्तर पर संगठित किया जैसे आधुनिक रजवाड़ों ने इंडियन चेंबर आफ प्रिंसेज की स्थापना की।

नए भारतीय समाज की एक विशिष्टता यह भी थी कि ये नए सामाजिक वर्ग राष्ट्रीय संगठन बना रहे थे और अपने विभिन्न स्वार्थों की पूर्ति में लगे थे। लेकिन आवश्यकतानुसार आपस में एकताबद्ध होकर या लड़ते रहकर भी ये वर्ग धीरे धीरे अधिकाधिक यह भी समझने लगे थे कि भारतीय जनता की समष्टि की अपनी कुछ सम्मिलित आवश्यकताएं हैं, जैसे उत्पादन की शक्तियों का विकास, भारतीय समाज की सामान्य आर्थिक प्रगति, राज्यसत्ता पर भारतीय नियंत्रण आधुनिक शिक्षा और संस्कृति का प्रसार, आदि। इन नए वर्गों के प्रबुद्ध तत्वों में यह समझदारी बढ़ने लगी कि उनकी अपनी प्रगति समस्त भारतीय समाज की प्रगति से जुड़ी हुई है, उद्योगों के तीव्र विकास के लिए कृषि का पुनर्गठन और नवनिर्माण आवश्यक है, संपन्न कृषि के लिए उद्योगों का विकास आवश्यक है जिससे भूमि पर बोझ कम हो सके पेशेवर वर्गों की प्रगति अन्य वर्गों की समृद्धि पर आश्रित है, सामाजिक और आर्थिक प्रगति के लिए शिक्षा और संस्कृति का प्रसार आवश्यक है। उन्होंने सामाजिक परिवर्तन के लिए राजनीतिक सत्ता की महत्वपूर्ण भूमिका को भी समझा।

इस तरह देश के सभी प्रगतिशील सामाजिक दलो और वर्गों का सयुक्त राष्ट्रीय आदोलन विकसित हुआ जिसके कायक्रम म निम्नाकित मुद्दे थे, मूलभूत प्रशासनिक सुधार, कायकारिणी पर विधायिका सभाओ का नियत्रण, व्यापक नागरिक स्वातत्र्य सावजनीन प्राथमिक शिक्षा और अधिक व्यापक उच्च उदारवादी और तकनीकी शिक्षा होमरूल, डोमिनियन स्टेटस, स्वराज्य आदि।

विभिन्न वर्गों की चेतना का विषम विकास

नए वर्गों म राष्ट्रीय और वर्गीय चेतना का विकास एक साथ नही हुआ। प्रबुद्ध वग ने राष्ट्रवाद, जनतत्र और बुद्धिवाद के सिद्धाता को सवप्रथम अगीकार किया और आर्थिक राजनीतिक और सास्कृतिक आदोलनो म वे ही नेता और पथ प्रदशक रहे। आगे चलकर शिक्षित मध्यम वग बुजुआजी, सवहारा किसान आदि वर्गों न अधिकाधिक सख्या म राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया। 1918 के बाद व्यापक जन आधार पर राष्ट्रीय आदोलन के लिए स्थिति परिपक्व हुई और सयुक्त राष्ट्रीय आदोलन का उदभव हुआ (राजनीति वाला अध्याय देखें)।

सम्प्रदायवाद (जो प्रादेशिक और अल्पसख्यक समुदायो के अपने पथक राष्ट्रीय अस्तित्व की चेतना और भावना स भिन्न है) एव कुछ अन्य तत्वो के विकास के कारण राजनीतिक स्वतत्रता तथा सामाजिक आर्थिक और सास्कृतिक उत्थान के निमित्त सगठित सयुक्त राष्ट्रीय आदोलन की प्रवत्ति को धक्का भी लगा। प्राय नौकरियो या विधायिका सभाओ म स्थान या व्यापार म प्रतिद्वद्विता जसे अनुभागीय स्वार्थो के नाम पर शिक्षित वग के प्रतिक्रियावादी तत्वो न कुछ निहित स्वार्थों की मदद से विभिन्न सम्प्रदायो के बीच पारस्परिक भेदभाव अविश्वास को जीवित रखने और उस तीव्र करने की कोशिश की (देखें अध्याय 19)। लोगो के सास्कृतिक पिछडेपन स सम्प्रदायवादियो के राष्ट्र विरोधी काय को मदद मिली।

प्रगतिशील नए सामाजिक वर्गों का कायक्रम पथक्त या समग्रत राष्ट्रवादी और प्रगतिशील था। आधुनिक शिक्षा और संस्कृति का प्रसार, व्यापक उद्योगीकरण भूमि व्यवस्था का जनतात्रिक सिद्धाता के आधार पर परिशोधन और कृषि सुधार व्यवस्था का जनतत्रीकरण स्वाधीनता आदि मागो स यह कायक्रम बना था और एसा खयाल था कि इन मागो की पूर्ति के द्वारा समद्ध राष्ट्रीय अस्तित्व की स्थापना हो सकेगी। इन वर्गों का लक्ष्य था भारतीय जनता के लिए उच्चतर, भौतिक और सास्कृतिक अस्तित्व की स्थापना, उनकी प्रेरणा थी जनतात्रिक सामाजिक और राजकीय सरचना, समृद्ध अथतत्र सपन्न प्रगतिशील सास्कृतिक जीवन इत्यादि की आकाक्षा।

प्रगतिशील वर्गों मे बढती हुई प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तिया

खयाल रहना चाहिए कि जीवत राष्ट्रीय समस्याओ के समाधान के लिए समनुरूप तौर पर जनतात्रिक नही थ उदाहरणाथ, कृषि के बी

कृषक आबादी की आर्थिक अवस्था म सुधार लाने के लिए भूमि सबधा म आमूल परिवतना और जमींदारी उन्मूलन नहीं तो जमींदारा के बहुमूल्य अधिकारो का हनन तो निश्चय ही आवश्यक था। लेकिन भारतीय बुर्जुआजी को ऐस कायक्रम म कोई रुचि नहीं थी। यहा उन्होन राष्ट्रीय आर्थिक प्रगति के साधारण स्वार्थों को अपने अनुभागीय हितो के लिए, जिनको जमींदारी उन्मूलन से नुक्सान था (देखें कृषि और राजनीति सबधी अध्याया को), बलि दे दी। एक अन्य उदाहरण भी दिया जा सकता है। जब काग्रेस की सरकारें बनी तो उन्होन बाबे ट्रेड डिस्प्युटस ऐक्ट पारित कर नागरिक स्वतत्रताओ पर आघात किया और इस तरह अपने पूजीवादी स्थान का परिचय दिया।

भारत की राष्ट्रीय बुर्जुआजी पूजीवादी ह्रास और बढती हुई अत पूजीवादी आर्थिक प्रतिद्वद्विता के युग मे जी रही थी। वह ब्रिटिश या अमरीकी वित्तीय पूजी पर अधिकाधिक आश्रित होती जा रही थी, देशी भूपतियो के हितो से जुडी हुई थी, उसकी स्थिति औपनिवेशिक थी और उसके पास राज्यसत्ता नहीं थी। मजदूरो, किसानो, बटाईदारो की हालत जैसे जसे बुरी होती गई वैसे वसे उनके तेजी स बढते हुए आदोलनो का सामना भी भारत की नवजात बुर्जुआजी को करना पडा। अपने वग की स्थिति एव स्वार्थों के कारण भी यह अधिकाधिक अप्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी होती जा रही थी। फलस्वरूप इसकी विचार पद्धति म धार्मिक रहस्यवाद का और राजनीति म एक सत्तावादी धारणाओ, जसे एक नेता, एक दल, एक कायक्रम और नागरिक स्वतत्रताओ के सपेक्षण (मजदूरो की हडताल करने की आजादी पर रोक, आदि) के सिद्धात का प्रभाव बढा। इस वग म यह प्रवत्ति लगातार बढती रही।

भारत मे दो प्रकार के आदोलन

इस तरह देश म एक ही साथ दो राष्ट्रीय, अखिल भारतीय आदोलन चल रहे थे। एक तरफ उद्योगपतियो व्यापारियो मजदूरो, किसानो, पेशेवर लोगो, विद्यार्थियो औरतो आदि विभिन्न सामाजिक वर्गों क अनुभागीय हितो और उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए उनके अपन अलग अलग आदोलन सगठित हुए। विभिन्न सामाजिक वर्गों या दलो के अपने अलग सगठन बन और अपने स्वार्थों की पूर्ति क लिए उन्होन अलग सघष किए। यो, इन वगो के पारस्परिक सबधो का एक ठोस एतिहासिक आधार था जिसके चलते उनकी दोस्ती दुश्मनी बनती बिगडती रही।

दूसरी तरफ, विदेशी शासन के विरुद्ध, सभी या कई एक वर्गों का चिरस्थाई या प्रसगात्मक सयुक्त आदोलन चल रहा था। इस अखिल भारतीय राष्ट्रीय आदोलन न होमरूल, डोमिनियन स्टट्स पूण स्वतत्रता आदि की माग की। भारत को विदेशी राजनीतिक नियत्रण स मुक्त करना इस आदोलन का सम्मिलित साध्य था। लेकिन सत्ता प्राप्ति के बाद राज्य एव आर्थिक, सामाजिक सरचना का रूप क्या हो, इसके बारे म प्रत्येक वर्ग की अपनी अलग धारणा थी।

प्राक ब्रिटिश भारत म राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न वर्गो के अपने वर्गीय आदोलन नही थे और राजनीतिक स्वातत्र्य एव आर्थिक सास्कृतिक प्रगति के लिए सारे राष्ट्र का सयुक्त राष्ट्रीय आदोलन भी नही था।

हम आगे आने वाले अध्यायो म देखेगे कि विभिन्न सामाजिक वर्गो के अधिकाधिक अनुभाग नई राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित हुए, लेकिन इस नई चेतना का विकास फिर भी बडा सीमित और सुस्त था।

सदर्भ

1 देखें गाडगिल एम० एन० राय और कृष्ण।
2 देखें अधिकारी और डब्ल्यू० सी० स्मिथ।
3 देख ओ मली टामसन एड गरेट।
4 रल्फ फाक्स द्वारा उद्धत प० 18।
5 देखें शनवकर।
6 देखें वाडिया एड मर्चेंट।
7 देखें पलेकर।
8 देख गाडगिल और ब्युकनन।
9 देख कृष्ण।
10 दखें अल्तेकर मथाइ गाडगिल।
11 दख ई० टामसन चुदगर और बटनर कमीशन रिपाट।
12 देख बेडन पावल और आर० सी० दत्त।
13 देखें एन० एन० घोष पृ० 117।
14 एडवड म एड मरिवेल प 229।
15 मान्यू पृ० 79-80।
16 कृष्ण, प० 67 68।
17 पाल प० 288।
18 देखें रगा जवाहरलाल नेहरू बलफोड और फ्लाउड कमीशन रिपोट।
19 टोना प० 166।
20 आगे क किसान आदोलन सबधी प्रकरण क लिए देखें रगा स्वामी सहजानद और इदुलाल याग्निक।
21 देख रगा।
22 देख रगा और स्वामी सहजानद।
23 रगा प 11।
24 वही, पृ० 12।
25 वही प० 13।
26 देख आर० पी० दत्त।
27 देखें रगा।
28 देख पट्टाभि सीतारमया।
29 देख टोना, एगल्स मनाड लेनिन।

30 देखें रगा ।
31 दखे गाडगिल कृष्ण वरव ।
32 कृष्ण प० 137 38 ।
33 वही प० 176 ।
34 वही, प० 178 ।
35 स्टटसमन कलकत्ता 2 फरवरी 1931 मे उद्धत ।
36 स्टालिन प० 15 ।
37 कृष्ण प० 140 ।
38 देख गाडगिल वाडिया एड जोशी शाह ।
39 जोन ब्यूकप प० 53 ।
40 दखें रगा और स्वामी सहजानद ।
41 देख गाडगिल और ब्युकनन ।
42 पर्सल एड हालनवथ पृ० 10 ।
43 वही प० 8 9 ।
44 आर० पी० दत्त द्वारा उद्धत प० 351 52 ।
45 वही प० 355 ।
46 दख ब्युकनन वाडिया एड मर्चेंट शिव राव ।
47 शिवराव पृ० 128 ।
48 वही प० 210 ।
49 देख ब्युकनन प० 426 ।
50 जान ब्यूकप द्वारा उद्धत प० 135 ।
51 न्ख आर० क० दास पृ० 36 7 ।
52 शनवकर द्वारा उद्धत प० 209 ।
53 आल न्डिया ट्रड यूनियन काग्रस क उन्नीसव अधिवेशन कानपुर 1942 की रिपाट पृ० 71 ।
54 दख आल इडिया ट्रड यूनियन काग्रेस की सालाना रिपाट ।

12

आधुनिक राष्ट्रवाद के विकास मे समाचारपत्रो की भूमिका

समाचारपत्रो का निर्णायक सामाजिक महत्व

समाचारपत्र आधुनिक युग के एक शक्तिशाली सामाजिक सस्थान है। यह इससे भी सिद्ध है कि इन्हे राज्य के चतुथ अवयव की सत्ता प्राप्त है। समाचारपत्र आधुनिक जीवन की विभिन्न जटिल प्रक्रियाओ की सष्टि ही नही करते, वरन उन्हे प्रतिबिंबित भी करते है। ये अल्पमत अवधि मे विचारो का वहत्तम विनिमय सभावित करते है। इनकी मदद से सम्मेलनो का सगठन होता है, विचार युद्ध होते है, विवाद निर्णीत होते है आदोलन सगठित होते हैं सस्थाए बनती है। जो समाज मे शीपस्थ है और जन जीवन जिनके हाथ म है, उनके समस्त काय कलाप पर समाचारपत्र कडी निगरानी रखते ह और इस तरह उन पर जनतात्रिक नियत्रण स्थापित करने म सहायक होते है।

सत्तरहवी, अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दियो म राष्ट्र के रूप म समन्वित होने के लिए सामती आभिजात्य द्वारा परिपोषित सामती अनक्य के विरुद्ध सघप के लिए आधुनिक राष्ट्रीय राज्य, समाज और सस्कृति की स्थापना के लिए यूरोप के देशो ने समाचारपत्रो के दुर्जेय अस्त्र का उपयोग किया। फ्रास मे, नई समाज व्यवस्था और उसकी अग्रवर्ती सामाजिक धारणाओ के अग्रदूत प्रबुद्ध वग ने सामती शासक वग के नैतिक ह्रास, प्रतिक्रियावादी सास्कृतिक सामाजिक दष्टिकोण और क्रिया कलाप आदि का अनावत करने म समाचारपत्रो का कारगर इस्तेमाल किया। समाचारपत्रो के माध्यम से ही वाल्तेयर हालवाख, हलवेंमियस आदि ने जनसाधारण के बीच वैज्ञानिक सामाजिक विचारो का प्रचार किया, और अपने युग के धार्मिक अधविश्वास और सामाजिक शोषण के विरुद्ध क्रोधाग्नि प्रज्वलित की। उन्होने कृपिदासता के विरुद्ध सघप किया और सामती आभिजात्य एव उसकी राज्य व्यवस्था के विरुद्ध कृपिदासो को सघप के लिए उत्प्रेरित किया। उन्होने हजारो पुस्तक पुस्तिकाओ मे जन्म पर आधारित विशेषाधिकार के अजनतात्रिक सिद्धात की आलोचना की, क्योकि यह सामती समाज का आधारभूत सिद्धात था और इसे कैथलिक अधविश्वास ने परमपावन बना रखा था। सामती विशेषाधिकारो के स्थान पर उन्होने, ज्वलत मुद्रित शब्दो म व्यक्तियो के समानाधिकार

[illegible]

[illegible] समकालीन राज्य व्यवस्था और पुराने अर्थतंत्र [illegible]

विचार और [illegible] राष्ट्रीय जागरण, प्रगतिशील विचारों [illegible] सांस्कृतिक आंदोलनों में [illegible] इतिहास में मुद्रणालयों की बहुत बड़ी भूमिका रही है।

प्राक् ब्रिटिश भारत में समाचारपत्रों का अभाव

प्राक् ब्रिटिश भारत में छापेखाने का अभाव रहा थी। भारत में सर्वप्रथम 1557 में पुर्तगाली जेसुइट पादरियों ने धार्मिक साहित्य छापने के लिए इसका उपयोग किया। लेकिन जनता के जीवन को प्रभावित करने वाली सामाजिक शक्ति के रूप में इसका इस्तेमाल उन्नीसवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश में शुरू हुआ।

मुगल शासन काल में हस्तलिखित अखबारों का प्रचलन था। प्रायः सम्राट हर प्रांतीय केंद्र में दो खबरनवीसों की बहाली करता था। एक वाकया नवीस जो हस्तलिखित समाचारों का गजट तैयार करता था जिसमें सारे आम किस्म की खबरें रहती थीं, दूसरा सवानीह नवीस जो खबर कागज तैयार करता था, जिसमें इलाके की सारी गुप्त घटनाएं प्रकाशित होती थीं।

प्राक ब्रिटिश काल मे वडे वडे धनी व्यापारी भी निजी समाचार लिखने वाला को नियुक्त करते थ जो अपने मालिको को समाचार की चिटिठया भेजत थे जिनम वाणिज्यिक और अय प्रकार की खवरे थी।[3] छापे की मशीन की सुविधा नही प्राप्त हाने की वजह स सार खवर कागज और खवर की चिटिठया हाथ की लिखी होती थी। वे आवादी के अल्पाश के लिए ही उपलब्ध और उपयोगी हाती थी और उनम छपी खबरें वहुत सीमित प्रकार की हाती थी।

भारतीय पत्रकारिता का विकास, 1900 ईस्वी सन तक

भारत मे छापे की मशीन की शुरूआत यहा के लोगा के जीवन म क्रातिकारी महत्व की घटना थी। उनम जव राष्ट्रीय चेतना का जागरण और विकास हुआ तो राष्ट्रीय पत्रकारिता का जन्म हुआ।

भारत म राष्ट्रीय प्रस के सस्थापक राजा राममोहन राय थे। उनके पहले भी कुछ लागो न कुछ अखवार शुरू किए थे, लेकिन उनके द्वारा 1821 मे वगाली मे प्रकाशित सवाद कौमुदी और 1822 म फारसी म प्रकाशित मिरात उल अखबार भारत म स्पष्ट, प्रगतिशील राष्ट्रीय एव जनतात्रिक प्रवत्ति के सवसे पहल प्रकाशन थे। ये समाज सुधार के प्रचार और धार्मिक एव दार्शनिक समस्याआ पर आलोचनात्मक वाद विवाद के मुख्य पत्र थे। ववइ म देशी (गुजराती) प्रेस के प्रणेता फरदूनजी मजवान न 1822 म वाव समाचार शुरू किया जो दैनिक अखबार के रूप मे अब भी निकलता है।

लाड वेंटिक के प्रगतिशील प्रशासनिक कार्यो से भारतीय पत्रकारिता को वल मिला। 1830 म द्वारकानाथ टगोर, प्रस न कुमार टगार और राजा राममोहन राय जसे प्रगतिशील भारतीयो के प्रयास से वगाली मे वगदत्त की स्थापना हुई। उद्यमशील पारसी पी० एम० मोतीवाला ने, 1831 म गुजराती म ववई से जामे जमशेद का प्रकाशन शुरू किया, जो अव भी दैनिक के रूप मे छप रहा है। 1851 म ववई म गुजराती के दो और पत्रो, रस्त गाफ्तार और अखवारे सौदागर की स्थापना हुई। भारतीय राष्ट्रवादी आदालन के अग्रणी और इडियन नेशनल काग्रेस के सस्थापक नता दादाभाइ नौरोजी ने रस्त गोफ्तार का सपादन किया।

1858 म प्रख्यात राष्ट्रवादी और समाज सुधारक ईश्वरचद्र विद्यासागर न वगाली म शोम प्रकाश का प्रकाशन शुरू किया। इसका दृष्टिकाण राष्ट्रवादी था और राजनीतिक पत्रकारिता म इसका वडा ऊचा स्थान था। जब 1869 म वगाल के नील पैदा करने वाले इलाका म अशाति वढी तो इसन किसाना के हिता का जमकर समथन किया।

1861 के इडियन काउसिल्स एक्ट के अतगत पहली वार वधानिक कायवाही म भारतीयो का सहयाग लिया गया। इससे भारतीय समाज के ऊपरी तवका म राजनीतिक चतना का विकास हुआ। फलस्वरूप इसके वाद के वर्षा म भारतीय और गर भारतीय दाना तरह के पत्रो की सख्या वढी। 1861 म ववई म टाइम्स

अखिल भारतीय सांगठनिक आधार और अभिव्यक्ति मिली, जिसके कारण भारतीय जनता के ऊपरी तबका के राष्ट्रीय जागरण की प्रक्रिया तेज हुई। उन्नीसवीं शताब्दी का अंत आते-आते राजनीतिक विचारों की एक नई धारा का जन्म हो चुका था। उदारवादी राष्ट्रीय विचार पद्धति के ही साथ समकक्ष और लगभग विरोधी धारा के रूप में अतिवादी लड़ाकू राष्ट्रवाद का भी उदभव हुआ। इस विचारतंत्र के नेता थे बालगंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पाल, अरविंद एवं बारींद्र घोष और लाला लाजपत राय।

विभिन्न प्रकार के समाचारपत्रों के जन्म से 1889 के बाद राष्ट्रीय आंदोलन के विकास प्रसार का अनुमान किया जा सकता है। तिलक ने मराठी में केसरी का प्रकाशन शुरू किया। इसने राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम की विचारधारा और कार्यपद्धति का प्रचार किया। तिलक सुयोग्य पत्रकार थे, और इन्होंने केसरी और मराठा (अंग्रेजी साप्ताहिक) की मदद से लोगों के बीच लड़ाकू राष्ट्रीय भावनाओं का सफल बीजारोपण किया। 'केसरी' मराठी में पाक्षिक रूप में छपता रहा और इसमें छपे अपने लेखों के कारण तिलक को दो बार जेल जाना पड़ा।

घोष बंधुओं के नेतृत्व में लड़ाकू राष्ट्रीयता के बंगाल ग्रुप ने राष्ट्रीय मुक्ति और नवनिर्माण के अपने विचारों के प्रचार के लिए प्रभावशाली पत्र 'जुगांतर' और 'वंदेमातरम' की स्थापना की। इन पत्रों के माध्यम से बंग विभाजन का विरोध किया गया, और बायकाट और स्वदेशी का प्रचार किया गया।

राष्ट्रीय चेतना का समाज सुधार के क्षेत्र में भी प्रसार हुआ। बंबई में 1890 में इंडियन सोशल रिफार्मर अंग्रेजी साप्ताहिक की स्थापना हुई। समाज सुधार ही इसका प्रमुख लक्ष्य था। 1899 में सच्चिदानंद सिंहा ने अंग्रेजी मासिक 'हिंदुस्तान रिव्यू' की स्थापना की। इस पत्र का राजनीतिक और वैचारिक दृष्टिकोण उदारवादी था।

भारतीय पत्रकारिता का विकास, 1900 के बाद

1900 में जी० ए० नटेसन ने मद्रास से 'इंडियन रिव्यू' का और 1907 में कलकत्ता से रामानंद चटर्जी ने 'माडर्न रिव्यू' का प्रकाशन शुरू किया। 'माडर्न रिव्यू' देश का सबसे अधिक विख्यात अंग्रेजी मासिक सिद्ध हुआ। इसमें सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विषयों पर लेख निकलते थे और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के विषय में भी काम की खबरें होती थीं। इसने इंडियन नेशनल कांग्रेस में प्रायः दक्षिणपंथियों का समर्थन किया।

जब 1907 में सूरत में इंडियन नेशनल कांग्रेस के नरम दल और गरम दल के बीच फूट पड़ गई, तो नरम दल के सर फिरोजशाह मेहता, सर दिनशा वाचा और गोखले जैसे नेताओं ने अपने विचारों के प्रचार के लिए बंबई से पत्र निकालने की जरूरत महसूस की।

1913 में बी० जी० हार्नीमन के संपादकत्व में फिरोजशाह मेहता ने बाम्

क्रानिकल निकालना शुरू किया। हार्नीमन के सुयोग्य और अनुभवी संचालन में 'बाम्बे क्रानिकल' काफी लोकप्रिय रहा।

1914-18 के प्रथम विश्वयुद्ध के समय, गांधी और उदारवादी नेताओं ने जनता की मांगों की पूर्ति के सरकारी आश्वासनों का भरोसा किया और वे युद्ध में सरकार की भरपूर मदद के पक्ष में थे। तिलक के नेतृत्व में कुछ अन्य लोगों का विचार था कि स्वायत्त शासन के लिए शीघ्रातिशीघ्र आंदोलन शुरू किया जाए। डा० एनीबेसेंट इस मांग के पक्ष में थीं और उन्होंने मद्रास स्टैंडर्ड (अंग्रेजी) को अपने हाथों में ले लिया और इसे नया नाम दिया, 'न्यू इंडिया', यह होमरूल आंदोलन का मुखपत्र था।

1918 में सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी ने श्रीनिवास शास्त्री के संपादकत्व में अपना मुखपत्र 'सर्वेंट आफ इंडिया' (अंग्रेजी साप्ताहिक) निकालना शुरू किया। इसने उदारवादी राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देश की समस्याओं का विश्लेषण और समाधान प्रस्तुत किया। 1939 में इसका प्रकाशन बंद हो गया।

युद्धोत्तर काल में राष्ट्रीय जन आंदोलन की पहली लहर उठी। यह गहरे राजनीतिक एवं आर्थिक संकट और तज्जन्य जन विक्षोभ का परिणाम थी। गांधी, सी० आर० दास, पंडित मोतीलाल नेहरू, अली बंधु, हजरत मोहानी, और कांग्रेस एवं खिलाफत संगठनों के अन्य नेताओं ने इस आंदोलन का पथ प्रदर्शन किया। इस आंदोलन ने भारतीय जनता की राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्ति और गति प्रदान की और इसके कारण भारतीय राष्ट्रवादी अखबारों की संख्या और बढ़ी।

1919 में गांधी ने 'यंग इंडिया' का संपादन किया और इसके माध्यम से अपने राजनीतिक दर्शन, कार्यक्रम और नीतियों का प्रचार किया। 1933 के बाद उन्होंने 'हरिजन' (अंग्रेजी, हिंदी और कई अन्य देशी भाषाओं में प्रकाशित साप्ताहिक) का भी प्रकाशन शुरू किया।

पंडित मोतीलाल नेहरू ने 1919 में इलाहाबाद में 'इनडिपेंडेंट' (अंग्रेजी दैनिक) का प्रकाशन शुरू किया। शिवप्रसाद गुप्त ने हिंदी 'आज' (दैनिक साप्ताहिक) की स्थापना की। अंग्रेजी से अनभिज्ञ साधारण जनता को राजनीति एवं संस्कृति से परिचित कराना ही 'आज' का उद्देश्य था। बाद में हिंदी भाषा में अनेक राजनीतिक और साहित्यिक पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं।

असहयोग आंदोलन की समाप्ति के कुछ बाद मोतीलाल नेहरू और सी० आर० दास के नेतृत्व में इंडियन नेशनल कांग्रेस के एक दल ने काउंसिल में प्रवेश के प्रश्न पर पारस्परिक मतभेद के कारण कांग्रेस के अंदर स्वराज पार्टी की स्थापना की। इसके विरोधी दल वाले काउंसिल का बहिष्कार जारी रखना चाहते थे और वे सब तरह से केवल गांधी के रचनात्मक कार्य को पूरा करने के पक्ष में थे। स्वराज पार्टी के नेता ने दल के कार्यक्रम के प्रचार के लिए 1922 में दिल्ली में के० एम० पनीकर के संपादकत्व में 'हिंदुस्तान टाइम्स' (अंग्रेजी दैनिक)

का प्रकाशन शुरू किया। इसी काल मे लाला लाजपत राय के फलस्वरूप लाहौर से अग्रेजी राष्ट्रवादी दैनिक 'पीपल' का प्रकाशन शुरू हुआ।

1923 के बाद धीरे धीरे समाजवादी साम्यवादी विचार भारत मे फैलने लगे। वर्कर्स एड पीजेंट्स पार्टी आफ इडिया का एक मुखपत्र मराठी साप्ताहिक क्राति था। मेरठ कामपिरेसी केस के एम० जी० देसाई और लेस्टर हचिसन के सपादकत्व मे क्रमश 'स्पार्क' और "न्यू स्पार्क" (अग्रेजी साप्ताहिक) प्रकाशित हुए। मार्क्सवाद का प्रचार करना और राष्ट्रीय स्वातत्र्य एव किसानो मजदूरो के स्वतत्र राजनीतिक, आर्थिक सघर्षो को समर्थन प्रदान करना इनका उद्देश्य था।

1930 और 1939 के बीच मजदूरो, किसानो के आदोलनो का विस्तार हुआ और उनकी ताकत बढी। काग्रेस के नौजवानो के बीच समाजवादी साम्यवादी विचार विकसित हुए। इस तरह काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई जिसने अपने अधिकारी पत्र के रूप मे काग्रेस सोशलिस्ट' का प्रकाशन किया। कम्युनिस्टो के प्रमुख प्रचार पत्र 'नेशनल फ्रट' और बाद मे 'पीपल्स वार' थे। ये दोनो अग्रेजी साप्ताहिक थे। एम० एन० राय के विचार अधिकारिक साम्यवाद से भिन्न थे। उन्होने अपना अलग दल कायम किया जिसका मुखपत्र था 'इनडिपडेट इडिया'।

जैसे जैसे भारतीय जनता की सामाजिक राजनीतिक और सास्कृतिक प्रगति हुई, वैसे वैसे भारतीय पत्रकारिता का विकास हुआ। हर प्रात मे हर प्रमुख नगर मे, अग्रेजी और हिंदी उर्दू एव अन्य देशी भाषाओ मे दैनिक साप्ताहिक, मासिक पत्र पत्रिकाए प्रकाशित होने लगी। इनमे राजनीति, अर्थशास्त्र, सामाजिक और सास्कृतिक समस्याए तकनीकी और वैज्ञानिक महत्व के प्रश्न आदि सारे सभव विषयो की चर्चा होती थी। यहा केवल उन्ही पत्र पत्रिकाओ की चर्चा की जा सकी है जो सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्वपूर्ण थे।

विभिन्न राजनीतिक दलो, सास्कृतिक और वैज्ञानिक समुदायो, जमीदारो, उद्योगपतियो, किसानो, मजदूरो जैसे सामाजिक आर्थिक वर्गो, एव विद्यार्थियो और तो दलित जातियो जैसे सामाजिक विभाजनो के अपने कार्यक्रम और विचारो के प्रचार के लिए अपने अलग अलग पत्र थे। मुसलिम लीग और हिंदू महासभा जैसे साप्रदायिक सगठनो के भी अपने अखबार थे। 1941 मे, सारे देश मे, सत्तरह भाषाओ मे लगभग 4,000 पत्र पत्रिकाए प्रकाशित होती थी।[4]

भारतीय समाचार पत्रो की मूलभूत राजनीतिक प्रवृत्तिया

इन पत्र पत्रिकाओ को कई श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है।

स्टेटसमन, टाइम्स आफ इडिया', 'सिविल एड मिलिट्री गजट' पायनियर', और मद्रास मेल' जैसे प्रसिद्ध पत्र अग्रेजी सरकार और शासन की नीतियो एव कार्यक्रम का समर्थन करते थे।

'अमृत बाजार पत्रिका, बाबे क्रानिकल', बाबे सेंटिनल 'हिंदुस्तान टाइम्स', हिंदुस्तान स्टैंडर्ड, फ्री प्रेस जर्नल', हरिजन', नेशनल हेरल्ड नेशनल काल

अंग्रेजी में छपनेवाले लब्धप्रतिष्ठ राष्ट्रवादी दैनिक और साप्ताहिक पत्र थे। हिंदू' 'लीडर', 'इंडियन सोशल रिफार्मर', 'माडर्न रिव्यू', उदारपंथी राष्ट्रीयता की भावना को अभिव्यक्ति देते थे। इंडियन नेशनल कांग्रेस की नीतियां और कार्यक्रम का राष्ट्रीय पत्रों ने पूर्ण और उदारपंथी पत्रों ने आलोचनात्मक समर्थन दिया। डान' मुसलिम लीग के विचारों का पोषक था। देश के विद्यार्थी संगठनों के अपने पत्र थे जैसे 'स्टूडेंट' और 'साथी'।

देशी भाषाओं के अखबारों की भी संख्या तेजी से बढ़ रही थी। इन भाषाओं के कुछ मुख्य दैनिक और साप्ताहिक पत्र पत्रिकाओं के नाम ये हैं बंगला में 'जनशक्ति', आनंद बाजार पत्रिका', 'बंगवासी', मराठी में केसरी', 'लोकमान्य', 'नवकाल' और 'किर्लोस्कर', गुजराती में 'वाम्बे समाचार', 'जन्मभूमि', 'हिंदुस्तान', प्रजामित्र' 'संदेश' और 'वंदेमातरम्', मलयालम में 'मातृभूमि', तामिल में 'स्वदेश मित्रम'। इत्तिहाद, 'अजमल' 'हमदम', खिलाफत', तेज' और रियासत, उर्दू के प्रमुख पत्र थे और वीर अर्जुन, आज, सैनिक और विश्वमित्र प्रमुख हिंदी पत्र थे।

रायटर का 1860 में भारत में पदार्पण हुआ, एसोसिएटेड प्रेस आफ इंडिया की स्थापना 1905 में हुई फ्री प्रेस न्यूज सर्विस की 1927 में और युनाइटेड प्रेस आफ इंडिया की 1934 में। ये देश की मुख्य समाचार एजेंसियां थीं।

समाचारपत्रों के मंथर एवं स्वल्प विकास के कारण

यों भारत में समाचारपत्रों की संख्या लगातार बढ़ती रही लेकिन इनके विकास की गति बड़ी धीमी थी। जनसाधारण की निरक्षरता और गरीबी और पत्रकारिता संबंधी दमनात्मक कानून के कारण समाचारपत्रों का भारत में तेजी से विकास नहीं हो सका। कई प्रेस एक्ट बने थे जिनके अनुसार अखबार वालों को जमानत देनी होती थी। समाचारपत्रों के मुक्त क्रियाकलाप पर ऐसे और भी प्रतिबंध थे।

भारतीय राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी आंदोलन के विकास में समाचारपत्र कारगर हथियार का काम कर रहे थे। ब्रिटिश सरकार भारतीय राष्ट्रीयता की मांग को पूरा नहीं करना चाहती थी इसलिए समाचारपत्रों पर अंकुश लगाए रखना चाहती थी। अंग्रेजी सरकार को कई प्रेस ऐक्ट बनाने पड़े इसी से यह सिद्ध होता है कि समाचारपत्र राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में बहुत बड़ी भूमिका अदा कर रहे थे।

अपने जन्मकाल से ही भारतीय राष्ट्रवाद ने जन चेतना के स्फुरण के लिए प्रेस के महत्व को समझा और इसकी स्वतंत्रता को विच्छिन्न करने के हर प्रयास का घोर विरोध किया। इसलिए प्रेस की स्वतंत्रता का संघर्ष राष्ट्रीय जन संग्राम का अनिवार्य अंग रहा है। प्रेस की आजादी एक ऐसा मौलिक जनतांत्रिक अधिकार है जिसके लिए अपने विकास के प्रत्येक चरण में भारतीय राष्ट्रवाद ने हरदम संघर्ष किया है।

अंग्रेजों के बीच भी स्वतंत्र भारतीय प्रेस विवादास्पद विषय रहा। उन्नीसवीं

सदी म वेलजली, मिंटो, एडम, कनिंग और लिटन प्रेस की आजादी पर कठोर प्रतिबंध के पक्षधर रह, लेकिन हैस्टिंग्स, मेटकाफ मेकाले और रिपन ने भारत म स्वतंत्र प्रेस का समथन किया।[5] सर टामस मनरो और लाड एलफिन्स्टन जैसे उदारवादी ब्रिटिश नेताओ ने भी भारतीय प्रेस पर कठोर प्रतिबंधो का समथन किया। उनका तक था कि पिछडे हुए देश पर विदेशी शासन बनाए रखना कठिन होगा, अगर प्रेस को आजादी दी गई क्योकि इसका सेनाओ के अनुशासन पर भी बुरा असर पड सकता है।[6]

समाचारपत्रो के विरुद्ध दमनात्मक कायवाइयो का इतिहास

भारतीय समाचारपत्रो का इतिहास उनकी स्वतत्रता के अनवरत ह्रास का इतिहास है। जिस अनुपात म भारतीय राष्ट्रवाद का विकास हुआ उसी अनुपात म भारतीय समाचारपत्रो की स्वतत्रता पर आघात हुआ।

भारतीय राष्ट्रवादी पत्रकारिता के जनक राजा राममोहन राय भारतीय समाचारपत्रो की स्वतत्रता के भी प्रथम योद्धा थ। ऐडम के जमाने मे जब प्रेस की स्वतत्रता पर आघात हुआ तो उन्होने चद्रकुमार टैगोर, हरचन्द्र घोष, द्वारका नाथ टगोर, गौरीचरण बनर्जी और प्रसन्नकुमार टगोर आदि प्रबुद्ध भारतीयो स मिलकर सुप्रीम कोट के नाम अर्जी तैयार की। प्रेस की स्वतत्रता पर प्रक्षिप्त आघात को इस अर्जी म अजनतात्रिक, असमयोचित और दकियानूसी कहा गया। इस दरखास्त पर दस्तखत करन वाले भारतीय समाचारपत्रो की स्वतत्रता की लडाई के अगुआ थे। मिस सोफिया कौलेट न इस दर्खास्त को भारतीय इतिहास का 'एरिओपजेटिका' कहा। आर० सी० दत्त न लिखा है कि राजनीतिक अधिकारो के वैधानिक सघष का जो रास्ता आज इतना जनप्रिय है उसकी शुरूआत इस अर्जी से होती है।[7]

वेलेजली के माक वीस ने 1799 म सरकारी ससर (सवाद नियत्रक) की नियुक्ति की जिसका कतव्य था प्रकाशनाथ प्रत्येक वस्तु की जाच करना। वेलजली न न्याय भग के लिए दड का विधान भी किया। हैस्टिंग्स न 1818 म प्रेस सेंसरशिप समाप्त कर दिया और सारे प्रतिबंध हटा लिए। इसस प्रेस न जो राहत की सास ली, उसस पत्रो के विकास का कुछ बल मिला, जस 1822 म बाम्बे समाचार का प्रकाशन शुरू हुआ। 1823 म एक्टिंग गवनर जनरल ऐडम न प्रेस के विरुद्ध फिर दमनात्मक कारवाई शुरू की। इसका राजा राममोहन राय और उनके राष्ट्रवादी दोस्तो न विरोध किया, लेकिन सुप्रीम कोट को दी गइ उनकी अर्जी नामजूर हो गइ, और प्रेस पर प्रतिबंध लगे रह।

1825 म उदारवादी मेकाले की मदद से मटकाफ न एक विधेयक पारित किया जिसके अनुसार बगाल और बबइ म प्रेस पर लगाए गए प्रतिबंध हटा लिए गए। उसके अनुसार किताबो और अखबारो के मुद्रण के लिए सरकारी लाइसेंस लेना भी जरूरी नही रह गया।

1857 तक भारतीय प्रेस काफी स्वतन्त्र रहा। विद्रोह की शुरुआत होने पर लार्ड कैनिंग ने 1857 का प्रेस ऐक्ट पारित किया जिसकी कठोरता के कारण इसे 'गैगिंग (मुह बद करना) ऐक्ट' भी कहा गया है। इस एक्ट के अनुसार सरकार मुद्रणालयों की स्थापना पर नियन्त्रण लगा सकती थी और पुस्तकों और पत्रों के वितरण पर भी। लेकिन यह ऐक्ट महज साल भर रहा।

1867 के प्रेस एड रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स एक्ट ने किताबों और अखबारों की छपाई और प्रकाशन पर नियन्त्रण लगाया। तेजी से बढ़ रहे देशी समाचारपत्रों पर नियन्त्रण के लिए 1878 में वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट लागू किया गया। देशी पत्र राष्ट्रवादी विचारों और ब्रिटिश सरकार की आलोचना के मुखपत्र हो रहे थे।

लार्ड रिपन के विचार उदारवादी थे और उन्होंने 1882 में वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट को रद्द कर दिया। 1908 तक फिर भारतीय प्रेस को काफी स्वतन्त्रता प्राप्त रही। लेकिन 1908 से पहले के दस वर्षों में राष्ट्रवादी आदोलन तेजी से विकसित होता रहा था, इसलिए सरकार ने फिर अखबारों की आजादी की काट छाट शुरू की। 1908 में 'न्यूजपेपर (इनसाइटमेंट टु अफेंसेज) ऐक्ट पास हुआ और 1910 में इंडियन प्रेस ऐक्ट।

1910 के प्रेस ऐक्ट पर सर जेनकिस के विचार

1910 के प्रेस ऐक्ट भारतीय समाचारपत्रों के विरुद्ध अंग्रेजी सरकार की कठोरतम कार्यवाही था। इसने प्रेस पर कार्यकारिणी का नियन्त्रण बढा दिया। कार्यकारिणी को यह अधिकार दिया गया कि वह जमानत की बहुत बड़ी राशि मांगे और उसे इच्छानुसार जब्त कर ले। कार्यकारिणी का अखबारों के मुद्रणालयों पर कब्जा कर लेने का भी अधिकार मिला। अखबारों को न्यायालयों में अपील का अधिकार तो था लेकिन उसका कोई अर्थ भी नहीं था। एक भारतीय न्यायालय के अंग्रेज जज सर लारेंस जेनकिंस ने कहा है, "सेक्शन 4 की धाराएं बहुत व्यापक हैं, और इनमें उन सारी बातों का समावेश है जो कभी भी किसी भी आदमी के दिमाग में आ सकती हैं। कहना मुश्किल है कि कोई तेज चालाक आदमी किस हद तक इस सेक्शन का इस्तेमाल कर लेगा। इसका इस्तेमाल कुछ ऐसी भी किताबों के खिलाफ हो ही सकता है जो तारीफ के काबिल हैं दूसरों के आश्रित, दयनीय स्थिति में रहने वाले गरीब लोगों पर भी इसके द्वारा आघात संभव है। किसी वर्ग विशेष की तारीफ खतरे से खाली नहीं होगी। जो सत्साहित्य माना जाता है उसका अधिकांश तो निस्सन्देह इसकी पकड़ में आ ही जाएगा।"[8] सेक्शन 4, 1910 के प्रेस ऐक्ट का अनुभाग है। यह बाद में 1931 और 1932 के ऐक्टों में भी रखा गया। भारतीय हाईकोर्ट के एक अंग्रेज न्यायाधीश की इस सम्मति में 1910 के प्रेस ऐक्ट की दमनात्मक प्रवृत्ति स्पष्ट है।

इस एक्ट और इसके पहले के एक्टों के विरुद्ध देशव्यापी राष्ट्रवादी आदोलन के कारण 1922 का प्रेस ला रिपील एंड अमेंडमेंट एक्ट पारित हुआ। इसके

अनुसार 1908 और 1910 के ऐक्ट रद्द कर दिए गए, और प्रेम एड रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स ऐक्ट और पोस्ट आफिस ऐक्ट की धाराओ का हल्का कर दिया गया।

1931 और 32 के प्रेस ऐक्ट का महत्व

1930 तक इडियन प्रेस को अपक्षाकृत अधिक आजादी प्राप्त रही। 1922 और 1929 के बीच राष्ट्रवादी आदोलन का जनव्यापी रूप ह्रासोन्मुख रहा। लेकिन 1929 म आदोलन म नए तूफान आने के बाद सरकार का फिर प्रेस पर नियत्रण करने का फसला लेना पडा। 1931 म इडियन प्रेस इमर्जेसी पावस ऐक्ट पारित हुआ। बाद म इस विधेयक को 1932 के इमर्जेसी पावस आर्डिनेसेज के जरिए और अधिक शक्तिसपन्न और व्यापक बनाया गया। 1932 के क्रिमिनल ला अमडमट ऐक्ट की धारा सख्या 14 15 और 16 की मदद से इसका सशोधन भी हुआ। 1932 के सशोधन ऐक्ट (आर्डिनेंस ऐक्ट) ने प्रेस सबधी कानून को और अधिक सबल बनाया, इसका क्षेत्र व्यापक किया और कायकारिणी को 1931 के ऐक्ट की तुलना म और अधिक अधिकार दिए।[9]

अपने सशोधित रूप म 1931 के प्रेस कानून न भारतीय प्रेस की आजादी म काफी कटौती की। इसके अनुसार कायवाही अधिकारी को जमानत मागने और जब्त करन का पूरा अधिकार था। इसका क्षेत्र इतना व्यापक था कि उदारवादी एव नरमदल के अखबार भी इसकी पकड म आ सकते थे। ऐक्ट म यह स्पष्ट कहा गया कि 'प्रेस पर अपक्षाकृत अधिक नियत्रण हासिल करना इसका उद्देश्य था। जिन नए अपराधो के विरुद्ध इसका इस्तेमाल हो सकता था, उनम ऐसे प्रकाशन भी थ जो सीधे या परोक्ष रूप से ब्रिटिश महाराज या भारत म कानून द्वारा स्थापित शासन, सरकार या न्याय के प्रशासन या ब्रिटिश महाराज के राज्य क किसी भी वग या अश अनुभाग को घृणा का पात्र बनाने या सरकार के प्रति विराग पदा करने की कोशिश कर। कानून और व्यवस्था के सचालन और अनुरक्षण या भूमिकर और खेती लायक जमीन पर लग टक्स, रेंट या बकाया के तौर पर वसूल की जा सकने लायक अन्य चीजो की वसूली आदि म हस्तक्षेप, सरकारी अफसरो को त्यागपत्र देने क लिए उकसाने, सरकार की प्रजा के विभिन्न तबको म घृणा के भाव फलाने, और लोगो को डराने-धमकाने के लिए इस विधेयक म सजा का प्रबध था।'[10] इस तरह यह ऐक्ट अत्यत व्यापक था। इसके विभिन्न अनुच्छेदो को पढने से पता चलता है कि प्रेस का स्वरूप और चरित्र इस पर निभर था कि मजिस्ट्रेट, पुलिस अफसर और स्थानीय शासक क्या चाहते हैं।[11]

सरकार न भी इस विधेयक की उग्रता का पहचाना। सेंट्रल असेंबली म होम मेम्बर सर हनरी हेग ने कहा महाशय, मैं यह मानता हू और सरकार भी मानती है कि इस विधेयक की विभिन्न धाराए जिम्मेवार सपादको के लिए कष्टप्रद हैं और ऐसे सपादको की सख्या कम नही। मुझे मालूम है, महाशय कि सुसचालित पत्रो का कैसी कठिनाइया भुगतनी पड रही हैं।[1]

1932 के प्रेस ला के अनुसार, सरकार ने अक्सर ऐसा किया कि किसी प्रांत विशेष के पत्रों को कोई खास समाचार छापने की मनाही कर दी, हालांकि दूसरे प्रांत के पत्रों ने उस समाचार को छापा। इसने दो स्तंभों के शीर्षक, मोटे टाइप और समाचारों के क्रम विन्यास, और कुछ राजनीतिक नेताओं के फोटो छापने पर भी प्रतिबंध लगाए। भारतीय पत्रकारों और प्रचारकों ने इन प्रतिबंधों को काफी कठोर माना है।

1932 के फारेन रिलेशंस एक्ट ने उन प्रकाशनों के लिए दंड का विधान किया जिनसे ब्रिटिश सरकार और अन्य विदेशी राज्यों के दोस्ताना संबंधों पर प्रभाव पड़ सकता था। इंडियन स्टेट्स (प्रोटेक्शन) ऐक्ट 1934 में बना। जो राज्य ब्रिटिश सरकार की सर्वोपरि सत्ता के अधीन थे उन राज्यों के प्रशासनों को जिन क्रियाकलापों के द्वारा कमजोर किया जा सकता था या जिनके द्वारा वहां असंतोष फैलाया जा सकता था या वहां के प्रशासन के रास्ते में कठिनाइयां खड़ी की जा सकती थीं उन क्रियाकलापों से इन राज्यों के प्रशासनों की रक्षा करना इस एक्ट का उद्देश्य था। इस ऐक्ट में उन प्रकाशनों के लिए भी दंड विधान था जिनके कारण भारत के किसी भी राज्य में घृणा या असंतोष को बढ़ावा मिल सकता था। इन दो विधेयकों ने भारतीय प्रेस की आजादी का और अधिक हनन किया।

तीन समाचार एजेंसियां

1941 तक भारत में तीन प्रमुख समाचार एजेंसियों की स्थापना हो चुकी थी, रायटर एसोसिएटेड प्रेस, फ्री प्रेस न्यूज सर्विस। सरकार पहले दोनों को प्रश्रय देती थी और उनके माध्यम से समाचारों का वितरण करती थी। तीसरी एजेंसी भारतीय थी और समाचारों के चयन और वितरण में राष्ट्रीय दृष्टिकोण से प्रभावित थी।

सरकारी समर्थन के कारण भारत को विदेशी समाचार देने और विदेशों को भारतीय समाचार देने में रायटर का लगभग पूर्ण एकाधिकार प्राप्त था। इसके कारण भारतीय राष्ट्रवादी बाहर वालों के लिए भारतीय घटनाओं के समाचारों का राष्ट्रीय दृष्टिकोण से चयन या विवेचन नहीं कर पाते थे।

ब्रिटिश सरकार की नीतियों के अनुसार, रायटर कुछ प्रकार के समाचारों को बाहर भेजने में देर कर देते थे। अमृतसर की जनहत्या के समाचार बाहर की दुनिया को सात महीने तक मालूम नहीं हुए ब्रिटेन की आम जनता को भी इसकी खबर नहीं थी।[13]

जिन भारतीयों ने स्वतंत्र समाचार एजेंसियां स्थापित करने की कोशिश की उन्होंने देखा कि सरकारी सहायता किसी समाचार एजेंसी के सफल संचालन के लिए एक अनिवार्य शर्त है। 'हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जब तक सरकार कुछ समाचार संगठनों के प्रति आर्थिक तौर पर अन्य प्रकार से पक्षपातपूर्ण रुख अपनाती रहेगी, तब तक दूसरी कंपनियों की स्थापना असंभव है।'[14]

कुछ विशेष प्रकार के विदेशी खासकर वामपथी, साहित्य के भी भारत आने पर प्रतिवध था। इन प्रतिवधो को लागू करने के लिए भी कस्टम्स डिपाटमट का एक अपना अलग विभाग ही था। इस प्रतिवध के कारण भारतीय जनता दूसरे देशो के आदोलना और विचारधाराओ की जानकारी नही प्राप्त कर पाती थी।

भारतीय राष्ट्रीयता के आदोलन ने प्रेस की स्वतत्रता को कम करने की सारी सरकारी कायवाहिया का हरदम विराध किया। प्रेस की स्वतत्रता का मघष राष्ट्रीय आदोलन का अनिवाय अग था। राजा राममोहन राय और उनके सह योगी, भारतीय राष्ट्रवाद के अ य अग्रणी नताओ नरम गरम उदारवादियो और वसेंटाइन होमरूल वालो, गाधी के नेतृत्व मे इडियन नेशनल काग्रेस, समाज वादियो, साम्यवादियो छात्र मगठना, मजदूर और किसान सभाओ और आल इडिया सिविल लिवर्टीज यूनियन आदि विभि न दलो और सगठना ने प्रेस की स्वतत्रता को कम करन वाले सरकारी कार्यो की तीव्र आलोचना की।

इससे यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आदालन के ज म और विकास म प्रेस का कितना वडा महत्व है। आल इडिया सिविल लिबर्टीज यूनियन न भी, जिसने भारतीय जनता की जनतात्रिक स्वतत्रता के लिए काम किया प्रेस की स्वतत्रता क लिए सघष किए। आल इ डिया जनलिस्ट एसासिएशन, आल इडिया एडिटम काफरेंस, प्राग्रेसिव राइटम काफरेस आदि ने भी प्रेस की आजादी की लडाई लडी।

भारतीय प्रेस की प्रगतिशील भूमिका

भारतीय राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी आदोलन के सामाजिक, सास्कृतिक राजनीतिक और आर्थिक, प्रत्येक रूप के विकास मे प्रेस का वहुत वडा हाथ रहा। प्रेस द्वारा उपलब्ध राजनीतिक शिक्षा और प्रचार की सुविधा के कारण ही राष्ट्रीय आदो लन का राजनीतिक पक्ष मभव हुआ। इसकी ही मदद स भारतीय राष्ट्रवादी दल लोगो क बीच प्रतिनिधि सरकार, स्वतत्र, प्रजातात्रिक सस्थाए, होमरूल डोमि-नियन स्टटस और स्वाधीनता आदि विचारो का प्रचार कर सक। इनके जरिए व ब्रिटिश मरकार और शामन की कारवाइयो की दिन प्रतिदिन आलोचना कर मके और लोगा को राजनीतिक ममस्याओ की समझ और शिक्षा दे सके।

विभि न राष्ट्रीय दलो न लोगो क बीच विभि न राजनीतिक कायक्रमो और सघष पद्धतियो आदि को जनप्रिय वनान के लिए प्रेस का हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया और उसकी मदद म जन सगठना की स्थापना की। प्रेस के बिना राष्ट्रीय मगठनो के आल इडिया काफरेसो की तैयारी सभव नही हो पाती और न वडे राजनीतिक आदोलन ही सगठित हो पात। उदाहरणाथ, 1930 32 के जन आदालन क समय काग्रेसी और काग्रेस समथक लोग गाधी के अनुदेशा की जान कारी के लिए यग इडिया पढते थे। चूकि प्रेस राष्ट्रीय मघष के लिए फायदे का था इसलिए हर प्रकार के राष्ट्रवादियो ने भारतीय राष्ट्रवादी प्रेस की स्वतत्रता के लिए मघष किए।

भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण म प्रेस का महत्व इस बात से ही स्पष्ट है कि राजा राममोहन राय, केशवचद्रसन, गोखले, तिलक, फिरोजशाह महता, दादा भाई नौराजी सुरेंद्रनाथ बनर्जी, सी० वाई० चितामणि, एम० के० गाधी और जवाहरलाल नेहरू जसे अनेक लोगा ने 'नैतिक मूल्यो' सबधी अपन विचारो के प्रचार के लिए माध्यम रूप म प्रेस का उपयोग किया।'[1]

प्रेस के ही कारण दश के विभिन्न भागा म रहने वाले विभिन्न सामाजिक दला के बीच अनवरत और व्यापक विचार विनिमय सभव हो सका और प्रादेशिक आबादियो के बीच सामाजिक और मानसिक सबध स्थापित हो सके। सामाजिक, राजनीतिक और सास्कृतिक क्षेत्रा म राष्ट्रीय सहयाग और अतर्प्रादशिक कायक्रम पर विचारा और तर्को का आदान प्रदान हुआ और सामाजिक राजनीतिक और सास्कृतिक राष्ट्रीय सम्मलन सगठित हुए। इन सम्मलना म पारित कायक्रम के कार्यान्वयन क लिए राष्टीय समितिया की स्थापना हुई। इसके चलत वद्धनशील सपन्न जटिल, सामाजिक सास्कृतिक राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए रास्ता प्रशस्त हुआ।

प्रेस ने प्रादशिक साहित्या और सस्कृतियो के विकास मे भी मदद दी, य रूपत प्रादशिक थ लेकिन वस्तुत राष्टीय। बगाल महाराष्ट्र, आध्र, गुजरात मालाबार यू० पी० और अ य प्रदशो म कविता नाटक उपन्यास आदि से सपन्न प्रातीय साहित्या की स्थापना हुई।

जाति, बाल विवाह, विधवा विवाह तथा वे सामाजिक न्यायिक और अन्य प्रकार की असमानताए जिनकी औरते शिकार थी इन सामाजिक कुरीतिया का विरोध करने म प्रेस ने सुधारवादी दला की मदद की। छुआछूत के खिलाफ प्रचार मे भी प्रेस से मदद मिली। भारतीय समाज के जनतात्रिक पुनर्निर्माण के सिद्धात और कायक्रम स साधारण जन को अवगत करान मे भी प्रेस का सहयोग प्राप्त हुआ। प्रेस के ही माध्यम स समाज सुधारका न इन कुरीतियो को हटाने के सर्वोत्तम उपायो पर लगातार विचार विनिमय किया और सयुक्त कायक्रम के लिए अखिल भारतीय सम्मेलनो का आयोजन किया।

प्रेस के माध्यम से भारत की जनता को दुनिया म होनेवाली घटनाओ की भी खबर मिलती रही। प्रेस के जरिए दुनिया के बहुत सारे राष्ट्र ससार के बारे म एक अपना दष्टिकोण कायम कर सके ह और इस तरह सारे ससार के विकास की दष्टि से अपने सिद्धात और कायक्रम का निर्धारण करते रह है। विभिन्न देशा की प्रगतिशील शक्तिया म पारस्परिक सहयोग भी प्रेस के माध्यम से ही सभव हो सका है।

इस तरह भारतीय जनता के बीच राष्ट्रीय भाव और चेतना के उदय और उत्थान म, उनके राष्ट्रीय आदोलन के सगठन और विकास म प्रादशिक साहित्या और सस्कृतियो की सृष्टि और विभिन्न देशा के साथ सबध की स्थापना म प्रेस का बहुत बडी भूमिका रही है।

प्रेस के विकास की आवश्यक शर्तें

स्वतत्र, व्यापक, प्रगतिशील, सुविस्तृत, पत्रकारिता के विकास मे निम्नलिखित बाधाए आइ

(1) सरकार द्वारा प्रेस की स्वतत्रता पर लगाए गए प्रतिबध,

(2) लोगो की गरीबी जिसने अखबारो, पत्रो और अन्य प्रकाशनो की बिक्री को साक्षर लोगो तक ही सीमित रखा

(3) लोगो की निरक्षरता,

(4) कुछ धनी, ब्रिटिश और भारतीय दलो द्वारा प्रेस पर एकाधिकारी नियत्रण की वढती हुई प्रवत्ति (आर्थिक क्षेत्र म जो एकाधिकार की वद्धि हो रही थी, प्रेस म एकाधिकार उसी का प्रतिफलन था।)

इस तरह यह स्वत सिद्ध था कि भारतीय जनता की सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक प्रगति के सूचक क रूप म प्रेस का व्यापक और स्वतत्र विकास स्वतत्र भारत मे ही सभव था, भारत जो ब्रिटिश शासन और भारतीय एव विदेशी यस्त स्वार्था से मुक्त हो।

सदभ

1 देखें लास्की टोना ऽापाटविन।
2 दखें श्री मली प० 189।
3 वहा।
4 वही प० 188।
5 देखें ओ मेनी मार्गारिटा बार्स।
6 देख मागरिटा बार्स प० 251।
7 आर० सा० दत्त ओ मेली द्वारा उद्धत।
8 इडियन ला रिपोट स न० 41 (कलकत्ता)।
9 भारतीय शिष्ट मडल का प्रतिवेदन प० 286।
10 वहा प० 290-291।
11 वही प० 292।
12 वही।
13 आर० पी० दत्त प० 35।
14 मार्गरिटा बार्स (2) पृ० 188।
15 मार्गरिटा बार्स पृ० XV।

13

सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन राष्ट्रीय जनतांत्रिक जागरण की अभिव्यक्ति

सुधार आंदोलन राष्ट्रीय जागरण के प्रतीक

अंग्रेजी शासन के दिनों में भारत में समाज और धर्म सुधार संबंधी जो आंदोलन शुरू हुए वे भारतीय जनता की उदीयमान राष्ट्रीय चेतना और उनके बीच पश्चिम के उदारवादी विचारों के प्रसार के परिणाम थे। इन आंदोलनों ने धीरे धीरे सामाजिक और धार्मिक नवनिर्माण का कार्यक्रम अपनाया और सारा देश इन आंदोलनों की चपेट में आया। सामाजिक क्षेत्र में जाति सुधार या जाति प्रथा की समाप्ति, औरतों के लिए समानाधिकार, बाल विवाह के उन्मूलन और विधवा विवाह के समर्थन सामाजिक और कानूनी असमानता के विरोध, आदि प्रश्नों पर आंदोलन हुए। धार्मिक क्षेत्र में जो आंदोलन हुए उन्होंने धार्मिक अंधविश्वास और मूर्तिपूजा बहुदेववाद वंशानुगत पुरोहिती आदि का विरोध किया। इन आंदोलनों ने क्रमवश मात्रा में व्यक्ति स्वातंत्र्य, सामाजिक एकता और राष्ट्रवाद के सिद्धांतों पर जोर दिया और उनके लिए संघर्ष किए।

भारत में ब्रिटिश शासन के आगमन के बाद यहां जो नया समाज विकसित होता जा रहा था, उसकी जरूरतें पहले के पुराने समाज की जरूरतों से भिन्न थीं। उदारवादी पाश्चात्य संस्कृति में दीक्षित नए प्रबुद्ध वर्ग ने इन जरूरतों को पहचाना और सुधारवादी आंदोलन शुरू किए या सामाजिक संस्थाओं, धार्मिक दृष्टिकोण, परंपरागत नैतिक धारणाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन की चेष्टा की, क्योंकि उनके अनुसार ये राष्ट्रीय प्रगति के रास्ते में बाधक थीं। उन्हें विश्वास था कि नए समाज का राजनीतिक सांस्कृतिक और आर्थिक विकास व्यक्ति स्वातंत्र्य व्यक्ति की उन्मुक्त अभिव्यक्ति के लिए अवसर सामाजिक समानता आदि उदारवादी सिद्धांतों के आधार पर ही संभव है। इन सुधार आंदोलनों में भारतीय जनता के जागरूक और प्रगतिशील वर्गों की नई सामाजिक आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में पुराने धार्मिक दृष्टिकोणों के परिमार्जन और सामाजिक संस्थाओं के प्रजातंत्रीकरण की इच्छा का प्रतिफलन हुआ।

भारतीय समाज सुधारकों की यह शिकायत थी कि समाज सुधार तेजी से

नही हो रहा था, क्योकि ब्रिटिश सरकार उसे पूरी मदद नही द रही थी। उनका कहना था कि सरकार सामाजिक प्रतिक्रियावाद और अयाय के गढ को ध्वस्त करने मे उनकी मदद नही कर रही थी। समाज सुधार सबधी विधेयक पारित होने की गति बडी धीमी थी और सरकार जो थोडे बहुत काम कर रही थी देश के प्रगतिशील विचारो के दबाव म कर रही थी। उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध म ब्रिटिश शासका ने स्वय ही दास व्यवस्था सती प्रथा और बाल मृत्यु जसी कुरीतियो के उमूलन क प्रगतिशील काम किए थे। लेकिन बाद म शासक वग के दष्टिकोण म परिवतन आए। एज आफ कसेंट ऐक्ट 1891 मे पास हुआ लेकिन कइ दशका के बाद यह पहला सरकारी सुधार काय हुआ था। इन सब कारणा से भारतीय राष्टीय आदोलन के नेताओ क इस विचार को बल मिला कि राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना आवश्यक है, जिससे लोग सामाजिक और धार्मिक सुधार की गति को तीव्र कर सकें।

सुधार आदोलन मे जनतात्रिक भाव

शुरू स ही भारतीय राष्ट्रवाद की प्रवत्ति जनतात्रिक थी। समाज और धम सुधार क आदोलनो मे भी यह प्रवृत्ति विद्यमान रही। कमावश मात्रा म इन आदोलना न सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र म सामाजिक विशेषाधिकार को समाप्त करने, देश की सामाजिक और धार्मिक सस्थाआ के जनतत्रीकरण और राष्टीय एकता के रास्त म लाए गए अडगो जस जाति आदि अनिष्टकर मस्थाआ को सुधारने या खतम करने के प्रयास किए। वे जाति और लिग क परे सबको समान अधिकार दिलवाना चाहते थे।

सुधारका का कहना था कि भारतीय जनता की राजनीतिक स्वतनता और सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक प्रगति और राष्ट्रीय एकता के लिए यह आवश्यक था कि सामाजिक सबधो और सस्थाओ का जनतत्रीकरण हो।

राष्ट्रीय जनतात्रिक जागरण का राष्ट्रीय जीवन क प्रत्यक क्षेत्र म असर पडा। राजनीति म, उसके चलते प्रशासनिक सुधार स्वायत्त शासन होमरूल, डामिनियन स्टटस और अतत स्वाधीनता क सघष का जन्म हुआ। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र म भारतीय राष्ट्रवाद न व्यक्ति स्वातत्र्य, समानता और आत्मनिणय क सिद्धात का प्रतिपादन किया। इसने जम और जम पर आधारित विशेषाधिकार पर जिनसे जाति जसी सस्थाआ का सपोषण हुआ था और जो अजनतात्रिक सिद्धात थे, आघात किया। इस तरह भारतीय राष्ट्रवाद सारत जनतात्रिक था और मध्ययुगीन सिद्धाता और विदेशी शासन क विरुद्ध सघषरत रहा। समाज और धम सुधार के आदोलन भारत के राष्ट्रीय जागरण क सूचक थे और उनका उद्देश्य था मध्ययुगीन सामाजिक सरचना और धार्मिक दष्टिकोण का क्रमाग जनतात्रिक अर्थात व्यक्ति स्वातत्र्य और मानव एकता क सिद्धाता के आधार पर परिशोधन।

14

जाति प्रथा के विरुद्ध धर्मयुद्ध

जाति प्रथा हिंदू धम का लौह ढाचा

जाति प्रथा न हिंदुओ को ज म पर आधारित परस्पर पृथक पदानुक्रमित श्रणिया म बाट रखा था और इसलिए समाज सुधार आदोलनो ने इसके उ मूलन को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया। जाति प्रथा हिंदू धम का लौह ढाचा थी। वेदो म भी इसक अस्तित्व की चर्चा है और इस तरह यह प्रथा वेदो से भी पुरानी है। शुरू म हिंदू समाज म तीन या चार वण थे। लकिन बाद म प्रजातीय सम्मिश्रण भौगोलिक विस्तार हस्तशिल्प के विकास और तज्ज य नए व्यवसाय क उदभव आदि कारणा से प्रारभिक वण विविध जातियो उपजातिया म विभक्त हो गए।

अतीत म हिंदू धम सभी हिंदुओ की सांस्कृतिक एकता का आधार था जाति प्रथा न उ ह विभि न दलो और उपदला म अलग अलग बाट दिया। शादी, खान-पान और रोजगार जसे सभी महत्वपूण सामाजिक मामला म ये दल एकातिक और विशिष्ट थे।

जाति प्रथा सत्तावादी और अजनतात्रिक थी। इस पदानुक्रमित श्रेणी शृखला म प्रत्यक जाति अपन नीच की जाति से श्रेष्ठ और ऊपर की जाति स निकृष्ट थी। इस शृखला म जाति विशेष की स्थिति स ही उस जाति म पदा हुए व्यक्ति का सामाजिक स्थान निर्धारित होता था। व्यक्ति विशेष के ज म से ही उसकी अपरिवतनशील स्थिति पूर्वनिधारित हा जाती थी। आदमी का सामाजिक अस्तित्व उसके ज म पर निभर था, न कि उसकी योग्यता एव सपत्ति पर।

इसी तरह जिस जाति म आदमी पदा होता था उसी से यह पूव निर्धारित हा जाता था कि उस आदमी का पशा क्या होगा। अलग स अपना पेशा चुनने की आजादी उसे नही थी। ज म ही यह फसला करता था कि आदमी कौन सा पेशा चुनेगा। प्रत्येक जाति और उपजाति म आपस म ही शादी की प्रथा थी। किसी जाति विशेष का आदमी अ य जाति म शादी नही कर सकता था। इस तरह जीवन साथी चुनने का क्षेत्र भी अत्यत सीमित था।

जाति न व्यक्तिगत क्षमता नहीं बल्कि ज म पर आधारित आभिजात्य की

मष्टि की। व्यक्ति की अपनी विशिष्ट प्रतिभा और क्षमता का मुक्त उपयोग इसके कारण असभव हो रहा था और साथ ही उसकी उपक्रमण शक्ति, आत्मविश्वास और उद्यमशीलता का हनन भी हो रहा था। यह स्थिति राष्ट्र भावना और प्रजातात्रिक राज्य व्यवस्था के विकास को अवरुद्ध करती है। छुआछूत की समस्या जाति व्यवस्था का ही परिणाम है।[1]

जाति व्यवस्था पदानुक्रमित श्रेणी श्रृखला आवद्ध थी और इसलिए सामाजिक और न्यायिक विषमता पर आधारित थी। सामाजिक पिरामिड म शीर्षस्थ ब्राह्मण जाति के ही लोग धार्मिक और सामाजिक क्रिया कलाप म पुरोहित का काय कर सकते थे और उच्च धार्मिक या धम निरपेक्ष शिक्षा और ज्ञान की प्राप्ति के एकमात्र अधिकारी भी वे ही थे। इस पिरामिड के निम्नतम धरातल पर शूद्रो, अछूतो की जगह नियत थी जिन्ह धम द्वारा पुनीत घोषित और राज्य की अवपीडक सत्ता द्वारा समर्थित हिंदू समाज ने अ य जातियो की सेवा करने और हलखोर, चमार आदि पशो जैसा निम्न काय करने के लिए बाध्य कर रखा था।

जाति व्यवस्था की अन यता इस बात म निहित नही थी कि यह कतव्यो की विभिन्नता पर आधारित थी, वरन इस बात म कि इसन जन्म को सामाजिक विभाजन का आधार बनाया। इसका अथ इतना ही नही है कि यह व्यवस्था समानता के सिद्धात के विरुद्ध थी, वरन यह भी है कि इसम असमानता पूणत वशानुगति के आधार पर सगठित रूप म मिलती है। किसी भी समाज व्यवस्था म कार्यों की विभिन्नता तो रहेगी ही, इस वविध्य की अवश्यभाविता की पहचान जाति व्यवस्था की विशिष्टता नही है, इस कम वविध्य को व्यवस्थापित और नियत्रित करन का इसका तरीका अवश्य विशिष्ट है।

जाति बनाम वग

चूकि आदमी की जाति उसके जन्म द्वारा निर्धारित होती थी इसलिए वह अपरिवतनीय थी। इसी अथ म जाति व्यवस्था समाज की पूजीवादी व्यवस्था द्वारा प्रसूत वग विधान से भिन्न है।

> जातिया जन मानव समुदाया का अपना स्वय का पूण विकसित जीवन होता है। स्वच्छिक सस्थाओ और वर्गों स विपरीत जातिया की सदस्यता चयन पर नही वरन जन्म पर निभर है। आधुनिक यूरोप के सामाजिक वर्गों म व्यक्ति की पदवी प्रतिष्ठा सपत्ति पर निभर है इसके विपरीत भारत म आदमी की पदवी प्रतिष्ठा उस जाति के परपरागत महत्व पर निभर थी जिसम भाग्यवश उसका जन्म हुआ था। जाति और वग के विभेद पर जहा तक इनका अथ स्पष्टत पृथक विभाजनो स है, मैक्स्वर न कहा है प्राच्य सभ्यताओ म जन्म ही वग और प्रतिष्ठा का निर्णायक होता था, लेकिन आज की पाश्चात्य सभ्यताओ म सपत्ति उतना ही, या और भी अधिक महत्वपूण या निर्णायक है, और सपत्ति जन्म की अपेक्षा कम दुलभ्य निर्णायक है। यह अधिक ठोस

है, इसलिए उसके दावो को आसानी से चुनौती दी जा सकती है। चूंकि संपत्ति परिणामत कम या अधिक हो सकती है इसलिए यह जाति या दलगत विभिन्नताओ का जनक नही हो सकती, हस्तांतरणीय, प्राप्य और अन्य सम्प्राप्य होने के कारण यह वैसे चिरस्थाई विभेदो की सृष्टि नही कर पाती जैसे की सृष्टि जन्म कर सकता है।'[3]

'वर्ग के सदस्यो के आचार-विचार व संचालन नियमन के लिए समस्त समाज के कानूनो के अतिरिक्त अपनी कोई विशिष्ट स्थाई या अस्थाई पंचायत नही होता।'[4]

जाति की पंचायतो को अर्ध कानूनी क्षमता प्राप्त थी, जिसकी मदद से वे दोषी सदस्यो को जाति निकाला, जुर्माना और शारीरिक दंड की सजा दे सकती थी। जाति का सदस्य पहले अपनी जाति के प्रति वफादार होता था तब सारे समाज के प्रति। इसके कारण सामाजिक एकता और बंधुत्व की भावना दुर्बल पड जाती थी।

प्रत्येक जाति की आचार विचार संबंधी अपनी धारणाए थी, अपने अच्छे बुरे आदर्श थे। ये धारणाए और आदर्श उस जाति के सदस्यो पर लागू थे, और इस तरह कालक्रम से प्रत्येक जाति एक दूसरे से पृथक होती गई प्रत्येक जाति एक अलग सामाजिक सांस्कृतिक समुदाय के रूप मे विकसित हुई।

फिर जाति व्यवस्था को धर्म का भी समर्थन प्राप्त था। जाति की शुरूआत ही भगवान ब्रह्मा से मानी जाती थी। जाति नियमो का उल्लंघन जाति विरोधी ही नही वरन अधार्मिक कृत्य भी माना जाता था। इस तरह धर्म के कारण लोगो पर जाति की पकड मजबूत हुई।

अपने अनुयायियो से हिंदू धर्म की पहली माग यह थी कि 'जिस सामाजिक स्थिति मे उनका जन्म हुआ है उसे वे खुशी से स्वीकार कर ले अर्थात अपनी जाति की मान्यताओ को मंजूर कर ले क्योकि जाति तो नैसर्गिक विधान है और जाति द्वारा निर्धारित कर्म से ही उसे मोक्ष मिल सकेगा और मृत्युपरांत वह उच्चतर अंतरिक्षी जीवन का भागी होगा।

शादी ब्याह पेशे का चुनाव, पारस्परिक खान पान और जीवन के अन्य ये बहुत सारे परम व्यक्तिगत प्रश्नो पर भी जाति का नियंत्रण था। जाति की मान्यताओ को धर्म और हिंदू राज्य की अवपीडक शक्ति का समर्थन प्राप्त था और वह स्वयं भी अपराधी को दंड दे सकती थी इस तरह इस व्यवस्था मे व्यक्तिगत आजादी थी ही नही। व्यक्ति अपने पेशे का चुनाव नही कर सकता था, अपनी इच्छा और मर्जी से शादी नही कर सकता था और न जिस किसी के साथ भोजन ही कर सकता था। फिर जिस जाति मे किसी व्यक्ति विशेष का जन्म हुआ हो, उस जाति की प्रतिष्ठा से ही उस आदमी की सामाजिक प्रतिष्ठा निर्णीत होती थी और कानून की नजर मे उसकी स्थिति तय होती थी। सरकारी कानून एक से नही थे, वे अलग अलग जातियो के लिए अलग अलग थे।

पदानुक्रमित श्रेणी शृंखला आबद्ध होने के कारण जाति व्यवस्था ने जातियों के बीच परस्पर असमानता की सृष्टि की। नीची और ऊंची जातियों के आधार भी अलग होते थे। नीची जातियों को शहर या गांव में अलग जमीन पर बसाया जाता था। अछूत और अपवित्र जातियों के लोगों को सर्वसाधारण के कुओं और तालाबों से पानी भी नहीं मिल सकता था। वे मंदिरों में भी प्रवेश नहीं पा सकते थे। जाति प्रथा के कारण सामाजिक प्रपीडन इतना अमानवीय हो गया था कि निम्नतम स्तर के कुछ लोगों को अछूत और निकृष्ट मान लिया गया। उन पर दृष्टिपात होने भर से लोग अपवित्र हो जाते थे और जो अछूत जाने अनजाने किसी ब्राह्मण को दिखाई पड जाता था उसे बडी कठोर सजा मिलती थी।[6]

जाति व्यवस्था के प्रमुख लक्षण

पदानुक्रमित श्रेणी शृंखला सामाजिक असमानता सजातीय ब्याह भोजन पान पर प्रतिबंध पेशे के चुनाव में स्वतंत्रता का अभाव ये ही जाति व्यवस्था के प्रमुख लक्षण थे।

> संक्षेप में, प्रत्येक भाषा क्षेत्र में लगभग दो सौ समुदाय थे जिन्हें जाति के नाम से जाना जाता था और जिनके अपने अलग अलग नाम थे। उनमें किसी एक में भी जन्म होने पर व्यक्ति विशेष की सामाजिक पदवी प्रतिष्ठा नियत हो जाती थी। ये जातियां लगभग दो हजार उपजातियों में विभक्त थीं। उपजातियां शादी ब्याह और साथ सामाजिक जीवन और विशिष्ट सांस्कृतिक परंपरा की स्थापना आदि का सीमा निर्धारण किया करती थीं। कुछ अपवाद हो सकते हैं लेकिन इन बडे-बडे दलों के पुरोधा प्रायः एक ही होते थे जो सारे दल को बांधे रहते थे जो विभिन्न दल इस व्यवस्था के अंग थे उन्होंने इसके मूल बिंदुओं को पूर्णतः स्वीकार कर लिया था और गांवों में ये दल परस्पर एक दूसरे पर आश्रित थे, इसलिए ये विशिष्ट एकांतिक दल समस्त व्यवस्था को विभिन्न स्वतंत्र दलों में विखंडित नहीं कर सके वरन उन्होंने नागरिक जीवन में एक प्रकार का तालमेल बनाए रखा। यो निश्चय ही यह सामंजस्य वैसे तत्वों का सामंजस्य नहीं था जिनका मूल्य समान हो। यह ऐसी इकाइयों का सामंजस्य था जो एक दूसरे पर आश्रित थी।[7]

मूलतः भारतीय जनता के आर्थिक अस्तित्व के अविकसित होने के कारण जाति प्रथा सदियों तक फलती-फूलती रही। जिस प्राक् पूंजीवादी अर्थतंत्र पर यह आश्रित थी गांवों का स्वशासन विनिमय व्यवस्था का अपूर्ण विकास और यातायात के अक्षम और स्वल्प साधन उसके आधार थे।

भारत पर अंग्रेजी शासन ने जिस नई सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति की सृष्टि की और उसके जो परिणाम हुए उनके चलते जाति प्रथा के जो भी फायदे कभी रहे हों वे खतम हो गए।

जाति प्रथा के ह्रास के कारण

अंग्रेजों की भारत विजय के फलस्वरूप जिन आर्थिक शक्तियों का जन्म हुआ उन्होंने जाति का आर्थिक आधार ही खतम कर दिया। गावों के स्वशासन का हनन, भूमिगत वैयक्तिक संपत्ति का सृजन, देश का अनवरत उद्योगीकरण जिसके कारण नए पेशों का जन्म हुआ और आधुनिक शहर बस जिन्होंने जातिगत विधि निषेधों पर कुठाराघात किया, रेलवे और बसों के यंत्रजाल का विस्तार जिसके कारण भारतीय इतिहास में पहली बार बड़े पैमाने पर लोग यात्रा करने लगे और इस तरह चाहे अनचाहे एक दूसरे के संपर्क में आए, इन कुछ प्रमुख कारणों से जातियों का पेशागत आधार और इसके सदस्यों के एकांतिक आचार विचार समाप्त हुए।

नए संपत्ति संबंधों का प्रभाव

भूमिगत सांपत्तिक अधिकार और इनमें हेर फेर कर सकने की स्वतंत्रता संभावना एवं औद्योगिक वाणिज्यिक प्रशासनिक और डाक्टरी एवं वकालत जैसे पेशों और व्यवसायों की सृष्टि के कारण गावों के संयुक्त परिवारों में विकेंद्रीकरण की प्रवृत्तियां उभर आई। परिवार के जिन सदस्यों ने बाहर शहरों में जाकर विविध पेशों का अख्तियार किया उन्होंने संपत्ति के विभाजन की मांग करनी शुरू की।

भारतीय कृषि का तकनीकी पिछड़ापन एवं नई भूमिकर व्यवस्था किसानों की बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता और समानुपाती औद्योगिक विकास के अभाव में हो रहे हस्तशिल्प के ह्रास और फलस्वरूप भूमि पर बढ़ती हुई जनसंकुलता इन सब कारणों से किसान बहुत बड़ी तादाद में शहरों में जाने के लिए बाध्य हो रहे थे। वहां इन्होंने मिलों में मजदूरी या घरेलू नौकरों का काम किया। इसके चलते भी जाति का पेशागत आधार विघटित हुआ।

जाति पंचायतों का जाति संबंधी नियमों के उल्लंघन के लिए दंड देने का जो अधिकार था उसे ब्रिटिश सरकार ने अपहृत कर लिया। इधर आर्थिक बाध्यता और नई आर्थिक राजनीतिक हालतों में सुलभ नए अवसरों के कारण लोगों ने जाति सम्मत पैतृक पेशों को छोड़ना शुरू किया। पुरोहित या शिक्षक का काम करने के बदले ब्राह्मणों ने डाक्टर, व्यापारी मिल मालिक, किरानी या हवाई जहाज संचालक का काम करना शुरू किया। आधुनिक बाध्यता या आकांक्षा के कारण शिक्षित ब्राह्मण उन उद्योग जैसे कार्य भी शुरू कर रहे थे जो आज से पचास वर्ष पहले घृणा की दृष्टि से देखा जाता था।[8]

आधुनिक शहरों का प्रभाव

आधुनिक उद्योगों के कारण जिन आधुनिक शहरों का आविर्भाव हुआ उनमें बड़े-बड़े होटल, जलपानघर, थियेटर ट्राम, बस आदि भर पड़े थे। विभिन्न जातियों के खान पान और शरीरिक संपर्क के प्रश्न पर एक दूसरे में जिस पार्थक्य का

निर्वाह करते आए थे वह नियमित रूप से समाप्त होने लगा। विभिन्न पेशों या सामाजिक उत्सवों में अन्य जातियों और संप्रदायों के सदस्यों से भी संबंध रखने की आवश्यकता से इस प्रक्रिया को बल मिला। यूरोपियों से संबंध और राजनीतिक अथवा आर्थिक सम्मेलनों से संबंधित सामाजिक मनोरंजनों के कारण सब जातियों के और बिना जाति के भी लोग एक दूसरे के साथ आए।'[9]

ताज होटल में ब्राह्मण मिल मालिक शूद्र मिल मालिक के साथ भोजन करने लगा। शहरों में मजदूरों और मध्यम वर्गीय लोगों के साधारण होटलों और जलपानघरों में विभिन्न जातियों और धर्मों के लोगों की भीड़ लगने लगी। ट्रेनों और बसों में लोग दलित जातियों के लोगों और कभी-कभी अछूतों से भी कंधा सटा कर चलने लगे। आधुनिक सामाजिक अस्तित्व की सुविधाओं ने जाति या संप्रदायगत विभाजनों को कोई मान्यता नहीं दी, अलबत्ता वे निष्पक्ष रूप से उन सबके लिए थीं जो उनके लिए पैसा दे सकें।

फिर भी यह समझना गलत होगा कि जातिगत विभाजन समाप्त हो गए थे। शहरों में भी दकियानूसी जातिपंथियों ने हरचंद कोशिश की कि जाति द्वारा निर्धारित नियमों का पूरी तरह पालन किया जाए। ऊपर केवल यह बताने की कोशिश की गई है कि इन रीति रिवाजों की ऐतिहासिक गति ह्रासोन्मुख थी।

नए न्यायतंत्र का प्रभाव

देश में समरूप न्यायतंत्र लागू कर ब्रिटिश सरकार ने प्राक् ब्रिटिश भारत में प्रचलित सामाजिक और न्यायिक असमानताओं को गहरी चोट पहुंचाई। प्राचीनकाल में यह जाति की प्रतिष्ठा से निश्चित होता था कि किसी को क्या सजा मिलेगी। हिंदू राज्य, जाति और गांव एक ही अपराध के लिए विभिन्न जाति के अपराधियों को विभिन्न सजा दिया करते थे। अब न्यायगत जाति निरपेक्ष समानता की स्थापना हुई।

ब्रिटिश सरकार ने जाति की पंचायतों से दंड देने का अधिकार ले लिया। इस तरह जाति के पास वह अस्त्र नहीं रह गया जिसके माध्यम से वह जाति के उद्दंड उजड्ड सदस्यों पर लागू रख सके। जाति अब स्वच्छिक संगठन भर रह गया और अगर जाति के नियमों के उल्लंघन के लिए पंचायत ने जुर्माना लगाया या अन्य सजा दी तो इसके लिए उसे कानून की सहमति नहीं प्राप्त थी। इसके चलते जाति की शक्ति काफी कम हो गई।

कास्ट डिजेबिलिटीज रिमूवल एक्ट आफ 1850, द स्पेशल मैरिज एक्ट आफ 1872 और स्पेशल मैरिज अमेंडमेंट एक्ट आफ 1923 ने जाति के भव्य प्रासाद को ध्वस्त करने में मदद दी।

नए सामाजिक वर्गों के उदय का प्रभाव

नई आर्थिक व्यवस्था के कारण आर्थिक क्षेत्र में आबादी के नए संगठन तैयार हो

गए। पुराने कायवाही विभाजनो पर बनी जातिया नई कायवाही के अनुकूल नही थी। भारतीय जनता अब पूजीपति मजदूर, किसान मालिक व्यापारी, बटाईदार, खेत मजदूर, डाक्टर वकील टक्निशियन जैसे विभिन्न दलो मे विभक्त थी, और प्रत्येक दल म विभिन्न जातिया और सप्रदायो के लोग थ यद्यपि इन दलो के अपने विशिष्ट भौतिक और राजनीतिक स्वाथ थे। नए वर्गो के अनुसार बन इन नए समस्तर विभाजनो न पुराने श्रेणीगत विभाजनो को कमजोर किया। इस तरह मिल ओनस एसोसिएशन, आल इडिया टेड यूनियन काग्रस, आल इडिया किसान सभा लैड लाड स यूनियन जसी नई जमाते बनी। इन दलो न अपन विभिन्न स्वार्थो के लिए सघष किए। इन सघर्षो के सिलसिले मे इन्होन नया दष्टिकोण, नई चेतना, और नई सघषशक्ति विकसित की जिस क्रम म लोगो की *जातिगत चतना का ह्रास हुआ। वग सगठनो और सयुक्त वग सघर्षों से भारतीय* जनता को नया वग दष्टिकोण नया वग व्यवहार प्राप्त हुआ। इस तरह वे लगा तार जाति व्यवस्था को कमजोर करते गए।

वग सघर्षो का प्रभाव

हडताली सघर्षो म मजदूरी बढान और काम की हालतो म सुधार और तरक्की के शामिल उद्देश्यो की पूर्ति के लिए ऊची जातियो के मजदूर अछूत मजदूरो स कधा मिलाकर लडे। इसी तरह ब्राह्मण हो या वैश्य और शूद्र पूजीपतियो ने भी मजदूरो से अपन स्वार्थ की रक्षा के लिए अपनी एकता कायम की। हिंदू मुस्लिम, इसाई विभिन्न सप्रदायो के एक ही वग के लोग वगगत एकता की परिधि म आए। ऐतिहासिक प्रवत्ति यह थी कि वग सूत्र मजबूत हुए, और जाति सूत्र कमजोर क्योकि वग विभाजन आधुनिक आर्थिक अस्तित्व समाज के नए आर्थिक विभाजन, और वग क सदस्यो क समरूप भौतिक स्वार्थो पर आधारित था।

राष्ट्रीय अथतत्र भी वग विभाजन का आधार था। प्राक ब्रिटिश भारत म पेशा ही जाति का आधार था और देहात या शहर का स्थानीय अथतत्र उसका अवलबन। किसान और कारीगर बहुसख्यक आत्मनिभर स्वशासित शहरो या गावो म स्थानीय दलो म विभक्त थे, उनके कोई अखिल भारतीय सम्मिलित भौतिक स्वाथ नही थ। उनक अपन स्थानीय स्वाथ थे और इसलिए उनकी एकता स्थानीय थी।[10] लकिन इसके विपरीत परवर्ती काल म किसान मजदूर व्यापारी और मिल मालिक आदि विभिन्न नए वर्गो की अपनी अखिल भारतीय एकता बनी।

पेशागत विभिन्नता के कारण लोगो की आबादी और उनके जीवन स्तर म विभेद आए। इसस लोगो के आचरण और व्यवहार, दष्टिकोण और चिंतनशैली एव आकाक्षाओ म भी अतर आए और जाति विरोधी भावनाए बनी। यो पुरानी विचारधारा जडता नतिक साहस का अभाव, आदि कारणो म जाति विरोधी भावनाए व्यापक विद्रोह का रूप न ल सकी।

आधुनिक शिक्षा का प्रभाव

जाति के प्रति श्रद्धा की भावना समाप्त करने मे आधुनिक शिक्षा की भूमिका भी कम नही है। प्राक ब्रिटिश भारत मे जो कुछ शिक्षा थी वह ब्राह्मणा के एकाधिकार द्वारा निर्देशित थी और वह धम से ओतप्रोत थी। चूकि जाति व्यवस्था को धम का समथन प्राप्त था, इसलिए हिंदू धम से ओतप्रोत वह शिक्षा पद्धति लागा को जाति व्यवस्था को स्वीकार करने की शिक्षा देती थी और व्यक्तिया म जाति विवेक स्थापित करने म मदद देती थी। लोग यह मानकर चलत थे कि जाति दैविक विधान है और यह समझते थे कि जाति के नियमा का उल्लघन घार पाप है। प्राक ब्रिटिश शिक्षा पद्धति का एक काम था व्यक्ति म हिंदू समाज की जाति व्यवस्था क प्रति श्रद्धा की भावना का सचार करना और उसे जातिगत सस्कारा और स्वत्व का उत्साही और इच्छुक अनुयाई बनाना।

ब्रिटिश शासन न शिक्षा पद्धति को धम निरपक्ष बनाया। अब यह सबको सहज सुलभ थी। अपनी सीमाओ और विकृतिया के बावजूद यह शिक्षा पद्धति सारत उदारवादी थी। न्याय के समक्ष व्यक्तिया की समानता राज्य के सभी नागरिका के लिए समान अधिकार, मनमाफिक पेशा अख्तियार करने की आजादी, नई शिक्षा पद्धति न इन सिद्धाता का प्रतिपादन किया। यूरोपियन उदारवाद इसका आधार था। प्रतिनिधि सस्थाआ और एसोसिएशन और असेंबली की स्वतत्रता जसे विचारा का इसने प्रचार किया। ब्रिटिश शासन भारतीय जनता पर विदशियो का शासन था और इसलिए अप्रजातात्रिक ता था ही। फिर भी इस शासन द्वारा सगठित और चलाई गइ शिक्षा पद्धति प्राक ब्रिटिश भारत की शिक्षा पद्धति की तुलना म, जिसन हिंदू समाज की जातिगत विभिन्नताआ और विशेषाधिकारा का समथन दिया, धम निरपक्ष और मूलत उदारवादी तो थी ही।

भारतीय समाज क शिक्षित वग के एक अश न पाश्चात्य देशो के उदारवादी दशन और प्रजातात्रिक सस्थाआ का अध्ययन किया और उन्हाने जाति विरोधी विद्रोह की पताका फहराई। राजा राममोहन राय देवेंद्रनाथ टैगोर केशवचद्रसेन, जसे प्रबुद्ध भारतीया ने जाति सुधार को अपने कायक्रम का मूलभूत तत्व बनाया।

जसे-जसे हिंदू समाज के निम्नतम स्तर म शिक्षा का प्रसार हुआ, वसे-वसे हिंदू समाज के चिरकालीन अन्याय क शिकार इन वर्गों म साम्य भाव का उदय हुआ। फलस्वरूप डा० अम्बेदकर के नेतत्व म दलित जातिया के आन्दोलन और दक्षिणी भारत के सेल्फ रिसपेक्ट मूवमट जस जाति विरोधी आदोलना का जन्म हुआ।

राजनीतिक आदोलना का प्रभाव

जाति चेतना का दुबल करन म राष्ट्रीय आन्दोलन न विशाल की बहुत बडी भूमिका रही है। भारत म विदेशी शासन क कारण लागा का राष्ट्रीय पमान पर सगठित हान का आवश्यकता महसूस होना रहो। जस जसे विदेशी शासन क विरुद्ध

राष्ट्रीय सघप व्यापक और तीव्र हुआ, वैसे वैसे सकीण स्थानीय, प्रातीय, जातिगत और साप्रदायिक चेतना भी कमजोर हुई। लिबरल फेडरशन, इडियन नेशनल काग्रेस आदि सस्थाओ के कायक्रम, युद्धनीति और काय पद्धति भिन्न हो सकती है, लेकिन इनका आधार जाति या सप्रदाय नही था। इन्होने जाति और धम से ऊपर उठकर सारे भारतीयो का आह्वान किया। इन्होने भारत के लिए जिस राजनीतिक रूपरेखा की कल्पना की उसमे जातियो के विशेषाधिकार के लिए कोई स्थान नही था। 1921-22 के असहयोग आदोलन और 1930 के सविनय अवज्ञा आदोलन जैसे राजनीतिक आदोलनो के चलते भारत मे राष्ट्रीय चेतना काफी मजबूत हुई। इन आदोलनो के कायक्रम और युद्ध पद्धति चाहे जो भी हो, ये स्वय राष्ट्रीय चेतना के प्रतिफल थे और इन्होने इस चेतना को गहराई और व्यापकता प्रदान की। इस तरह राष्ट्रीय आदोलन के विकास ने भी कुछ हद तक हिंदुओ की जातिगत चेतना को कमजोर किया। वस्तुत वगजन्य एव राष्ट्रीय दोनो प्रकार के आदोलनो ने भारतीय जनता की वग चेतना को दुबल बनाया।

जाति प्रथा का प्रतिक्रियावादी रूप

ब्रिटिश शासनकाल मे स्थापित आधुनिक अथतत्र और राष्ट्रीय स्वातत्र्य के सघप मे विजय के लिए आवश्यक राष्ट्रीय ऐक्य की राह मे जाति व्यवस्था बाधा स्वरूप थी। औद्योगिक विकास के लिए श्रम आपूर्ति की आवश्यकता थी। जाति के नियमो के अनुसार सभी के लिए पैतक पेशा अपनाना जरूरी था और इस तरह उद्योगो के लिए पर्याप्त सख्या मे मजदूरो का मिलना मुश्किल था। जाति भक्ति का स्थान सर्वोपरि था, इसलिए राष्ट्रवाद जसे वहत्तर विचारतत्र के प्रति भक्ति का स्थान बाद मे आता था। कारीगरो की बर्बादी और किसानो के दारिद्रय के कारण यह आवश्यक हो गया कि ये लोग दूसरे पेशे अख्तियार करें। व्यक्ति स्वातत्र्य जैसे प्रजातात्रिक विचारो के प्रचार के कारण शिक्षित भारतीयो मे जातिगत विभेद और असमानता के प्रति विद्रोह की भावना जगी। इस तरह धीरे धीरे जाति विरोधी आदोलनो का जन्म हुआ और वे शक्तिशाली हुए यद्यपि सजातीय विवाह की व्यवस्था, जो जाति प्रथा का मूलाधार थी, अक्षुण्ण रही। जाति व्यवस्था के कारण सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रो मे भी सुधार की प्रक्रिया अवरुद्ध रही। हमारी तरफ मेरा आशय गुजरात से है जाति समाज सुधार के माग मे सबसे बडी बाधा रही है।'[11]

शिक्षित भारतीयो ने ही जाति व्यवस्था पर आघात किया क्योकि उन्होने नए भारत के सदभ मे इसकी असगति को पहचाना। राष्ट्रीय स्वतत्रता और देश की राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक प्रगति के लिए जाति सरचना का सुधार या उन्मूलन आवश्यक था। व्यक्ति की स्वतत्रता मान्य होनी चाहिए थी और जाति की जकड से व्यक्ति को पहलकदमी का मुक्त होना था। तभी देश के सभी व्यक्तियो की निर्माणात्मक शक्ति का स्फुरण सभव था। जाति के शिकजो से

व्यक्ति की मुक्ति राष्ट्रीय प्रगति के लिए आवश्यक थी। जातिगत विशेषाधिकार और अपगता की समाप्ति के बाद ही सामाजिक न्याय सभव था। एक जमाने म कहा जाता था कि मृत्यु के बाद आदमी को अपवर्ग तभी मिलेगा जब जाति के नियमो का पालन हो। अब समाज सुधारको ने राष्ट्रीय प्रगति का मानव जीवन का ध्येय बताया।

जाति प्रथा के विरुद्ध आदोलन

समाज सुधारको ने मध्ययुगीन समाज व्यवस्था के आधारभूत विचारो पर ही आघात किया। 'पृथक्ता, अतर्विवेक के बदले बाह्य शक्तियो के प्रति आत्मसमर्पण मानव के बीच जन्म या उत्तराधिकार पर आधारित काल्पनिक विभेद, सासारिक सुख के प्रति निरपेक्षता जो भाग्यवाद का रूप ले सकता था, य हमारी प्राचीन समाज व्यवस्था के मूल सिद्धात हैं। इन्ही से आज का हमारा पारिवारिक प्रबंध निर्धारित होता है और इन्ही के कारण हमारे परिवार म स्त्री पुरुष के अधीनस्थ है और निम्न जाति के लोग उच्च जातियो के अधीनस्थ। इस तरह लोगो म मानव जाति के प्रति कोई श्रद्धा की भावना नही रह गई।[1]

समाज सुधारको ने सामाजिक वैषम्य और पार्थक्य पर चोट की और समानता (उदारवादी बुर्जुआ अर्थों म) और सहयोग का समर्थन किया। उन्होने जन्म और उत्तराधिकार को विभेद का आधार मानने स इनकार कर दिया, और कर्म के सिद्धात का विरोध किया। गैर प्रजातात्रिक, एकतात्रिक जाति व्यवस्था को इससे धार्मिक, दार्शनिक बल मिलता था। उन्होने लोगो से अपील की कि मृत्यूपरात मुक्ति के लिए प्रयास करने के बदले वे वास्तविक दुनिया म अपनी स्थिति म सुधार करें। उनके अनुसार राष्ट्रीय ऐक्य और सगठन के रास्ते म जाति व्यवस्था बहुत बडी बाधा थी।[13]

विभिन्न समाज सुधार दलो ने विभिन्न दृष्टियो से जाति व्यवस्था पर आघात किया। ब्रह्म समाज के सस्थापक राजा राममोहन राय ने हिंदुओ के प्राचीन समाजशास्त्रीय धर्मग्रंथ 'महानिर्वाण तत्र' की मदद से यह सिद्ध किया कि जाति व्यवस्था की अब कोई आवश्यकता नही। ब्रह्म समाज ने इन शब्दो म जातिजन्य सामाजिक विभाजनो की निंदा की 'ये हानिकर विभेद जो हमारे जन जीवन का खून पी रहे ह, क्या समाप्त होगे? देवो ने इस देश के लिए जिस श्रेष्ठ उत्कृष्ट नियति का विधान किया है उसे पूरा कर सकने के लिए यह देश क्या सगठित और शक्तिशाली हो सकेगा? इससे बडा सत्य कोई नही कि जाति व्यवस्था, जो हमारे समाज की सारी बुराइयो के मूल म है के पूर्ण उन्मूलन के बिना इस नियति की पूर्ति नही हो सकती।[14]

देवेन्द्रनाथ टगोर और केशवचद्र सेन, जो राजा राममोहन राय के बाद ब्रह्म समाज के नेता हुए हिंदू धर्मग्रथो के उनसे भी बडे आलोचक थे। केशव चद्र सेन ने धर्म ग्रथो की मदद के बिना ही, बडे साफ शब्दो म जाति व्यवस्था का घोरतम

निंदा की। राजा राममोहन राय ने सामाजिक विद्रोह की जिस भावना का उदघाटन किया, उसकी चरम परिणति हुई केशवचंद्र सेन के नेतृत्व मे।

ब्रह्म समाज ने जाति विरोधी आंदोलनो की जो शुरुआत की, उसके बाद के संगठनो ने उन्हे जारी रखा। बाद मे प्रार्थना समाज ने जाति विरोधी आंदोलन लगभग उसी तौर पर चलाया जिस तौर पर ब्रह्म समाज ने चलाया था। पाश्चात्य देशो के प्रजातान्त्रिक और सांस्कृतिक प्रभाव मे ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज दोनो ने जाति नामक संस्था की ही आलोचना की। इसके विपरीत स्वामी दयानन्द के आर्य समाज ने जाति व्यवस्था का विरोध नही किया वरन चार वर्णों पर आधारित वैदिक काल के हिंदू समाज को पुनरुज्जीवित करना चाहा। आर्य समाज ने हिंदू समाज के अनगिनत उपविभाजनो के विरुद्ध संघर्ष तो किया, लेकिन शुरू के चार विभाजनो के आधार पर इसके नव निर्माण की भी चेष्टा की। फिर इसने यह भी कहा कि निम्नतम जाति शूद्रो का भी धर्मग्रंथो के पठन-पाठन का अधिकार दिया जाए। इस तरह ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज जाति भंजक आंदोलन थे, लेकिन आर्य समाज उपजातियो के उन्मूलन के द्वारा जाति व्यवस्था मे सुधार लाने के पक्ष मे था।

ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज के अतिरिक्त भी जाति विरोधी आंदोलन हुए। तेलंग रानाडे और फूले, जिन्होने 1873 मे सत्य शोधक समाज की स्थापना की और मालाबारी, कवि नर्मद और अन्य लोगो ने भी जाति व्यवस्था का जमकर विरोध किया। दक्षिण मे सेल्फ रिसपेक्ट मूवमेंट ने उन अपमानजनक अपंगताओ के विरुद्ध संघर्ष किया जिनसे गैर ब्राह्मण जातियां पीडित थीं।

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के वामपक्षी नेताओ ने यह तर्क उपस्थित किया कि चूंकि प्रतिगामी सामाजिक संस्थाएं देश के निम्न आर्थिक विकास पर निर्भर है और चूंकि देश के आर्थिक विकास की इस स्थिति का कारण यह है कि भारतीय जनता के हाथ मे राजनीतिक सत्ता नही है, इसलिए भारतीय समाज के नव निर्माण के लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता अनिवार्य है। इस तरह जाति व्यवस्था का उन्मूलन राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रश्न से जुडा हुआ माना गया। सामाजिक और सांस्कृतिक पिछडापन आर्थिक पिछडापन और राजनीतिक गुलामी का परिणाम है, उसकी अभिव्यक्ति है इसका मूल कारण आर्थिक राजनीतिक है।"[15] वामपंथी नेताओ का विश्वास था कि भारतीय समाज का मूलभूत सुधार तभी संभव है जब भारतीय जनता को आत्म शासन का अधिकार मिले, इसलिए उन्होने स्वराज के लिए अधिकाधिक घोरतर संघर्ष किए।

यद्यपि भारतीय राष्ट्रवादियो की यह समझदारी थी कि राजनीतिक सत्ता भारतीय समाज के प्रजातांत्रिक, मूलभूत सुधार के लिए आवश्यक है, फिर भी उन्होने सामाजिक बुराइयो के विरुद्ध संघर्ष कमजोर नही होने दिया। लेकिन इन लोगो ने अपने कार्यक्रम मे समाज सुधार को प्राथमिकता नही दी।

जाति प्रथा के समर्थक आंदोलन

प्राय सबने ब्रिटिश सरकार की इसलिए आलोचना की कि उसने जाति प्रथा को समाप्त करने के लिए कोई कदम नही उठाया। कुछ ब्रिटिश इतिहासकारो, पत्रकारो और प्राध्यापको ने कभी-कभी यह भी कहा कि ब्रिटिश शासन को बनाए रखने के लिए जाति व्यवस्था को जीवित रखना आवश्यक है। जेम्स कर ने कहा है यह सदिग्ध है कि जाति प्रथा का अस्तित्व सब मिलाकर ब्रिटिश शासन के स्थायित्व के प्रतिकूल है। अगर हम बुद्धि और धैर्य से काम ले तो यह हमारे अनुकूल भी हो सकता है। जाति भावना राष्ट्रीय ऐक्य के विरुद्ध है।'[16]

कुछ ऐसे छोटे छोटे कारण भी थे, जिन्होने जाति भावना को जीवित रखा। 1921 के सेंसस आपरेशस के दो सुपरिटेंडेंटो मे एक मिडल्टन थे जिन्होंने पजाब मे *जाति व्यवस्था पर अग्रेजी शासन के प्रभाव के बारे मे महत्वपूर्ण बाते कही है।*

> मैंने यह दिखाना चाहा था कि जातियो के पेशागत वर्गीकरण के विरुद्ध व्यापक विद्रोह भावना थी कि ब्रिटिश सरकार ने प्राय इन जातियो का निर्माण किया था, और हर हालत मे उन्हे विभिन्न जातियो के रूप मे सुरक्षित रखा था। जातियो की प्रचीन जडता को हमारे लैंड रेड कस ने लौह बधन मे बाध दिया है हमने प्रत्येक व्यक्ति की जाति के अनुसार खानाबदी कर दी और जहा हमने उनके लिए कोई निश्चित जाति नाम नही पाया, वहा हमने पैतृक पेशे के आधार पर उन्हे एक नया नाम दे दिया। हम जाति व्यवस्था और आर्थिक और सामाजिक समस्याओ पर उसके दुष्प्रभाव की निंदा करते है, लेकिन जिस व्यवस्था कि हम निंदा करते हैं, उसके लिए बहुत हद तक हम ही उत्तरदाई भी है। यो छोड दिया जाए तो लोहार और सोनार जसी जातियो का तुरत लोप हो जाएगा खानाबदी और लेबल के सरकारी मोह के कारण जाति व्यवस्था को निश्चित रूप मिला है।[17]

राष्ट्रीय आदोलन और मजदूरो एव मालिको तथा किसानो एव जमीदारो के वर्ग संघर्ष के विकास एव उनकी तीव्रता के कारण धनी वर्गों के कुछ लोगो ने जाति प्रथा को बनाए रखने के भी प्रयास शुरू किए। उनका उद्देश्य था, जनता की बढती हुई राष्ट्रीय एकता और विभिन्न जातियो एव सप्रदायो के मजदूरो, किसानो की बढती हुई वर्ग एकता को छिन्न भिन्न करना। जसे जैसे मजदूरो और किसानो या बटाइदारो ने यह समझना शुरू किया कि व्यक्तिगत रूप मे वे जिस किसी जाति के हो उनके सम्मिलित आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थ और हित है वैसे वसे वे अपने को एक जाति के बदले एक वर्ग का सदस्य मानने लगे, और ट्रेड यूनियन, किसान सभा बटाईदार सगठन, खेतमजदूर सगठन जैसे वर्ग सगठनो मे एकत्रित होने लगे। उन्होने सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट पार्टी जसी अपने वर्ग की पार्टियो का भी गठन किया। श्रम और जीवन के अच्छे हालात के लिए मालिको और जमीन्दारो के खिलाफ उन्होने सम्मिलित संघर्ष भी किए। स्वभावत

यह बात जमींदारों और मालिकों को पसंद नहीं आई और उनमें जो सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी थे उन्होंने जनसाधारण की बढ़ती हुई एकता को समाप्त करने के लिए जाति की प्रतिगामी संस्था का भी इस्तेमाल किया।

प्रत्येक जनगणना में हिंदू आबादी का जातियों के आधार पर किए गए जा वर्गीकरण का विरोध किया गया, क्योंकि इसने उन जातिगत मतभेदों को जीवित रखा, जिन्हें खतम कर देना चाहिए था। दूसरी तरफ जाति व्यवस्था के भी अपने पक्षधर थे, जो जाति व्यवस्था का समाज के सिमेंट के रूप में गुणवान मानते थे ऐसा सिमेंट जो हिंदुत्व को जकड़े रखता है और बाहरी आघातों से उसकी रक्षा करता है। दरभंगा महाराजाधिराज ने कहा है कि जाति व्यवस्था विद्रोह की भावना वर्गों और लोगों एवं पूंजी और श्रम के बीच की बढ़ती हुई पारस्परिक कटुता, जो सभ्यता के लिए सर्वथा हानिकर है से सुरक्षा प्रदान करती है।'[19]

जातिगत दानशीलता और जाति पर आधारित पारस्परिक सहायता संगठनों के कारण भी जाति के विनाश की प्रक्रिया में बाधा आई। जातिगत भाईचारे की भावना से प्रभावित और जाति में बढ़ती हुई अपकेंद्रीय प्रवृत्तियों से घबड़ाए हुए जाति के सतर्क सदस्यों ने पारस्परिक सहायता के लिए समितियों का संगठन किया। जाति के गरीब सदस्यों को आर्थिक सहायता दी गई और जाति के ही सदस्यों को कम किराए पर आवास की सुविधा प्रदान करने के लिए मकान बनाए गए। जाति विशेष के बालक बालिकाओं की शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियां दी गई और जाति विशेष के सदस्यों के लाभार्थ सहयोग समितियां संगठित हुई।

इन सबके कारण जाति चेतना मजबूत हुई और जाति भक्ति बढ़ी, और इन बातों की राष्ट्र विरोधी अप्रगतिशील भूमिका रही। पहले तो जाति दल शहर के गिल्ड का या ग्राम समुदाय का अनिवार्य अंग होता था। पर्याप्त आर्थिक विनिमय और आवागमन की सुविधाओं की अनुपस्थिति में दूसरे गांव या शहर में रहने वाले उसी जाति के सदस्यों से उनका संबंध नाममात्र का था। अब रेलवे और बसों के कारण यात्रा की जो सुविधाएं प्राप्त हुई उसके कारण जातियों के राष्ट्रव्यापी संगठन बने, जिन्होंने जाति के सम्मेलन बुलाए और सारे देश में फैले हुए जाति विशेष के सदस्यों के हितों की देखरेख के लिए जाति की कार्यकारिणी सभाएं बनाई। जातिगत भाईचारे की भावना के प्रचार के लिए पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। इन सबके कारण राष्ट्रीय स्तर पर जातिगत चेतना का उद्भव और विकास हुआ।

लेकिन जाति का आर्थिक आधार लगातार कमजोर होता जा रहा था और इसके सदस्यों के सम्मिलित आर्थिक हितों का ह्रास हुआ। एक ही पेशा करने वाले, सम्मिलित भौतिक स्वार्थ और दृष्टिकोण वाले लोगों की जमात के रूप में जाति धीरे धीरे मिथक का रूप लेने लगी। यह नए समाज के वास्तविक विभाजनों के रूप में लोगों के संगठित होने में बाधक होकर रह गई।

निम्न जातियो के आदोलनो का द्वैत रूप

अप्रजातान्त्रिक जाति व्यवस्था जन्य सामाजिक, धार्मिक, न्यायिक अपगताओ से पीडित हिंदू समाज की निम्न जातियो के आदोलनो के दो रूप थे प्रगतिशील एव अराष्ट्रवादी और प्रतिगामी। निम्न जातियो ने जाति के आधार पर अपने सगठन बनाए और जनतान्त्रिक स्वतन्त्रताओ के लिए सघर्ष किए तो इनसे सारे देश की जनता के ऐक्य की लडाई को बल मिला। सम्प्रदायवाद एक तरफ विशेषाधिकार और दूसरी तरफ अपगताओ पर फलता-फूलता है। जनतान्त्रिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति और समाज की पदानुक्रमित सरचना पर आधारित सामाजिक और न्यायिक असमानताओ के उन्मूलन से ही सम्प्रदायवाद समाप्त होगा और तब दो सम्प्रदायो के सदस्यो के बीच विभेद नही रह जाएगे। नया समाज सभी व्यक्तियो का प्रजातान्त्रिक सम्मिलन होगा और नई सामाजिक आर्थिक सरचना मे उनकी वास्तविक भूमिका के आधार पर उनका नया वर्गीकरण होगा जो एतिहासिक दृष्टि से अधिक सगत होगा। सम्प्रदायवाद तभी खतम होगा, जब अधिकार विहीन सामाजिक दलो को भी प्रजातान्त्रिक अधिकार मिलेंगे।

लेकिन देश के सविधान मे अपने विशिष्ट अधिकार के लिए सगठित होकर पथक चुनाव क्षेत्रो की माग करना प्रतिक्रियावादी एव राष्ट्र विरोधी कार्य है। पथक चुनाव क्षेत्रो से तो सम्प्रदायवाद को और अधिक बल मिलेगा और समाज के साप्रदायिक विभाजन और अधिक स्थाई और दृढ होगे। अगर निम्न जाति के लोग यह माग करते है कि उनकी प्रतिभा के विकास के रास्ते मे समाज की पदानुक्रमित सरचना ने जो विशिष्ट बाधा ला खडी की है उसे हटाया जाए तो यह एक सही जनतान्त्रिक माग होगी और इस तरह लोगो की रचनात्मक प्रतिभा के विकास का रास्ता प्रशस्त होगा। अगर कोई जाति विशेषाधिकार मागती है तो उसका काम गैर जनतान्त्रिक और राष्ट्र विरोधी होगा। दलित जाति के सदस्यो के अपने सम्मिलित नकारात्मक हित थे क्योकि वे अपनी सामाजिक आर्थिक अपगताओ को समाप्त करना चाहते थे। लेकिन जब नई आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के कारण प्रत्येक जाति का पेशागत आधार छिन्न भिन्न हो गया और प्रत्येक जाति मे विभिन्न पेशो के लोग मिलने लगे, जिनके अपने भिन्न, विरोधी भौतिक हित थे, तब उन सदस्यो का अपना कोई स्पष्ट सम्मिलित स्वार्थ सभव नही था।

ऐसे ही, गैर ब्राह्मण जातियो का भी अपना कोई निश्चित स्वार्थ सभव नही था। ये जातिया कारीगरो खेत मजदूरो जमीदारो, मिल मजदूरो बटाईदारो और अन्यान्य से बनी थी। इन उपविभाजनो के स्वार्थ बिलकुल भिन्न थे। कभी-कभी एक ही जाति मे विभिन्न पेशे के कई दल थे। ब्राह्मण विरोधी आदोलन तभी तक सही और प्रगतिशील था, जब तक उसने न्यायिक और सामाजिक अपगताओ को हटाने के लिए सघर्ष किया। विशिष्ट प्रतिनिधित्व जो सम्मिलित स्वार्थों का दम भरता था उमानी ना राशि भर ब्राह्मण समुदाय की विभिन्न जाति

अपने कोई सम्मिलित स्वार्थ नही थे, इस समुदाय की जाति विशेष के सदस्यो के भी अपने सम्मिलित स्वार्थ नही थे। वस्तुत गैर ब्राह्मण मिल मालिको के आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति मिल मालिको के सगठन मे शामिल होने से ही होती, और यह सगठन सब जातियो और सप्रदायो के मिल मालिको का सगठन था। उसी तौर पर, गैर ब्राह्मण मजदूरो के स्वार्थों की पूर्ति विभिन्न जातियो और सप्रदायो के मजदूरो के सगठनो द्वारा ही सभव थी।

विशिष्ट प्रतिनिधित्व से तो साप्रदायिक विभाजन बने रहे और बढे, बसे ही जसे सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक ऐक्य के लिए सगठित ब्राह्मणो के प्रजातान्त्रिक आदोलनो से साप्रदायिक विभाजनो के विनाश का रास्ता साफ हुआ। सुरक्षित प्रतिनिधित्व आवश्यक नही है। अलबत्ता, यह नुकसानदेह है क्योकि इससे जन्म पर आधारित विभेद बढते ही जाएगे। उन देशो मे जहा राष्ट्र समुदाय एकता की भावना पर आधारित है विभिन्न स्वार्थों के प्रतिनिधित्व के लिए ऐसे किसी प्रतिनिधित्व का सिद्धात मान्य नही है यद्यपि विरोधी स्वार्थों के रूप मे उनका विभाजन सभव है। जाति की विभिन्नता की बात करते रहना और पृथक प्रतिनिधित्व की माग स्वीकार कर लेना इसका अर्थ है सामुदायिक भावना के विकास की आधारभूत शर्त को ही नकार देना।[19]

जाति की भावना को समाप्त करने मे राष्ट्रीय आदोलन की भूमिका नगण्य नही है। यह सही है कि जाति का मूलाधार अर्थात जाति के भीतर ही शादी करना, ज्यो का त्यो बना रहा लेकिन आर्थिक राजनीतिक और धर्म निरपेक्ष सास्कृतिक सहयोग और सहकर्मण बढता गया। राष्ट्रीय आदोलनो को जनसाधारण का व्यापक आधार मिल चुका था और सकीर्ण जाति सबधो पर इसका असर पडा। फिर, राष्ट्रीय आदोलन सिद्धातत जनतात्रिक था और इसका कार्यक्रम दलो और व्यक्तियो के समानाधिकार के सिद्धात पर आधारित था। इसने जन्म पर आधारित असमानताओ को सुरक्षा प्रदान करने वाली पदानुक्रमित जाति प्रथा का वस्तुत और परोक्षत विरोध किया। राष्ट्रीय आदोलन ने लोगो को एकजुट किया, जब कि जाति ने उन्हे अलग-अलग कर रखा था। राष्ट्रीय आदोलन ने व्यक्तिगत स्वातत्र्य और आत्मनिर्णय के सिद्धात का उसी तरह समर्थन किया जिस तरह राष्ट्रीय स्वातत्र्य और आत्मनिर्णय के सिद्धात का।

> भारतीय जनता की अग्रगामी शक्तिया जाति निरक्षरता अछूतो की स्थिति और जो कुछ भी लोगो को पिछडा बनाए हुए है, उन सबके विरुद्ध सघर्ष का नेतृत्व कर रही है। सनातन भारतीय सभ्यता और उसके अपरिवर्तनीय लक्षणो पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिए जा रहे है, और उधर बहुसख्यक लोगो द्वारा समर्थित राष्ट्रीय आदोलन ने अपनी सघर्ष पताका पर नारे लिख रखे है जाति, धर्म, सेक्स निरपेक्ष विश्वजनीन समनागरिकता के सभी पदवियो और विशेषाधिकारो के उन्मूलन के, सार्वजनीन वयस्क मताधिकार और सार्वजनिक नि शुल्क अनिवार्य शिक्षा के धर्म के मामले मे राज्य की निष्पक्षता के,

वाक स्वतन्त्रता और प्रेस, विवेक, सगठन और सभा की स्वतन्त्रता क नारे जो ब्रिटेन के अद्ध प्रजातन्त्र की मान्यताओ से काफी आगे बढे हुए थे।[0]

महत्वपूर्ण देशी और विदेशी घटनाओ का भी लोगो के दिमाग पर प्रभाव पडा। उनसे जन जीवन आदोलित हुआ और लोगो के मन म यह इच्छा बलवती हुई कि वे पुरानी सस्थाओ और रहन सहन से आगे बढें। 1914-18 की लडाई के बाद इस प्रक्रिया म और तेजी आई।

युद्ध विराम के 18 बरस बाद हम यह समझते है कि भारत का पुराना सतुलन, विश्व शक्तिया द्वारा अप्रभावित फिर कभी वापस नही आएगा ब्रिटिश राज की रूढिवादिता ने युग सम्मत बुराइयो को समथन प्रदान किया था। प्रजातन्त्र की परिवतनपरक भावना ने मत के लिए एक दूसरे की होड में लगी हुई पार्टिया क माध्यम से काम किया, और मताधिकार के साथ शक्ति का एहसास हुआ। इन सबके कारण पुराने विशेपाधिकारो का अत अवश्यभावी था, विशेपाधिकार जिन्हे बुद्धि बल और साहस का समर्थन प्राप्त नहीं था। जातिगत विशेपाधिकार के पक्षधर पीछे हट रहे है और लगता है अब उनम भगदड मच जाएगी अगर छुआछूत खतम होने वाला हो तो जातिगत विभेद कसे रह सकेंगे ? हिंदू धम की शक्ति न तो विधायिका सभाओ म है और न मदिरा म, वरन घर क अदर है। लेकिन घर मे भी स्त्री शिक्षा के माध्यम से आधुनिकता की भावना तेजी से काम कर रही है। हिंदू सयुक्त परिवार जो जाति का मूलाधार है, स्त्री शिक्षा, आवागमन एव यात्रा की सुविधा और विदेशो से सपक के कारण खडित हो रहा है।[1]

भावी प्रवृत्तिया

सक्षेप मे ऊपर चर्चित बहुत सारी वस्तुगत और भावगत शक्तिया का जाति व्यवस्था पर काफी बुरा प्रभाव पडा। जाति का वशागत आधार बेतरह कमजोर हो गया। नए समानातर राजनीतिक, आर्थिक और सास्कृतिक सगठन बने जिन्होने विभिन्न जातियो के सम्मिलित स्वाथ वाले लोगो को एक जुट किया। इन सगठनो और इस नई चतना क जो नए रूप सामने आ रहे थे उनके कारण जाति सगठनो का महत्व कम हुआ और जाति भावना कमजोर हुई।

कानून क क्षेत्र म जाति क विशेपाधिकार लगभग समाप्त हो गए। पुराने तौर तरीको, रहन-सहन आदि, और लोगो की जडता के कारण सामाजिक क्षेत्र म व जीवित रहे। विजातीय लोगो क साथ खान-पान विषयक जाति क कानून अक्सर भग होते रहे और शहरो म व्यवहारत लगभग समाप्त हो गए। लेकिन सजातीय ब्याह जाति व्यवस्था का सबसे बडा आधार था और यह प्रथा ज्यो की त्यो बनी रही, जाति के बाहर शादी ब्याह अपवाद बना रहा।

फिर भी जाति क प्रगतिशील उन्मूलन की प्रवृत्ति जारी रही। व्यापार आर्थिक विकास शिक्षा क प्रसार, राष्ट्रीय और वगगत आन्दोलनो क विचार एव राजनीतिक

स्वतन्त्रता और प्रगति के साथ-साथ जाति व्यवस्था के विनाश की प्रक्रिया अवश्य काफी तेज होगी। प्रकृति की तरह समाज में भी प्रगति और ह्रास समरूप गति से नहीं होता। युगों की संचित जाति विरोधी चेतना कभी न कभी तो व्यापक जाति विरोधी विद्रोह का रूप लेती ही, शादी ब्याह के मामले में भी। सजातीय ब्याह जाति प्रथा का अंतिम मूल स्तंभ है, और इसके समाप्त होते ही जाति का महल धराशायी हो जाएगा।

संदर्भ

1 ब्लंट पृ० 23।
2 हालवक्स पृ० 20।
3 घुर्ये पृ० 2।
4 वहा पृ० 3।
5 देखें रिज्ली पृ० 298।
6 ओ'मेली पृ० 374 75।
7 घुर्ये पृ० 27।
8 ओ'मेली पृ० 310।
9 वही।
10 मथाई पृ० 65।
11 लेडी विद्या गौरी नीलकंठ घुर्ये द्वारा उद्धृत पृ० 161।
12 इंडियन सोशल रिफार्म खंड II पृ० 91।
13 देखें ब्लंट।
14 फिलासफी आफ ब्रह्माइज्म पृ० 330।
15 आर० पी० दत्त पृ 60।
16 घुर्ये द्वारा उद्धृत पृ० 164।
17 वही पृ० 160।
18 ओ'मेली पृ० 373।
19 घुर्ये पृ० 169।
20 आर० पी० दत्त पृ० 500।
21 मेनचेस्टर गार्जियन वीकली दिसंबर 1936।

15

अस्पृश्यता के विरुद्ध धर्मयुद्ध

अस्पृश्यता हिंदू समाज का अमानुषिक विधान

प्राक ब्रिटिश काल के हिंदू समाज मे कई बडे क्रूर और अजनतान्त्रिक तत्व थे। कुछ हिंदुओ का अछूतो के रूप म पृथक्करण अत्यत अमानुषिक सामाजिक अत्याचार था। अछूतो को मदिरो मे जाने का या सावजनिक कुओ और तालावो के इस्तेमाल का अधिकार नही था और उनके स्पश मात्र से ऊची जातियो के लोग अपवित्र हो जाते थे। हिंदू समाज के अग होते हुए भी अछूत इस समाज से बहिष्कृत जसे थे।

अस्पृश्यता आर्यों की भारत विजय का सामाजिक परिणाम है। सामाजिक बात व्यवहार के फलस्वरूप पराजित जाति के भी बहुत सारे लोग आर्यों के प्रभाव म आए। आर्यों की समाज व्यवस्था म समाविष्ट होने वालो म जो सबसे अधिक पिछडे हुए या सबसे अधिक तिरस्कृत थे उन्ही से अछूतो की पुश्तैनी जाति का निर्माण हुआ।

हिंदू समाज म सदियो से अस्पृश्यता का प्रचलन रहा है। बुद्ध रामानुज, रामानद, चैतन्य कबीर, नानक तुकाराम और अन्य लोगो द्वारा चलाए गए व्यापक और आधारभूत मानवीय एव धार्मिक सुधार आदोलनो का भी युगो की पुरानी इस अमानुषिक प्रथा पर कोई प्रभाव नही पडा। परपरा सम्मत, धमपूत यह प्रथा अपनी सपूण बबर शक्ति के साथ सदियो तक जीवित रही।

विभिन्न राष्ट्रो और विभिन्न युगो म कई प्रकार के पदानुक्रमित मानव समाजो का उद्भव हुआ है। य समाज वषम्य और विशेषाधिकार की नीव पर बने थे। लेकिन किसी भी अन्य समाज म हिंदू समाज जसा आत्यतिक श्रेणीकरण और अधिकार वषम्य नही था। हिंदू समाज म अछूतो के साथ जैसा हुआ, वसा शारीरिक पृथक्करण शायद ही किसी अन्य समाज म रहा हो।[1] अछूत का स्पश मात्र जघन्य पाप और जुगुप्सा का कारण था।

हिंदू समाज म हलखोर, मुर्दा जानवर हटाने वालो और इस तरह के अन्य लोगो के काय पुश्तैनी अछूतो के जिम्मे होते थे।[2] विधि और समाज के अनुसार कोई भी दूसरा पेशा उनके लिए वर्जित था। दुस्सह परिस्थिति के विरुद्ध विद्रोह

करने वाले अछूतो को सजा देने के लिए हिंदू राज्य ने बहुत तरह के कानून बनाए। उन्ह पठन-पाठन या मंदिर मे प्रवेश का अधिकार नही था। गाव या शहर म उन्ह बस्ती से बाहर अलग इलाके म रहना पडता था। जिन सावजनिक कुओ और तालावा का उपयोग ऊची जातिया के हिंदू किया करत थे, उनके इस्तेमाल का अछूतो का कोइ अधिकार नहीं था।[3] गाव की पचायत, जिसमे अधिकाश कुलीन हिंदू ही होते थे, और हिंदू राज्य एक ही अपराध के लिए अछूत को ऊची जाति के हिंदुओ स अपेक्षाकृत अधिक कठोर दड दिया करते थे। अछूतो का यह सामाजिक उत्पीडन धमसम्मत था और इसलिए इसकी जडे बहुत गहरी थी। किसी भी अन्य विधान म आदमी इतना अधिक अपमानित और दलित नही हुआ। इस व्यवस्था मे मानव व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा के साथ चरम अत्याचार हुआ।

अस्पश्यता जैसे क्रूर सामाजिक तत्व का उन्मूलन भारत के सभी समाज सुधार आदोलनो का प्रमुख लक्ष्य था और ऐसा होना स्वभाविक ही था। समाज सुधारको के विभिन्न दल विभिन्न कारणा से अस्पृश्यता निवारण की तरफ झुके, लेकिन इसकी आवश्यकता सभी न महसूस की। यह सच है कि भारतीय समाज के पोगापथियो ने, जो बहुत बडी तादाद म थे अस्पृश्यता निवारण और दलित जातियो की अशक्तता के उन्मूलन का घोर विरोध किया। फिर भी, समाज इन विषमताओ को समाप्त करने की दिशा म ही अग्रसर हो रहा था।

पददलित वर्गों की शक्ति

1931 के जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार सारे भारत म पददलित वर्गों की सख्या 50,192,000 थी। उत्तर प्रदेश म वे सारी आबादी के 23 प्रतिशत थ।[4] इस तरह सामाजिक तौर पर निकृष्ट ये वग सारी हिंदू आबादी के पाचवें भाग थे। इसलिए राष्ट्रीय आजादी और सामाजिक नवनिर्माण की किसी भी योजना म अछूतोद्धार का बहुत बडा महत्व था।

पददलित जातियो म भी सामाजिक श्रेणिया थी। सामाजिक अन्याय के शिकार इन वर्गों म भी सामाजिक तौर पर उच्चतर और निम्नतर जातिया थी। इसलिए यह समस्या और कठिन एव जटिल होती गई। अस्पृश्यता और सामाजिक अशक्तता के अन्य रूपो की व्यापकता के विषय म क्षत्रगत विभिन्नताए भी थी। फिर भी, पददलित जातिया उच्चकुलीन हिंदुओ स भिन्न थी क्योकि वे समान सामाजिक अन्याय से उत्पीडित थी।[5]

अस्पृश्यता और दलित वर्गों की सामाजिक अपगता के अन्य रूपो का उन्मूलन उन सारे सामाजिक धार्मिक सुधार आदोलनो का लक्ष्य था जो अंग्रेजी शासनकाल म उदित हुए।

अछूतो की हालत म सुधार के आदोलन

अस्पृश्यता जैसी अमानुषिक और अन्यायपूर्ण प्रथा के प्रति राष्ट्र प्रबुद्ध और शिक्षित

भारतीयो के सामान्य प्रजातांत्रिक रोष का ही एक रूप था।

ब्रह्म समाज, आर्य समाज, समाज सुधार सम्मेलन, इंडियन नेशनल कांग्रेस जैसे राजनीतिक संगठन, गांधी द्वारा स्थापित अखिल भारतीय हरिजन संघ जैसी गैर राजनीतिक संस्थाएं, इन सबने प्रचार, शिक्षा और अन्य व्यावहारिक उपायो द्वारा अछूतो को सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकार दिलाने की चेष्टा की।

खुद दलित जातियो में एक नई चेतना, नए बोध का जागरण हो रहा था। शिक्षा के प्रसार से उनके बीच भी डा० अम्बेदकर जैसे विशेषज्ञो का दल तैयार हुआ। डा० अम्बेदकर ने उनकी तकलीफो के खिलाफ आवाज बुलंद की और उनके मूलभूत मानवीय अधिकारो के लिए जमकर संघर्ष किए। आल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेज एसोसिएशन और आल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेज फेडरेशन इन जातियो के प्रमुख संगठन थे। दूसरे संगठन को डा० अम्बेदकर ने स्थापित किया और उन्होंने ही इसका नेतृत्व और पथ प्रदर्शन किया। इनके अलावा, दलित वर्गों में शुमार होने वाली जातियो के और भी अनेक स्थानीय और जातीय संगठन थे।

ये सारी संस्थाएं विभिन्न तरीको से दलित जातियो की अशक्तता समाप्त करने के प्रयास में लगी हुई थी। मंदिरो और सार्वजनिक पाठशालाओ में प्रवेश और सार्वजनिक कुओ के उपयोग पर प्रतिबंध तथा निवास स्थान का पार्थक्य अछूतो की अशक्तता के ये कुछ प्रमुख रूप थे। इन अशक्तताओ के विरुद्ध लड़ने के अतिरिक्त डा० अम्बेदकर ने दलित जातियो को राजनीतिक सेना के रूप में भी परिणत करने का प्रयास किया। उनके राजनीतिक दावे डा० अम्बेदकर की वकालत के कारण, मान भी लिए गए और इनके लिए 1935 के विधान में विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई थी। यद्यपि दलित जातियो की विशेष प्रतिनिधित्व की मांग राष्ट्र विरोधी थी और उससे राष्ट्रीय एकता कमजोर होती थी, फिर भी यह मांग इन जातियो के राजनीतिक जागरण की परिचायक थी।

आर्य समाज, ब्रह्म समाज और अन्य धार्मिक सुधारवादी आंदोलनो का उद्देश्य था कि बौद्धिक आधार पर भारतीय समाज का नवनिर्माण किया जाय। इनके नेताओ ने हिंदू सामाजिक व्यवस्था के प्रजातंत्रीकरण की दिशा में प्रयास किए। उन्होंने उन घोर सामाजिक अनीतियो के विरुद्ध संघर्ष किया जिनसे दलित वर्गों के हिंदू पीड़ित थे और हिंदू शास्त्रो की ही नई व्याख्या के आधार पर परंपरागत अनीतियो के उन्मूलन का उपदेश दिया।

गैर धार्मिक सामाजिक सुधारवादी आंदोलनो ने, अपने पक्ष में वेदो का निर्णय उपलब्ध करवाने की चेष्टा किए बगैर, व्यक्तिगत स्वातंत्र्य और मानवीय अधिकारो की समानता के नाम पर, अस्पृश्यता और अन्य सामाजिक कुरीतियो अनीतियो की भर्त्सना की।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के गोखले, गांधी, आदि जैसे उदारवादी और उनके साथ वामपंथी राजनीतिज्ञो ने यह तर्क भी उपस्थित किया कि चूंकि ब्रिटिश

सरकार से स्वाधीनता या स्वराज्य की उनकी माग प्रजातान्त्रिक है, इसलिए भारतीयो को अपने सामाजिक जीवन मे प्रजातन्त्र के आदर्श का अनुकरण करना चाहिए, समुदायो जातियो और व्यक्तियो के पारस्परिक सबधो का साम्य, स्वातन्त्र्य और मानव के अधिकारो जैसे प्रजातान्त्रिक सिद्धाता की बुनियाद पर नवनिर्माण करना चाहिए।

फिर, राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य राष्ट्रीय एकता और सयुक्त राष्ट्रीय शक्ति का ही प्रतिफलन है। राष्ट्रीय एका और ताकत की यह माग थी कि सब आत्म विकास के लिए स्वतन्त्र हों और सबके लिए आत्मविकास के समान साधन और अधिकार हो। अस्पृश्यता निवारण और लाखा करोडा दलित लोगा की अशक्तता के उन्मूलन स राष्ट्रीय एकता और शक्ति दोनो का तेजी से विकास होता।

सावरकर जैसे जो हिंदू हिंदू राज' की माग करते थे, उन्होने भी दलित जातियो की स्थिति म सुधार की चेष्टा की। इसकी वजह यह थी कि अछूत लगातार धर्म परिवर्तन कर इस्लाम या ईसाई धर्म म शामिल हो रहे थे (क्योकि उन्हे वहा अधिक सामाजिक साम्य प्राप्त था) जिसके कारण हिंदू धर्म को मानने वालो की संख्या घटती जा रही थी और हिंदू राज की माग करनेवालो के लिए यह बहुत बडा सकट था।

इस तरह दलित जातियो के उद्धार का आदोलन लगातार बढता गया और उसम तेजी आती गई। इस आदोलन के उद्देश्य थे दलित जातियो की दयनीय आर्थिक स्थिति को सुधारना उन्ह शिक्षित करना उन्ह कुओ पाठशालाओ और सडको के उपयोग और मदिर म प्रवेश की स्वतन्त्रता प्रदान कराना, और उनके लिए विशेष राजनीतिक प्रतिनिधित्व का अधिकार हासिल करना। जल प्राप्ति के समानाधिकार के लिए डा० अम्बेदकर के नेतृत्व म चलाया गया महान सत्याग्रह हरिजनो के लिए समान सामाजिक हक हासिल करने के लिए लडा गया महान सघर्ष था। यह प्रक्रिया अवश्य बडी धीमी थी। दलित जातियो भारतीय समाज की सबसे गरीब श्रेणी की थी। उनके बीच साक्षर लोग भी बहुत कम थे।

गाधी और उनके द्वारा 1932 म स्थापित आल इडिया हरिजन सेवक सघ और अन्य सस्थाए भी दलित जातियो के लिए व्यापक समाज सुधार सबधी और शैक्षिक काय कर रही थी। सघ ने हरिजनो के लिए बहुत सारी पाठशालाए शुरू की, जिनम कुछ आवासीय व्यावसायिक पाठशालाए भी थीं। इसके अतिरिक्त हलखोरो की यूनियनें सहकारिता ऋण समितिया, आवास सबधी समितिया आदि भी निर्मित हुई।[6]

1937 क बाद कुछ वर्षों तक विभिन्न प्राता म जो काग्रेस की सरकारें बनी उन्होने भी दलित जातियो के उद्धार के लिए काफी अच्छे काम किए। बबई की काग्रेसी सरकार ने मदिर हरिजन टेंपल वर्शिप (रिमूवल आफ डिजेबिलिटीज) एक्ट पारित किया, जिसस मदिरो के व्यवस्थापको को यह अधिकार मिला कि व्यवस्थापन की शर्तों के बावजूद अगर वे चाह तो हरिजनो को मदिरो म आने दे

सकते है। सी० पी० और बिहार की कांग्रेसी सरकारो ने अपने प्रातो में हरिजनो के लिए, प्राइमरी से लेकर विश्वविद्यालय तक, नि शुल्क शिक्षा का प्रबध किया। कांग्रेस शासित अन्य प्रदेशो में भी कुछ इसी तरह की व्यवस्था हुई।

हरिजनो ने कुछ सत्याग्रह आदोलन भी किए जिनमे उन्होने मदिर प्रवेश पर जो प्रतिबध था उसका विरोध किया, और मदिरो में जाने का प्रयास किया। इन आदोलनो और दलित जातियो की प्रजातात्रिक मागो के प्रति लोगो की सहानुभूति के कारण कई जगहो में हरिजनो को मदिर में प्रवेश का अधिकार मिला भी।

त्रावनकोर, इदौर, देवास जैसे कुछ देशी राज्यो के शासको ने आगे बढकर राजकीय फरमान द्वारा राज्य के मदिरो के सारे दरवाजे हरिजनो के लिए खुलवा दिए।

ब्रिटेन की तटस्थता की नीति, और उसकी आलोचना

हिंदुस्तान के राष्ट्रवादियो का कहना था कि ब्रिटिश सरकार दलित वर्गो के अधिकारो को वापस दिलाने के लिए जमकर जोश के साथ कुछ नही कर रही थी, और न अछूतो के मूलभूत मानवीय अधिकारो के अप्रजातात्रिक हनन को समाप्त करने के लिए ही अपनी शक्ति का प्रयोग कर रही थी। डा० अम्बेदकर पूरी तरह अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध नही थे लेकिन उन्होने भी अछूतो को सबोधित करते हुए कहा

> अंग्रेजो के आने के पहले आपकी स्थिति बडी दयनीय थी। लेकिन अस्पृश्यता निवारण के लिए अंग्रेजी सरकार ने ही क्या किया है? अंग्रेजो के आने के पहले आप गाव के कुओ से पानी नही खीच सकते थे। क्या अंग्रेजी सरकार ने आपको यह अधिकार दिला दिया है? अंग्रेजो के आने के पहले आप मदिरो में नही जा सकते थे। अब क्या आप वहा प्रवेश कर सकते हैं? अंग्रेजो के आने के पहले आप पुलिस में भर्ती नही हो सकते थे। क्या अंग्रेजी सरकार आपको पुलिस में भर्ती कर रही है?

डा० अम्बेदकर का विचार था कि जब तक भारतीय जनता राजनीतिक सत्ता हस्तगत नही कर लेती और अगर यह सत्ता भारतीय समाज के सामाजिक तौर पर प्रपीडित वर्ग के हाथो में नही आती, तो इस वर्ग की सामाजिक कानूनी और सास्कृतिक अक्षमताओ को पूरी तरह खतम नही किया जा सकता। उन्होने कहा

> दूसरा कोई आपकी शिकायतो को उतनी अच्छी तरह से दूर नही कर सकता जितनी अच्छी तरह से आप खुद उन्हे दूर कर सकते हैं। और आप उन्हे दूर नही कर सकते अगर राजनीतिक सत्ता आपके हाथो में नही है। हमें ऐसी सरकार चाहिए जो सामाजिक और आर्थिक जीवन सहिता का उचित और न्यायपूर्ण संशोधन करने से न डरे। ब्रिटिश सरकार कदापि यह भूमिका नहीं अदा कर सकेगी। जनता की जनता के लिए, जनता द्वारा संचालित सरकार अर्थात स्वराज्य की सरकार ही इस तरह का काम कर सकेगी।*

सामाजिक और धार्मिक मामलो में अंग्रेजो की 'तटस्थता' की नीति का

वास्तविक परिणाम यह हुआ कि प्रतिगामी और दमनात्मक सामाजिक प्रथाए और सस्थाए बनी रही। उद्धृत अश इस बात के लिए अग्रेजी शासन तीव्र आलोचना करता है। यह ठीक है कि हिंदू रूढिवादिता ने सारे प्रगतिशील सामाजिक कार्यों का विरोध किया लकिन, भारतीय राष्ट्रवाद और दलित वर्गों के प्रतिनिधियों ने कहा कि सामाजिक अनीतिया एव विषमताओ को खतम करने का अपना राजकीय कर्तव्य ब्रिटिश सरकार को नही छोडना चाहिए था। अग्रेजी सरकार ने सामाजिक मामलो म भी हस्तक्षेप किया, और सती प्रथा के उन्मूलन एव छूत और अछूत सभी प्रकार के नागरिको का न्यायिक समता प्रदान करने जैसे सुधार काय किए। फिर भी, जिस गति से ये सुधार किए जा रहे थे वह गति बडी धीमी थी, और इससे पता चलता है कि किस तरह प्रतिक्रियावादी सामाजिक तत्वो की भावनाओ का सरकार खयाल करती थी।

भारत म प्रचलित पुरानी प्रतिगामी और मरणशील सामाजिक सस्थाओ और प्रथाओ के प्रति अग्रेजी सरकार की सहिष्णुता की एच० एन० ब्रेल्सफोड जैसे प्रगतिशील अग्रेजो ने भी ऐसी ही कटु आलोचना की। सब्जेक्ट इडिया' नामक अपनी किताब म ब्रेल्सफोड ने कहा

> फिर भी हमारी सरकारी नीति पहले भी यह थी, और अब भी है कि भारतीय सस्थाओ म यथासभव कम से कम दखल दिया जाए। बाल विवाह जैसी स्वास्थ्य के लिए अहितकर सामाजिक रीतियो का विरोध नही किया गया। सरकार का भारतीय पर्यावरण को बदलने की हिम्मत नही थी और छुआछूत को भी इस पर्यावरण का अपरिवर्तनीय सत्य मान लिया गया। जैसे जैसे समय गुजरता गया, हमारे न्यायालय मानो पुरातनिक निष्ठा से हिंदू लॉ लागू करने लगे। इस मनोवृत्ति का परिणाम हुआ कि जिस देश म अतीत का पूरी तरह परित्याग नही हुआ है वहा यह अतीत रूढिबद्ध होता गया।[9]

अग्रेजी शासन काल म भारतीय जनता का जो साधारण राष्ट्रीय एव प्रजातान्त्रिक नवजागरण हुआ, उसी का एक अग था दलित वर्गों का प्रजातान्त्रिक नवजागरण और अपने मूलभूत मानवीय अधिकारो का बढता हुआ एहसास। उस युग मे सारे भारत म एक नए आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना हुई। इस व्यवस्था का सैद्धातिक आधार यह था कि समाज के सारे व्यक्ति समान होते है और कानून की दृष्टि म वे सब बराबर है। इन सिद्धातो से उत्तराधिकार और सामाजिक पद प्रतिष्ठा के सिद्धातो पर आधारित प्राक पूजीवादी मध्ययुगीन भारतीय समाज पर बडी गहरी चोट पडी। हर व्यक्ति के अधिकार समान हैं और हर व्यक्ति जो पेशा चाहे अपना सकता है। नई व्यवस्था म कानून की दृष्टि म हर व्यक्ति बराबर है। इसके कारण सामाजिक रूप से पददलित जातियो म अपनी स्वतत्रता पर लगे हुए सदियो पुराने शिकजो को तोड फेंकने की तीव्र आकाक्षा जाग्रत हुई। दलित जातियो के विद्रोहात्मक सघर्षों और उच्च जातियो के मानवीय व्यवहार, इन्ही से भारत के समाज सुधार आन्दोलन बने थे।

नई आर्थिक शक्तियों का प्रभाव

बहुत सारे वस्तुनिष्ठ कारण थे जिनके चलते धीरे धीरे अनजाने ही सामाजिक विषमता और विभेद कम हुए। रेलवे और बसों के कारण छूत और अछूत दोनों तेजी से एक दूसरे के करीब आए। भारत में जिन नए उद्योगों की स्थापना हुई, उनमें निरपेक्ष तौर पर छूत और अछूत दोनों प्रकार के लोगों की बहाली हुई और ये एक दूसरे के अगल-बगल खड़े होकर मशीनों पर काम करते थे। हड़तालों में छूत और अछूत दोनों प्रकार के मजदूर एक साथ मिलकर अपनी लड़ाई लड़ते थे। इस तरह उनमें नई वर्ग चेतना का उदय हुआ जिसने पुरानी जाति भावना का स्थान लिया। शहरों के जलपान गृहों में भी जातिगत भाव ग्रंथियां खतम हुई। इन जलपान गृहों के मालिकों को यह बहुत मालूम था कि वे जातिगत विषमता और विभेद को समाप्त करने के आंदोलन में ही लगे हुए हैं।

आधुनिक शिक्षा का प्रभाव

दलित जातियों में शिक्षा के प्रसार के कारण इन जातियों के लोग अधिकाधिक उन पेशों में जाने लगे जिन पर अभी तक ऊंची जातियों का एकाधिकार था। एक ही पेशे के लोगों के अपने सम्मिलित स्वार्थ थे और जब पुरानी पूर्वाग्रह धीरे धीरे खतम हुए तो अपने समष्टिगत हितों की पूर्ति के लिए ये लोग परस्पर एकजुट हुए, चाहे वे दलित जातियों के रहे हों या ऊंची जातियों के।

आधुनिक शिक्षा के प्रसार से भारतीय पश्चिम के प्रजातांत्रिक और समतावादी सिद्धांतों के संपर्क में आए। इसके फलस्वरूप ऊंची जातियों के अच्छे लोगों को भारतीय समाज की पुरानी जातिगत विषमताओं और अनीतियों से नफरत होने लगी। इसके साथ ही दलित जातियों के शिक्षित सदस्यों में विद्रोह की भावना जगी तथा उन्होंने सामाजिक प्रपीडन को समाप्त करने के लिए लोगों को लामबंद किया।

अछूत निम्न पेशे ही अपनाते थे, क्योंकि उनमें शिक्षा का अभाव था। इसके चलते आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से वे काफी निर्धन थे। जैसे जैसे उन्हें साधारण और तकनीकी शिक्षा मिलती गई वैसे-वैसे उनकी आर्थिक स्थिति में तरक्की हुई और विभिन्न पेशों में लगे हुए लोग वर्ग के आधार पर वैसे ही पेशों में लगे हुए अन्य जातियों के लोगों के साथ संगठित होने लगे। इस तरह समान पेशों और समान वर्ग पर आधारित नए किस्म के एकता सूत्र निर्मित हुए। अछूतों का जनसाधारण विभिन्न नए सामाजिक दलों में परिणत होने लगा, जैसे मिल मजदूर, शिक्षक, किरानी, महाजन (व्यापारी), मिस्त्री, उद्योगपति। एक ही आर्थिक क्रियाकलाप में लगे हुए छूतों और अछूतों के बीच जो नए आर्थिक सूत्र बने, उनके चलते अस्पृश्यता विषयक पुरानी भाव ग्रंथि काफी कमजोर हुई। यह प्रवृत्ति विशेषतः औद्योगिक क्षेत्रों में परिलक्षित हुई जहां समान पेशों और समान भौतिक स्वार्थों, जैसे मजदूरी में बढ़ोतरी, मजदूर संगठन संबंधी अधिकार, इत्यादि के लिए लड़े गए संघर्षों के आधार पर अछूत और कुलीन मजदूरों के बीच एकता

के भाव पैदा हुए और बढ़े। धीरे-धीरे नई वर्ग भावना पुरानी जातिगत पूर्वाग्रहों का स्थान लेने लगी। फिर, जब कोई अछूत शिक्षित हो जाता था और उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाती थी तो उसके प्रति ऊंची जाति के लोगों की भावना बदल जाती थी।

अस्पृश्यता के आधार आर्थिक थे। अछूतों की पेशागत एकरूपता समाप्त हो जाने पर और उनकी भौतिक और सांस्कृतिक स्थिति में सुधार होने पर, वे आधुनिक आर्थिक संरचना के विभिन्न अवयवों के रूप में परिणत हुए होंगे। इससे अस्पृश्यता की नींव काफी कमजोर होगी।

राष्ट्रीय आंदोलन के प्रभाव

अस्पृश्यता निवारण आंदोलन के पक्ष में एक और शक्ति काम कर रही थी। बढ़ते हुए राष्ट्रीय आंदोलन ने राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए हर जाति या समुदाय के लोगों को एकजुट करने का प्रयास किया। स्वराज्य आंदोलन की सफलता उन सारी जातियों एवं समुदायों के प्रजातांत्रिक सहयोग पर निर्भर थी, जिनके हितों की रक्षा भारत की राजनीतिक आजादी से होने वाली थी। यह एकता मूलतः आजादी की लड़ाई के दरम्यान और उस सिलसिले में बनी थी। इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन से धीरे-धीरे ही सही लेकिन पुराने विभेद समाप्त होने लगे। दूसरी ओर अस्पृश्यता जैसी सामाजिक अनीतियों की समाप्ति को अपना लक्ष्य बनाने वाले समाज सुधार आंदोलनों ने भी प्रजातांत्रिक आधार पर भारतीय जनता को एकजुट करने में मदद दी। इस तरह शुद्ध सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष करते वक्त भी समाज सुधारक मानवीय एवं राष्ट्रीय दोनों प्रकार के उद्देश्यों से अनुप्रेरित थे।

अछूत लोग भारतीय आबादी के सर्वाधिक निर्धन अंग थे। वे खेत मजदूरी करते थे, निम्नतम पेशों में लगे थे अथवा अर्द्ध दास की स्थिति में थे। वे आर्थिक और सामाजिक दोनों तरह की बुराइयों में पीड़ित थे और ये दोनों प्रकार की बुराइयां परस्पर संबद्ध थीं। उनकी निम्न सामाजिक स्थिति के कारण उनका काफी शोषण हुआ, और उनकी दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण उनकी निम्न सामाजिक स्थिति में दृढ़ता आई।

अस्पृश्यता निवारण के लिए आवश्यक शर्तें

राष्ट्रीय अर्थतंत्र की समृद्धि, आर्थिक एवं सामाजिक ढांचों में ऐसे परिवर्तन जो अछूतों के साथ ही साथ सर्वसाधारण की स्थिति में भी सुधार कर सकें, शिक्षा का प्रसार, नए कानून जो पुरानी रूढ़ियों का ख्याल किए बिना अछूतों की सारी सामाजिक अशक्तताओं को समाप्त कर दें, अस्पृश्यता निवारण का प्रश्न इन सारी बातों से जुड़ा हुआ था। अपने आप में शुद्ध समाज के कुछ विशेष प्रभाव नहीं होने वाले थे। यह साधारणतः सामाजिक बुराई की आर्थिक जड़ों में नहीं पहुंच पाता

था। इसीस इसके परिणाम प्राय आशिक और अस्थाई थे।

अस्पृश्यता निवारण आदोलन को धीरे धीरे काफी बल मिला, लेकिन यह भारतीय मानस मे वहत्तर राष्ट्रीय एव मानवीय चेतना के उदभव का ही एक रूप था। यह भारतीय जनता के राष्ट्रीय एव प्रजातात्रिक आदोलन का अनिवाय अग था।

सदभ

1 घर्ये प० 142।
2 रामश्वरी नेहरू प० 4।
3 वही पृ० 3।
4 वही पृ० 2।
5 दखें अम्बदकर (2) और (3)।
6 दखें रिपोट आफ द सर्वे ऑफ कन्डीशस आफ हरिजन इन इलाहाबाद रिपाट आन हरिजन सर्वे कमटी 1933 34 कानपुर रिपाट आन द कडीशस आफ हरिजस दिल्ली।
7 रिपोट आफ द डलिगशन सेंट टु इडिया वाइ द इडिया लाग इन 1932 प० 136 म उद्धत।
8 वही प० 137।
9 ग्रल्मफाड पृ० 17 18।

16

स्त्री स्वातत्र्य का आदोलन

प्राक् ब्रिटिश भारत मे नारी की स्थिति

नए आर्थिक पर्यावरण के उदभव नई राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना, आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और चिंतन शलियो के प्रसार आदि के फलस्वरूप भारत मे जो साधारण राष्ट्रीय और प्रजातात्रिक जागरण हुआ उसी की एक अभिव्यक्ति यह भी थी कि जिस मध्ययुगीन सामाजिक अधीनस्थता और प्रपीडन से भारतीय नारी सदियो से त्रस्त थी उससे उसकी मुक्ति के आदोलन शुरू हुए।

प्राक ब्रिटिश भारत म सभवत वदिक युग के शुरू के काल को छोडकर, हरदम नारी पुरुष की अधीनता म रहती आई थी। धम और विधि म पुरुषो और स्त्रियो और उनके अधिकारो का समान नही माना गया था। समाज म पुरुषो को कुछ ऐसे अधिकार थे, उनकी कुछ एसी स्वतत्रताए थी, जिनसे स्त्रिया वचित थी। स्त्री और पुरुष के निजी और सामाजिक आचरण की अच्छाई बुराई के मानदड भिन्न थ।

प्रागतिहासिक कबीलाई समाज को छोडकर सभी प्राचीन और मध्ययुगीन समाजो की तरह भारत म भी अग्रेजो की भारत विजय क पूव, स्त्री पुरुषो क अधीन थी। अग्रेजो के आगमन पर जब भारत म नए अथतत्र और नई विधि व्यवस्था की स्थापना हुई और जब भारत पश्चिम के देशो की आधुनिक प्रजा तात्रिक विचार शली के सपक म आया, तो स्थिति अवश्य कुछ बदली।

अतीत म भी बौद्ध धम जस सुधार क आदोलनो ने स्त्री की स्थिति म सुधार लाने के कुछ प्रयास किए थ। लकिन स्त्री क प्रति सदियो स जो सामाजिक और कानूनी अन्याय होत रहे थ उनक निवारण क लिए जोरदार आदोलन अग्रेजी शासन काल म ही चल सके।

यह सही है कि भारतीय इतिहास म गार्गी मदालसा नूरजहा, रजिया बगम, झासी की रानी, मीराबाई और अहल्याबाई जसी औरत हो चुकी ह जिन्होन साहित्य, कला, दशन, प्रशासन और यहा तक कि रणभूमि क क्षत्र म भी बड चमत्कार किए। लकिन य औरत समाज की साधारण अधिकार प्राप्त स्त्रियो की

उपज थी, और इसलिए सामाजिक अधीनस्थता की उस स्थिति से मुक्त थी जिसमें अधिकांश भारतीय औरतें रहती थीं और जहां उन्हें आत्माभिव्यक्ति के लिए न तो स्वतंत्रता थी और न उपयुक्त अवसर।

नारी की स्थिति पर नई आर्थिक शक्तियों का प्रभाव

अंग्रेजों की भारत विजय ने भारत का संपूर्ण सामाजिक परिवेश बदल दिया। इससे ऐसे वस्तुनिष्ठ एवं भावनिष्ठ तथ्यों का जन्म हुआ जिन्होंने लोगों में प्रजातांत्रिक भावनाओं का उदय कराया। सामाजिक अस्तित्व की स्थिति में जो समाज सुधार आंदोलन उद्भूत हुए उनका एक लक्ष्य यह भी था कि भारतीय नारी जिन सामाजिक और धार्मिक विषमताओं एवं अनीतियों की शिकार है, उन्हें दूर किया जाए।

प्राक् ब्रिटिश भारतीय नारी की दासता उन दिनों की सामाजिक आर्थिक संरचना में निहित थी। उस वक्त समाज में व्यक्ति की स्थिति उसके जन्म द्वारा निर्धारित होती थी और नारी की सारी अशक्तता का मूल यह था कि उसका जन्म ही नारी के रूप में हुआ था। धार्मिक विधान स्त्रियों की निकृष्ट स्थिति को पवित्र भी बनाते रहे थे।

भारत में अंग्रेजों ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था और नई सामाजिक वैधानिक संरचना कायम की, वह व्यक्ति की समानता और स्वतंत्रता पर आधारित थी। इनमें जन्म, यानि जाति संप्रदाय मूलक विषमताओं के लिए जगह नहीं थी।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इन सिद्धांतों की मान्यता के लिए संघर्ष करने पड़े। अंग्रेजी सरकार की झिझक और समाज के पोंगापंथियों के प्रतिक्रियात्मक प्रतिरोध को कुछ हद तक खत्म करने के बाद ही नागरिक अधिकारों के क्षेत्र में स्त्री पुरुष को अधिकाधिक बराबरी का दर्जा देने वाले कानून बन सके।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए किए गए आंदोलन

स्त्रियों को दबाकर रखने वाले कानूनों और रीति रिवाजों को खत्म करने के प्रारंभिक प्रयास पुरुष जाति के ही प्रबुद्ध सदस्यों ने किए। लेकिन जो इन अनीतियों की शिकार थीं, वे भी कालक्रम से स्वयं उद्बुद्ध हुईं और उन्होंने अपने स्वयं के नेतृत्व में अपनी मुक्ति के आंदोलन चलाए। उन्होंने अपने संगठन बनाए और अपनी अशक्तताओं के विरुद्ध संघर्ष के लिए मोर्चाबंदी की। उनके सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षिक उत्थान के लिए काम करने वाले संगठनों में 1926 में स्थापित आल इंडिया वीमेन्स कान्फ्रेंस सबसे आगे था।

भारतीय औरतों की अशक्तता का उन्मूलन और विभिन्न प्रकार के उत्पीड़न से मुक्ति की प्रक्रिया काफी धीमी थी। पुरातनपंथी भारत और पुरानी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विचारधाराएं इसके विरुद्ध थीं। फिर भी, इस

दिशा मे लगातार प्रगति होती रही और अनेक विशिष्ट सफलताए भी प्राप्त हुइ।

एक जमाने म भारतीय नारी सती और बालहत्या जसी बबर, क्रूर प्रथाओ की शिकार थी। पति के मरने पर विधवा को पति की लाश के साथ चिता पर जल मरना होता था। गरीब म बाप के लिए लडकी की शादी काफी महगी थी, इसलिए मा-बाप प्राय नवजात बच्चियो की हत्या कर देते थे। सती प्रथा के उन्मूलन के बाद भी विधवाओ को पुनर्विवाह की सुविधा नही मिली।

पर्दा प्रथा और मंदिरो म देवदासी जसी बुराइया भी प्रचलित थीं। मुसलमानो म ही नही हिंदुओ के कुछ वर्गों म भी पर्दा जैसी घातक और हानिकर प्रथा प्रचलित थी। 'औरतें मानो जिंदगी भर के लिए कद म डाल दी गई हो। उसकी स्वभावत तीव्र ज्ञानेंद्रिया निष्क्रियता के कारण सुस्त पड जाती ह, उन तक ज्ञान का प्रकाश नही पहुच पाता और वे अज्ञान एव पूर्वाग्रह म पडी रहती ह, अधेरे म रास्ता टटोलती समाज के रीति रिवाज के नाम पर उत्सग।'[1]

प्रचारात्मक काय द्वारा राजा राममोहन राय जसे समाज सुधारको ने सती प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया और अत म लाड बेंटिक ने इसे समाप्त कर दिया। बाद म बालहत्या को भी अपराध करार दिया गया।

लोगो म शिक्षा एव उदारवादी और बुद्धिवादी विचारो के प्रसरण से पर्दा प्रथा भी मिटने लगी। भोपाल की बेगम जसी उच्चकुलीन औरतो ने इस दिशा म माग प्रदशन किया। औरतो के आदोलनो म इस बात पर जोर दिया गया कि पर्दा का सामाजिक प्रगति एव शरीर और मन पर बुरा प्रभाव पडता है। 'सामाजिक जीवन के उत्थान म अगर औरतो को अपनी भूमिका अदा करनी है अगर उनके लिए यह जानना जरूरी है कि किन कतव्यो एव उत्तरदायित्वो के लिए उनके लडको को प्रशिक्षित होना है तो पर्दा प्रथा को खतम होना चाहिए।'

बाल विवाह भी हिंदू समाज की एक प्रमुख बुराई था और इससे पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को अधिक नुकसान था। ईश्वरचद्र विद्यासागर के प्रयत्नो के फल स्वरूप 1860 का एक्ट पारित हुआ जिसके अनुसार विवाहित और अविवाहित लडकियो के लिए सहमति की उम्र बढाकर दस वष कर दी गइ। इसी समाज सुधारक के प्रयत्नो के फलस्वरूप 1850 म विधवा विवाह कानून ने मान्य हुआ।

बाल विवाह के इस हानिकर रिवाज के विरुद्ध निर्णायक कदम 1929 म उठाया गया। इस साल पारित किए गए चाइल्ड मरिज रिस्ट्रेंट एक्ट म विवाह की न्यूनतम आयु बढाकर लडकियो के लिए चौदह वष और लडको के लिए अठारह वष कर दी गइ।

बगाल म ईश्वरचद्र विद्यासागर तथा बबइ म श्री मालाबरी, करसनदास जस्टिस रानाड और के० नटराजन जैसे समाज सुधारको ने विधवा विवाह के अधिकार का जमकर समथन किया। समाज सुधार के सभी सगठनो ने अपने

कार्यक्रम में विधवा विवाह को प्रमुख स्थान दिया, लेकिन यह आंदोलन बहुत प्रगति नहीं कर सका क्योंकि जनमत बुरी तरह विधवा विवाह के विरुद्ध था। कानूनी रुकावटों के समाप्त हो जाने पर भी, पुरानी चिंतन शैली में अंतर नहीं आया।

मंदिरों में वेश्यावृत्ति की प्रथा नए भारत को अतीत से विरासत में मिली थी, यद्यपि इस तरह की प्रथा प्राचीन यूनान में भी प्रचलित थी। देवदासियों की वंशागत जाति ही थी और ये बचपन में ही मंदिर की सेवा में समर्पित हो जाती थीं। 'हाल में मद्रास में उनकी संख्या लगभग दो लाख रही होगी, और यद्यपि इनकी संगीत और नृत्य कुशलता के कारण ये कलाएं जीवित बनी रहीं, फिर भी इस तथ्य के कारण कि ये देवदासियां वेश्याएं थीं, सम्माननीय कुलीन औरतों के लिए ये कलाएं निकृष्ट और अप्रिय अरुचिकर थीं।[2]

डा० मुतुलक्ष्मी रेड्डी और अन्य सुधारकों के सतत प्रयत्न के फलस्वरूप, 1925 में एक एक्ट पारित हुआ और दंड संहिता की कुछ धाराएं जिनके अनुसार नाबालिग लड़कियों का अवैध अनैतिक व्यापार दंडनीय है, देवदासियों पर भी लागू हुईं।

शिक्षा के अधिकार के लिए संघर्ष

कुछ अपवादों को छोड़कर प्राक् ब्रिटिश भारत में स्त्रियों को प्रायः शिक्षा नहीं मिलती थी। मध्ययुगीन विचार प्रणाली में स्त्रियों को केवल गृहकार्य की जिम्मेवारी दी गई थी। लड़कों के लिए गांवों और शहरों में स्कूल होते थे लेकिन स्त्रियों के लिए कहीं शिक्षा का प्रबंध नहीं था।

पुराने समाज के विनाश और नए समाज के उदय के साथ ही भारत में एक नए जीवन दर्शन का जन्म हुआ। इच्छा स्वातंत्र्यवादी सिद्धांतों ने तेजी से सत्तावादी सिद्धांतों का स्थान ग्रहण किया। इन सिद्धांतों के अनुसार लिंग, जाति, प्रजाति, धर्म आदि विभेदों के बावजूद हर व्यक्ति के समान अधिकार थे और सबको पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। ब्रिटिश शासन के डेढ़ सौ वर्षों में भारतीय जनता के प्रगतिशील वर्ग लगातार राजनीति, धर्म, शिक्षा और समाज के क्षेत्र में इन प्रजातांत्रिक सिद्धांतों की व्यावहारिक परिणति के प्रयास करते रहे हैं। इन्हीं सिद्धांतों के नाम पर स्वराज्य की मांग की गई, जातिगत विभेद और विषमता के उन्मूलन की बात की गई, वंशानुगत पुरोहितों के एकाधिकार पर आघात किए गए और आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं नागरिक क्षेत्रों में स्त्री पुरुष के समानाधिकार की घोषणा की गई।

सामाजिक अस्तित्व के प्रत्येक क्षेत्र में प्रजातांत्रिक सिद्धांतों के कार्यान्वयन के आंदोलनों के [illegible] सत्ता पर हो नहीं, [illegible] प्राक् ब्रिटिश भारत की गैर प्रजातांत्रिक विरासत पर [illegible] चोट की। जहां जातिगत नियम निषेध के अधीन व्यक्ति का आचार निर्दिष्ट, और पुरुषों के प्राप्त

स्त्री को वंचित रखने की प्रथा का विरोध किया।

यह प्राय सर्वत्र स्वीकार किया कि स्त्री को शिक्षा और संस्कृति के समान अधिकार हैं। स्त्रियों में तेजी से शिक्षा का प्रसार हुआ। लड़कियों की शिक्षा के प्रति जो रूढ़िगत विरोध था वह खतम होने लगा। 'एक समय था जब भारत में स्त्री शिक्षा के समर्थक तो नहीं थे, अलबत्ता उसके विरोधी और शत्रु थे। अब तक स्त्री जाति कई मंजिलों से गुजर चुकी है पूरी उदासीनता, उपहास, आलोचना और स्वीकृति। अब यह आसानी से कहा जा सकता है कि भारत में सर्वत्र स्त्रियों की शिक्षा को भी उतना ही आवश्यक समझा जा रहा है जितना लड़कों की शिक्षा को, इस राष्ट्रीय प्रगति की आवश्यक शर्त माना जा रहा है।'[1]

ब्रह्म समाज, आर्य समाज रामकृष्ण मिशन आदि सुधार संगठनों, इंग्लिश, अमरीकी, जर्मन और ब्रिटिश मिशनरी संस्थाओं और अल्पसंख्यक परंतु प्रगतिशील पारसी सम्प्रदाय ने स्त्री शिक्षा की दिशा में पथ प्रदर्शन का काम किया। प्रो० कर्वे द्वारा 1916 में स्थापित इंडियन वीमंस यूनिवर्सिटी ने स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करने के सिलसिले में बड़ा काम किया।

मुसलमानों में स्त्री शिक्षा का प्रसार काफी सुस्त था यद्यपि पिछली ही सदी के अंत में सर सैयद अहमद खां और अन्य नेताओं ने इसकी खुलकर हिमायत करनी शुरू कर दी थी। फिर भी इस दिशा में लगातार तरक्की होती रही। स्त्री शिक्षा में लगातार होती हुई प्रगति का इसी बात से अंदाज हो जाता है कि 1917 में स्कूल जानेवाली लड़कियों की संख्या 1 230,000 थी और 1837 में यह संख्या बढ़कर 2,890,000 हो गई।

भारतीय आबादी के अधिकांश बहुत गरीब थे और स्त्री शिक्षा के तीव्र विकास के रास्ते में यह तथ्य एक बहुत बड़ा अवरोध था। गरीबी के कारण, भारतीय जनता के कमकर वर्ग किसान और मजदूर, स्त्री शिक्षा की जो भी सुविधाएं प्राप्त थी उनका फायदा नहीं उठा सके। वे इसका खर्च नहीं उठा सकते थे इसलिए शिक्षा उन तक नहीं पहुंच सकी। भारतीय राष्ट्रवादियों के अनुसार भारतीय जनता की गरीबी का कारण यह था कि जिस तरह की आर्थिक प्रगति से उनका आर्थिक स्तर ऊंचा होता, उस तरह की प्रगति के रास्ते में विदेशी शासन बाधक था। भारतीय जनता में शिक्षा के सार्वजनीन विकास का प्रश्न उनकी राजनीतिक स्वतंत्रता और तज्जन्य आर्थिक प्रगति के प्रश्न से जुड़ा हुआ था।

राजनीति में स्त्रियों का सहयोग

राजनीति में स्त्रियों का तीव्र प्रवेश, खासकर 1919 के बाद, भारतीय इतिहास की अत्यंत आश्चर्यजनक घटना है। प्राक् ब्रिटिश भारत में सुलताना रजिया बेगम, चांद बीबी नूरजहां अहल्याबाई होलकर जैसी कुछ अभिजातवर्गीय स्त्रियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों ने राजनीति में भाग नहीं लिया। ब्रिटिश शासन काल में

स्थिति बदली। उन्हें जो मताधिकार मिला था, सीमित ही सही, उसका उन्होंने जोशोखरोश के साथ इस्तेमाल किया, साथ ही उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाए गए जन आंदोलनों में भी भाग लिया। महात्मा गांधी और कांग्रेस राष्ट्रीय प्रयास के लिए उनका आह्वान कर रहे थे, और उन्होंने देखा कि इस भविष्य द्रष्टा गांधी और ब्रिटिश सरकार की सर्वोपरि सत्ता ने उनके हाथ में एक कारगर हथियार दे रखा है। एक हाथ से उन्होंने निष्क्रिय विरोध (सत्याग्रह) का हथियार और दूसरे हाथ से मतदान का अधिकार ग्रहण किया।'

बड़ी तादाद में राजनीतिक जन आंदोलनों में भाग लेती हुई, शराब की दुकानों पर धरना देती हुई प्रदर्शनों में मार्च करती हुई, जेल जाती हुई लाठी और गोलियों का सामना करती हुई स्त्रियां वस्तुतः भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व था। एक ही बार में भारतीय औरतें अपनी सदियों पुरानी सीमाओं का अतिक्रमण कर आगे बढ़ गईं। पहले वे आज्ञाकारी, घरेलू नौकरों जैसी थीं, लेकिन अब वे नागरिकों के रूप में उठ खड़ी हुईं, और उन्होंने राजनीतिक कार्यक्रम पर अपना मत देना और बड़े राजनीतिक आंदोलनों में भाग लेना शुरू किया। सरोजनी नायडू, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, विजय लक्ष्मी पंडित जैसी कुछ औरतें तो अंतर्राष्ट्रीय ख्याति लब्ध नेता सिद्ध हुईं।

जब 1936 में कांग्रेस की सरकारें बनीं तो कुछ औरतों ने मंत्री, अवर सचिव और प्रांतीय विधायिका सभाओं के उपाध्यक्ष के रूप में काम किया। भारतीय औरतें लोकल बोर्डों और म्युनिसिपैलिटी की सदस्या भी हुईं। इस तरह भारतीय महिलाओं में जागरण की एक नई लहर आई। सही है कि अतिशय दरिद्रता के कारण नागरिक जीवन में प्रवेश और शिक्षा के अवसर उच्च और मध्यमवर्गीय महिलाओं को ही सुलभ थे। फिर भी, ऐसा व्यापक स्त्री जागरण प्राक् ब्रिटिश भारत में देखने में नहीं आता।

वर्ग संघर्ष में स्त्रियों का सहयोग

निचले तबके की स्त्रियां भी अशिक्षा और दारिद्र्य के बावजूद अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही थीं। हजारों की संख्या में किसान और मजदूर औरतों ने हड़ताल, प्रदर्शन और जाफ़्रेशो में भाग लिया। उनमें राजनीतिक चेतना का भी विकास हो रहा था और वे राष्ट्रीय राजनीतिक संगठनों में शामिल हुईं। वे मजदूर संगठनों और किसान सभाओं में भी शामिल हुईं जिनका लक्ष्य था न केवल स्वतंत्र भारत वरन स्वतंत्र समाजवादी भारत। भारतीय औरतों का यह जागरण उनमें राष्ट्रीय और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के लिए राष्ट्रीय भावना और प्रजातांत्रिक उद्देश्यों के विकास का परिचायक था।

स्त्री को वचित रखन की प्रथा का विरोध किया।

यह प्राय सवन स्वीकार किया कि स्त्री का शिक्षा और सस्कृति के समान अधिकार है। स्त्रिया म तेजी से शिक्षा का प्रसार हुआ। लडकिया की शिक्षा के प्रति जो रूढिगत विरोध था, वह खतम होने लगा। एक समय था जब भारत म स्त्री शिक्षा के समथक तो नही थे अलवत्ता उसक विरोधी और शत्रु थे। अब तक स्त्री जाति कई मजिला से गुजर चुकी है पूरी उदासीनता उपहास, आलोचना और स्वीकृति। अब यह आसानी स कहा जा सकता है कि भारत म सवत्र स्त्रियो की शिक्षा को भी उतना ही आवश्यक समझा जा रहा है जितना लडको की शिक्षा को, इसे राष्ट्रीय प्रगति की आवश्यक शत माना जा रहा है।'[4]

ब्रह्म समाज आय समाज रामकृष्ण मिशन आदि सुधार सगठनो, डैनिश, अमरीकी, जमन और ब्रिटिश मिशनरी सस्थाओ और अल्पसख्यक परतु प्रगतिशील पारसी सम्प्रदाय ने स्त्री शिक्षा की दिशा मे पथ प्रदशन का काम किया। प्रो० कर्वे द्वारा 1916 म स्थापित इडियन वीमस यूनिवर्सिटी ने स्त्रिया को शिक्षा प्रदान करन के सिलसिले म बडा काम किया।

मुसलमानो म स्त्री शिक्षा का प्रसार काफी सुस्त था, यद्यपि पिछली ही सदी के अत म सर सैयद अहमद खा और अन्य नताओ न इसकी खुलकर हिमायत करनी शुरू कर दी थी। फिर भी इस दिशा मे लगातार तरक्की होती रही। स्त्री शिक्षा म लगातार होती हुई प्रगति का इसी बात स अदाज हो जाता है कि 1917 म स्कूल जानेवाली लडकिया की सख्या 1 230,000 थी और 1837 म यह सख्या बढकर 2,890,000 हो गइ।

भारतीय आबादी के अधिकाश बहुत गरीब थ और स्त्री शिक्षा क तीव्र विकास के रास्ते म यह तथ्य एक बहुत बडा अवरोध था। गरीबी क कारण, भारतीय जनता के बहुसख्यक वग किसान और मजदूर स्त्री शिक्षा की जो भी सुविधाए प्राप्त थी उनका फायदा नही उठा सक। व इसका खच नहा उठा सकत थ, इसलिए शिक्षा उन तक नही पहुच सकी। भारतीय राष्ट्रवादिया क अनुसार भारतीय जनता की गरीबी का कारण यह था कि जिस तरह की आर्थिक प्रगति से उनका आर्थिक स्तर ऊचा होता, उस तरह की प्रगति के रास्त म विदशी शासन बाधक था। भारतीय जनता म शिक्षा क सावजनीन विकास का प्रश्न उनकी राजनीतिक स्वतत्रता और तज्जन्य आर्थिक प्रगति क प्रश्न स जुडा हुआ था।

राजनीति मे स्त्रियो का सहयोग

राजनीति म स्त्रिया का तीव्र प्रवेश खासकर 1919 क बाद, भारतीय इतिहास की अत्यत आश्चयजनक घटना है। प्राक ब्रिटिश भारत म सुलताना रजिया बगम, चाद बीबी, नूरजहा, अहल्याबाइ होलकर जसी कुछ अभिजातवर्गीय स्त्रिया क अतिरिक्त अन्य स्त्रिया न राजनीति म भाग नही लिया। ब्रिटिश शासन काल म

स्थिति बदली। उन्हें जो मताधिकार मिला था, सीमित ही सही, उसका उन्होंने जोशोखरोश के साथ इस्तेमाल किया, साथ ही उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाए गए जन आंदोलनों में भी भाग लिया। महात्मा गांधी और कांग्रेस राष्ट्रीय प्रयास के लिए उनका आह्वान कर रहे थे, और उन्होंने देखा कि इस भविष्य द्रष्टा गांधी और ब्रिटिश सरकार की सर्वोपरि सत्ता ने उनके हाथों में एक कारगर हथियार दे रखा है। एक हाथ से उन्होंने निष्क्रिय विरोध (सत्याग्रह) का हथियार और दूसरे हाथ से मतदान का अधिकार ग्रहण किया।'

बड़ी तादाद में राजनीतिक जन आंदोलनों में भाग लेती हुई, शराब की दुकानों पर धरना देती हुई, प्रदर्शनों में मार्च करती हुई, जेल जाती हुई, लाठी और गोलियों का सामना करती हुई स्त्रियों का दृश्य भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व था। एक ही बार में भारतीय औरतें अपनी सदियों पुरानी सीमाओं का अतिक्रमण कर आगे बढ़ गईं। पहले वे आज्ञाकारी घरेलू नौकरों जैसी थीं, लेकिन अब वे नागरिकों के रूप में उठ खड़ी हुईं, और उन्होंने राजनीतिक कार्यक्रम पर अपना मत देना और बड़े राजनीतिक आंदोलनों में भाग लेना शुरू किया। सरोजनी नायडू, कमलादेवी चट्टोपाध्याय विजय लक्ष्मी पंडित जैसी कुछ औरतें तो अंतर्राष्ट्रीय ख्याति लब्ध नेता सिद्ध हुईं।

जब 1936 में कांग्रेस की सरकार बनी तो कुछ औरतों ने मंत्री, अवर सचिव और प्रांतीय विधायिका सभाओं के उपाध्यक्ष के रूप में काम किया। भारतीय औरतें लोकल बोर्डों और म्युनिसिपेलिटी की सदस्या भी हुईं। इस तरह भारतीय महिलाओं में जागरण की एक नई लहर आई। सही है कि अतिशय दरिद्रता के कारण नागरिक जीवन में प्रवेश और शिक्षा के अवसर उच्च और मध्यमवर्गीय महिलाओं को ही सुलभ थे। फिर भी, ऐसा व्यापक स्त्री जागरण प्राक् ब्रिटिश भारत में देखने में नहीं आता।

वर्ग संघर्ष में स्त्रियों का सहयोग

निचले तबकों की स्त्रियां भी, अशिक्षा और दारिद्र्य के बावजूद अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही थीं। हजारों की संख्या में किसान और मजदूर औरतों ने हड़ताल, प्रदर्शन और काफिलों में भाग लिया। उनमें राजनीतिक चेतना का भी विकास हो रहा था और वे राष्ट्रीय राजनीतिक संगठनों में शामिल हुईं। वे मजदूर संगठनों और किसान सभाओं में भी भर्ती हुईं जिनका लक्ष्य था न केवल स्वतंत्र भारत वरन स्वतंत्र समाजवादी भारत। भारतीय औरतों का यह जागरण उनमें राष्ट्रीय और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के लिए राष्ट्रीय भावना और प्रजातांत्रिक उद्वेगों के विकास का परिचायक था।

आधारित सामाजिक विभेद को मान्यता प्राप्त थी और व्यक्ति जाति और संयुक्त परिवार के अधीन था। नए समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक था कि जन्म और सेक्स पर आधारित विशेषाधिकार को समाप्त कर दिया जाए।

शुरू के धर्म सुधारकों ने व्यक्ति स्वातंत्र्य के सिद्धान्त को धर्म के क्षेत्र में भी प्रचारित किया। वस्तुतः, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज और अन्यान्य संस्थाएं पुराने धर्म को नए समाज की आवश्यकताओं के कमोबेश अनुकूल बनाने की ही कोशिश कर रही थीं। यह सच है कि उनके कुछ लोग (विशेषतः आर्य समाज वाले) यह समझ रहे थे कि वे वैदिक युग के आर्यों की शुद्ध सामाजिक संरचना को ही पुनरुज्जीवित कर रहे थे कि वे स्वर्ण युग (सतयुग) की ओर वापस जा रहे थे। लेकिन वस्तुतः वे हिंदू धर्म को नवीन भारतीय राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने में लगे थे। इतिहास में अनेक उदाहरण मिलेंगे जब नए समाज के निर्माताओं ने यह समझा कि वे अतीत की ओर वापस जा रहे हैं और पुराने जमाने के सर्वोच्च सामाजिक रूपों को पुनरुज्जीवित कर रहे हैं। भारत के प्रारंभिक धर्म सुधार आंदोलनों ने ऐसे धार्मिक दृष्टिकोण का विकसित करने की कोशिश की जो हिंदू, मुसलमान, पारसी आदि सभी सम्प्रदायों की एकता कायम कर सके, और इस तरह भारत के नवीन आर्थिक विकास, जनता के विकास के रास्ते के बाधा विघ्नों की समाप्ति, स्त्री पुरुष की समता के सिद्धांत की स्थापना, जाति व्यवस्था का उन्मूलन, पुरातन संस्कृति के एकाधिकारी रूप एवं व्यक्ति और ईश्वर के पारस्परिक संबंध के एकमात्र माध्यम के रूप में ब्राह्मणों की हैसियत का खात्मा, आदि सम्मिलित राष्ट्रीय उद्देश्यों और लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक हो सकें। यूरोप के प्रोटेस्टेंट धर्म सुधार आंदोलन की तरह ही भारत के धर्म सुधार आंदोलन भी समाज के किसी अतीतकालीन युग को पुनः स्थापित नहीं कर रहे थे वरन नवोदित समाज की स्थापनाओं और उपलब्धियों को दृढ़तर बना रहे थे।

उदारवाद उदीयमान पूंजीवाद का जीवन दर्शन है।[1] राष्ट्रवाद और प्रजातंत्र इसके दो मूलभूत सिद्धांत हैं। धर्म सुधार आंदोलनों ने धर्म क्षेत्र में उदारवादी दृष्टिकोण का प्रवेश कराया।

अतीत का आग्रह, इसका विशिष्ट तात्पर्य

आर्य समाज वाले, और लोगों की ही तरह, अतीत में अनजाने नए समाज का निर्माण कर रहे थे लेकिन उन्हें ऐसा कुछ भ्रम था कि वे अतीत के शुद्ध आदि कालीन समाज की ओर वापस जा रहे थे। इस तरह के भ्रमपूर्ण चिंतन के गंभीर दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक कारण हैं। यह चिंतन सामाजिक अस्तित्व के नए रूपों प्रारूपों और पुरातन चेतना के द्वंद्व का ही परिणाम है।

व्यक्ति भी समाज की ही तरह वर्तमान के क्रियाशील अस्तित्व एवं युगों से उत्तराधिकार में प्राप्त चेतनशील विचार पद्धति के संयोग से बना है

इसलिए वह अपने अंतस्तल में अस्तित्व एवं चिंतन, नए जीवन और पुरानी विचारधारा के तनाव का अनुभव करता है। अस्पष्ट भविष्य उस पर अपनी जोर आजमाइश कर रहा है, लेकिन चूंकि मानस के सहजबोधिक मौलिक तत्व प्राचीनतम हैं, इसलिए उसे लगता है कि उसका अतीत ही उस पर हावी हो रहा है। इसीलिए हम प्रायः यह विरोधाभास देखने को मिलता है कि जननायक अतीत का आग्रह करता है और इसे वापस लाने के लिए जन मानस को उद्वेलित करता है लेकिन ऐसा करने की चेष्टा में वह भविष्य का निर्माण करता है। (यूरोप के) पूंजीवादी नव जागरण में क्लासिकल गौरव प्रथा और मान्यताओं का बोलबाला रहा। नेपोलियन और फ्रांस की राज्य क्रांति पर रोम की प्राचीन सभ्यता का काफी प्रभाव था। अठारहवीं सदी के क्रांतिकारियों का आदर्श था प्राकृतिक और अभ्रष्ट, अविकृत आदिम मानव की ओर प्रत्यावर्तन। फिर भी, ऐसे मौकों पर लोग प्रायः अपने मन मस्तिष्क में नए का ही तनाव महसूस करते हैं।

व्यक्ति विशेष के लिए यह सोचना संभव है कि वह अतीत की रक्षा या उसे पुनःस्थापित करने के लिए ही पैदा हुआ है और जब उसके किए का परिणाम दृष्टिगत होता है तभी यह स्पष्ट होता है कि भविष्य का निर्माण हुआ। आदिम ईसाइयत की ओर अभिमुख सुधारक बुर्जुआ प्रोटेस्टेंटवाद को जन्म देता है।

इसी तरह गांधी ने सोचा कि वे हिंदुओं के स्वर्ण युग अर्थात रामराज्य की स्थापना कर रहे हैं जब वस्तुतः वे भारत के लिए आधुनिक प्रजातांत्रिक, पूंजीवादी, राष्ट्रवादी राज्यतंत्र लाने का प्रयास कर रहे थे।

भारतीय जनता की दासता के कारण अतीत का आग्रह और अधिक बलशील हुआ। विदेशी शासन से मुक्ति की स्वस्थ आकांक्षा के साथ ही 'पुनरुज्जीवित हिंदुत्व के जरिए विश्व के आध्यात्मिक विजय' के अर्थ और उग्र राष्ट्रीयता मूलक स्वप्न भी देखे गए, जैसे रामकृष्ण मिशन आंदोलन के महान नेता विवेकानंद द्वारा। 'भारत की विशिष्ट आध्यात्मिक प्रतिभा' के दावे सारे संसार में घोषित किए गए।

फिर भी भारत के प्रारंभिक धर्म सुधार आंदोलन प्रगतिशील थे। वे भारतीय जनता के प्राथमिक राष्ट्रीय जागरण के परिणाम थे। मध्ययुग से आधुनिक पूंजीवाद की ओर संक्रमण के काल में प्रायः प्रत्येक राष्ट्र ने धर्म सुधार आंदोलनों के माध्यम से, नए सामाजिक लक्ष्यों के अनुसार पुराने धर्म को नए सांचे में ढालने के प्रयास किए हैं।

मध्ययुगीनता बनाम उदारवादी दृष्टिकोण

मध्ययुगीनता का अर्थ है आभिजात्य द्वारा शासन। उदारवाद जो पूंजीवाद का जीवन दर्शन है जनतंत्र और जनसाधारण द्वारा शासन का हिमायती है।

मध्ययुगीनता एव मध्ययुगीन धम जन्म पर आधारित विशेषाधिकार के पोषक है। उदारवाद ने इन सारे विशेषाधिकारो का अन्यायपूर्ण बताया और उन पर चोट की, और उसने व्यक्ति स्वातत्र्य समानाधिकार मुक्त प्रतिद्वद्विता के सिद्धात घोषित किए। मध्ययुगीन विचारधारा के अनुसार राजत्व के ईश्वरीय उद्भव, सामाजिक सरचना की पवित्रता और जो कुछ है उसकी दैवसम्मत प्रकृति म लोगो का विश्वास अनिवार्य था। उदारवाद न आस्था निष्ठा की जगह आलोचनात्मक बुद्धिवाद को प्रतिष्ठापित किया जिसके अनुसार प्रत्यक सस्था और सिद्धात की बुद्धिवादी गवेषणा आवश्यक है।

मध्ययुगीनता न अपकष के सिद्धात का प्रचार किया, जिसके अनुसार आदमी आदिकालीन स्वणयुग से आज के भ्रष्ट कलियुग म आ पडा है। उदारवाद ने इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर यह स्थापना प्रस्तुत की कि आदमी *विकासशील रहा है समाज आदिम अवस्था मे दास युग फिर दासता से सामत* युग और अभी पूजीवादी युग के रास्ते लगातार प्रगति करता रहा है। मध्ययुगीन विचार शैली न मूलत आदमी को जीवन का नराश्यपूर्ण दशन अपनान और अपनी दृष्टि परलोक पर केद्रित करने को बाध्य किया है। उदारवाद ने जीवन की चाह उसकी भूख को उढाया ह और इस तरह आधुनिक मशीनो और विज्ञान की मदद से आनद बढान वाले भौतिक पदार्थों के उत्पादन का व्यापक क्षेत्र उजागर किया है।[3]

पुराने समाज का निम्न आर्थिक और सास्कृतिक विकास पुरान धम का आधार था। नए समाज की जरूरतो और राष्ट्रवाद प्रजातत्र जीवन के प्रति आशावादी और सकारात्मक दृष्टिकोण और बुद्धिवादी दशन आदि के सदभ मे पुरान धम का पुनरीक्षण और नव निरूपण आवश्यक था।

कुल मिलाकर, इन पुनर्निर्मित धर्मो का मुख्य उद्देश्य था राष्ट्रीय प्रगति। जिन लोगो न धम का परित्याग या सुधार नही किया उनके लिए धम और राष्ट्र समसम और अभिन्न थ। उदाहरण के रूप म बी० सी० पाल अरविंद घोष और कुछ अन्य लोगो द्वारा प्रतिपादित राष्ट्र धम का उल्लेख किया जा सकता है।

कभी-कभी लोगो म राष्ट्रीय भावनाओ और आशाओ को जागत करने के लिए पुरान देव-देवियो की नई व्याख्या भी प्रस्तुत की जाती। 'देवता और देवियो की मूर्तियो की इस नई व्याख्या के कारण देश के प्रचलित धार्मिक उत्सवो म नया सारगभत्व हुआ, हजारो लाखो लोग जो कालीया काली या दुर्गा की सभक्ति उपासना करत समय 'वदे मातरम' का उच्चारण्र किया करते थ, य देवियां भारतीय हिंदुओ की उपास्य ... इन प्रतीको का रूप परिवतन इस आदोलन की गहराई और ताकत का कारण भी है और प्रमाण भी है। पुरान देव-देविया का यह सामाजिक रूप परिवतन नए राष्ट्रवाद का सदेश जोगो और जन साधारण तक पहुचा रहा है।'[4] इस तरह धम सुधार आदोलन की तरह धम

के पुनर्जीवन के आंदोलन भी राष्ट्रीय आदर्श द्वारा अनुप्रेरित थे।

धर्म सुधार आंदोलनों का व्यापक प्रभाव

धर्म सुधार आंदोलनों की एक यह भी विशिष्टता थी कि उनका कार्यक्रम धर्म सुधार तक ही सीमित नहीं था, उन्होंने सामाजिक संस्थाओं और संबंधों के नवनिर्माण का भी कार्य किया। इसकी वजह थी कि भारत में धर्म और समाज परस्पर जैविक रूप से अनुलग्न थे। जातिगत श्रेणी शृंखला, स्त्री-पुरुष की विषमता, अस्पृश्यता और सामाजिक वर्जना इसलिए फल-फूल रहे थे कि उन्हें धर्म का प्रश्रय प्राप्त था। इसलिए समाज सुधार सभी धर्म सुधार आंदोलनों का अनिवार्य लक्ष्य था। इन आंदोलनों ने कमोबेश मात्रा में न केवल धर्म को वरन सामाजिक संस्थाओं और संबंधों को भी बौद्धिक आधार पर प्रतिष्ठापित करने की चेष्टा की। कहीं भी धर्म व्यक्ति के जीवन को वैसे प्रभावित और निर्णीत नहीं कर रहा था जैसे भारत में। यहां व्यक्ति का आर्थिक क्रियाकलाप, उसका सामाजिक जीवन, उसका जन्म, ब्याह और देहांत, उसका एक जगह से दूसरी जगह आना जाना, इन सब पर पूरी तरह धर्म का नियंत्रण था। धर्म सुधार के आंदोलनों के लिए धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक सुधार के लिए सर्वव्यापी आंदोलन करना आवश्यक था। उन्होंने बहुदेववाद और मूर्तिपूजा के खिलाफ तो संघर्ष किया ही साथ ही जाति प्रथा और विदेश यात्रा संबंधी निषेध पर भी चोट की। धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मणों के एकाधिकार और जातिगत विशेषाधिकार पर भी इन आंदोलनों ने आघात किया। और इन सबके पीछे मूल उद्भावना यह थी कि जिन पुरानी संस्थाओं, प्रथाओं को खतम करने की कोशिश की गई, वे राष्ट्रीय प्रगति में बाधक थीं और राष्ट्रीय प्रगति के लिए सभी दलों और व्यक्तियों की समानता और स्वतंत्रता के सिद्धांत पर आधारित राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता थी।

इन आंदोलनों की मूल अनुप्रेरणा थी देश का विकास। भारतीय जनता के प्रथम राष्ट्रीय जागरण का स्वरूप प्रधानतः धार्मिक था। बाद के दशकों में जागरण की यह भावना गहरी और व्यापक होती गई और उसका स्वरूप धर्मनिरपेक्ष होता गया।

यूरोप में वैसे ही आंदोलन

यूरोप में भी ऐसी ही बात हुई थी। राष्ट्रीय राज्यतंत्र एवं समाज की स्थापना को लक्ष्य बनाकर जो आंदोलन हुए, उनके पहले नवोदित राष्ट्रीयता प्रोस्टेस्टेंटवाद और धर्म सुधार जैसे धार्मिक रूपों में ही लक्षित हुई। इसकी वजह थी कि मध्ययुगीन धर्म, जो नया समाज बन रहा था उसके अनुकूल नहीं था। यूरोप का मध्ययुगीन धर्म, रोमन कैथलिक धर्म, समूचे ईसाई संसार की सांस्कृतिक एकता का सूत्र था, लेकिन यह सामंतशाही का पोषक था और सामंतशाही बढ़ते हुए पूंजीवादी अर्थतंत्र के बढ़ते हुए राष्ट्रीय विनिमय संबंधों के आधार पर राष्ट्रों के आर्थिक

समन्वय के रास्ते म बाधक थी। यह भी द्रष्टव्य है कि सामंती राज्य व्यवस्था को समर्थन प्रदान कर रोमन चर्च राष्टीय राज्यो की स्थापना मे अडचन खडी कर रहा था और नए पूजीवादी अयतन्त्र की स्वतन्त्र और क्षिप्र प्रगति के लिए राष्टीय राज्य व्यवस्था अत्यावश्यक है।

इसलिए यूरोप के देशो म जनता के राष्टीय जागरण न सामती धर्मतन्त्र के विरुद्ध धार्मिक सघर्ष का रूप लिया। फ्रास म सामती अर्थतत्र और राज्य व्यवस्था के आध्यात्मिक समर्थक रोमन चच का विरोध सबसे पहले वाल्तेयर, रूसो, हलवेसियस हालबाख आदि न किया। यह धम विरोधी विद्रोह सामतशाही के विरुद्ध किए गए धम निरपेक्ष राष्टीय राजनीतिक विद्रोह के पहले हुआ।[5]

भारत म भी राष्टीय जागरण ने शुरू के दिनो म धम सुधार आन्दोलनो का रूप लिया। इनम स कुछ न सनातन धम को उदारवाद के सिद्धाता की रोशनी म फिर से देखन की कोशिश की। कुछ दूसरे लोगो ने इसे उनके प्राचीनतम रूप म ही फिर स प्रस्तुत करने की चेष्टा की।

जसे सोलहवी सदी म यूरोप, वसे ही उन्नीसवी सदी म हिंदुत्व के विभिन्न अवयव आध्यात्मिक क्राति की चपेट म आकर बुलबुला उठे (यूरोप के) धम सुधार की ही तरह यहा भी लोग परपरा के आदिम स्वरूप की ओर झुके और बाद के दिनो के अधविश्वास और विकृति की भत्सना की।[6]

भारत म मध्ययुगीन धम के विरोध म धम सुधार आदोलन का जन्म हुआ क्योकि मध्ययुगीन धम जाति जसी सस्थाओ का पोषण करते थे जो देश म नए अर्थतन्त्र के विकास और भारतीय जनता की राष्ट्रीय एकता के रास्ते म जबदस्त रुकावटें पैदा करती थी। बहुदेववाद आत्मा का हनन करने वाले निरथक धार्मिक कमकाड धार्मिक रूढिया आदि के विरुद्ध भी सघष हुआ क्योकि ये जनता की आलोचनात्मक बौद्धिक शक्ति को कमजोर करती थीं। ये धम सुधार आदोलन तत्त्वत राष्टीय थे लेकिन रूपत धार्मिक। हमारे राष्टीय अस्तित्व के बाद के दिनो म राष्टीयता सपूर्णत धर्मनिरपेक्ष हो गयी।

इन धम सुधार आदोलनो म स कुछ का हम आगे म विवरण देंगे। इससे हम जान सकेंगे कि किस तरह धम सुधार आदोलन राष्टीयता के उद्भव की शक्ति सजोए थे और उनके एक तबके ने धम के क्षेत्र म उदारवाद को प्रश्रय दिया है और उसके सिद्धाता को कार्यान्वित करते है।

ब्रह्म समाज आदोलन

जिन प्रकार के धम सुधार आदोलनो की हम चर्चा कर रहे हैं उनम सबसे पहले ब्रह्म समाज आदोलन हुआ था। इसकी पहल 1828 म राजा राममोहन राय (1772 1833) ने, जो सही अर्थों म भारतीय राष्ट्रवाद के जनक कहे जाते हैं, शुरू किया। राजा राममोहन राय स्वतंत्र प्रजातत्रवादी और मानवतावादी थे। अपने धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण म वे इस्लाम के एकेश्वरवाद

और मूर्ति पूजा विरोध, सूफीमत के रहस्यवाद, ईसाई धर्म की आचारशास्त्रीय नीतिपरक शिक्षा और पश्चिम के आधुनिक देशो के उदारवादी बुद्धिवादी सिद्धाता से काफी प्रभावित थे। 'उन्होने अपने ही व्यक्तित्व मे इस्लाम ईसाई धर्म और आधुनिक मानवतावाद या बुद्धिवाद के सर्वोत्तम तत्वो को परिभाषित और अगीकृत करने की चेष्टा की और उन्हे एक मूल धर्म मे रूपायित किया, जिसके तत्व उन्हे उनके अपने समुदाय के उपनिषद दर्शन मे मिले।'[7]

उन्होने प्राचीन हिंदू एकेश्वरवाद की जगह आ जाने वाली बहुदेववादी विकृति की आलोचना की। उन्होने हिंदुओ की मूर्ति उपासना को असमानवोचित और गलत कहा और सब धर्मो और सारी मानवता के एक अकेले ईश्वर के सिद्धात को प्रतिपादित किया।

बहुदेववाद और मूर्ति पूजा के विरुद्ध उनके सघर्ष की अनुप्रेरणा दार्शनिक आस्था के अतिरिक्त राष्ट्रीय और सामाजिक आचारशास्त्रीय विचारो मे भी निहित थी। 'हिंदू मूर्तिपूजा की विचित्र प्रथा किसी भी अन्य गैर ईसाई उपासना पद्धति की अपेक्षा समाज की सरचना के लिए अधिक हानिकारक है। तज्जन्य कर्मकाड पर लगातार सोचते रहने से और अपने देशवासियो के प्रति करुणा की भावना के कारण मैं उन सब तरीको का उपयोग करने के लिए बाध्य हू जिनसे वे प्रकृति के ईश्वर की एकता और सर्वव्याप्ति का मनन कर सके।'[8]

राजा राममोहन राय धर्म के प्रति बुद्धिवादी दृष्टिकोण अपनाने के पक्ष मे थे। उनका विचार था कि व्यक्ति को पुरोहित के माध्यम के बिना स्वय धर्मशास्त्रो का पाठ करना चाहिए और स्वय किसी सिद्धात को समझना पहचानना चाहिए। उसे स्वय अपनी आचारपरक विचार बुद्धि की कसौटी पर धार्मिक सिद्धातो को परखना चाहिए और उन सिद्धातो को अस्वीकार कर देना चाहिए जो इस कसौटी पर खरे नही उतरे।

चूकि हिंदू समाज पर हिंदू धर्म की धार्मिक स्थापनाओ का शासन और नियत्रण था, इसलिए किसी भी धर्म सुधार आदोलन के लिए समाज सुधार को भी अपने कार्यक्रम मे रखना आवश्यक था। राजा राममोहन राय और शुरू के धर्म सुधारको के अनुसार समाज के कल्याण के लिए धर्म के रूप परिवर्तन की आवश्यकता थी। इसलिए धर्म सुधार के आन्दोलनो के सपूर्ण कार्यक्रम का अनिवार्य अग था समाज सुधार।

राजा राममोहन राय के नेतृत्व मे ब्रह्म समाज ने जाति प्रथा के विरुद्ध आदोलन चलाया और इसे अप्रजातात्रिक, अमानुषिक और राष्ट्र विरोधी बतलाया। इसने सती और बाल विवाह के विरुद्ध सघर्ष किया और विधवाओ के पुनर्विवाह और स्त्री पुरुष के समानाधिकार का समर्थन किया।

ब्रह्म समाज ने आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के महत्व को समझा और लोगो मे इसके प्रसार के लिए शिक्षण सस्थाओ की स्थापना की। राजा राय पाश्चात्य उदारवादी प्रजातात्रिक सस्कृति के समर्थक थे।

राजा राममोहन राय के अनुसार भारत में अंग्रेजी शासन एक अच्छी बात थी। सती प्रथा और बाल हत्या के उन्मूलन जैसे समाज सुधार और स्वतंत्र पत्रकारिता तथा आधुनिक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना आदि प्रगतिशील कार्यों के लिए उन्होंने ब्रिटिश शासन की तारीफ की। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में भारत में ब्रिटिश शासन के ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील पहलू भी थे।

> ब्रिटिश शासन के प्रारंभिक दिनों में जैसे उन्नीसवीं सदी के शुरू में, औद्योगिक संहार के बावजूद ब्रिटिश शासकगण प्रगतिशील भूमिका अदा कर रहे थे। वे कई क्षेत्रों में भारतीय समाज की रूढ़िवादी और सामंती शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। ये साहसिक सुधार के दिन थे, जैसे सती प्रथा का उन्मूलन (जो भारतीय समाज के प्रगतिशील तत्वों के संपूर्ण सक्रिय सहयोग के साथ किया गया था), दासता का उन्मूलन (व्यवहार में बहुत दूर तक महज औपचारिक) ठगी और बाल हत्या के खिलाफ लड़ाई, पाश्चात्य शिक्षा का प्रारंभ और अखबारों की आजादी। शुरू के दिनों के ब्रिटिश शासकों का दृष्टिकोण संकीर्ण था और वे भारतीय परंपरा में जो कुछ पिछड़ा था उसके प्रति असहिष्णु थे। उनका यह विश्वास था कि उन्नीसवीं सदी की बुर्जुआ और क्रिश्चियन धारणाएं मनुष्य जाति के लिए आदर्श तुल्य हैं। फिर भी उन्होंने उन दिनों की आगामी ऊर्ध्वमुखी बुर्जुआजी के प्रतिनिधि के रूप में नवाचार और नवीनता की दिशा में बहुत सारे काम किए। इन शासकों में जो सर्वश्रेष्ठ थे जैसे सर हेनरी लारेंस वे उन लोगों का प्रेम और आदर भाव जीतने में सफल हुए जिनके साथ उन्हें काम करना पड़ा। अंग्रेजों के सबसे बड़े दुश्मन प्रतिक्रियावादी शासक थे जिन्होंने यह देखा कि अंग्रेज उन्हें हटा सकते हैं। उन दिनों के भारतीय समाज के सबसे अधिक प्रगतिशील तत्वों ने जैसे राममोहन राय और ब्रह्म समाज के सुधार आंदोलन ने प्रगति के पक्षधर के रूप में अंग्रेजों की भूरि भूरि प्रशंसा की। उनके द्वारा लाए गए सुधारों को पूरा समर्थन प्रदान किया और उन्हें एक नई सभ्यता के हरावल दस्ते के रूप में देखा।[9]

लेकिन अंग्रेजों के प्रति प्रशंसा भाव के बावजूद राजा राममोहन राय ने प्रेस की आजादी को सीमित करने की सरकारी कोशिश के खिलाफ संघर्ष का संगठन किया। उन्होंने ऊंचे ओहदों से भारतीयों को वंचित रखने की सरकारी नीति की भी आलोचना की। ब्रह्म समाज केवल एक धार्मिक आन्दोलन भर नहीं था वरन सामाजिक और राजनीतिक सुधार भी उसके कार्यक्रम के अंग थे। इस तरह यह रानाडे इत्यादि द्वारा परवर्ती काल में शुरू किए गए समाज सुधार आन्दोलन और इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रारंभिक दिनों के राजनीतिक आन्दोलन का अग्रदूत था। इस तरह धर्म सुधार आंदोलन ने शुद्ध धर्म निरपेक्ष सामाजिक और राजनीतिक सुधार आन्दोलनों के लिए जमीन तैयार की। यही राजा

राममोहन राय और उनके द्वारा चलाए गए ब्रह्म समाज का ऐतिहासिक महत्व है। 'राजा राममोहन राय ने भारत में आधुनिक युग की शुरुआत की।'[10]

राजा राममोहन राय के बाद ब्रह्म समाज का नेतृत्व देवेंद्र नाथ टैगोर (1817 1905) ने किया। उन्होंने धर्मशास्त्रों को भ्रमातीत नहीं माना और उन्हें पूर्णतः अस्वीकार कर दिया। उन्होंने धर्मशास्त्रों की जगह अंतर्दृष्टि अंतर्बोध को प्रतिष्ठापित किया। उन्होंने उपनिषद के कुछ प्रकरण खोज निकाले, जो ब्रह्म समाज के सिद्धांतों और कार्यक्रम के धार्मिक वैचारिक आधार बने।

केशवचंद्र सेन (1838 84) ब्रह्म समाज के दूसरे नेता थे। उनके नेतृत्व में ब्रह्म समाज का सिद्धांत शुद्ध ईसाइत्व के अधिकाधिक नजदीक आया। बाद के युग में, उन्होंने 'आदेश' का सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसके अनुसार ईश्वर कुछ व्यक्तियों में ज्ञान की प्रेरणा देता है जिनके शब्द को सत्य और भ्रमातीत माना जाना चाहिए। ब्रह्म समाज के कुछ लोगों ने यह सिद्धांत स्वीकार नहीं किया, समाज को छोड़ दिया और साधारण ब्रह्म समाज की स्थापना की।

ब्रह्म समाज राष्ट्रवादी आंदोलन का अग्रणी था, राष्ट्रीय आंदोलन जो धर्म सुधार आंदोलन के तौर पर शुरू हुआ और जिसका उद्देश्य था सत्तावादी धर्म के विशद बोझ से व्यक्ति को मुक्त करना, सत्तावादी धर्म जो व्यक्ति की पहल शक्ति का गला घोंट देता था, और व्यक्ति एवं जन मानस को जड़वत बना देता था।

ब्रह्म समाज ने व्यक्ति स्वातंत्र्य, राष्ट्रीय ऐक्य और सहक्रमण, एवं सामाजिक संस्थाओं और संबंधों के प्रजातंत्रीकरण के सिद्धांतों को घोषित कर भारतीय जनता के लिए नए युग का सृजन किया। भारतीय जनता के राष्ट्रीय जागरण की यह पहली संगठित अभिव्यक्ति थी।

प्रार्थना समाज

प्रार्थना समाज को बंबई में एम० जी० रानाडे ने 1867 में स्थापित किया। इसके धार्मिक और सामाजिक सुधार के कार्यक्रम वैसे ही थे जैसे ब्रह्म समाज के। इसके नेता रानाडे इंडियन नेशनल कांग्रेस और इंडियन सोशल कांफरेंस के भी नेता थे जिनकी पहली सभाएं क्रमशः 1885 और 1880 में हुईं।

आर्य समाज

आर्य समाज की स्थापना दयानन्द सरस्वती ने 1875 में बंबई में की। यह भी भारतीय राष्ट्रवाद के पहले उफान का परिचायक था लेकिन यह बिलकुल भिन्न प्रकार का आंदोलन था। इसमें पुरानी प्रवृत्तियों को पुनरुज्जीवित करने की बात पर विशेष जोर दिया गया। इसके अनुसार वेद भ्रमातीत और अमोघ हैं और भूत, वर्तमान, भविष्य के सारे ज्ञान के अविरल स्रोत। हम वेदों को ठीक तरह से समझना और उनकी उचित व्याख्या करनी है, क्योंकि उनमें दार्शनिक, तकनीकी, वैज्ञानिक सब तरह का सारा ज्ञान है। पर्याप्त श्रम से हम वेदों में सारा

आधुनिक रसायन अभियन्त्रण, सनिक और गैर मनिक शास्त्र पा सक्ते ह ।[11]

चूकि वेद अमाघ और अमातीत थे, इसलिए वेद सूत्र ही न कि व्यक्तिगत निणय ज्ञान की चरम कसौटी थे। वदा के अमाघत्व का सिद्धात प्रतिपादित कर आय समाज ईश्वरीय वाक्य सूत्र के समक्ष व्यक्तिगत निणय का कोई महत्व नही प्रदान कर सकता था। इस तरह ब्राह्मणा के अधिकार आर अन्याय से व्यक्ति का मुक्त करते हुए भी आय समाज वदा मे सपूण आस्था की माग करता था। आय समाज ने व्यक्तिगत निणय की स्वतत्रता के बदले वेदा की प्रामाणिकता स्वीकृत स्थापित की।

ब्राह्मणा की सत्ता का खडन, और जिन निरथक कमकाडो की असख्यता और विभिन्न देवी-देवताओ की मूर्तिया की जिस उपासना के कारण समाज परस्पर विरोधी पथो म बटा था उनकी निंदा, जिस धार्मिक अधविश्वास के कारण सदिया स हिंदू जन मानस आध्यात्मिक पतन के कुहावद्ध गत म पडा था उसके विरुद्ध सघष, आय समाज के कायक्रम के य प्रगतिशील तत्व थे। वेदा की ओर चलो', ऐसा उनका जो नारा था उसके पिछे राष्टीय ऐक्य गौरव और चेतना की प्रेरणा काम कर रही थी। लकिन, चूकि इसका आधार सकीण था इसलिए जिस राष्टीय एकता की यह घोषणा करता था वह मुसलमाना और ईसाइया जसे गैर हिंदू जातिया का नही समट सका। यह हिंदू धम का ही अध बौद्धिक रूप था।

आय समाज का समाज सुधार का भी अपना कायक्रम था। यह वशानुगत जाति प्रथा के विरुद्ध था लकिन जन्म नही कम द्वारा विवेचित समाज की चतुवण व्यवस्था म इसका विश्वास था। चूकि वेदा म इस तरह की व्यवस्था थी और चूकि वेद गलत नही हो सकत इसलिए आय समाज जाति व्यवस्था का परित्याग नही कर सकता था। आय समाज सामाजिक और शक्षिक मामला म स्त्री पुरुष क समानाधिकार का समथक था। यह तो स्पष्टत प्रजातात्रिक धारणा थी। लकिन चूकि वदा म सहशिक्षा नही थी, इसलिए आय समाज सहशिक्षा का विरोधी था।

लडके लडकिया क लिए आय समाज न देश म बहुत सारे स्कूल-कालजा की स्थापना की। इन स्कूला म शिक्षा मातृभाषा के माध्यम स दी जाती थी। दयानन्द एग्लो वदिक कालज 1886 म स्थापित हुआ। आय समाज के पुराणपथिया न कहा कि इस कालज म दी जान वाली शिक्षा पूरी तरह वदिक नही थी। इसलिए उन लोगा न मुशीराम क नतृत्व म हरिद्वार म गुरुकुल खोला जहा शिक्षा की विषय वस्तु आर उसकी प्रणाली दोना का चरित्र वदिक था।

अपन सारे क्रियाकलाप म आय समाज राष्ट्रीयता और प्रजातत्र की भावना स अनुप्रेरित था। इसन उप-जातिया का समाप्त कर हिंदुआ क समन्वय का प्रयास की। इसन लोगा म शिक्षा का प्रसार किया, जाति धम, सप्रदाय लिंग आदि भिन्नता क बावजूद मानव मात्र की एकता क सिद्धात का उद्घोष किया। गुलाम

देश की प्रजा हाने के नाते उनम अनिवायत जो हीन भावना घर कर गई थी, उसे समाप्त करने की भी आय समाज न काफी काशिश की।

उसके सकीण हिंदू आधार के बावजूद और उसके इस तकहीन विश्वास के बावजूद कि सारा ज्ञान वेदा म सचित है, अनेक राष्ट्रीय हिंदू इसके प्रभाव म आए। एक जमाने म तो आय समाज सरकार की दमन नीति का मुख्य लक्ष्य था। इसम शायद ही कोइ आश्चय की बात है कि जब 1907 के बाद की उथलपुथल की जाच करने, 'लदन टाइम्स' की ओर स सर वलटाइन शिरल भारत आया तो उसने आय समाज का इग्लड और राज्य सत्ता के लिए बहुत ही खतरनाक बतलाया।[1]

आय समाज एक प्रकार से भारतीय जनता के राष्ट्रीय जागरण का ही एक रूप था। चूकि इसका आधार सकीण था, और इस्लाम के प्रति इसका दष्टिकोण नकारात्मक, इसलिए कालक्रम से इसकी वजह स मुसलमाना ने भी अपने का साप्रदायिक आधार पर सगठित किया। शुरू के दिना म जब राष्ट्रीय जागरण का अभी उद्भव ही हो रहा था उस वक्त आर्य समाज की भूमिका प्रगतिशील थी। इसके प्रगतिशील और प्रतिगामी दोनो तरह के पहलू थे। धार्मिक अधविश्वास और ब्राह्मणो के पुरोहिती एकाधिपत्य के विरुद्ध सघष, बहुदेवाद का विरोध एव जन शिक्षा का समथन, उपजातिया का उन्मूलन, स्त्री पुरुष की एकता, आदि कायक्रम के कारण इसने समाज को आगे की ओर ही बढाया। लेकिन वेदो को अमोघ और ब्रह्माड के भूत, वतमान भविष्य के सारे ज्ञान का आगार कहना और गुण पर ही आधारित सही लेकिन चतुवण का समथन करना आय समाज की प्रतिगामी भूमिका के परिचायक थे। काइ भी ज्ञान इस अनत और अविरल तौर पर विकासशील सामाजिक और प्राकृतिक दुनिया म अतिम नही हो सकता। इसलिए वेद किसी भी तरह सारे ज्ञान के आगार नही हो सकते। फिर, सारा ज्ञान इतिहास द्वारा अर्थात जिस युग म वह ज्ञान सामने आया है उस युग के सामाजिक और आर्थिक विकास द्वारा सीमित और निर्णीत है। इसलिए परिवर्ती पीढिया को परपरागत ज्ञान को आलोचनात्मक दष्टि स आगे बढाना होता है और उस बुद्धि एव सामाजिक उपयोगिता के तराजू पर तौलना होता है। यही व्यक्तिगत निणय का प्रश्न आता है। वेदा को अमोघ मान लेने पर, व्यक्ति विशेष ही नही उसकी सारी पीढी भी अपना स्वतत्र निणय देने और धमशास्त्रो पर सम्मति अभिव्यक्त करने से वचित रह जाती है। इसका अथ है व्यक्ति विशेष और उसकी सारी पीढी की मानसिक दासता। यह दष्टिकोण उदारवादी भावधारा का विरोधी था।

वेदो के अमोघत्व और उनकी सवज्ञता के सिद्धात के कारण आय समाज कभी भी पूरी तरह से राष्ट्रीय और सावजनीन नही हो सकता था।

फिर भी, जैसा ऊपर कहा गया है, भारतीय राष्ट्रवाद के शुरू के दिनो म आय समाज की भूमिका प्रगतिशील थी। जब राष्ट्रीय जागरण व्यापक हुआ और गहराया, जब राष्ट्रीय आदोलन धम निरपेक्षता की ऊचाइयो पर पहुचा, तब आय समाज भारतीय राष्ट्रवाद के विकास म रुकावट के रूप म आया, यद्यपि अनजान

आधुनिक रसायन, अभियन्त्रण, खनिज और गैर खनिज शास्त्र पा सकते हैं।[11]

चूंकि वेद अमोघ और भ्रमातीत थे, इसलिए वेद सूत्र ही, न कि व्यक्तिगत निर्णय, ज्ञान की चरम कसौटी थे। वेदों के अमोघत्व का सिद्धांत प्रतिपादित कर आर्य समाज ईश्वरीय वाक्य सूत्र के समक्ष व्यक्तिगत निर्णय को कोई महत्व नहीं प्रदान कर सकता था। इस तरह ब्राह्मणों के अधिकार और अन्याय से व्यक्ति को मुक्त करते हुए भी आर्य समाज वेदों में संपूर्ण आस्था की मांग करता था। आर्य समाज ने व्यक्तिगत निर्णय की स्वतंत्रता के बदले वेदों की प्रामाणिकता स्वीकृत स्थापित की।

ब्राह्मणों की सत्ता का खंडन, और जिन निरर्थक कर्मकांडों की अनक्ष्यता और विभिन्न देवी देवताओं की मूर्तियों की जिस उपासना के कारण समाज परस्पर विरोधी पंथों में बंटा था उनकी निंदा, जिस धार्मिक अंधविश्वास के कारण सदियों से हिंदू जन मानस आध्यात्मिक पतन के कुहाच्छन्न गर्त में पड़ा था, उसके विरुद्ध संघर्ष, आर्य समाज के कार्यक्रम के ये प्रगतिशील तत्व थे। वेदों की ओर चलो' ऐसा उनका जो नारा था उसके पीछे राष्ट्रीय ऐक्य, गौरव और चेतना की प्रेरणा काम कर रही थी। लेकिन चूंकि इसका आधार संकीर्ण था इसलिए जिस राष्ट्रीय एकता की यह घोषणा करता था वह मुसलमानों और ईसाइयों जैसे गैर हिंदू जातियों को नहीं समेट सका। यह हिंदू धर्म का ही अर्ध बौद्धिक रूप था।

आर्य समाज का समाज सुधार का भी अपना कार्यक्रम था। यह वंशानुगत जाति प्रथा के विरुद्ध था लेकिन जन्म नहीं कर्म द्वारा निर्धारित समाज की चतुर्वर्ण व्यवस्था में इसका विश्वास था। चूंकि वेदों में इस तरह की व्यवस्था थी और चूंकि वेद गलत नहीं हो सकते इसलिए आर्य समाज जाति व्यवस्था का परित्याग नहीं कर सकता था। आर्य समाज सामाजिक और शैक्षिक मामलों में स्त्री पुरुष के समानाधिकार का समर्थक था। यह तो स्पष्टतः प्रजातांत्रिक धारणा थी। लेकिन चूंकि वेदों में न लिखा था इसलिए आर्य समाज सहशिक्षा का विरोधी था।

लड़के लड़कियों के लिए आर्य समाज ने देश में अनेक स्कूल-कालेजों की स्थापना की। इन स्कूलों में शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जाती थी। [illegible] 1556 में स्थापित हुआ। आर्य समाज के [illegible] नहीं [illegible] कालेज में [illegible] थी। इसलिए [illegible] मुंशीराम के [illegible] हरिद्वार में गुरुकुल [illegible], जहां शिक्षा [illegible] और [illegible] था।

[illegible] आर्य समाज राष्ट्रवाद और [illegible] था। [illegible] हिंदुओं [illegible] था। [illegible] किया [illegible] [illegible] था। [illegible]

देश की प्रजा होने के नाते उनमें अनिवार्यतः जो हीन भावना घर कर गई थी, उसे समाप्त करने की भी आर्य समाज ने काफी कोशिश की।

उसके संकीर्ण हिंदू आधार के बावजूद और उसके इस तर्कहीन विश्वास के बावजूद कि सारा ज्ञान वेदों में संचित है, अनेक राष्ट्रीय हिंदू इसके प्रभाव में आए। एक जमाने में तो आर्य समाज सरकार की दमन नीति का मुख्य लक्ष्य था। इसमें शायद ही कोई आश्चर्य की बात है कि जब 1907 के बाद की उथलपुथल की जांच करने, 'लंदन टाइम्स' की ओर से सर वैलेंटाइन शिरल भारत आया तो उसने आर्य समाज को इंग्लैंड और राज्य सत्ता के लिए बहुत ही खतरनाक बतलाया।[1]

आर्य समाज एक प्रकार से भारतीय जनता के राष्ट्रीय जागरण का ही एक रूप था। चूंकि इसका आधार संकीर्ण था, और इस्लाम के प्रति इसका दृष्टिकोण नकारात्मक, इसलिए कालक्रम से इसकी वजह से मुसलमानों ने भी अपने को सांप्रदायिक आधार पर संगठित किया। शुरू के दिनों में जब राष्ट्रीय जागरण का अभी उद्भव ही हो रहा था, उस वक्त आर्य समाज की भूमिका प्रगतिशील थी। इसके प्रगतिशील और प्रतिगामी दोनों तरह के पहलू थे। धार्मिक अंधविश्वास और ब्राह्मणों के पुरोहिती एकाधिपत्य के विरुद्ध संघर्ष, बहुदेववाद का विरोध एवं जन शिक्षा का समर्थन, उपजातियों का उन्मूलन, स्त्री पुरुष की एकता, आदि कार्यक्रम के कारण इसने समाज को आगे की ओर ही बढ़ाया। लेकिन वेदों को अमोघ और ब्रह्मांड के भूत वर्तमान, भविष्य के सारे ज्ञान का आगार कहना और गुण पर ही आधारित सही लेकिन चतुर्वर्ण का समर्थन करना आर्य समाज की प्रतिगामी भूमिका के परिचायक थे। कोई भी ज्ञान इस अनंत और अविरल तौर पर विकासशील सामाजिक और प्राकृतिक दुनिया में अंतिम नहीं हो सकता। इसलिए वेद किसी भी तरह सारे ज्ञान के आगार नहीं हो सकते। फिर, सारा ज्ञान इतिहास द्वारा अर्थात् जिस युग में वह ज्ञान सामने आया है, उस युग के सामाजिक और आर्थिक विकास द्वारा सीमित और निर्णीत है। इसलिए परिवर्ती पीढ़ियों को परंपरागत ज्ञान को आलोचनात्मक दृष्टि से आगे बढ़ाना होता है और उसे बुद्धि एवं सामाजिक उपयोगिता के तराजू पर तौलना होता है। यहीं व्यक्तिगत निर्णय का प्रश्न आता है। वेदों को अमोघ मान लेने पर, व्यक्ति विशेष ही नहीं उसकी सारी पीढ़ी भी अपना स्वतंत्र निर्णय देने और धर्मशास्त्रों पर सम्मति अभिव्यक्त करने से वंचित रह जाती है। इसका अर्थ है व्यक्ति विशेष और उसकी सारी पीढ़ी की मानसिक दासता। यह दृष्टिकोण उदारवादी भावधारा का विरोधी था।

वेदों के अमोघत्व और उनकी सर्वज्ञता के सिद्धांत के कारण आर्य समाज कभी भी पूरी तरह से राष्ट्रीय और सार्वजनीन नहीं हो सकता था।

फिर भी, जैसा ऊपर कहा गया है भारतीय राष्ट्रवाद के शुरू के दिनों में आर्य समाज की भूमिका प्रगतिशील थी। जब राष्ट्रीय जागरण व्यापक हुआ और गहराया, जब राष्ट्रीय आंदोलन धर्म निरपेक्षता की ऊंचाइयों पर पहुंचा, तब आर्य समाज भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में रुकावट के रूप में आया, क्योंकि अनजाने

ही सही इसने युद्धपरक धार्मिक साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को जन्म दिया और तदनुरूप वातावरण की सृष्टि की।

रामकृष्ण मिशन आंदोलन

भारतीय जनता का राष्ट्रीय जागरण रामकृष्ण द्वारा अनुप्रेरित आंदोलन म भी परिलक्षित होता है। रामकृष्ण चडीदास और चतन्य की परपरा म एक महान हिंदू सत थे। भक्ति का सिद्धात उनके आदोलन का आधार था। इस सिद्धात के सबसे बडे प्रचारक स्वामी विवेकानद थे, जो रामकृष्ण के शिष्य थे और महान विद्वान। इन्होंने रामकृष्ण की शिक्षाओं के प्रचार के लिए अपने गुरु की मृत्यु के बाद रामकृष्ण मिशन की स्थापना की।

पश्चिम के भौतिकवादी प्रभाव स भारत को बचाए रखना रामकृष्ण मिशन का उद्देश्य था। इसने मूर्तिपूजा एव बहुदेववाद समेत हिंदू धम को आदश, गौरव मडित रूप मे प्रस्तुत किया। पुनरुज्जीवित हिंदू धम के लिए विश्व की सास्कृतिक विजय को इसन अपना साध्य माना।[13]

भारत पर विदेशी शासन का एक हानिकर परिणाम यह हुआ कि बहुत सारे भारतीय आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता से विमुख हो गए यद्यपि यह सभ्यता हिंदुस्तान की प्राक पूजीवादी सस्कृति स जिस पर साधारण भारतीय की चेतना आधारित थी, एतिहासिक दृष्टि स उच्चतर थी।

धम सुधार के कुछ छोटे मोटे आदोलन भी थ जिन्होंने नई चेतना का स्वर दिया। पुनरुज्जीवित या सुधारवादी रूपो मे हिंदू धम राष्ट्रीय पैमाने पर सगठित होने लगा। उदाहरणाथ, भारत धम महामडल समाज 1902 म स्थापित हुआ। हिंदू धम का सुधार और हिंदुओ के बीच धार्मिक और गैर धार्मिक शिक्षा का प्रचार इस सगठन का ध्येय था। 1890 म श्री नारायण न तिया लोगो का आदोलन शुरू किया। तिया सप्रदाय दानवो की पूजा करता था और हिंदू समाज की निम्नतम जातियो के लोग इसके सदस्य थ। इनके लिए मदिरो और पाठ शालाओ की स्थापना श्रीनारायण के आदोलन का कायक्रम था।[14]

थियासफी (ब्रह्मवाद)

नए देशी और अतर्राष्ट्रीय प्रभाव के कारण भारत म जो धम सुधार आदोलन उदित हुए, उनम एक थियासफी भी था। भारत म इसे मैडम ब्लावट्स्की और हनरी स्टील आलकाट न 1879 म शुरू किया और श्रीमती एनी बेसट न इसका प्रचार किया। यह आदोलन इस अथ म बेजोड था कि यह हिंदू धम के महान प्रशसक एक गैर भारतीय द्वारा शुरू किया गया था। थियासफी न पुरातन हिंदू धम के आध्यात्मिक दशन और उनके पुनजन्मवाद को स्वीकार किया। इसन जाति, धम, प्रजाति और यौन भेद के परे विश्व बधुत्व के सिद्धात का प्रचार किया। इसने भारतीयो म राष्ट्रीय भावना के विकास क प्रयत्न किए। श्रीमती बसट ने, 1905

में लिखा 'और बातों के अतिरिक्त, भारतीय आदर्शों पर आधारित और पश्चिम की विचारधारा और संस्कृति के सम्मिश्रण से संभव (उनके द्वारा शासित या नियंत्रित नहीं) शिक्षा पद्धति और राष्ट्रीय भावना का विकास भारत के लिए आवश्यक है।'[15]

थियासफी ने पूरब के देशों के सारे धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन पर जोर दिया। लेकिन इसने प्राचीन हिंदू धर्म को दुनिया का सर्वाधिक आध्यात्मिक धर्म माना। फिर भी थियासफी हिंदुस्तान में जड़ नहीं जमा सकी।

देव समाज और राधा स्वामी सत्संग जैसे कुछ छोटे-मोटे धर्म सुधार आंदोलन भी हुए, जिन्होंने हिंदू धर्म को समसामयिक भारत की सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप बदलने की कोशिश की। अधिक व्यापक आंदोलनों की ही तरह इन आंदोलनों ने भी हिंदू धर्म के मूल सिद्धांतों के इर्द गिर्द हिंदुओं के समन्वय, उनके सामाजिक संबंधों के प्रजातंत्रीकरण और उनमें राष्ट्रीय भावनाओं के प्रसार का प्रयत्न किया। वे भी धार्मिक रूपों में हिंदुओं के नए राष्ट्रीय जागरण के परिचायक थे।

समाज सुधार की दिशा में प्रमुख राजनीतिक नेताओं का कार्य

इस तरह धर्म सुधार या धार्मिक पुनर्जागरण के संगठित राष्ट्रीय आंदोलन तो हुए ही लेकिन साथ ही विपिनचंद्र पाल, अरविंद घोष तिलक और गांधी जैसे महान राजनीतिक नेताओं ने भी धर्म सुधार के कार्य किए यद्यपि उन्होंने इसके लिए कोई आंदोलन विशेष संगठित नहीं किया। बंगाल में राष्ट्रवाद की भावना अधिकाधिक धर्म निरपेक्ष हो रही थी। लेकिन शुरू में कुछ दिनों तक इसका रूप धार्मिक था और स्वामी विवेकानंद के नव वेदांतवाद का इस पर बड़ा गहरा प्रभाव था 'इसीलिए बंगाल के राष्ट्रवादियों ने उपनिषद के पुरातन आदर्श को अपने स्वराज्य आंदोलन का आधार बनाया, जिसके अनुसार मनुष्य को आध्यात्मिक परम तत्व को अपने अंतरतम में खोजना पड़ता है। इसीलिए मां की उपासना शुरू हुई मां अर्थात काली के रूप में प्रतिष्ठापित मातृभूमि।'[16]

तिलक ने गीता की फिर से व्याख्या की और बतलाया कि कर्म इसकी मूल शिक्षा है। उन्होंने कहा कि गीता के दर्शन का मूल तत्व ही भारतीय नहीं समझ पाए हैं, और इसलिए वे निष्क्रियता और भाग्यवाद के शिकार हैं। अगर भारतीय यह समझ लें तो भारत देश सक्रिय प्रयास से आगे बढ़ सकता है। तिलक ने पुरातन भारतीय धर्म की नवीन व्याख्या द्वारा राष्ट्रवाद को जागरूक जीवन दर्शन प्रदान करने की चेष्टा की।

इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन कई अर्थों में सर्वव्यापक धार्मिक आंदोलन का प्रतिफलन भी था यों राष्ट्रीय आंदोलन का उद्देश्य था आधुनिक अर्थतंत्र और प्रजातंत्र पर आधारित भारतीय समाज और राष्ट्र की स्थापना और ब्रिटिश शासन से देश की स्वतंत्रता। राष्ट्रवाद धार्मिक शब्दावली में निरूपित हुआ और

धार्मिक रहस्यवाद से परिवेष्टित था। लेकिन जैसे जैसे राष्ट्रवाद की भावना विकसित होती गई, वैसे वैसे वह धार्मिक तत्वों से मुक्त अधिकाधिक धर्म निरपेक्ष होती गई।

भारत में भौतिकवादी दर्शन का अभाव

भारत के राष्ट्रीय आदोलन की यह खासियत थी कि इसके शुरू में या बाद में भी नेताओं ने न तो कोई भौतिकवादी दर्शन विकसित करने की कोशिश की और न कोई भौतिकवादी दर्शन अपनाने की ही। दर्शन, राजनीति या संस्कृति के क्षेत्र में काम करने वाले राजा राममोहन राय, गोखले, तिलक, बनर्जी बी० सी० पाल, अरविंद घोष लाला लाजतराय, रवींद्रनाथ टगोर, गांधी, अबुल कलाम आजाद इकबाल, जगदीशचंद्र बोस और अन्य लोगो जैसे भारतीय राष्ट्रवाद के सभी नेताओं ने अपने अलग अलग तौर से, पुरातन धर्मों के नवीकरण का प्रयास किया और उसे समर्थन दिया। लेकिन इनमें किसी ने भी धर्म या ईश्वरत्व की भावना और सत्ता को चुनौती नहीं दी, उसे नकारा नहीं। उनमें से किसी ने भी भौतिकवादी दर्शन नहीं अपनाया।

नवोदित राष्ट्रवाद के युग में यूरोप में स्थिति इसके विपरीत थी। यह सच है कि यूरोपीय राष्ट्रवाद का सैद्धांतिक नेतृत्व जिन लोगों के हाथ में था उनमें से अधिकांश आदर्शवादी (दर्शनशास्त्र वाले अर्थ में) थे और उन्हें ईश्वर में विश्वास था। ईसाईमत का वाल्तेयर जैसा घोर विरोधी भी देववादी था। लेकिन उस युग की दार्शनिक भावधारा में भौतिकवाद का भी अपना स्थान था। फ्रांसीसी विश्वकोषवादियों में कुछेक जैसे हालबाख और दिदरो भौतिकवादी थे। साथ ही जब यूरोप के विभिन्न देशों में राष्ट्रीय राज्यों और समाजों की स्थापना हो गई, तब उन देशों में बहुत सारे दार्शनिकों का उदय हुआ जिन्होंने भौतिकवादी सिद्धांत को प्रतिष्ठापित किया। हैकल, फ्यूरबाख, मार्क्स, इनमें प्रमुख हैं। राष्ट्रवाद के युग में, यूरोप ने इन कट्टर भौतिकवादियों के अलावा कट और हर्बट स्पेंसर जैसे अज्ञेयवादी और ह्यूम जैसे संशयवादी दार्शनिकों को भी जन्म दिया।[17] लेकिन भारत के राष्ट्रीय आदोलन के इतिहास में किसी भी विशिष्ट भौतिकवादी, अज्ञेयवादी या संशयवादी दार्शनिक का नाम नहीं आता।

इसकी वजह संभवतः यह है कि भारतीय राष्ट्रवाद विचित्र रूप में विकसित हुआ। आधुनिक भौतिकवादी समस्त यूरोपीय संस्कृति का छोटा ही सही लेकिन अगभूत अंश था। चूंकि यह दर्शन अंग्रेजों का दर्शन था जिन्होंने भारत पर विजय हासिल की थी और उस पर राज्य कर रहे थे, इसलिए राष्ट्रवादी नेता जान अनजाने उससे विमुख से थे, उससे खिंचे हुए से। दर्शन के क्षेत्र में भारत का स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना था, और उसे अपनी परंपरागत दार्शनिक समृद्धि का सहारा लेना था। यह परंपरा मूलतः धार्मिक आध्यात्मिक थी। संभवतः यही वह प्रमुख कारण था जिसके चलते इन नेताओं ने आधुनिक भौतिकवाद ही नहीं नग्न

बुद्धिवाद मे भी विशेष रुचि नही ली। अपने बुद्धिवादी दृष्टिकोण के बावजूद राजा राममोहन राय वेदो की नैसर्गिकता म विश्वास करते रहे। उनके उत्तराधिकारी देवेंद्रनाथ टैगोर ने तक और आदमी की सहज बुद्धि का सम वय करना चाहा। केशवचद्र सेन ने भगवान के पगबर होने का दावा किया और कहा कि उ ह मानवता को ईश्वर का सदेश देना था। पाल और अरविंद का आध्यात्मिक रहस्य वाद मे विश्वास था। आय समाज के लाजपतराय न वेदो को नसर्गिक माना। भारतीय राष्ट्वाद के सबसे महान नेता गाधी न, जब कभी उनके सामन कोई विकट राजनीतिक या सामाजिक समस्या आई, अतरात्मा की वाणी का सहारा लिया।

विदेशी शासन के कारण, सुधरे हुए मस्तिष्क के राष्ट्रवादियो ने भी, जाने अन जाने विदेशी शासन का ही नही वरन विदेशी शासको की सस्कृति का भी विरोध किया। गलत ही सही, लकिन इन दोनो म तादात्म्य देखा गया। चूकि राष्ट्रीय चेतना ही विदेशी सत्ता की स्थिति मे उत्पन्न हुई थी और यह विदेशी सत्ता इस चेतना के विकास म बाधक थी, इसलिए राष्ट्वादियो ने प्राय देश की पुरातन सस्कृति के पुराणपथी और रहस्यवादी पहलुओ का सहारा लिया और उन्हे ही अर्वाचीन प्रगतिशील और प्रजातात्रिक आदोलन का आधार बनाने की कोशिश की। इसके कारण राष्ट्रीय आदोलन मे उलझनें आइ, भटकाव आए और विभिन्न सामाजिक धार्मिक दलो की राष्ट्रीय एकता के रास्त मे रुकावटे पदा हुइ। राजनीति धम द्वारा दूषित हो गई और रहस्यवाद के प्रभाव से उसम विकृति आ गई।

प्रारभिक धम सुधार आदोलना की प्रगतिशील भूमिका

शुरू के दिनो म जब भारतीय राष्ट्रवाद अपरिपक्व था, जब अभी उसमे अकुर ही फूट रहे थे, जब वह ब्रह्म समाज जसे उदारवादी धम सुधार आदोलनो के रूप मे प्रकट हुआ, राष्ट्रीय आदोलन की अपरिपक्वता के ही कारण राष्ट्रवाद ने धार्मिक रूप ग्रहण किया। इसलिए अपनी कमजोरियो के बावजूद इन धम सुधार आदोलनो की अपनी प्रगतिशील भूमिका रही। मध्ययुगीन सस्थाओ के विशाल दुर्भेद्य दुग म इन आदोलनो ने मानो पहली दरार बनाई, पहली बार मानो, धम और समाज सुधार की भाषा म ही सही, यह घोषणा हुई कि आधुनिक भारतीय राष्ट्र जन्म ले चुका है और सयाना हो रहा है। बाद मे, जब राष्ट्रीय चेतना बढी और राष्टीय आदोलन मजबूत और लडाकू हुआ तब भी पाल और अरविंद जसे कुछ वामपथी राष्ट्रवादियो द्वारा इस बात के लिए प्रयास किए गए कि पुरातन हिंदू धम के धार्मिक रहस्यवादी दशन को इस आदोलन का आधार बनाया जाए इसके चलत राष्ट्रीय आदोलन का विकास रुका। इन नेताओ ने कुछ लोगो की राष्टीय चेतना को गहराई दी और उसे लडाकू भी बनाया, लेकिन राष्टवाद को हिंदू रहस्यवाद से जोडकर और उस पर आधारित कर इन लोगो न इसके सामाजिक आधार को विस्तत व्यापक होने से रोका। राष्ट्रीय आदोलन म मुस बहुत बडी तादाद म नही आए इसके बहुत सारे कारणो मे एक यह भी

गाधी के नेतत्व म भी राष्ट्रवाद मे धम का पुट मिला रहा। यही निर्णायक कारण नही था, लेकिन इस कारण की उपेक्षा नही की जा सकती। यह सच है कि गाधी द्वारा सचालित इडियन नेशनल काग्रेस के नतत्व म चल रह राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य था भारत का राष्ट्रीय जनतात्रिक रूपातरण, न कि हिंदू राज की स्थापना। यह भी सच है कि इडियन नेशनल काग्रेस राष्ट्रीय सगठन था, सारे जागरूक राष्ट्रीय तत्वा का जमाव था। लेकिन गाधी के इस कथन से कि राजनीति का आध्यात्मीकरण होना चाहिए, चाहे यह धार्मिक नतिक सिद्धाता के अनुकूल ही क्यो न हो, वे सारे लोग विमुख हो गए जो राष्ट्रीय आदोलन को धम निरपेक्ष रखना चाहते थे। साथ ही, इसके राजनीतिक परिकलन म रहस्यवादी तत्व का समावेश हुआ और आदोलन की युद्ध नीति विकृत हुई।

बुद्धिवाद और भौतिकवाद का विकास

1930 के बाद धीरे-धीरे भारत मे बुद्धिवादी और भौतिकवादी दाशनिक विचार फलने लगे। इसके अनेक कारण थे, जैसे 1914 18 के युद्ध के बाद पश्चिम के राजनीतिक, समाजशास्त्रीय और दाशनिक साहित्य म भारतीय बुद्धिजीवियो की बढती हुई रुचि। विश्व पूजीवाद के सकट और समाजवाद के इस दावे के कारण कि यह पूजीवादी का उत्तराधिकारी है, राजनीतिक रुचि रखने वाले भारतीय युवक पश्चिम के समाजवादी साहित्य और द्वद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धात पर आधारित मार्क्सवाद का अध्ययन करने लगे। अधिकाधिक भारतीय बुद्धिजीवी मार्क्सवाद को अपनाने भी लगे। सोवियत यूनियन की सफलताओ के कारण भी बढती हुई सख्या म भारतीय मार्क्सवादी भौतिकवाद की ओर आकृष्ट हुए। काग्रेस समाजवादियो, साम्यवादियो, रायवादियो टैगोरवादियो और ट्राटस्कीवादियो जसे राजनीतिक दलो ने मार्क्सवाद को अपन जीवन दशन के रूप म अपनाया। मार्क्सवादी भौतिकवादी विचारधारा के अलावा एक अन्य विचारधारा भी भारत म जोर पकड रही थी। भारत म बुद्धिवादियो की सख्या बढ रही थी।

शिक्षित और बुर्जुआ वग ही राष्ट्रवाद के अग्रणी और पथ प्रदशक थे। नए पूजीवादी समाज को उन्होने अपनी भावभूमि बनाया। यह पूजीवादी समाज ऐतिहासिक दृष्टि से आगे बढा हुआ समाज था। धीरे धीरे मध्ययुगीन समाज व्यवस्था की जगह नई समाज व्यवस्था कायम हुई। राष्ट्रवादियों न पूजीवाद के आर्थिक आधार की परिकल्पना स्वीकार कर ली। वे समाज का मुक्त विकास चाहते थे। उदारवाद उदीयमान पूजीवाद का दशन था। इसम ऐसे सिद्धातो का समावेश था जिनसे पूजीवाद के विकास की गारन्टी होती थी। जसे प्राक् पूजीवादी व्यवस्था की अपेक्षा पूजीवाद उच्चतर सामाजिक तत्र था वसे ही राष्ट्रीय समकन, व्यक्ति स्वातत्र्य, प्रजातत्र, मानव, मानव के समानाधिकार, प्रतिनिधि सस्थाए बुद्धिवाद, आदि सिद्धाता से बना उदारवाद प्राक पूजीवादी दशनो की अपक्षा उच्चतर दशन था। पुराने दशन अधिकाशत धार्मिक पुराणपथ पर निभर थ

और जन्म पर आधारित ओहदा और विशेषाधिकार के रक्षक थे।

युक्तिसंगत तो यह था कि भारतीय बुद्धिजीवी, जो भारतीय राष्ट्रवाद के अगुआ थे, उदारवादी दर्शन को पूर्णत अपनाते। लेकिन, चूंकि उदारवाद पश्चिम में पैदा हुआ था और चूंकि भारतीय जनता पर पश्चिमी शक्ति का शासन था, इसलिए उन लोगों ने पुराने हिंदू धर्म को ही सक्रिय बनाया, और या तो उसे अपने शुद्ध सनातन रूप में पुनरुज्जीवित किया या उदारवादी दृष्टिकोण और आधुनिक भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल उसमें कुछ परिवर्तन किए।

मुसलमानों में राष्ट्रीय जागरण
उनमें राष्ट्रीय भावना के अक्षिप्र विकास के कारण

मुसलमानों में राष्ट्रीय जागरण हिंदुओं की अपेक्षा धीरे धीरे आया। इसके ऐतिहासिक और धार्मिक कारण थे। औरंगजेब के परवर्ती काल में जब मुगल साम्राज्य का विघटन हुआ, उस वक्त अनेक हिंदू राज्य कायम हुए। फिर भी मुसलमान हरदम यह समझते रहे कि वे भारत के शासक हैं। वे खासकर अंग्रेजों के खिलाफ थे, जिन्होंने राजनीतिक सत्ता उनसे छीन ली थी। अंग्रेजों ने सिपाही विद्रोह के समय बहादुरशाह को तख्त से हटा दिया और वह उस वक्त तथ्यत नहीं तो विधानत सारे भारत का सम्राट था। सिपाही विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने जो मुसलमान विरोधी नीति अपनाई, उससे मुसलमानों में अंग्रेज विरोधी भावनाएं आईं। इसके कारण मुसलमान भारत में अंग्रेजों द्वारा लाई गई नई संस्कृति और शिक्षा के संपर्क से बचते रहे। वे उस शिक्षा के प्रभाव में आने से बचे और पुराणपंथी इस्लाम के साथ और जमकर सट रहे।

अंग्रेजों की भारत विजय की प्रक्रिया में मुसलमान बड़ी तेजी से गरीब हुए। 'भारत के बारीक और नैपुण्यमूलक उद्योगों में से बहुतेरे मुसलमानों के हाथ में थे। ईस्ट इंडिया कंपनी की वित्तीय नीति के कारण ये लोग बर्बाद हुए। प्राक् ब्रिटिश भारत में बड़े-बड़े ओहदों पर सेना में, शासन में, पढ़ाई लिखाई के पेशे में, मुसलमान लोग ही जमे हुए थे। लेकिन उच्च और मध्यमवर्ग के बहुत सारे लोग अब भिखमंगी की हालत में आ गए। इसमें कहीं कोई शक की गुंजाइश नहीं कि उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में मुसलमानों में अंग्रेजों के प्रति घोर अविश्वास था, क्योंकि इन लोगों ने उनकी शक्ति क्षीण की थी। उन्हें पाश्चात्य संस्कृति पर भी अविश्वास था, क्योंकि यह अंग्रेजों से जुड़ी हुई थी।'[48]

हिंदुओं ने नई शिक्षा का फायदा उठाया। उनके यहां शिक्षित वर्ग का उदय हुआ, और उनमें से कुछ लोगों ने उदारवाद के सिद्धांत अपनाए, दूसरे धर्मों का अध्ययन किया और सुधार आंदोलन संगठित किए। दूसरी तरफ मुसलमान नई शिक्षा से विमुख होते गए।

हर देश में सदा आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग और बुर्जुआजी ने ही राष्ट्रवाद नेतृत्व किया है। उदीयमान पूंजीवाद के युग में बुद्धिजीवी और पूंजीपति

जो बुर्जुआजी समाज के समर्थक पोषक थे, राष्ट्रीय आंदोलनो का संगठन किया। भारत मे नए बुद्धिजीवी और पूंजीपति वर्ग के लोग मुख्यत हिंदू समाज से आए और वे भारतीय राष्ट्रवाद के नेता और पथ प्रदर्शक रहे।

उन्नीसवी सदी के अंत म मुसलमान आधुनिक शिक्षा की ओर मुड़े। धीरे धीरे उनके बीच भी शिक्षित आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ। इस बुद्धिजीवी वर्ग के कुछ लोगो ने धीरे धीरे राष्ट्रीय दृष्टिकोण भी अपनाया। साथ ही मुसलमानो म भी व्यापारिक और औद्योगिक बुर्जुआजी का जन्म हुआ, और उनके बीच भी राष्ट्रवाद की भावना फली।

इस्लाम का आधारभूत चरित्र भी भारतीय मुसलमानो म देर स राष्ट्रवाद के उदय का एक कारण था। किसी भी अन्य धर्म की अपेक्षा इस्लाम अधिक कट्टरता से अपने अनुयायियो की एकता पर जोर देता है। यह अपने अनुयायियो को विश्व बंधुत्व की शिक्षा देता है। यह सारे विश्व के मुसलमानो का सार्वजनीन संगठन है। इस तरह यह राष्ट्रीयता के विकास के रास्ते म अवरोध प्रस्तुत करता है क्योकि राष्ट्रीयता का सीमित भूखंडीय आधार है और इस्लाम या तो अखिल इस्लामवाद या मानवतावाद को प्रश्रय देता है।

अगर किसी देश विशेष म, जैसे अरब या तुर्की म, मुख्यत मुसलमान ही रहते हो और वहां आर्थिक पूंजीवादी विकास हो चुका हो, तो वहा के मुसलमानो म राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव हो सकता है। या, किसी मध्ययुगीन धर्म की अपेक्षा इस्लाम राष्ट्रीयता के उदय म अधिक रुकावटें डालता है, लेकिन समाजवाद जसे अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम को मुसलिम आबादी के निम्न बुर्जुआ और गरीब तबको म बडी जल्दी और तेजी से मान्यता मिली।

> इस लेखिका को अपनी बातचीत के दौरान मालूम हुआ कि मुसलमान नवयुवक समाजवादी नेता जवाहर लाल नेहरू की ओर किसी भी राजनीतिक नेता की अपेक्षा अधिक झुके हुए थे यह स्पष्ट है कि छात्रो और नौजवानो के संगठनो म समाजवाद का प्रसार हुआ है पंजाब की सोशलिस्ट पार्टी म अधिकतर मुसलमान हैं, और फिर, फ्रंटियर सोशलिस्ट पार्टी म भी अधिकांश मुसलमान हैं और भारत म फ्रंटियर सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता सबसे अधिक है।[17] मेरा ख्याल है कि मुसलिम जन साधारण की प्रच्छन्न अंत शक्ति बहुत अधिक है और शायद इसका यह कारण है कि हिंदुओ की अपेक्षा उनमे पारस्परिक साहचर्य की स्वतंत्रता अधिक है। चलना शुरू कर दें तो वे समाजवाद की दिशा मे बडी तेजी से बढेंगे।[6]

इस्लाम का उदय ही विशेषाधिकार प्राप्त सामाजिक श्रेणियो के विरुद्ध अरब की साधारण जनता के प्रजातांत्रिक उद्वेलन का परिणाम था। इसलिए इसका स्वर स्वभावत जनतांत्रिक है। इस्लाम सामाजिक साम्य की शिक्षा देता है इसलिए मुसलिम आवाम के बीच अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद का प्रचार अधिक कारगर होता है।

राष्ट्रीयता के रास्ते पर प्रगति की दृष्टि से मुसलमानो की अपक्षाकृत निष्क्रियता के बावजूद, उनके बीच भी कालक्रम से कई धार्मिक पुनरुज्जीवन और धम सुधार के आदोलनो का जन्म हुआ। लेकिन ये आदोलन हिंदुओ के बीच हुए एसे ही आदोलनो जितने शक्ति सपन्न नही हो सके। साथ ही, इनम अधिकाश म राष्ट्रीयता का अभाव था। इस तरह के चार प्रमुख आदोलन हुए। दिल्ली के शाह अब्दुल अजीज, बरेली के सैयद अहमद, जौनपुर के शेख करामत अली और फरीदपुर के हाजी शरियत उल्ला इन आदोलना के जनक थे।[21]

मूलत इन चार आदोलना का उद्देश्य पुराने धम का पुनरुज्जीवन ही था।

अहमदिया आदोलन

1889 मे मिर्जा गुलाम अहमद द्वारा स्थापित अहमदिया आदोलन कमोबेश उदार वादी सिद्धातो पर आधारित था। इसने अपने को मुसलिम पुनर्जागरण का ध्वज-धारी कहा। ब्रह्म समाज की तरह इसे भी समस्त मानवता के विश्वधम के सिद्धात मे विश्वास था। इस धम के सस्थापक पाश्चात्य उदारवाद थियासफी और हिंदुओ के धम सुधार आदोलन से काफी प्रभावित थे।

अहमदिया आदोलन न जेहाद अर्थात गैर मुसलमानो के खिलाफ धम युद्ध के सिद्धात का विरोध किया। इसे सभी राष्ट्रो सप्रदाया के पारस्परिक भ्रातृत्व के सिद्धात मे आस्था थी। इस आदोलन ने भारतीय मुसलमानो म पाश्चात्य उदार-वादी शिक्षा का प्रचार किया। इसके लिए अहमदिया लोगो ने कई स्कूल-कालेज खोले और अग्रेजी तथा देशी भाषाओ म किताबे और पत्र पत्रिकाए प्रकाशित की। अपने उदारवादी दृष्टिकोण के बावजूद, वहाई आदोलन की ही तरह जो पश्चिम एशिया के देशा म पल्लवित हुआ, अहमदिया आदोलन भी रहस्यवाद से दूषित था। फिर भी इसने इस्लाम की ओर से पाश्चात्य उदारवादी भावनाआ को आत्मसात करने की चेष्टा की।

जसा पहल कहा जा चुका है ऐतिहासिक कारणा से मुसलिम सप्रदाय राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक प्रगति के पथ पर हिंदुआ के बाद आया। 1857-58 के विद्रोह की दुख द असफलता से पुरानी सभ्यता का अत होता है और भारतीय मुसलमाना के लिए राजनीतिक, आर्थिक सास्कृतिक सकट का काल शुरू होता है। इसके कारण नई व्यवस्था के प्रति उनका रोष उनका विलगाव उनकी दमित घृणा भावना और भी अधिक तीव्र हुई इस स्थिति का हल यह था कि अपन को नई स्थिति के अनुकूल बनाया जाए जा नई शक्तिया पदा हो गई थी उनका इस्तेमाल किया जाए और अग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप प्रगति के जो नए अस्त्र रचे गए थे उन्ह अपनाया जाए।'[3]

इस नइ वास्तविकता से दीघकालीन पलायन सभव नही था। शीघ्र ही, मुसलमाना मे भी नइ शिक्षा का प्रचार हुआ और उनके बीच भी नए बुद्धिजीवी वग का उदय हुआ। वे व्यापार और उद्योग के क्षेत्र म भी आग-आए। इन नए

शिक्षित मुसलमानो और मुसलमान व्यापारियो और उद्योगपतिया म जो प्रगतिशील तत्व थे, उनम राष्ट्रीय दष्टिकोण आता गया और व राजनीति म राष्ट्रीयता और सामाजिक मामलों म प्रजाता त्रिक सुधार के रास्त पर अग्रसर हुए।

अलीगढ आदोलन

मुसलमाना के प्रथम राष्ट्रीय नवजागरण की अभिव्यक्ति जिस आदोलन म हुई, उसने मुसलमाना को राजनीतिक तौर पर जागरूक बनाने और उनके बीच आधुनिक शिक्षा का प्रचार करन का प्रयास किया। सैयद अहमद खा इस आदोलन के अगुआ थे। उनको शायर ख्वाजा अल्ताफ हुसैन हाली मौलवी नजीर अहमद और मौलवी शिबली नुमानी जैसे योग्य सहयोगी भी मिल गए।

सर सैयद अहमद खा ने जिस उदारवादी समाज सुधारक और सास्कृतिक आदोलन की शुरुआत की उसे अलीगढ आदालन के नाम से जानत हैं, क्योकि इस आदोलन ने 1875 म अलीगढ म महामदन एग्लो ओरियटल कालेज की स्थापना की। इसी कालेज न 1890 मे अलीगढ विश्वविद्यालय का रूप लिया। इसके साथ एक आल इडिया मुसलिम एजुकेशन कार्फेस भी सगठित हुआ।

अलीगढ आदोलन का उद्देश्य था धार्मिक आस्था को स्थिर रखते हुए मुसलमानो मे पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार करना। इसने जिन शिक्षण सस्थाओ की स्थापना की उनम धम निरपेक्ष शिक्षा के साथ ही धार्मिक शिक्षा भी दी जाती थी। इसने मुसलिम सप्रदाय म समाज सुधार का भी काम किया। अलीगढ आदोलन ने कमोबश आधुनिक ढग पर भारतीय मुसलमाना के विशिष्ट सामाजिक और सास्कृतिक विकास का प्रयत्न किया। इसने बहु विवाहवाद की और विधवा विवाह पर लगे सामाजिक प्रतिबध की तीव्र भत्सना की इस्लाम म विधवा विवाह की अनुमति है लकिन जो लोग हिंदू धम छोडकर मुसलमान हुए थे वसे कुछ लोगा मे विधवा विवाह व्यवहारत निषिद्ध था। अलीगढ आदोलन कुरान की उदारवादी व्याख्या पर आधारित था। इसने आधुनिक उदारवादी सस्कृति और इस्लाम म तालमेल बैठाने की कोशिश की। अलीगढ आदोलन के शुरू होने पर, बबई पजाब, हैदराबाद और अन्य जगहो मे भी स्वतत्र कमाबश प्रगतिशील आदोलन शुरू हुए।

सर मुहम्मद इकबाल

विश्वविख्यात शायर सर मुहम्मद इकबाल ने भारतीय मुसलमाना क इतिहास म बहुत बडी भूमिका अदा की। उन्होने उदारवादी आदोलन का समथन किया, लकिन साथ ही उदारवादी मुसलमाना स यह आग्रह भी किया कि वे जाति और राष्ट्र के नाम पर इस्लाम के व्यापक मानवतावादी सिद्धाता का बहिष्कार न करें।[4]

इकबाल न यूरोपीय सभ्यता को अमानुषिक, हिंस्र, परभक्षी लुटक और

ह्रासोन्मुख कहा। यूरोपीय सभ्यता की भत्सना के लिए उन्होने नीत्शे, शापनहावर, स्पेंग्लर, कार्ल मार्क्स जस परस्पर विरोधी विचारवाले लेखकों की उक्तियो को उद्धत किया। अपनी कविताओं मे, जो फारसी और उर्दू साहित्य की उत्कृष्ट रचनाएं हैं, उन्होने बडी भावपूर्ण शैली मे यूरोपीय सभ्यता पर चोट की है। वे मूलत मानवतावादी थे और इस्लाम का व्यापक मानवतावादी धम मानते थे।[25]

लेकिन उनके जीवन के परवर्ती काल मे इकबाल मे प्रतिक्रियात्मक प्रवत्ति भी देखने मे आती है। उन्होने व्यवस्था के रूप में प्रजातंत्र का विरोध किया और वे भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के विरोधी हो गए।[6] माडर्न इस्लाम इन इंडिया नामक अपनी पुस्तक म डब्ल्यू० सी० स्मिथ ने लिखा है पूजीवाद के बदले 'पाश्चात्यवाद' के विरोध का यह परिणाम था कि वे उदारवाद विरोधी प्रतिक्रियावादियों के शिकार हो गए इस तरह कल के न्यायसंगत और विश्व व्यापक भ्रातृत्व का सबसे नेक स्वप्नद्रष्टा सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी सप्रदायवादियों का हिमायती होकर रह गया।'

अन्य मुसलिम सुधार आदोलन

कालक्रम से मुसलिम औरतों की मुक्ति और पर्दा प्रथा के उन्मूलन के आदोलन भी हुए। बबई मे इस आदोलन के अगुआ थे तयबजी जो प्रबुद्ध और प्रगतिशील मुसलमान थे। सयुक्त प्रात म शेख अब्दुल हलील शरार (1860 96) ने, जो बडे अच्छे लेखक और पत्रकार थे, पर्दा प्रथा के खिलाफ जोरदार सघर्ष किया।

मुसलमानो म उदारवादी विचारों भावनाओं के प्रसार से, मुसलिम औरतों की सामाजिक स्थिति का सुधारने वाले और उनके लिए हानिकर रीति रिवाज का खतम करने वाले आदोलनों को काफी बल मिला। बाल विवाह के साथ-साथ बहु विवाह प्रथा भी खतम होने लगी। आल इंडिया मुसलिम कान्फरेंस मुसलिम औरतो की शिक्षा के लिए नियमित और विशिष्ट आर्थिक अनुदान देता रहा। सारे देश म मुसलमान औरतों के लिए मुसलमानो न व्यक्तिगत और सगठित तौर पर अधिकाधिक शिक्षण सस्थाए स्थापित की। धीरे धीरे मुसलिम औरतो म शिक्षा का प्रसार बढा।

इस तरह धम और समाज सुधार के आदोलन मुसलमानो म भी तेजी से बढे। तुर्की और अरब की राष्ट्रीयता के उदय के कारण, और तुर्की म राष्ट्रीय धम निरपेक्ष राज्य सत्ता के उद्भव के कारण हिंदुस्तानी मुसलमानो का दृष्टिकोण भी व्यापक हुआ। तुर्की के आधुनिकीकरण का यह प्रभाव पडा कि अधिकाधिक भारतीय मुसलमानो की भी चितन शैली आधुनिक हुई। भारत म राष्ट्रीय आदोलन के उदय और विकास के कारण भी अधिकाधिक मुसलमान भारतीय राष्ट्रीयता के प्रभाव म आए। बाद म साम्यवादियो, समाजवादियो या जवाहरलाल नेहरू जसे वामपथी राष्ट्रवादियों के नेतृत्व म जो स्वतन्त्र मजदूर और किसान आदोलन उभरे, उनके चलते भी मुसलमान जनता म राष्ट्रीय और वर्गीय चेतना का प्रादुर्भाव

हुआ। इन आदोलनो से दोनो सप्रदायो के लोगो का स्वस्थ प्रशिक्षण हुआ और राष्ट्रीय और वर्गीय हित म सहयोग क क्षेत्र तैयार हुए। आर्थिक सरचना और विदेशी शासन के चलत वे साथ आए और उन्होन सारे राष्ट्र की मुक्ति के लिए सहयोग का रास्ता अपनाया।

परवर्ती काल मे धम सुधार आदोलनो की प्रतिक्रियावादी भूमिका

हमे यह भी खयाल रखना चाहिए कि भारतीय राष्ट्रवाद क शुरू क दिनो मे, जब यह अभी उभर रहा था तथा कुछ ही लोगो तक सीमित था राष्ट्रीयता ने धम सुधार आदोलनो का रूप लिया। इ ही रूपो म राष्ट्रीय जागरण शुरू शुरू म परिलक्षित हुआ। लेकिन बाद के दिनो मे जब नए वग और सप्रदाय आए और उनम राष्ट्रीय वग या दल चेतना विकसित हुई, और फिर जब राष्ट्रीय आदोलन का आधार बहुवर्गीय बहुसाप्रदायिक हो गया तब इन्ही धम सुधार आदोलना म अधिकाश राष्ट्रीय चतना के विकास के रूप न होकर इसके विकास म अवरोध का काम करने लगे। इनम से कुछ राष्ट्र विरोधी विघटन और स्वतत्रता के सयुक्त राष्ट्रीय आदोलन के विरोधी सिद्ध हुए। उनकी भूमिका मे यह परिवतन इसलिए आया कि वे राष्ट्रीय धम सुधार आदोलन न रह कर धार्मिक साप्रदायिक आदोलनो म परिणत हो गए। यह बात खासकर 1918 क बाद परिलक्षित होती है। इस तिथि क बाद देश म प्रगतिशील राष्ट्रीय और वगजन्य आदोलना म तीव्रता आई। ऐसी परिस्थिति मे कुछ पुराने और कुछ नए धार्मिक साप्रदायिक आदोलना न निहित स्वार्थो के छिपे हुए हथियार का काम किया। उ होने भारतीय जनता की लगातार बढती हुई राष्ट्रीय एकता को कमजोर किया और साथ ही विभिन्न सप्रदायो क गरीबो की आर्थिक और राजनीतिक एकता का भी। य गरीब लोग मजदूर सगठन किसान सभा और ऐसे अ य सगठनो क माध्यम से निहित स्वार्थो के विरुद्ध खडे हो रहे थे।

साथ ही, धार्मिक साप्रदायिक आदोलना न ब्रिटिश हितो की भी सेवा की। साप्रदायिक प्रतिनिधित्व और साप्रदायिक चुनाव क्षेत्रो के आगमन स वस्तुत राष्ट्रीय एकता का नुकसान हो रहा था क्योकि इनके चलत साप्रदायिक विरोध भावना को प्रश्रय मिल रहा था।

सभी अथशास्त्री और राजनीतिविद यह मानत ह कि यह काल पूजीवाद क साधारण ह्रास का काल था और सब जगह प्रगतिशील राष्ट्रीय और वगशक्तिया लगातार बढती जा रही थी। ऐसे वक्त देशी और विदेशी निहित स्वार्थो को धार्मिक रहस्यवाद और सप्रदायवाद से राष्ट्रीय हित क आदोलना को कमजोर करन मे काफी सफल सहयोग प्राप्त हुआ।

सदभ

1 देखें लास्की और वीजबाड ।
2 क्राडवल प० 27 28 ।
3 देखें लास्की ।
4 बी० सी० पाल बख (2) द्वारा उद्धत 184 ।
5 देखें टोनी लास्की हान्म काहू न वीजबोड ।
6 काहू न प० 55 56 ।
7 बख प० 6 ।
8 राजा राममोहन राय प० 5 ।
9 आर० पी० दत्त प० 273 75 ।
10 रवीद्रनाथ टगोर ब्रजद्रनाथ सील द्वारा उद्धत पृ० 95 ।
11 दख मक्समूलर प० 64 ।
12 काहू न पृ० 67 68 ।
13 देखें विवेकानद पृ० 193 95 ।
14 देखें काहू न प० 73 ।
15 एनी बेसट बख (2) द्वारा उद्धत प० 174 ।
16 बख (2) प० 142 ।
17 देख लास्की टोनी लाग एगल्स वीजबोड ।
18 ओ मेली प० 392 93 ।
19 एडिब प० 339 340 ।
20 जवाहरलाल नेहरू प० 577 ।
21 देखें आ मेली ।
22 दखें काहू न प० 36 ।
23 ओ मली प० 398 ।
24 देखें सर एम० इकबाल प० 227 ।
25 दखें ओ मेली प० 406 ।
26 एम० आर० स्मिथ पृ० 156 ।

18

भारतीय राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति के रूप मे राजनीतिक आदोलनो का उद्भव

राजनीतिक राष्ट्रवाद, विदेशी शासन परिणाम

अग्रेजो की भारत विजय और भारत पर अग्रेजी शासन के पीछे ब्रिटिश हितो की रक्षा की भावना काम कर रही थी। इसलिए भारत मे अग्रेजी सत्ता का उपयोग मूलत ब्रिटिश हितो की रक्षा और विकास के लिए हुआ। चूकि भारतीय और ब्रिटिश हितो मे विरोध था, इसलिए ब्रिटेन और भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों और दलो मे, विभिन्न अशो मे पारस्परिक द्वद्व का जन्म हुआ। राजनीतिक राष्ट्रवाद हितो के इस सघर्ष का परिणाम था और इसके कारण देश मे कई राजनीतिक आदोलनो का उद्भव हुआ। इन आदोलनो के लक्ष्य थे? राजनीतिक सत्ता मे अधिकाधिक सहभागिता और फिर क्रमश डामिनियन स्टटस, होमरूल और पूर्ण स्वराज्य। अपने विभिन्न सामाजिक आर्थिक एव अन्याय हितो की पूर्ति के लिए राजनीतिक सत्ता हस्तगत करने के भारतीय जनता और उसके विभिन्न अगो के प्रयास राजनीतिक आदोलनो मे मूर्तिमान है।

भारत पर ब्रिटेन के निरकुश शासन के कारण औद्योगिक बुर्जुआजी को भारत का अनियन्त्रित औद्योगिक विकास करने मे दिक्कत हो रही थी। राज्य व्यवस्था के प्रमुख पदो पर अग्रेजो के एकाधिकार के कारण शिक्षित वर्ग के लोगो को नौकरिया प्राप्त करने की अपनी न्यायसगत आकाक्षा की पूर्ति मे दिक्कत हो रही थी। धरती के बेटे, किसान यह देखते थे कि अग्रजो द्वारा लाई गई नई भूराजस्व व्यवस्था उनकी बढती हुई गरीबी का कारण थी। सर्वहारा मजदूर वर्ग के लोग देखते थे कि यह विदेशी अप्रजातात्रिक शासन व्यवस्था उन्हे अपनी हालत सुधारने और जिस मजदूरी तत्र मे उनका शोषण हो रहा था उसे बदलने के लिए आवश्यक वर्ग सघर्ष को विकसित करने से रोक रही थी।

फिर समस्त भारतीय जनता ने यह भी देखा कि इस विदेशी शासन के कारण उनका अपना साधारण सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक विकास नही हो पा रहा था। राजनीतिक सत्ता से उनकी यह भी अपेक्षा थी कि दक्षिण अफ्रीका, केन्या, मलाया, लका आदि उपनिवेशो या अर्द्ध उपनिवेशो मे प्रचलित जाति विभेद

और भारतीय हिता की अवहेलना आदि कुरीतिया समाप्त की जाए। चूकि विदेशी शासन गुलाम देश का स्वतत्र विकास अवरुद्ध करता है, इसलिए साधारण जनता म राष्ट्रीय भावनाए स्वत उभरती है।[1]

राजनीतिक आदोलन के प्रथम अकुर

सगठित आदोलन के रूप मे भारतीय राष्ट्रवाद का उद्भव, उन्नीसवी सदी के अतिम कुछेक दशका म हुआ। लेकिन इसके प्रथम अकुर उ नीसवी सदी के प्रारभ म भी दष्टिगोचर होते है। प्रबुद्ध हिंदू बुद्धिजीवी वग ने अग्रेजा द्वारा लाई गई आधुनिक शिक्षा पाइ थी और इस शिक्षा के माध्यम से इस वग के लोग आधुनिक पाश्चात्य, प्रजातात्रिक विचारधाराओ के सपक मे आए थे। इस वग की उदीयमान राष्ट्रीय चेतना का 1828 म स्थापित ब्रह्म समाज के रूप मे धार्मिक प्रस्फुटन हुआ। इसी प्रारभिक काल म 1843 मे स्थापित ब्रिटिश इडिया सोसायटी और 1851 म स्थापित ब्रिटिश इडिया एसोसिएशन जो उन दिना के राजनीतिक दला के एकीकरण से बना था, जैसे धम निरपक्ष राजनीतिक सगठनो का भी ज म हुआ।

शुरू के राजनीतिक दल भारतीय राजनीतिक राष्ट्रवाद के उद्भव के परिचायक है। लेकिन ये दल महज कुछेक व्यक्तियो स बने थे और इनका कोई सामूहिक आधार नही था। इनका अखिल भारतीय आधार सभव भी नही था, क्योकि सारा भारत इन सस्थाओ की स्थापना के बहुत बाद अग्रेजो के अधिकार म आया। सगठित अखिल भारतीय आदोलन के रूप म (यद्यपि अभी भी सकुचित सीमित सामाजिक बुनियाद पर) भारतीय राष्ट्रवाद का उन्नीसवी सदी के अतिम दशका म ज म हुआ जब इसके लिए स्थिति परिपक्व हो गई थी।

लेकिन इस सगठित राष्ट्रीय आदालन क उदय का सर्वेक्षण करने के पहले हम 1857 के विद्रोह की चर्चा करेगे। पुरान भारतीय समाज क कुछ वर्गा की सत्ता और शक्ति का अग्रेजो के भारत आगमन से अपहरण हुआ था। 1857 का विद्रोह उनकी ओर से भारत से अग्रेजोको निकाल भगाने और प्राक् ब्रिटिश भारत की सामाजिक राजनीतिक स्थिति की ओर प्रत्यावतन का अतिम सशक्त प्रयास था।

1857 के विद्रोह के कारण

भारत पर अग्रेजा की राजनीतिक विजय इस विजय द्वारा उदभूत आर्थिक तत्वा और कायवाहियो एव नए शासन द्वारा प्रवर्तित नवाचार से भारतीय समाज के जो हिस्से आक्रात हुए, उनका सचित असतोष 1857 के विद्राह का कारण हुआ। यह कहना गलत होगा कि 1857 का विद्रोह महज सिपाहियो का विद्राह था। इसका सामाजिक आधार अधिक व्यापक था। डा० डफ न कहा है

'अगर यह फौजी बगावत भर होना, और जनता की इसके प्रति सहानुभूति नही होती और इस जनता की मदद नही मिली हाती तो जिस तरह की कुछ

निर्णायक जीतें हमे मिली, वे इसे खतम कर देने के लिए काफी थी और सच यह है कि यह फौजी वलवा भर नही था, वरन था जन विद्रोह, जन-क्राति

प्रारभ से ही यह धीरे-धीरे जन विद्रोह का रूप लेता गया है, सिपाहियो की फौज के बाहर हजारो लाखो के जनसमुदाय का ब्रिटिश प्रभुत्व और सत्ता के विरुद्ध विद्रोह।'

अग्रेजो ने देशी राज्यो को अपने अधिकार मे कर लेने की नीति अपनाई, खासकर लाड डलहौजी के शासन काल म, जिसके फलस्वरूप अनेक देशी सामती राज्यो का विघटन हुआ। अग्रेजो की गई राजस्व व्यवस्था के कारण भारतीय किसानो की स्थिति दिन पर दिन बुरी होती गई थी। ब्रिटिश उद्योगो के मशीन निर्मित सामान बडी तेजी से भारतीय बाजार म आए जिसके फलस्वरूप हजारो लाखो की तादाद म भारतीय कारीगर और हस्त शिल्पकार बर्बाद हुए। ये सब 1857 के विद्रोह के मुख्य कारण थे और इन सभी सामाजिक वर्गों का गभीर असतोष इस विद्रोह म परिलक्षित है।

अपहृत सामती सरदारो ने विद्रोह की अगुआई की, और वे अपने खोए हुए भूभाग वापस लेना चाहते थे। अनपहृत रजवाडो मे भी इस बात का डर बना हुआ था कि कभी उनके राज्य का अपहरण हो सकता है, इसलिए उन लोगो म भी कुछेक विद्रोह म शामिल हुए।

अग्रेज मालिको के नील के और अन्यान्य बागानो के मजदूरो मे भी असतोष था क्योकि विदेशी मालिको के अधीन उनके जीवन और श्रम की स्थिति काफी दयनीय थी। उन लोगो म भी ब्रिटेन विरोधी भाव जगे।

कुछ और कारणो से भी लोगो के बीच अग्रेज विरोधी भावना बढी। यूरोप के ईसाई मिशनरियो के धर्म परिवर्तन सबधी उत्साह के कारण लोगो को यह सदेह हुआ कि अग्रेज भारतीयो को ईसाई बनाना चाहते है। पडितो और मौलवियो ने तो जानबूझ कर इस भावना को प्रश्रय दिया, क्योकि विधि व्यवस्था को धर्म निरपेक्ष बनाना, सती जसी प्रथा का उन्मूलन आधुनिक शिक्षा की स्थापना जिसने साधारणत विश्व और सामाजिक सबधो के बारे मे धार्मिक विचारो को चुनौती दी, आदि अग्रेजी शासन के कार्यों से पडितो और मौलवियो की शक्ति क्षीण हुई और उनका प्रभाव घटा।

कुछ और कारण भी थे। बल प्रयोग द्वारा देश के गुलाम बनाए जाने और लोगो के जीवन पर नई आर्थिक शक्तियो के हानिकर प्रभाव के फलस्वरूप अविश्वास और शत्रुता का जो वातावरण तैयार हुआ था, उसके कारण रेलवे और तार व्यवस्था की स्थापना जसे प्रगतिशील काम के बारे म यह समझा गया कि इस जादू टोने के जरिए ये गोरे जादूगर सारे देश को लोहे की जजीरो म बाध देना चाहते है। इस तरह ब्रिटिश सरकार के प्रति लोगो की शत्रुता की भावना बढी। यह मूलत पुराने भारतीय समाज के उन हिस्सो का विद्रोह था जिनका

भारत पर अग्रेजा की राजनीतिक विजय और उनके द्वारा देश मे लाए गए आर्थिक तत्वो के परिणामस्वरूप विनाश अवश्यभावी था।

अग्रेजा न वडी क्रूरता से इस आदोलन का दमन किया।[3] इसकी असफलता के बहुत सारे कारण थे। विद्रोहिया मे एकता का अभाव था। उनके पास एक जसी सैनिक रणनीति नही थी। उनमे परस्पर समन्वय का भी प्रभाव था। विद्रोह सावजनीन भी नही था और नेतृत्व कारगर नही था। विद्रोही दला मे परस्पर वग स्वार्थों का सघष भी था, जैसे एक तरफ जमीदारो और देशी रजवाडा एव दूसरी ओर खेती करन वाले किसानो के बीच सघष।

> अपने विरुद्ध एकता के अभाव का अग्रेजा ने पूरा फायदा उठाया। देशी सरदारा ने जल्दी ही यह जान लिया कि अगर वे किसाना और कारीगरो क बहुत नजदीक आएगे तो नेतृत्व धीरे धीरे उनके हाथ से निकल जाएगा।[4]

इसके अलावा अग्रेजो ने खास तरीको से वर्गों के इस सयुक्त मोर्चे म फूट डाली।

> देशी रजवाडा को ब्रिटिश इडिया मे पूरी तरह आत्मसात करने की नीति छाड दी गई। किसाना पर जमीदारा की पकड और अधिक मजबूत कर दी गई, अग्रेजो ने बेगार के सवाल पर जमीदारा का साथ दिया वडे-वडे किसाना को कुछ विशेषाधिकार देकर और किसानो की जमीन की खरीद-विक्री के लिए कायदे बनाकर अग्रेजा ने किसाना की भी एकता खतम करने की कोशिश की।[5]

विद्रोह का स्वरूप और उसका महत्व

1857 के विद्रोह को आधुनिक अथ म राष्ट्रीय नही माना जा सकता। इसके पीछे जो भावनाए थी वे विदेशिया के खिलाफ थी, लेकिन इस विद्रोह का कोई निश्चित राष्ट्रीय स्वरूप नही था। इस विद्रोह म जिन विभिन्न तत्वो ने भाग लिया उन्ह कभी यह वोध नही हुआ कि वे एक ऐसे राष्ट्र के अग है जिसका सम्मिलित आर्थिक और राजनीतिक अस्तित्व हो सकता है। विद्रोह के सामती नेताआ के राजनीतिक कायक्रम का वस एक ही नकारात्मक उद्देश्य था, विदेशिया को निकाल बाहर करना। उन्होने सारे देश क लिए राष्ट्रीय राज्यतत्र की स्थापना की न तो कोई योजना बनाई और न वे ऐसा कर ही सकते थे। वसे ही, भारतीय समाज के निर्माण के लिए उन्होने न तो कोई कायक्रम तैयार किया और न वे ऐसा कर ही सकते थे। उनम राष्ट्रीय चेतना का अभाव था। वस्तुत, उनम केवल विदेशियो को निकाल वाहर करन के सवाल पर ही एकता थी। इसके बदले व फिर पुराना प्राक ब्रिटिश खडित सामती भारत वापस लाना चाहत थ, या सभवत दिल्ली के सम्राट के अधीनस्थ सामती राज्या का राज्य सघ बनाना चाहते थे।

> अपने मूल चरित्र और प्रमुख नेतृत्व की दृष्टि स 1857 का विद्रोह पुरानी रूढिवादी और सामती शक्तिया और गद्दी से हटाए गए रजवाडा का, अपने

अधिकारो के लिए विद्रोह था, क्योकि उन्होने नई व्यवस्था म अपने अधिकारो के विनाश की प्रक्रिया देखी। इस विद्रोह के प्रतिक्रियात्मक रूप के कारण इसे व्यापक जन समर्थन नही मिल सका और इसकी असफलता लगभग अवश्यभावी थी।[6]

विद्रोहियो म बडे अच्छे योद्धा थे। उन्होने अपने आदर्श के लिए प्राणो की बलि दे दी। लेकिन उनका आदर्श ऐतिहासिक दृष्टि से प्रतिगामी था, ऐसे राजनीतिक भारत का आदर्श जो विदेशी शासन से मुक्त होते हुए भी ऐसी विभिन्न देशी रियासतो म विभक्त हो जिनका सामाजिक आधार और अधतन सामती हो।

1857 का विद्रोह जनतात्रिक आधार पर बने देश के राष्ट्रीय सयुक्तिकरण की ऐतिहासिक रूप से प्रगतिशील भावना द्वारा अनुप्रेरित नही था। फिर भी ब्रिटिश शासन को इसने जो चुनौती दी थी उसने बाद के युग में बहुत सारे भारतीयो के लिए देशभक्ति मूलक प्रेरणा का काम किया। यह विदेशी शासन को उठा फेकने की लोगो की इच्छा का प्रतीक बना। इस विद्रोह के झासी की रानी जैसे नेताओ की महापुरुषो की कोटि मे गिनती होने लगी। कुछ राजनीतिक दलो, आतकवादियो और अतिवादी वामपक्षी राष्ट्रवादियो ने इसे स्वतत्रता की भावी सफल लडाई का पूर्वाभ्यास माना। दूसरे राजनीतिक दलो ने यह तो माना कि पराधीन और शोषित देश के लोगो का विदेशी शासन के साथ यह अवश्यभावी और शौर्यपूर्ण सघर्ष था, लेकिन उन्होने यह भी बतलाया कि इस विद्रोह का खास कर इसके सामती नेताओ का, उद्देश्य ऐतिहासिक दृष्टि से प्रतिगामी था।[7]

1857 म भारतीय इतिहास म पहली बार, कायत, यह सिद्ध हुआ कि ब्रिटिश शासन के विरुद्ध हिंदुओ और मुसलमानो की व्यापक एकता सभव है।[8] इससे भारतीय जनता के सयुक्त राष्ट्रीय आदोलन की परपरा बनी।

ब्रिटिश शासन की युद्ध नीति

विद्रोह के बाद भारत और ब्रिटेन के सबधो के इतिहास म एक नए अध्याय की शुरुआत हुई। ब्रिटेन की सर्वोच्च सत्ता पर अपना सीधा राजनीतिक आधिपत्य स्थापित किया और सरकारी नीति मे भी परिवर्तन हुए।

1857 तक अग्रेजो का उद्देश्य था देशी रियासतो का विलयन और सारे भारत म ईस्ट इडिया कपनी के प्रत्यक्ष शासन की स्थापना। 1857 के अनुभव के आधार पर इस उद्देश्य का परित्याग किया गया और इसके बदले यह नीति अपनाई गई कि जिन देशी रियासतो पर अभी तक कब्जा नही हुआ था, उन्हे ज्यो का त्यो छोड दिया जाए। ब्रिटेन की नई नीति अब यह थी कि इन रियासतो के राजाओ को दोस्त और अग्रेजी शासन का देशभक्त समर्थक बना लिया जाए।

यह ब्रिटेन की राजनीतिक योजना म परिवर्तन का बिंदु था। 1857 तक अग्रेज विभिन्न भागो म खडित भारत म अनेकानेक सामती राज्यो के अस्तित्व के

कारण जो अनेकता थी उसे खतम करने म लगे हुए थे। यह सच है कि जो तरीके अपनाए गए वे हिंस्र और क्रूर थे और भारत को गुलाम बनाकर रखने की नीयत अजनतात्रिक थी। फिर भी भारत का राजनीतिक इकाई क रूप म सपृक्त कर ब्रिटेन ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील भूमिका अदा कर रहा था।

1857 के बाद, अपन शासन की रक्षा के लिए, ब्रिटेन ने देशी राज्यो के विलयन की नीति छोड दी। इसने इस प्रतिक्रियावादी, रूढिवादी राज्यो को बनाए रखा और उन्ह बाहर और भीतर के सभी हमला से बचाने का भी जिम्मा लिया। इस तरह ब्रिटेन भारतीय सामतवाद का दुश्मन न होकर उसका दोस्त बना, और केवल बाहर के ही खतरा स नही वरन रियासतो के भीतर क उदीयमान प्रगतिशील तत्वा से भी उनका रक्षक सिद्ध हुआ।

इस तरह यद्यपि ब्रिटिश पूजीवाद ने अपने देश मे सामतवाद को खतम कर दिया, फिर भी वह भारत म इसे बनाए रहा। बनावटी अवलबन पर आधारित ये सामती राज्य, कुछेक को छोडकर राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक प्रतिक्रियावाद के गढ थे।[9]

कार्ल मार्क्स न कहा है

> जिस स्थिति म इन देशी रियासता की सतही स्वतत्रता बरकरार रहने दी गई वह शाश्वत ह्रास की स्थिति है और ऐसी स्थिति म प्रगति कदापि सभव नही। अपेक्षाकृत अधिक प्रभुताशील सत्ता की मौन सहमति पर जीने वाली प्रत्येक व्यवस्था की तरह यहा भी जैविक दुबलता जीवन का अटूट नियम है
>
> देशी रजवाडे घण्य ब्रिटिश शासन व्यवस्था के सबसे बडे परिपोषक है और भारतीय प्रगति की राह म सबसे बडे अवरोध ।[10]

चूकि ब्रिटेन ने प्रतिक्रियावादी सामतवाद को अपने शासन का आधार बनाया, इसलिए अग्रेजो की भारत विजय की जो भी सीमित प्रगतिशील भूमिका हो सकी थी, वह समानुपातिक तौर पर और घटी ही।

ब्रिटिश शासन की नई नीति के परिणाम

देश म इस नई नीति का महत्वपूर्ण परिणाम निकला। जब कालक्रम से देशी रियासतो के लोग अपनी दमनात्मक राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक स्थिति के प्रति जागरूक हुए और रजवाडा क निरकुश शासन के विरुद्ध प्रतिनिधि सरकार और अन्य जनतात्रिक मागा के लिए सगठित होन लगे तब उन्ह अनिवार्यत ब्रिटिश शासन स भी सघर्ष करना पडा क्योकि ब्रिटिश सरकार इन रजवाडा की रक्षा के लिए वचनबद्ध थी। इस तरह रियासतो की जनता का सघर्ष ब्रिटिश भारत की जनता के स्वतत्रता सग्राम के साथ एक स्रोत म मिल गया और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध समस्त भारतीय जनता के सयुक्त अखिल भारतीय आदोलन का जन्म हुआ। ब्रिटिश शासन का रजवाडा का समर्थन प्राप्त था और उसी तरह

रजवाडो को भी (बहुत बुरे शासन वाली कुछ रियासतो को छोडकर) ब्रिटिश सरकार का समथन प्राप्त था।

1857 के बाद ब्रिटिश सरकार ने राजनीतिक युद्धनीतिक कारणो स पुरान प्रतिक्रियावादी और अशक्त सामती रियासतो को जिंदा तो रखा ही, उसन दश के गैर प्रगतिशील तत्वो के साथ दोस्ती की और उन्ह समथन प्रदान करन की नीति भी अपनाई। 1876 म लाड लिटन ने घोषणा की कि भविष्य म इग्लड का राजा हर तरह से देशी आभिजात्य का साथ देगा। टेम्पल को अपन काल (1848 80) के अत म ऐसा भान होन लगा था कि देशी शासन की प्राचीनता और परपरा पर आधारित देशी आभिजात्य ब्रिटिश शासन के अधीन सगठित और विकसित हो सकेगा।[11] उन्नीसवी सदी के पूर्वार्द्ध म अपक्षाकृत स्वतत्र पत्रकारिता और प्रेस की स्थापना ब्रिटिश सरकार का एक प्रगतिशील कम था। 1857 के विद्रोह के बाद सरकार न मूलत प्रेस की स्वतत्रता को सीमित करने की नीति अपनाई।

1857 के पहले ब्रिटन ने जमकर भारतीयो के सामाजिक जीवन मे हस्तक्षेप किया और सती जैसी क्रूर सामाजिक प्रथाओ के खिलाफ आदोलन किए और कानून बनाए। लेकिन 1857 के बाद इसने सामाजिक मामलो म निष्पक्षता की नीति अपनाई। राजा राममोहन राय और अन्य लोगो द्वारा चलाए गए समाज सुधार आदोलनो और रूढिग्रस्त सामाजिक सस्थाओ और प्रथाओ के विरुद्ध उनक सघष को सरकार का समथन मिला था। 1857 के बाद ऐसे लोगो का अपने प्रगतिशील लक्ष्य की पूर्ति म, सामाजिक प्रतिक्रियावादियो के साथ ही साथ सरकार की उदासीनता का भी सामना करना पडा। सरकार के इस रुख के कारण परपरागत, रूढिवादी तत्वो को बल मिला।

इस तरह 1857 के बाद अग्रेजो की भारतीय नीति लगभग पूणत बदल गई। शुरू म अग्रेजी शासन नए प्रगतिशील तत्वो की तरफ झुका था, उसने उन्ह समथन भी दिया, लेकिन अब इसके विपरीत रूढिवादी शक्तियो के प्रश्रय की नीति अपनाई गई।

1857 और 1885 के बीच की प्रमुख घटनाए

1885 म उदारवादी भारतीय बुद्धिजीवियो ने इडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना की। इसे व्यापारिक बुजुआजी के भी एक अश का समथन प्राप्त था और यह अखिल भारतीय आधार पर भारतीय राष्ट्रीयता के आदोलन के पहले वास्तविक उदय का प्रतीक था। लेकिन इसके विकास का इतिहास चित्रित करने के पहले हम 1857 और 1885 के बीच की कुछ प्रमुख घटनाओ का उल्लेख करेंगे।

1857 म अपनी पुरानी शक्ति और मर्यादा को फिर से स्थापित करने का पुराने समाज की सामाजिक शक्तियो का अतिम प्रयास पूणत असफल हो गया। भविष्य म इस तरह का कोई नया प्रयास कर सकने की स्थिति म अब वे नही थे।

सगठित राष्ट्रीय आदोलन की अगुआई करन वाली नई सामाजिक शक्तिया,

था बुद्धिजीवी वग और व्यापारिक बुजुआजी, अभी अपने ऐतिहासिक काय को
रा करने के लिए पूरी तरह परिपक्व नही हो पाई थी। 1870 के बाद, कई
ारणा के सयोग से देश मे फिर राजनीतिक उभार आया और नई सामाजिक
ाक्तियो को राजनीतिक चेतना और आर्थिक शक्ति मिली, और उनकी राजनीति
ुखर हाने लगी। इस नई स्थिति म, 1885 म, इडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना
ुई।

लकिन 1857 और 1870 के बीच दो ब्रिटेन विरोधी आदोलन हुए, जिनका
ोषित लक्ष्य था ब्रिटिश सरकार को सशस्त्र विद्रोह द्वारा उखाड फेकना। इनम
एक तो वहावी लोगो का विद्रोह था। मुसलमाना के इस लडाकू सप्रदाय के
अनुयायियो ने 1857 के विद्रोह म भाग लिया था और इसक दमन के बाद भी कुछ
दिना तक अपनी कायवाही जारी रखी थी। दूसरा विद्रोह मराठो के एक दल का
था। 1857 की हार क बाद भी वे निरुत्साह नही हुए थे और अग्रेजो को हटान
के लिए षड्यत्र करत रहे। 1871 तक वहावी आदोलन कुछ सशस्त्र मुठभेडो के
बाद सरकार द्वारा पूरी तरह दवा दिया गया। ब्रिटिश विरोधी मराठा षड्यत्र
कारियो के पूना स्थित केंद्र का 1863 म पता चल गया और इस तरह उनका
प्रयास विफल हो गया। ये दोना आदोलन 1857 के विद्रोह के ही अवशिष्ट थे।

अनथकारी दुर्भिक्ष और किसान विद्रोह

1870 के बाद राजनीतिक और आर्थिक असतोष व्यापक रूप लेने लगा जिसकी
चरम परिणति के रूप म 1885 मे भारतीय राष्ट्र के प्रमुख राजनीतिक सगठन
इडियन नशनल काग्रेस की स्थापना हुई। 1857 के विद्रोह के परवर्ती काल म
किसानो का असतोष लगातार बढता गया क्योकि ब्रिटिश शासन म वे अधिकाधिक
विपन्न होते गए थे। भूराजस्व और लगान के बढत हुए बोझ का उन पर बडा
बुरा असर पडा था। 1870 तक हस्तशिल्प और कारीगर उद्याग पूरी तरह खत्म
हो गए थे जिसके चलते कृषि मकुलता बढी। 1870 के कृषि सकट के फलस्वरूप
किसाना की स्थिति और भी बुरी हुई और उनम ऋणग्रस्तता बढी। 1867 और
1880 के बीच कई अनथकारी दुर्भिक्ष पडे। 1887 का अकाल विशेषत विनाश
कारी था। बबई, मद्रास और देश के दूसरे हिस्सो के 200 000 वगमील और
3 करोड 60 लाख लोग इसकी चपेट मे आए।[12]

> 1865 और 1880 क बीच हुए दुर्भिक्ष केवल इसीलिए ही महत्वपूण नही हैं कि उनके चलते काफी क्षति और काफी तक्लीफ हुई, वरन इसलिए भी कि वे ऐसे सक्रमण काल म हुए थे जब भारत धीरे धीरे मुद्रातत्र की ओर बढ रहा था अधिकाश रैयता को सूदखोर महाजना के यहा जाना पडा, और आर्थिक सकट क बाद दुर्भिक्ष का यह परिणाम हुआ कि उत्पादक निधन हो गए और दासता की जजीर म जकड गए।[13]

आर्थिक विपत्ति के कारण किसाना म जो असतोष आया, उसने क।

कई दगे हुए, जिनमे 1875 का डक्कन किसान विद्रोह सर्वाधिक गभीर था। सरकार ने स्थिति की गभीरता को समझा और सारी कृषक समस्या की गवेषणा के लिए उसी साल उसने डेक्कन रैयत्स कमीशन, और बार बार होने वाले दुर्भिक्ष से हुई विपत्ति के कारण 1878 म फेमिन कमीशन बहाल हुआ।

दूसरे अफगान युद्ध के वित्तीय बोझ और 1877 के असयत, अतिव्यापी, भव्य और चामत्कारिक दिल्ली दरबार, जिसम विक्टोरिया को भारत साम्राज्ञी घोषित किया गया, के कारण लोगा का असतोष और रोष बढा ही, खासकर इसलिए कि यह दुर्भिक्ष और भुखमरी का जमाना था। फिर 1878 के वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट, जो भारतीय प्रेस की स्वतत्रता पर रोक लगाने के निमित्त पारित किया गया था, और 1879 के इडियन प्रेस और आम्स ऐक्ट के कारण लोगो के असतोष की ज्वाला प्रज्ज्वलित हुई। ये दोना एक्ट लाड लिटन के शासनकाल म पारित हुए थे। स्थिति लगभग विस्फोटक हो गई थी।

इलबर्ट बिल

कुछ और ऐसे कारक थे जिनके चलते ब्रिटिश सरकार और भारतीय जनता के बीच की खाई और अधिक चौडी होती गई। श्वेत शासक वग के सदस्य होने का एहसास कुछ ऐसा था कि अधिकाश सरकारी और गैर सरकारी अग्रेजो ने भारतीयो के प्रति अहकारजन्य बडप्पन का भाव अपनाया।[14] इसके कारण भारतीयो म तीव्र ब्रिटिश विरोधी भावनाओ का जागरण हुआ।

जब लाड रिपन ने इलबर्ट बिल आगे बढाया, जिसम अपराध और न्याय के क्षेत्र म भारतीयो और यूरोपियनो की समानता की बात थी, तो सारे यूरोपीय समाज ने इसके खिलाफ जोरदार सघष सगठित किया। 'वायसराय को चदपट घाट पर स्टीमर म बठाकर केप के रास्ते वापस इग्लैंड भेज दने' की भी साजिश तयार की गई।[15]

> यूरोपियन लोगो म जन्मजात श्रेष्ठता की भावना के ही कारण हम भारत जीत सके है। इस देश का वाशिदा कितना ही शिक्षित और चतुर क्यो न हो, उसने अपने को कितना ही बहादुर क्यो न सिद्ध कर लिया हो, और हम उसे चाहे किसी भी पद पर क्यो न आसीन कर दे मेरा विश्वास है कि कोई भी ब्रिटिश अफसर उसे अपना समकक्ष नही मान सकता।[16]

यूरोपीय समाज के कट्टर विरोध के कारण यह बिल पास नही हो सका। इसके चलते दोनो जातियो की पारस्परिक कटुता की भावना और अधिक तीव्र हुई। ब्रिटिश शासन की निष्पक्षता के बारे म भारतीयो की गलतफहमी खतम हुई। जातिगत विभेद की झलक इस बात म भी मिलती है कि प्रशासन म सारे ऊचे पदो पर यूरोपियन लोग ही आसीन थे। भारतीय जनता का शिक्षित समुदाय इस बात पर विशेष रूप से रुष्ट था।

जब 1877 म इग्लड म होने वाले सिविल सर्विस इक्जामिनेशन के लिए

अल्पतम आयु सीमा 21 से घटाकर 19 कर दी गई, तो सुरेद्रनाथ बनर्जी ने इसके विरुद्ध आदोलन सगठित किया। उनके अनुसार सरकार ने यह काम जानबूझकर इसलिए किया था कि प्रशासन म ऊचे ओहदा पर भारतीय नही आ सके।

फिर, सरकार न 1882 म लका शायर के सूती उद्योग को मदद पहुचाने के लिए सूती सामाना पर से आयात कर उठा लिया। भारत को घाट म डालकर ब्रिटिश आर्थिक हितो की रक्षा के इस पक्षपातपूण रवैये के कारण सरकार की अलोकप्रियता बढी। भारतीय जनता के हर वग यथा किसानो कारीगरो और बुद्धिजीविया म असतोष फलता गया।

बढता हुआ असतोष और नया नेतृत्व

राष्टीय आदोलन को सगठित करने और आगे बढाने म शिक्षित मध्यम वग का एक अन्य स्रोत से भी प्रेरणा मिली। अग्रेजो द्वारा स्थापित स्कूल और कालजो मे उन्ह जो शिक्षा मिली, उससे उन्ह यूरोप के प्रजातात्रिक विचारा और विभिन्न देशा म स्वतत्रता के लिए हुए राष्ट्रीय सघष की जानकारी प्राप्त हुई। शिक्षित भारतीया ने अमरीकी जनता के स्वतत्रता सग्राम, आस्ट्रिया के प्रभुत्व से मुक्ति के लिए इटली के सघष और आईरिश जनता की स्वतत्रता की लडाई की कहानी पढी। उन्होने टाम पेन, स्पेंसर बक मिल, वाल्तेयर, मैजिनी जस लेखका की रचनाए पढी, जिन्होने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वातत्र्य के सिद्धात का प्रचार किया था। ये शिक्षित भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के वचारिक और राजनीतिक नेता बने।

उदीयमान भारतीय राष्टवाद की शक्तिया को नए बुद्धिजीवी वग द्वारा दिया गया नेतत्व 1857 के विद्रोह के सामती नेतत्व की तुलना म ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील था। यह नया बुद्धिजीवी वग आधुनिक राष्ट्रवाद और प्रजातत्र की भावनाआ से ओत प्रोत था। शुरू क दिनो म यह ब्रिटिश प्रजातत्र की मदद से ही स्वतत्र और प्रगतिशील सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप स सयुक्त भारतीय राष्ट्र का निमाण करना चाहता था। इसके विपरीत 1857 के विद्राह के अगुआ विदेशी शासन हटाकर फिर से सामती अनेकता पर आधारित पुराने भारत को वापस लाना चाहते थे। अधिक से अधिक वे स्वतत्र निरकुश सामती रियासतो का महासघ बनाना चाहते थे।

1870 और 1885 के बीच राष्टीय पत्रकारिता और साहित्य का लगातार विकास हुआ जिससे लोगो के बढते हुए असतोष का पूरा परिचय मिलता है। 'समाचार पत्र रगमच, गुप्त क्रातिकारी दल, खास तौर पर बगाल म सक्रिय थे। गरिबाल्डी और मजिनी के जीवन चरित का अनुवाद किया गया और 'हिस्ट्री आफ इडिया गॅड इन अ ड्रीम जसी कृतियो म राष्ट्रीय मुक्ति का आदश घोषित हुआ।'[17] बगाल म लिखे गए नाटक 'नील दपण' म यूरोपियन मालिको व नील बागानो म काम करन वाले मजदूरो की मुसीबतो और जद्दोजेहद का चित्रण था।

भारतीय जनता का राजनीतिक और आर्थिक असतोष वढता गया, खासकर 1870 के वाद, और 1883 के लगभग तो वह विस्फोटक स्थिति मे पहुच चुका था। लाड लिटन की सरकार के जन विरोधी कार्यों से यह असतोप वढा। 'प्रतिक्रियावादी काय और पुलिस जुल्म के रूसी तरीको के कारण लार्ड लिटन के शासन काल का भारत क्रातिकारी विस्फोट की स्थिति के वहुत करीब पहुच गया था, लेकिन ह्यूम और उसके भारतीय सलाहकारो ने वडे मौके से इस स्थिति म हस्तक्षेप किया।'[18]

सुरक्षा कपाट (वचाव के रास्ते) की आवश्यकता के वारे मे ह्यूम के विचार

ह्यूम ने, जिसने आग चलकर उदारवादी भारतीय वुद्धिजीवी वग के सहयोग से इडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना की, यह समझा कि ब्रिटिश सरकार के खिलाफ जन असतोप विद्रोह के रूप मे फूट पडने वाला था। वह 1882 तक सरकारी नौकरी म था और उसे गुप्त पुलिस रिपोर्टों को देखने का मौका मिला था, जिनसे यह पता चलता था कि किस तेजी से जन असतोप वढ रहा था और छिपे हुए पडयनकारियो के सगठन फल रहे थे।'[19]

देश मे वडे गभीर विद्रोह की सभावना के कारण ह्यूम न भारत के तत्कालीन वायसराय लाड डफरिन से भेंट करने की आवश्यकता महसूस की। इसके तुरत वाद 1885 म, कुछ महान उदारवादी भारतीय विद्वजनो के सहयोग से उसने इडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना की। काग्रेस राष्ट्रीय असतोप खासकर शिक्षित वर्गों के असतोप के केंद्रविंदु का काम कर सकती थी, और भारत की राजनीतिक प्रगति के लिए इस असतोष को जनतात्रिक, वैधानिक आदोलना क रास्ते ले चल सकती थी। यह सरकार के वारे म शिक्षित वर्गों की राय से भी उसे अवगत करा सकती थी।

ह्यूम की वाता से ही स्पष्ट है कि काग्रेस की स्थापना की वात सुरक्षा कपाट क रूप मे की जा रही थी। हमारे ही कार्यों के फलस्वरूप पैदा हुइ, वढती हुई महान शक्तिया के विकास के लिए सुरक्षा कपाट की आवश्यकता थी, और हमारे काग्रेस आदोलन से अधिक अच्छा कारगर सुरक्षा कपाट सभव नही था।[20] सर आकलैंड कालविन को लिखे गए अपन पत्रा म ह्यूम ने कहा

> जिन लोगो न इस आदोलन को प्रारभिक प्रेरणा दी, उनके सामन कोई रास्ता, कोई उपाय नही रह गया था। पाश्चात्य विचारो, शिक्षा, आविष्कार और औजार की सृष्टि के कारण जो उद्वेलन आया, वह वडी तजी से, वढती हुई तीव्रता से काम कर रहा था, और यह अत्यत आवश्यक था कि इसके परिणामा के निकास के लिए खुली हुई वधानिक वाहिका तयार की जाए, सतह के नीच सडने के लिए छोड दन के वदल सडाव शुरू हो गई थी।[21]

दूसरे इतिहासकारा न भी इस तरह की वात की है

काग्रेस की शुरुआत के शीघ्र पहले के साल 1857 के बाद सबसे अधिक खतरनाक थे। अग्रेज अफसरो म ह्यूम ने ही आने वाला खतरा देखा और उसे रोकने की कोशिश की वह शिमला गया अफसरो को यह बतलाने के लिए कि हालत कितनी नैराश्यपूर्ण हो चुकी थी यह सभव है कि उसकी बातचीत से नए वायसराय न जो काफी प्रच्छन्न बुद्धि का था स्थिति की गभीरता समझी और ह्यूम को काग्रेस की स्थापना के लिए उत्साहित किया। इस अखिल भारतीय आदोलन के लिए समय एकदम परिपक्व था। शिक्षित लोगो की सहानुभूति और समथन प्राप्त सभावित कृषक आदोलन के बदले अब काग्रेस के रूप म उदीयमान वर्गो को नए भारत के निर्माण के लिए राजनीतिक रगमच मिला।[2]

इडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना के पहले भी देश के विभिन्न भागो मे कुछ राजनीतिक सगठन थे जैसे एस० एन० बनर्जी द्वारा बगाल म स्थापित इडियन एसोसिएशन, बबई म दादाभाई नौरोजी और जगन्नाथ शकर सेठ द्वारा स्थापित बावे एसोसिएशन पूना म चिपलकर द्वारा स्थापित सावजनिक सभा इत्यादि। लेकिन काग्रेस की स्थापना के पहले कोई अखिल भारतीय सगठन नही था।

इडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना

भारतीय जनता के सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक सगठन इडियन नेशनल काग्रेस का पहला अधिवेशन बबई म 1885 मे हुआ। भारतीय राष्ट्रवाद के लगभग सभी प्रमुख नेताओ ने इस अधिवेशन मे भाग लिया।

1885 से 1905 तक काग्रेस मे जिन उदारवादी बुद्धिजीविया का प्रभुत्व था वे भारतीय राष्ट्रवाद के प्रथम चरण के नेता थे। उनम बगाल क डब्ल्यू० सी० बनर्जी, आनदमोहन बोस, लालमोहन घोष, ए० सी० मजुमदार, रासबिहारी घाष, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, आर० सी० दत्त बबई के दादाभाई नौरोजी फिरोजशाह मेहता, बदरुद्दीन तयबजी आप्टे अगरकर, तेलग, रानाडे गोपालकृष्ण गोखले डी० ई० वाचा, मालाबारी और चदावरकर, मद्रास के पी० आर० नायडू, सुब्रमण्य अय्यर, आनद चालू, वीरराघवचारयर और केशव पिल्ल पडित मालवीय और पडित घर जस लोग थे। काग्रेस और इसके क्रियाकलाप के विकास म ह्यूम, वेडरबन, और हेनरी काटन जसे उदारवादी लोगो ने भी काग्रेस सगठन और उसके क्रियाकलापा म महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।[23]

काग्रेस के पहले अधिवेशन क सभापति डब्ल्यू० सी० बनर्जी के अनुसार काग्रेस के प्रमुख उद्देश्य थे (1) राष्ट्रीय कायकर्ताओ म पारस्परिक सबध का विकास, (2) सारे देशप्रेमिया क बीच प्रजाति, धम और प्रातीयता जन्य विभेद का उन्मूलन और उनके बीच राष्ट्रीय एकता की भावना का अधिकाधिक विकास, (3) मूलभूत भारतीय समस्याओ पर पूरी बहस क बाद उनक बारे मे शिक्षित भारतीयो के निणय अकित करना, और (4) अगल साल का कायक्रम निश्चित करना

कांग्रेस ने ही पहली बार राष्ट्रीय मांगों के समर्थन में प्रस्ताव पारित किए। इनमें से कुछ मांगें थीं इंडियन काउंसिल का उन्मूलन, आई० सी० एस० का एक साथ ही इम्तहान लेना और उम्मीदवारों की न्यूनतम आयु को ऊंचा करना, विधायिका सभाओं के लिए सदस्य चुनना, और नार्थ वेस्टर्न फ्रंटियर प्राविंस, अवध और पंजाब में ऐसी विधायिका सभाएं बनाना।[4]

इस तरह उदारवादी राजनीतिज्ञों द्वारा स्थापित और संचालित कांग्रेस के पहले अधिवेशन की मांगें काफी संतुलित थीं और प्रशासनिक सुधार और विधायिका सभाओं में चुनाव के सिद्धांत की स्वीकृति तक ही सीमित थीं। कांग्रेस की तरफ से ह्यूम ने, अधिवेशन के अंत में महारानी साम्राज्ञी विक्टोरिया के लिए जयनाद भी किया और इस तरह कांग्रेस की राजभक्ति पर जोर दिया।

उदारवादी नेतृत्व की विचार पद्धति और कार्य प्रणाली

अब हम उदारवादी राष्ट्रीयता के मंचप के सिद्धांतों और तरीकों पर प्रकाश डालेंगे। भारत के उदारपंथियों को ब्रिटिश जनतंत्र में निस्सीम आस्था थी। वे सोचते थे कि बड़े दैव संयोग से भारत में अंग्रेजों का शासन स्थापित हुआ है और यह देश को स्वतंत्र, प्रगतिशील, प्रजातांत्रिक राष्ट्रीय अस्तित्व प्रदान करेगा। जस्टिस रानाडे ने कहा कि भारत में अंग्रेजी शासन की सार्थकता यह है कि बड़े पैमाने पर, नागरिक और सार्वजनिक क्रियाकलाप के क्षेत्र में, राजनीतिक शिक्षा देना इसका दैवी लक्ष्य और विधान है और यह इसके लिए सुयोग्य भी है।[5]

भारतीय उदारवादियों को ब्रिटेन से यह उम्मीद थी कि सामाजिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन को दूर करने में और भारतीयों को प्रतिनिधि सरकार के काम में प्रशिक्षित करने में वह भारतीय जनता का पथ प्रदर्शन करेगा। 1895 में सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने कहा 'इंग्लैंड से हम प्रेरणा और पथ प्रदर्शन की आशा है इंग्लैंड से वह महान आदेश आएगा जिससे हमारी जनता का मताधिकार मिलेगा। इंग्लैंड हमारा राजनीतिक नेता है राजनीतिक कर्तव्य के उच्च क्षेत्र में।'[6] आगे उन्होंने यह भी कहा हमें अंग्रेजी जनता की न्याय भावना और उसकी उदारता का भरोसा है हम पार्लियामेंटों की जननी, ब्रिटिश हाउस आफ कामंस, जो विश्व की सबसे बड़ी प्रतिनिधि सभा है वे स्वतंत्रता प्रेमी अंतर्जात में अतीव आस्था है इसमें उन द्वीपों का जनतंत्र आसीन है जहां कहीं अंग्रेजों ने अपना झंडा फहराया है या अपनी सरकार बनाई है वहां उन्होंने उसी को अपना आदर्श बनाया है।[7]

भारतीय उदारवादियों ने भारत और ब्रिटेन के हितों का विरोधी न बदल सहयोगी माना। इसलिए वे राजभक्त थे और उन्होंने ब्रिटेन से संबंध बनाए रखने की आवश्यकता पर जोर दिया। एम० बनर्जी ने कहा हम पार्थक्य नहीं वरन एकता, संयुक्तीकरण और उस महान साम्राज्य के अभिन्न अंग के रूप में सम्मिलन चाहते हैं जिसने सारी दुनिया के समक्ष स्वतंत्र संस्थाओं का आदर्श

प्रस्तुत किया है।'[8] दादाभाई नौरोजी ने भी इसी उदारवादी भावना को अभिव्यक्ति दी जब उन्होने कहा, 'हम मर्दो की तरह खुलकर कहना चाहिए कि हम अपनी मज्जा तक राजभक्त है, हम अग्रेजी राज्य से हुए फायदो का ज्ञान है।'[9]

इन उदारवादियो ने यह भी माना कि काग्रेस जन साधारण का प्रतिनिधित्व नही कर रही थी, केवल उनकी शिकायतो की व्याख्या कर रही थी। काग्रेस वस्तुत जनसाधारण की आवाज नही बुलद कर रही थी, लेकिन शिक्षित देशवासियो का यह कतव्य अवश्य था कि वह साधारण जनता की तकलीफो की व्याख्या करे और उनको खतम करने की राय दें।[30]

उदारवादियो की नियमबद्ध प्रगति मे आस्था थी, वे विकास की धीमी प्रक्रिया मे विश्वास करते थे और क्रातिकारी परिवतन के विरुद्ध थे। 'भारत के लोगो को आकस्मिक परिवतन और क्राति से प्रेम नही। वे ऐसे नए विधान नही मागते जो विधायिका सभाओ रूपी जुपीटर के सिर से सशस्त्र मिनर्वा की तरह निकले हो वे वतमान सरकार को मजबूत करना चाहते हैं और उसे जन जीवन के अधिक समीप लाना चाहते ह। वे सेक्रेटरी आफ स्टट की काउसिल म भारतीय कृषि और उद्योग के प्रतिनिधि के रूप म कुछ भारतीयो को देखना चाहते ह वे प्रत्येक महत्वपूण प्रशासनिक प्रश्न पर विचार विनिमय के लिए भारतीय जनता के हितो का प्रतिनिधित्व चाहत है।'[31]

ब्रिटिश राष्ट्र के सहयोग और साहाय्य से भारत के क्रमिक विकास म विश्वास करन वाले इन उदारवादियो ने क्रातिकारी आकस्मिक परिवतन और उसकी कायप्रणाली को स्वीकार नही किया। अपन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होन वैधानिक आदोलन का रास्ता अपनाया। उनका खयाल था कि इनके जरिए वे एक तरफ तो जनजागरण और जनशिक्षा का विकास कर सकेंगे और दूसरी तरफ अग्रेजो को यह समझा सकेंगे कि भारतीय जनता की मागें न्यायसगत है और उनकी पूर्ति प्रशासन का जनतान्त्रिक कतव्य है। सावैधानिक सत्ता जिनके हाथो म है उनके काय और सहयोग द्वारा वाछित परिवतन लाने के लिए वैधानिक सघष का उन्ह अधिकार था। केवल तीन बातें वर्जित थी विद्रोह विदेशी आक्रमण की सहायता या उसे प्रश्रय, अपराध का रास्ता। मोटे तौर पर इन तीन बातो को छोडकर बाकी सब कुछ सावैधानिक था। जो कुछ सावैधानिक था वह सब आवश्यक या युक्तिसगत नही था, लेकिन यह अलग बात थी। इस कायप्रणाली के एक छोर पर न्याय के लिए प्राथना और अपील की व्यवस्था थी दूसरे छोर पर निष्क्रिय विरोध (सत्याग्रह) की, जिसका अतिम रूप यह भी था कि जब तक मागें पूरी नही हो जाती, तब तक कर का भुगतान नही किया जाएगा।[32]

उदारवादी नेतत्व की प्रगतिशील भूमिका

राजनीति विषयक अपनी अनकानेक गलत धारणाओ के बावजूद भारतीय उदार-

वादी भारत मे आधुनिक बुजुआ समाज के हितो का प्रतिनिधित्व कर रहे थ, और इस तरह उनकी भूमिका प्रगतिशील थी। वे प्रथम अखिल भारतीय, राज नीतिक, राष्ट्रीय सगठन के सस्थापक थे। उन्होने भारतीय जनता के कुछ भागो म राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव कराया उनके बीच प्रजातान्त्रिक विचारो का प्रचार किया और प्रतिनिधि सस्थाओ के विचार को लोकप्रिय बनाया। उन्होन भारतीयो को भारतीयो जैसा अनुभव करन के लिए कहा, चाहे उनमे प्रातीय या साम्प्रदायिक विभेद ही क्यो न हो। वे आधुनिक यूरोप की सपन्न प्रजातान्त्रिक और वज्ञानिक सस्कृति के भारत म प्रचार और प्रसार के घोर समथक थे, और उन्होने प्राक ब्रिटिश काल की मध्ययुगीन, पुराणपथी एव निरकुश सामाजिक सरचना के खिलाफ जमकर सघष किया। वे उद्योगीकरण और सामाजिक सबधो के प्रजातन्त्रीकरण द्वारा भारत की आर्थिक प्रगति के पक्षधर थे।

इडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना के समय इसका मूल सामाजिक आधार बुद्धिजीवी वग, शिक्षित समाज के ऊपरी तबके और वाणिज्यिक बुर्जुआजी से (1885 मे औद्योगिक बुर्जुआजी अभी कुछ खास तौर पर विकसित नही हो सकी थी) से निर्मित था। इसके कायक्रम मे मूलत ये बातें थी, सरकारी नौकरियो का भारतीयकरण, व्यापार सबधी विभेद और प्रश्रय का अत, आदि, और इस काय से उपयुक्त वर्गो के हितो का परिचय मिलता है।

उदारवादियो की बहुत सारी गलत राजनीतिक धारणाओ की वजह यह थी कि वे ब्रिटेन और भारत के सबधो की वास्तविक प्रकृति को ठीक तरह स नही समझ सके। वे यह नही समझ सके कि भारत ब्रिटिश पूजीवाद का उपनिवेश था और इसलिए ब्रिटेन इस देश का मुक्त आर्थिक विकास नहीं होने देगा और भारत के आर्थिक विकास को ब्रिटिश पूजी की आवश्यकताओ पर निभर रहना पडेगा। ब्रिटिश और भारतीय स्वार्थो के बीच इस वास्तविक सघष को उदारवादी लोग नही समझ पाए। फिर चूकि भारत पर ब्रिटेन की राजनीतिक सत्ता ब्रिटिश स्वार्थो की रक्षा कर रही थी इसलिए ब्रिटेन से यह उम्मीद भी नही की जा सकती थी कि वह भारत को सत्ता हस्तातरित कर देगा या यहा मूलभूत प्रशासनिक सुधार लाएगा।

1885 से 1905 तक भारतीय उदारवादियो के नतत्व म काग्रेस ने प्रशासनिक सुधार के लिए सघष किए, जसे, कायकारिणी और न्यायिक व्यवस्था का पाथक्य, जन सेवाओ म बराबरी की शर्तों पर भारतीयो की नियुक्ति और बाद म, इन सेवाओ का भारतीयकरण, आम्स एक्ट को हटाना, भारत से बाहर धन जान की प्रक्रिया पर रोक लगाना, क्योकि इससे लोग बडी तादाद म गरीब हो रह थ, सेना सबधी खर्चे म कमी इत्यादि। 1892 म काग्रेस न पडित मालवीय का प्रस्ताव पारित किया, जिसम सरकार स कहा गया था कि क्षीणप्राय ह्रासोन्मुख हस्तशिल्प उद्योग को पुनरुज्जीवित किया जाए। उदारवादी नतृत्व न भारत म औद्योगिक विकास को तीव्र करने की प्रक्रिया के रूप म स्वदशी का भी प्रश्न

उठाया, और 1906 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में इसके समर्थन में प्रस्ताव लाया गया। 1895 में इस उदारवादी नेतृत्व ने ट्रांसवाल फ्री स्टेट और केप कालनी के भारतीयों के विरुद्ध बने कानूनों के खिलाफ भी आवाज उठाई।

यह उदारवादी नेतृत्व प्रतिनिधि संस्थाओं और चुनाव के सिद्धांत का समर्थक था। इसने जनता द्वारा निर्धारित विधायिका सभाओं और कार्यकारिणी पर विधायिका सभा के नियंत्रण की मांग की।

मांगें जो पूरी नहीं हुई

उदारवादियों ने इंडियन नेशनल कांग्रेस के माध्यम से और सांविधानिक आंदोलन के तरीकों से, जिन्हें ब्रिटिश जनता की प्रजातांत्रिक विवेक, बुद्धि और परंपरा से काफी बल मिला, इस बात की कोशिश की कि सरकार प्रशासनिक सुधार प्रतिनिधि संस्थाएं, आर्थिक बहिर्गमन पर रोक लोकप्रिय और तकनीकी शिक्षा भारतीय उद्योगों के लिए संरक्षण दमनात्मक कानूनों का खात्मा आदि मांगों की पूर्ति करे।

फिर भी 1918 तक, कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशनों में प्रस्तावों द्वारा पारित *अधिकांश मांगों की पूर्ति नहीं हुई। 1918 तक भी जो मांगें नहीं मानी गई थी* वे ये थी इंडियन काउंसिल का उन्मूलन और आइ० सी० एस० के लिए एक साथ ही परीक्षा की व्यवस्था (1885 के कांग्रेस अधिवेशन में पारित प्रस्ताव), कार्यकारिणी और न्यायिक व्यवस्था का पार्थक्य (1886), आर्म्स एक्टस और रूल्स का संशोधन (1877), तकनीकी और औद्योगिक विकास (1888) भूराजस्व नीति का सुधार (1889) करेंसी का सुधार (1892), बेगार का उन्मूलन (1893), काटन पर उत्पादन शुल्क खतम करना (1893), उपनिवेशों में गए हुए भारतीयों की हालत में सुधार (1894), क्रमश 1818, 1819 और 1827 के बंगाल मद्रास और बाँबे रेगुलेशंस और सेडीशन (राजद्रोह) एक्ट की समाप्ति (1897), इंडियन युनिवर्सिटीज एक्ट आफशीयल सिक्रेटस एक्ट की समाप्ति (1903) स्थानीय स्वायत्त शासन की दिशा में प्रगति (1905) क्रिमिनल ला अमेंडमेंट एक्ट यूजपेपस ऐक्ट्स की समाप्ति (1908) निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा (1908) सेडीशस मीटिंग्स एक्ट और इंडियन प्रेस एक्ट का निरसन (1910) और गोखले के बिल में प्रस्तावित निःशुल्क *अनिवार्य शिक्षा (1910)।*[33]

राजभक्ति के बावजूद अपनी स्थापना के तुरंत बाद इंडियन नेशनल कांग्रेस को सरकार के क्रोध का भागी होना पड़ा। एनी बेसेंट ने बतलाया है कि कैसे अपने जिला अधिकारी की आज्ञा के विरुद्ध 1887 में कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल होने के लिए एक व्यक्ति को शांति बनाए रखने के लिए 20 000 रु० की जमानत देने को कहा गया।[34]

एक सर्कुलर में कहा गया कि इन सभाओं में दर्शक के रूप में भी सरकार।

अफसरो का शामिल होना उचित नही है, और इन सभाओ की कार्यवाही म उनका भाग लेना भी मना था।[35] इस तरह प्रशासनिक सुधार, प्रेस की स्वतत्रता, सपत्ति के वहिगमन पर रोक, आदि जसी सयमित मागा के लिए काग्रेस द्वारा किए गए वैधानिक आदोलन भी सरकार को नापसद थे।

1897 म सरकार ने काग्रेस की कारवाइया पर रोक के लिए सक्शन 124 (ए) और 153 (ए) का विधान किया। 1898 म प्रेस की स्वतत्रता को सीमित करने के लिए गुप्त प्रेस समितिया स्थापित की गईं। 1900 म लाड कजन ने सेक्रेटरी आफ स्टट को लिखा 'काग्रेस धीरे धीरे लडखडा कर गिर रही है और भारत मे रहते हुए यह मेरी बहुत बडी आकाक्षा है कि इसमे शातिपूर्ण अवसान म सहायक बनू।'[36]

बीसवी सदी के प्रथम दशक म सरकार ने अपने अस्त्रागार मे बहुत से हथियार एकत्र किए जैसे क्रिमिनल ला अमेडमेट ऐक्ट (1908), द न्यूज पेपस ऐक्ट (1908) दि इडियन प्रस ऐक्ट (1910) द सडीशस मीटिंग्स ऐक्ट (1910)। इस तरह सरकार न प्रेस मच और सभा की स्वतत्रता जैसी नागरिक स्वतत्रताओ पर काफी रोक लगाई।

बढता हुआ मोहभग

ब्रिटिश शासन व्यवस्था की सीमा म ही रहकर जिन मागा की पूर्ति की आशा की गई थी, उनकी पूर्ति न होने स और फिर सरकारी दमन के कारण भारतीय उदारवादियो का धीरे धीरे मोहभग होने लगा। उनकी यह उम्मीद कि भारत म प्रतिनिधि सस्थाओ की स्थापना और भारतीय जनता की सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक प्रगति के लिए ब्रिटिश प्रजातत्र का सहयोग मिलगा धीरे धीरे खतम होने लगी। सुरेंद्रनाथ बनर्जी न कहा नागरिक सेवाओ का इतिहास वचनभग का अविरल विवरण है।[37] पडित धर न 1911 म काग्रेस के सभापति पद स कहा 'हमारी मुसीबता का अगर निदान नही मिला, तो भविष्य म इसके बडे हानिकर दुष्परिणाम होगे, और हमारी मुसीबता का असली कारण यह है कि भारतीय जनता की नवजात आशाओ आदर्शो के प्रति अफसरशाही का रुख असहृदय और अनुदार होता जा रहा है।[38] 1914 म काग्रेस के सभापति भूपेंद्रनाथ बसु ने कहा 'देश का शासन अब भी विदेशी नागरिक सेवाओ के हाथ म है राज्य के सारे विभाग उन्ही के सरक्षण म है। उनके लिए यह सोचना कि वे जसे है उससे भिन्न हो जाए अतिमानवीय होगा।[39]

ब्रिटिश सरकार म भारतीय उदारवादियो की आस्था लगातार खतम होती गई खासकर लाड कजन के शासनकाल के अनुभवो के बाद। उन पर उन लडाकू राष्ट्रीय तत्वो का भी दबाव बढ रहा था जो उन्नीसवी सदी के अत म उदभूत हुए और जो बीसवी सदी के शुरू के दिनो म अधिकाधिक सशक्त होते जा रहे थे। इन कारणो स उदारवादियो न अब अपने कार्यक्रम म शुद्ध प्रशासनिक सुधार

की जगह स्वराज्य की माग को भी स्थान दिया। 1906 के कलकत्ता काग्रेस म दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व मे स्वराज्य (स्वशासी ब्रिटिश उपनिवेशो म चलन वाली शासन व्यवस्था) का नया कायक्रम स्वीकृत हुआ। कलकत्ता काग्रेस ने विदेशी बहिष्कार, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा आदि कायक्रम भी अपनाए और उदारवादियो ने उनका समथन किया।

यो इन उदारवादियो ने प्रशासनिक सुधार के बदले स्वराज्य को अपना राजनीतिक लक्ष्य तो अवश्य बना लिया, लेकिन इन्होने सघप का गैर ससदीय रास्ता नही अपनाया। इसका कारण था वैधानिक आदोलन की प्रभावोत्पादकता मे निस्सीम, अखड विश्वास। 1906 म भी दादाभाई नौरोजी को इसम पूरा विश्वास था। 'हमारे लिए जरूरी है कि हम अग्रेजो से ही, जमकर, खुलकर दरखास्तो, प्रदशनी सभाओ के जरिए शातिपूवक उत्साहपूण तरीको से आदोलन करने का सबक सीखे।'[40]

काग्रेस के कायकर्ताओ म ही कुछ लोगो का धीरे धीरे उदारवादियो के सिद्धातो और तरीको से राजनीतिक मोहभग हुआ, फिर भिन्न राजनीतिक विचारधारा और कायनीति वाले लडाकू राष्ट्रवादियो के नए दल का काग्रेस के अदर ही उदभव और विकास हुआ। कई कारणो से उन्नीसवी सदी के अत म यह दल, जिसे गरमदल के नाम से जाना जाता है बडी तेजी से बढ रहा था।

उन्नीसवी सदी के अत म देश म साघातिक दुर्भिक्ष और उसके फलस्वरूप बडा गभीर आर्थिक सकट आया। प्लेग के भीषण प्रकोप म काफी लोग मरे भी। इन कारणो से लोगो की नजर म ब्रिटिश शासन का महत्व घटा।

वायसराय की हैसियत से लाड कजन ने जो दमनात्मक काय किए उनसे भी लोगो म राजनीतिक असतोष फला। कलकत्ता नगर निगम के अधिकारो म उसके द्वारा की गई कटौती, उसका आफिशियल सिक्रेट्स एक्ट विश्वविद्यालयो का उसके द्वारा अफसरीकरण जिससे शिक्षा अधिक महगी हुई तिब्बत म उसके द्वारा भेजा गया सनिक अभियान फिर उसके द्वारा बगाल का विभाजन, इन सबके कारण देशभक्त राजभक्त भारत की रीढ टूट सी गई और देश म एक नई भावना का जन्म हुआ। कलकत्ता के अपने भाषण म उसने हम पर असत्य भाषण का जो आरोप लगाया उससे आत्म सम्मान की हमारी भावना को ठेस लगती ही है, लेकिन उससे भी अधिक कटु यह अतिरजित कथ्य है कि हम भारतीय अपने परिवेश, अपनी परपरा और अपनी शिक्षा दीक्षा के कारण ब्रिटिश शासन के अधीन ऊचे ओहदो के लिए, नितात अयोग्य है।'[41]

बीसवी सदी के प्रारभ म खासकर बगाल म शिक्षित लोगो के बीच बेकारी काफी बढ गई थी। यह अनुभव सिद्ध था कि ब्रिटिश सरकार की सहायता स लाए गए मद्धिम, क्रमिक विकास का सिद्धात और महज अर्जिया और भाषणो का तरीका असफल रहे थे, इसलिए ये बेकार शिक्षित नौजवान नरम दल से विमुख होकर नए दल की ओर मुडे, जिसके प्रमुख नेता थे तिलक, विपिनचद्र

पाल, अरविंद, बारीन्द्र घोष, और लाला लाजपत राय। नए राष्ट्रवाद को मध्यम वर्ग से सामाजिक समर्थन मिला। भारत का राष्ट्रीय आंदोलन पहले उच्च वर्गीय शिक्षित समाज और व्यापारिक बुजुआजी के कुछ हिस्सों तक ही सीमित था। लेकिन 1905 के बाद इस आंदोलन का सामाजिक आधार अधिक व्यापक हुआ और उसमें निम्न मध्य वर्गीय लोग भी आए।

कुछ और कारणों से भी भारत में लड़ाकू राष्ट्रवाद की प्रगति हुई। 1905 में जारिस्ट रूस की जापान के हाथों हार और अडोवा में इटली की हार से यूरोपियन लोगों की अविजेयता के सिद्धांत को बहुत बड़ा धक्का लगा। भारतीय अपनी हीन भावना का परित्याग करने लगे और उन्हें विश्वास होने लगा कि वे ब्रिटिश शासन को हटा सकेंगे।

लड़ाकू राष्ट्रवादी नेतृत्व का उद्भव

आर्थिक और राजनीतिक मांगों को मानने से सरकार ने इंकार कर दिया। साथ ही उसने बढ़ते हुए राष्ट्रीय आंदोलन के विरुद्ध दमनात्मक कार्रवाई भी की। फलस्वरूप उदारवादी राष्ट्रवाद की विचारधारा और कार्य पद्धति में अधिकाधिक लोगों की आस्था समाप्त होने लगी। वे लड़ाकू राष्ट्रवादियों के दल के इर्द गिर्द इकट्ठा होने लगे। अब हम संक्षेप में इनकी विचारधारा और कार्य शैली का संक्षिप्त विवरण देंगे।

इन लड़ाकू राष्ट्रवादियों ने भारत के अतीत से प्रेरणा लेकर इतिहास की महान उपलब्धियों के विवरण द्वारा लोगों को जगाने और उनमें राष्ट्र गौरव और आत्म सम्मान की भावना भरने का प्रयास किया। उदारवादियों ने पाश्चात्य विशेषकर ब्रिटिश संस्कृति का लगातार गौरवमंडित रूप में प्रस्तुत किया था। नए राष्ट्रवादियों ने इसके लिए उनकी आलोचना की और कहा कि यह सांस्कृतिक आत्म समर्पण का रास्ता है। इन लोगों ने कहा कि इससे भारतीयों में हीन भावना का जन्म होगा और स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए जो राष्ट्रीय गर्व और आत्म विश्वास अत्यंत आवश्यक है वह दमित होगा।

इस तरह इन लड़ाकू राष्ट्रवादियों ने हिंदुओं के वैदकालीन अतीत, अशोक और चंद्रगुप्त के महान शासन काल, राणा प्रताप और शिवाजी की बहादुरी, झांसी की रानी और 1857 के राष्ट्रीय विद्रोह का नेतृत्व करने वाली लक्ष्मीबाई की महान देशभक्ति की याद जगाई।

इस लड़ाकू राष्ट्रवाद के दार्शनिकों का भारत की विशिष्ट प्रतिभा में विश्वास था। उन्होंने यह स्थापना प्रस्तुत की कि भारतीय जनता की अपनी विशिष्ट भावनात्मक आध्यात्मिक चेतना है। हिंदू सर्वथा विशिष्ट है। आध्यात्मिक और शाश्वत जीवन के बारे में उनकी सहज, अंतर्ज्ञान चेतना ने उनके चरित्र को सजाया संवारा है और उसने समस्त इतिहास को रूप और रंग प्रदान किया है।[1]

पाल और अरविंद घोष के नेतृत्व में बंगाल के लड़ाकू राष्ट्रवादी स्वामी

विवेकानद के नव वेदातिक आदोलन से प्रभावित थे। 'नव वेदातवाद नव हिंदू धम का सारतत्व है, यह जीवन के ठोस पदार्थों और वास्तविक सबधा के गौरवान्वयन और आध्यात्मीकरण के द्वारा पुराने आध्यात्मिक आदर्शों को रूपायित करन का प्रयास है। इसलिए यह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक नव निर्माण की माग करता है वतमान राष्ट्रवादी आदोलन का आध्यात्मिक स्वर पूरी तरह स वेदातिक विचारधारा से लिया गया है।'[43]

इस तरह राष्ट्रवादी आदोलन, जिसका लक्ष्य था ब्रिटिश शासन से मुक्ति और प्रजातात्रिक और नए पूजीवादी अथतात्रिक आधार पर भारतीय समाज और राज्य की स्थापना, सवव्यापी धार्मिक आदोलन का ही क्रियात्मक अग होकर रह गया। राष्ट्रवाद को धार्मिक शब्दो म अभिव्यक्ति मिली और इसकी रूप सज्जा भी धार्मिक रहस्यवादी थी।

तिलक के नतृत्व मे महाराष्ट्र म भी नए राष्ट्रवाद ने भारत के सास्कृतिक अतीत की स्मृति को पुनर्जागृत करन की चेष्टा की और इसने भी पाश्चात्य सस्कृति के सम्मुख उदारवादियो के सास्कृतिक आत्म समपण की भत्सना की। लेकिन इन्होने स्वराज के आदोलन को धार्मिक रहस्यवादी पोशाक नही पहनाई। महाराष्ट्र के लोगो को वीरता और आत्मोत्सग के लिए अनुप्रेरित करने के लिए तिलक ने महाराष्ट्र की स्वतत्रता के लिए मुगल साम्राज्य के विरुद्ध किए गए शिवजी के सघप की याद दिलाई। उन्होने राजनीतिक प्रचार के लिए गणपति पूजा की प्रथा फिर से शुरू की और उसका पूरा उपयोग किया। लोगो की निष्क्रियता और जडत्व को समाप्त करने के लिए उन्होंन भगवदगीता की नई टीका प्रस्तुत की और कहा कि कम ही उसका सार भाव है। फिर भी महाराष्ट्र मे यह नया राष्ट्रवाद बगाल की तरह रहस्यवादी धार्मिक दशन मे आवष्टित नही हुआ।

गरमदल अर्थात इन लडाकू राष्ट्रवादियो ने उदारवादियो की इसलिए आलोचना की कि वे भारत की राजनीतिक मुक्ति के लिए ब्रिटेन से आशा बाधे हुए थे। गरमदल वालो न कहा कि राजनीतिक व्यवहार वास्तविक हितो, न कि अमूत सिद्धातो स निर्णीत होता है। उनका कहना था कि ब्रिटेन भारतीय उद्योग का मुक्त, अनियन्त्रित विकास नही होने देगा, और ऐसा विकास भारत की समृद्धि के लिए आवश्यक और ब्रिटिश उद्योगो के हित के विरुद्ध है। अगर ब्रिटिश सरकार सेवाओ का भारतीयकरण कर देती है तो सैकडो अग्रेजो को सीधा नुकसान होगा। राष्ट्रवादी आदोलन ही ब्रिटेन और भारत के स्वार्थों के सघप का परिणाम था। ब्रिटेन के प्रजातात्रिक विचार विवेक और परपरा का नाम लन से या बहस मुबाहसे से स्वार्थों के विरोध की वास्तविकता समाप्त नही हो जाती। लाला लाजपत राय ने कहा सवशक्तिमान प्रभु की प्राथना से शायद राजनीतिक स्वातत्र्य और राजनीतिक अधिकारो की आपकी इच्छा शक्ति अधिक हो। लेकिन शासक राष्ट्र स प्राथना की केवल यही साथकता है कि राष्ट्रो के हितो म सघप की स्थिति म राजनीतिक प्रश्नो पर आदमी

भावनाओ से आग्रह अनुरोध की निरथकता सिद्ध होती है।'[44] तिलक न दानो दला के अन्तर को बड़े स्पष्ट शब्दो मे प्रस्तुत किया 'राजनीतिक अधिकारा क लिए मघप करना होगा। नरम दल वाले सोचते हैं कि अनुनय स ये जीते जा सकते है हम सोचते ह कि य अधिकार सरकार पर अधिकाधिक दवाव डालकर ही हासिल किए जा सकते है।'[45]

लडाकू राष्ट्रवादियो ने भारतीय जनता म राष्ट्रीय चेतना का स्वर फूका। उ होने कहा कि तक और प्राथना की जमीन ऊसर है और उ होने विदेशी के बहिष्कार जसा कायक्रम अपनाया जिसमे जनसाधारण भाग ले सकें और जिससे ब्रिटिश शासक वग को नुकसान हो सके। ब्रिटिश माल के बहिष्कार की उपयोगिता और उसकी प्रभावोत्पादकता के बारे म लाला लाजपत राय ने कहा 'दुकानदारा के इस राष्ट्र पर अपने व्यापार के नुकसान का तक न्याय की आचार सहिता पर आधारित किसी भी तक की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होगा।'[46]

चूकि लडाकू राष्ट्रवादी ब्रिटन और भारत के स्वार्था को परस्पर विरोधी मानते थे, न कि सहयोगी, इसलिए महज प्रशासनिक सुधार या नौकरिया का भारतीयकरण उनका उद्देश्य नही था, उनका कहना था कि स्वराज्य या राजनीतिक मत्ता ही मूलभूत सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक प्रगति ला सकती है। दूसरे शब्दा मे व व्यवस्था का विनाश, न कि उसका सुधार, चाहते थे। ब्रिटिश सरकार से अपनी आशाओ की पूर्ति न होन की वजह स 1906 म, उदारवादिया न भी स्वराज्य की माग का समथन किया।

सावेधानिक आदोलन के बार म गरम दल वाला ने कहा कि जिस देश म निरकुश विदेशी शासन चल रहा हो वहा इसकी कोई उपयोगिता नही। भारतीय सविधान का भारतीय जनता न नहा, वरन ब्रिटिश पालियामट न बनाया था, और ब्रिटिश पालियामेट ब्रिटिश जनता की साव भौम इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए, इस सविधान पर आधारित भारतीय सरकार ब्रिटिश पालियामट के प्रति जिम्मदार थी, भारतीय जनता के प्रति नही। केवल इग्लड जसे देशा म सावेधानिक आदोलन की उपयोगिता हो सकती है जहा लाग अपने प्रतिनिधि और अपनी पालियामट चुनते ह और इसके जरिए सरकार पर अपना नियत्रण रखत है।

स्वदेशी और बहिष्कार

इन लडाकू राष्ट्रवादियो की स्वदेशी म बडी गाढी आस्था थी और उन लोगा न बडे उत्साह के साथ लागा म इसका प्रचार किया। स्वदशी के बारे म लाजपत राय। न कहा मैं इसी म अपन देश की मुक्ति निहित मानता हू। स्वदेशी आदोलन से हम आत्मसम्मान आत्मविश्वास आत्मनिभरता और पुरुषोचित गुण (इसका अत म उल्लख किया जा रहा है लेकिन यह कम महत्वपूण नही है) मिलेंग। इस आन्दोलन स हम धम, वण, जाति का विचार किए बिना समस्त भारतीया के

अन्यतम कल्याण के लिए अपनी पूजी, अपने साधन, अपने श्रम, अपनी शक्तिया, अपनी प्रतिभा का सुचारु सदुयोग करना सीखेगे। सारे धार्मिक और साम्प्रदायिक मतभेद के बावजूद हम स्वदेशी आदोलन के माध्यम से एकताबद्ध हो सकेंगे। मेरे ख्याल से, स्वदेशी को सारे सयुक्त भारत का सम्मिलित धर्म होना चाहिए।'[47]

इन नए राष्ट्रवादियो के मतानुसार, स्वदेशी देश के औद्योगिक और साधारण आर्थिक पुनर्जन्म और विकास के लिए आवश्यक था। इसके कार्यान्वयन के लिए बडे बलिदान की आवश्यकता थी, खासकर, जैसा तिलक ने कहा मध्य वर्गीय लोगो की ओर से क्योकि वे ही विदेशी माल का सर्वाधिक इस्तेमाल करते थे। तिलक ने कहा कि स्वदेशी की सफलता के लिए 'आत्म सहायता, दृढता और उत्सर्ग की आवश्यकता है।'

दूसरी तरफ, बहिष्कार आदोलन जिसे उग्र राष्ट्रवादियो ने वैचारिक और सागठनिक रूप दिया, पूरी तरह, कट्टर ब्रिटेन विरोधी था। इसका कार्यक्रम बडा व्यापक था। इसने केवल ब्रिटिश माल के परित्याग की ही बात नही की, वरन उपाधियो सरकारी ओहदो और काउसिलो के बहिष्कार का भी नारा दिया। बहिष्कार आदोलन के नेताओ ने बग विभाजन वापस लेने और दमनात्मक कारवाई बद करने के लिए सरकार को बाध्य करने के लिए इस अस्त्र का इस्तेमाल किया।

लाला लाजपत राय ने बहिष्कार आदोलन के महत्व की निम्नाकित व्याख्या की सरकार के लिए उसकी प्रतिष्ठा भावना का प्राथमिक महत्व है और बहिष्कार आदोलन इस प्रतिष्ठा भावना की जड पर कुठाराघात करता है। वह भ्रातिजन्य भावना जिसे प्रतिष्ठा कहते हैं, वास्तविक अधिकार से कही अधिक सशक्त और समर्थ है और 'बायकाट' के द्वारा हम इस प्रतिष्ठा भावना को समाप्त करना चाहते है हम गवनमेंट हाउस से विमुख होकर लोगो की झोपडियो की ओर जाना चाहते है। जहा तक सरकार से आग्रह अनुरोध का सवाल है हम उससे कुछ लेना-देना नही, हमारा आग्रह अनुरोध तो जनसाधारण को निवेदित है। यही बायकाट आदोलन का मनोविज्ञान है। यही उसका आचारशास्त्र और यही उसका आध्यात्मिक महत्व है।'[48] इस तरह बायकाट आदोलन का प्राथमिक उद्देश्य था स्वराज्य प्राप्त करने के लोगो के लडाकू दृढ सकल्प को जागृत करना।

लडाकू राष्ट्रवाद के बारे मे जवाहरलाल नेहरू के विचार

हिंदू धर्म और हिंदू इतिहास की परपराओ को स्वराज आदोलन का आधार बनाने के लिए नए राष्ट्रवाद के प्रणेताओ की बाद मे बडी कडी आलोचना हुई। आलोचको का विचार था कि इसके कारण राजनीति मे रहस्यवाद और धार्मिक रूढिवादिता का प्रवेश तो हुआ ही साथ ही मुसलमान, जो आबादी के लगभग तिहाई भाग थे, राष्ट्रीय आदोलन से विमुख हो गए। इस मनोवृत्ति के

राजनीतिक आदोलन के धम निरपेक्ष तत्व भी कमजोर हुए।

राष्ट्रीय आदोलन की आत्मा के रूप म सनातन धम के आग्रह और आधुनिक 'पाश्चात्य' सभ्यता की तुलना म पुरातन हिंदू सभ्यता की कल्पित आध्यात्मिक श्रेष्ठता की घोषणा से (इसे आधुनिक मनोवैज्ञानिक अवश्य अनुपूरक विभ्रम का नाम देंग) अनिवायत राष्ट्रीय आदोलन और राजनीतिक चेतना की प्रगति अवरुद्ध एव क्षीण हुई। साथ ही, राष्ट्रीय आदोलन स मुसलिम आबादी के बहुत बडे अश के अलग रहने का एक कारण यह भी था कि हिंदू धम पर बहुत अधिक जोर दिया गया।[49]

बी० सी० पाल और अरविंद घोष के नेतत्व म बगाल का वामपक्षी राष्ट्रवाद हिंदू धम के धार्मिक रहस्यवाद पर आधारित था। इसके कारण अनेक राष्ट्रवादी जो अन्यथा इसका समथन करते, इसस विमुख होकर उदारवादियो के साथ रह गए। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार इसी कारण पडित मोतीलाल नेहरू 1907 मे राष्ट्रवादी आदोलन से अलग रहे। 'इन आन्दोलनो की पृष्ठभूमि धार्मिक राष्ट्रवाद की थी जो उनकी प्रवत्ति के प्रतिकूल थी। वे भारत के अतीत के पुनरुज्जीवन के पक्ष म नही थ सामाजिक दृष्टि से 1907 म भारतीय राष्ट्रवाद का पुनज म निश्चय ही प्रतिक्रियावादी था।[50]

राष्ट्रवादी आदोलन लोगो के धम निरपेक्ष हितो के कायक्रम पर आधारित होना चाहिए। तभी सारा देश जाति और सप्रदाय से ऊपर उठकर एक हो कक्षा म आ पाता है। 'राष्ट्रीय आदोलन का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कायक्रम, धार्मिक सबधो और लगावो से अलग और ऊपर हटकर भी, भारत की जनता के विभिन्न अगो को सूत्रबद्ध कर सकता है और उसे ऐसा करना चाहिए। इस वक्त ऐसा सशक्त, धम निरपेक्ष, आधुनिक, सयुक्त प्रजातात्रिक आदोलन साम्प्रदायिकता को रोकने म सर्वाधिक समथ हो सकता है।[51]

1905 और उसके तुरत बाद के युग मे मुसलमान राष्ट्रीय आदोलन म शामिल नही हुए। इसकी यह भी वजह थी कि भारतीय राष्ट्रवाद के नेताओ न खुले शब्दो म हिंदू विचारतत्व को इसका आधार बनाया। पाल अरविंद और दूसरे नेताओ न अपने आदोलन को हिंदू धम की बुनियाद पर खडा करने की कोशिश की और राष्ट्रीय जागरण और हिंदू धम के पुनजन्म को एक माना। उनके इस कम स मुसलिम जनता राष्ट्रीय आदोलन से विमुख हुई और 1906 म मुसलिम लीग की स्थापना की सरकारी, धूततापूण चाल के लिए रास्ता साफ हुआ।'

लडाकू राष्ट्रवादियो म स्वतत्रता के लिए अतीव आत्मोत्सग और कष्ट सहन की असीम शक्ति थी। व राष्ट्रीय आदोलन के पहले शहीद थे। उनका कायक्रम ही ऐसा था कि उन्हान सरकार के साथ सीधी टक्कर ली। वे जल गए, उन्हे देश निकाला मिला और उन्हान बडी तकलीफ झेली। अपने आदर्शों और कायक्रम के प्रति अपनी लगन और आसक्ति के कारण व जनता के पूज्य बने और घर घर म

उन्होंने [illegible] । हर वर्षों में [illegible] को उन्होंने प्रेरणा मिली। वे स्वराज की लड़ाई के कुशल [illegible] थे। तिलक [illegible] अरविंद और [illegible] घोष, [illegible] नए राष्ट्रवाद के [illegible] थे और उन्होंने स्वराज को [illegible] के लिए अपना जीवन न्योछावर कर दिया। तिलक [illegible] उन्होंने सबसे अधिक [illegible] [illegible], [illegible] के लिए राजनीतिक [illegible] के प्रतीक थे।

नए उग्रवाद ने भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को लड़ाकूपन और स्वदेशी [illegible] को नई दिशा दी। इससे भारतीय राष्ट्रवाद का गौरव [illegible] बढ़ी और भावना मिली [illegible] बाद उनमें आत्मविश्वास [illegible] बढ़ा। इससे भारतीय जनता ने सीखा कि कष्ट के बिना स्वराज नहीं मिल सकता। यह नया राष्ट्रवाद [illegible] और कुछ हद तक आम जनता के भी कुछ हिस्सों को अपनी परिकक्षा में समेट सका। 1908 में बंबई के कपड़ा मिल मजदूरों ने तिलक की गिरफ्तारी के विरोध में [illegible] हड़ताल की और यह भारतीय मजदूर वर्ग का पहला राजनीतिक कार्य था।' लेनिन ने इस हड़ताल का अभिनंदन किया।

लड़ाकू राष्ट्रवादियों के प्रमुख कार्य

अब हम इन नए राष्ट्रवादी दल के क्रियाकलाप का संक्षिप्त सिंहावलोकन करेंगे। तीक्ष्ण बुद्धि सबल राजनीतिक यथार्थवाद दुर्दम्य इच्छाशक्ति और वाक्शैली के कारण तिलक इस दल के सबसे बड़े नेता माने गए हैं। अपने शुरू के दिनों में चिपलूणकर और आगरकर जैसे महान राष्ट्रवादियों से काफी प्रभावित थे। 1882 में राजनीतिक यातना से उनका प्रथम साक्षात्कार हुआ। आपत्तिजनक लेख प्रकाशित करने के लिए उन्हें आगरकर के साथ चार महीने जेल की सजा भुगतनी पड़ी।

तिलक न्यू इंगलिश स्कूल और फर्ग्युसन कालेज से संबंधित थे। इन दोनों शिक्षण संस्थाओं के सदस्य प्रगाढ़ देशभक्ति और आत्मत्याग की भावना से अनुप्राणित थे। 1880 में तिलक ने 'केसरी' (मराठी साप्ताहिक) और 'मराठा' (अंग्रेजी साप्ताहिक) की स्थापना की। इनके माध्यम से नए राष्ट्रवाद के सिद्धांतों और नीतियों का जमकर प्रचार किया गया।

तिलक ने 1893 में गणपति पूजोत्सव फिर शुरू कराया। इन उत्सवों की आड़ में व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन संगठित हुआ। 'व्याख्यान, जुलूस, गीत पार्टियां इस उत्सव के आवश्यक अंग हैं। इनसे लोगों की धार्मिक भावना की ही अभिव्यक्ति नहीं होती राष्ट्रीय भावना का भी पोषण होता है, और रोजमर्रे के प्रमुख सवालों में रुचि पैदा होती है।'[33]

तिलक ने 1895 में शिवाजी उत्सव को भी फिर से शुरू कराया। इस पुनर्जन्म का राजनीतिक लक्ष्य था, मुगलों के प्रभुत्व से महाराष्ट्र को मुक्त करने [illegible] शिवाजी की स्मृति को पुनरुज्जीवित करना, और इस तरह लोगों [illegible] शासन से मुक्ति के वीर संकल्प को जाग्रत करना।

उन्नीसवीं सदी के अंत में महान दुर्भिक्ष काल में तिलक और [illegible]

ने जमकर सहायता कार्य किए। तिलक ने परोक्षत ही सही, लोगों को यह राय भी दी कि उन्हें सरकारी बकाया तभी चुकाना चाहिए जब उनके लिए यह आर्थिक दृष्टि से सम्भव हो। 'रानी विक्टोरिया किसी की मृत्यु नहीं चाहती, लाट साहब कहते हैं सब जिंदा रहें, वैसी हालत में क्या आप स्वयं भय और भुखमरी के द्वारा आत्महत्या करना चाहेंगे? यदि आपके पास सरकारी बकाया चुकाने के लिए पैसा है तब तो आप बकाया चुका दें, लेकिन अगर आपके पास सरकारी बकाया देने के लिए पैसा नहीं है तो क्या आप कुछ अवर अधिकारियों के कल्पित क्रोध से बचने के लिए अपना मालमत्ता बेच देंगे? मौत के मुंह में भी पहुंच कर क्या आप हिम्मत से काम नहीं लेंगे?'[51]

उन्हीं दिनों भारत में प्लेग की महामारी भी फैली। इससे भिडने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदमों से लोगों में काफी रोष आया। तिलक ने केसरी में सरकारी उपायों की तीव्र आलोचना की। कुछ ही दिनों बाद आतंकवादियों ने लेफ्टिनेंट आयर्स्ट और स्वास्थ्य अधिकारी रैंड को गोली मार दी। इस सिलसिले में चफेकर बंधुओं को गिरफ्तार किया गया और उन्हें बाद में मौत की सजा मिली। सरकार का खयाल था कि तिलक के प्रचार कार्य से आतंकवादी कार्यवाही के लिए वातावरण तैयार हो रहा है। 1895 में राजद्रोह के आरोप पर तिलक को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें अठारह महीने की कैद की सजा मिली। जिन दिनों तिलक जेल में थे सरकार ने इंडियन पीनल कोड (भारतीय दंड संहिता) में सेक्शन 124 (ए) और 153 (ए) जोड़े।

बीसवीं सदी के शुरू के वर्ष तूफानी थे। प्लेग और दुर्भिक्ष के समय पर्याप्त सहायता दे सकने में सरकारी असफलता के कारण लोगों में तेजी से राजनीतिक असंतोष बढ़ा था। कांग्रेस की मांगें लगातार ठुकराई जा रही थीं जिससे उदार वादियों की कार्यपद्धति और उनके कार्यक्रम के प्रति, राजनीतिक तौर पर सचेत बुद्धिजीवियों में लगातार संशय और अनास्था का जन्म हो रहा था। शिक्षित भारतीय बहुत बड़े पैमाने पर यूरोपियन इतिहास का अध्ययन कर रहे थे, जिसमें फ्रांस की राज्यक्रांति अमरीका के स्वतंत्रता संग्राम आस्ट्रियन प्रभुत्व के विरुद्ध इटालियन जनता के राष्ट्रीय क्रांतिकारी संघर्ष, आइरिश लोगों की स्वतंत्रता की लडाई आदि का भी इतिहास था। वे लोग टाम पेन, मैजिनी वाल्तेयर रूसो इत्यादि की रचनाएं भी पढ़ रहे थे। उनमें जो नई राजनीतिक दृष्टि विकसित हो रही थी उसके परिणामस्वरूप वे एक तरफ तो नए राष्ट्रवादी विचार की ओर मुड़ रहे थे और दूसरी ओर षड्यंत्रकारी आतंकवाद की ओर। लार्ड कर्जन के शासनकाल की सरकारी नीति के कारण जनता के असंतोष की आग और भड़की। बंग विभाजन ने तो इस ज्वाला को वृहद अग्निकांड में परिणत कर दिया।

विविध विचारधारा के भारतीय राजनीतिज्ञ इस बात पर सहमत थे कि कलकत्ता कारपोरेशन ऐक्ट द्वारा लार्ड कर्जन स्थानीय स्वायत्त शासन पर कुठाराघात कर रहे थे, इंडियन युनिवर्सिटीज एक्ट द्वारा उच्च शिक्षा को सीमित करने

का प्रयास कर रहे थे, और बंग विभाजन द्वारा बंगाली जनता की राजनीतिक एकता को खतम करना चाहते थे। माननीय श्री चौधरी ने कहा कि बंग विभाजन हिंदुओं और मुसलमानों में विभेद लाएगा। लार्ड कर्जन के अनुसार लगता है भारत जातिगत शत्रुता के आधार पर ही संयुक्त रह सकता है बंग विभाजन का यही कारण था ढाका में मुसलिम शासन केंद्र और कलकत्ता में हिंदू शासन केंद्र, एक दूसरे के प्रतिस्पर्द्धी।'[55] बंग विभाजन का सबने विरोध किया। सारे राजनीतिक दलों ने इसके खिलाफ संयुक्त संघर्ष किया। कवि रवींद्रनाथ टैगोर, न्यायाधीश सर गुरुदास बनर्जी, और मेमनसिंह एवं कासिम बाजार के महाराजाओं ने भी विरोध में साथ दिया।

बंग विभाजन विरोध के आंदोलन के सिलसिले में स्वराज, स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के नारे सामने आए। तिलक ने इस कार्यक्रम के लिए धनघोर प्रचार किया और कांग्रेस के 1906 के कलकत्ता अधिवेशन से सिफारिश की कि यह कार्यक्रम स्वीकार हो। दादाभाई नौरोजी और दूसरे उदारपंथी नेताओं ने भी इसका समर्थन किया और यह मंजूर भी हो गया। इसके बाद तिलक राष्ट्रीय आंदोलन के अखिल भारतीय नेताओं में प्रमुख और अग्रणी हो गए।

तिलक, पाल, अरविंद, वारींद्र, लाजपत राय आदि सारे राष्ट्रवादी नेताओं ने समाचारपत्रों और भाषणों के माध्यम से 'बायकाट' को जनप्रिय बनाने के लिए देशव्यापी प्रयास किए। आंदोलन सफल रहा और इससे ब्रिटिश माल की खपत बेतरह घटी और भारतीय उद्योगों को बल मिला। दि इंगलिश मैन नामक कलकत्ता के आंग्ल भारतीय पत्र ने लिखा

'यह बिलकुल सही है कि कलकत्ता के गोदामों में कपड़े भरे हैं जिनकी बिक्री नहीं हो पाती। कई प्रसिद्ध मारवाड़ी फर्म बिलकुल बर्बाद हो गए हैं, और कई बहुत बड़े बड़े यूरोपियन आयात गृहों (कंपनियों) को या तो अपनी कुछ शाखाओं को बंद कर देना पड़ा है या उनमें व्यापार को बहुत सीमित कर देना पड़ा है। बायकाट राज्य के दुश्मनों के हाथ में बड़ा सशक्त हथियार है देश के ब्रिटिश हितों को नुकसान पहुंचाने का '[56]

आंदोलन बड़ी तेजी से बढ़ा। ब्रिटिश व्यापार काफी घटा। जनसभाओं, प्रदर्शनों और हड़तालों का सिलसिला लग गया। बंबई में तिलक के 'केसरी' और 'मराठा' ने एवं बंगाल में 'संध्या', 'वंदेमातरम', और 'जुगांतर' ने लोगों को नई दृष्टि और नए कार्यक्रम की दीक्षा दी।

सरकार ने अधिकाधिक तेजी से बढ़ते हुए दमन का रास्ता अपनाया। कार्यवाही आदेश द्वारा बंगाल प्राविंशियल कान्फ्रेंस को भंग कर दिया गया। नेताओं और आंदोलन के प्रचारकों और संगठनकर्ताओं को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया।

खासकर बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब में आतंकवादी दलों का उदय हुआ जिन्होंने काफी काम किया। राजनीतिक डकैतियां और अफसरों की हत्या भी की

गइ। इन दिनो के क्रांतिकारी और आतकवादी आदोलनो का सक्षिप्त इतिहास आगे दिया जाएगा।

काग्रेस मे फूट, 1907

1907 मे काग्रेस म उदारवादियो और वामपथी राष्ट्रवादियो म फूट हो गई। यह विभाजन अवश्यभावी था क्योकि उदारवादियो ने नए राष्ट्रवादियो की विचारधारा और कायपद्धति को स्वीकार नही किया, यद्यपि सरकार की कायवाही से उनका भी लगातार मोहभग होता रहा था।

1907 म काग्रेस का दो दिनो का तूफानी सूरत अधिवेशन हो हल्ला के साथ समाप्त हो गया। उदारवादियो न शीघ्र ही सम्मेलन बुलाया जिसम पारित प्रस्ताव म कहा गया

> जसा स्वायत्त शासन ब्रिटिश साम्राज्य के अय देशो म है वसा ही भारत म स्थापित करना इडियन नेशनल काग्रेस का अतिम लक्ष्य है। यह इस उद्देश्य की पूर्ति क लिए कटटर सावैधानिक तरीको से ही वतमान प्रशासनिक व्यवस्था म क्रमिक, सयमित सुधार क रास्ते आगे बढेगा।

उग्रवादियो का कहना था कि उह काग्रेस स अलग रखन के लिए उदारवादियो ने इस आशय का सविधान अपनाया था।

1907 के बाद सरकार की दमनात्मक कायवाही म तजी आई। 1907 म इसने सेडीशस मीटिंगस (राजद्रोहात्मक सभा) एक्ट और 1910 म इडियन प्रेस ऐक्ट पारित किया। बगाल म वदमातरम 'जुगातर' आदि कई अखबार सरकार द्वारा बद कर दिए गए। मित्रा, ए० क० दत्त, एस० चक्रवर्ती और पी० बी० दास जसे कई प्रख्यात नताओ को देश निकाला मिला। एक क्रातिकारी षडयत्र स सबद्ध होन क आरोप पर 1908 म अरविद घोष को गिरफ्तार कर लिया गया लकिन सबूत के अभाव म उह छोड दिया गया। फिर किसी नए आरोप पर उह गिरफ्तार किया जा सके इसक पहले ही व ब्रिटिश भारत छोडकर पाडिचरी म जा बसे।

नए राष्ट्रवाद क दुदम्य नता थ और जो स्वराज्य हमारा जमसिद्ध अधिकार है और हम इस लकर रहग नार क ज मदाता तिलक को अपन पत्र म प्रकाशित एक लख क लिए 1908 म छ वष की सजा मिली और उह मडाल भेज दिया गया। यायालय म अपन भाषण के क्रम म तिलक ने कहा 'नियति की निणायक कुछ अय उच्चतर शक्तिया ह और विधि का यही विधान होगा कि जिस लक्ष्य के लिए मैं सघषशील हू वह मेरी मुक्ति की अपक्षा मरी यातनाओ क जरिए ही अधिक आसानी स उपलब्ध हो।'[157] मडाल जल म तिलक न दि आर्कटिक होम आफ द वदाज और गीता रहस्य नामक पुस्तकें लिखी। इन पुस्तको म उनक प्रगाढ दाशनिक और एतिहासिक ज्ञान और अतर्बुद्धि का परिचय मिलता है।

पजाब म लाहौर, लायलपुर और रावलपिडी म कनाल कालनी बिल और अन्य कारणा स किसानो के दगे हुए और लाला लाजपत राय एव अजीतसिंह को प्रात के बाहर भेज दिया गया।

मार्लि मिटो रिफाम् स और उसके वाद

चूकि दमन नीति के बावजूद आदोलन बढता ही जा रहा था इसलिए राजनीतिक समझदारी इसी म थी कि कुछ सुधारा के द्वारा राष्ट्रवादिया का मन जीतने की कोशिश की जाए। मार्लि मिटो सुधार के जरिए सरकार ने केंद्रीय और प्रातीय विधायिका परिषदा म कुछ निर्वाचित सदस्यो का विधान किया, यद्यपि य परिषद केवल राय दे सकती थी इनके पास काई निर्णायक शक्ति नही थी।

उग्रवादिया ने इन सुधारा को असतोषजनक कहा, लेकिन नरम दल वाला ने इनका अभिनदन किया। इन सुधारा से कुछ हद तक ब्रिटिश सरकार की नीयत और प्रतिज्ञाओ म नरम दल की आस्था वापस आई जो ब्रिटिश सरकार की हाल की कारवाइयो से खतम हो रही थी। 1911 म वग विभाजन को रद्द कर देन से यह आस्था कुछ और मजबूत हुई।

1914 मे पहला विश्वयुद्ध शुरू हुआ। हाउस आफ कामस म सक्रेटरी आफ स्टेट ने घोषणा की कि ब्रिटिश नीति का लक्ष्य है भारत म क्रमश जिम्मेदार सरकार की स्थापना।'

युद्ध मे भारतीय बुर्जुआजी से और अधिक मदद लेने के लिए सरकार ने 1916 म सूती वस्त्रा पर 3½% आयात शुल्क लगाया, जिससे भारत क कपडा उद्योग के विकास को काफी बल मिला।

लेकिन इन सब कार्यो स वामपथी राष्ट्रवादी तत्त्व सतुष्ट नही हुए और लडाइ के दरम्यान वे स्वराज का अपना सघर्ष चलाते रहे। 1914 म जेल स निकलन पर तिलक न भारत म होमरूल के लिए आदोलन शुरू किए और 1916 म पूना म होमरूल लीग की स्थापना की। 6 महीन बाद एनी बसेंट न मद्रास म आल इडिया होमरूल लीग की शुरुआत की।

1916 के लखनऊ काग्रेस म काग्रेस के नरम दल और गरम दल वाले फिर से एक हो गए। लेकिन यह एकता कुछ ही दिन चली। इस काल की एक अन्य महत्वपूर्ण घटना है 1916 म काग्रेस और मुसलिम लीग का सहयोग, जिस लखनऊ पैक्ट या काग्रेस लीग योजना के नाम स जाना जाता है। ब्रिटन तुर्की के खिलाफ युद्ध म लगा था और तुर्की म मुसलिम राज्य था इसलिए ब्रिटन के खिलाफ मुसलमानो म काफी रोष था। लीग और काग्रेस की सयुक्त योजना के अनुसार काउसिला म चुन हुए सदस्यो क बहुमत काउसिला का और अधिक अधिकार, वायसराय की कार्यकारिणी म आधी सदस्यता क भारतीयकरण, आदि सुधारा की माग की गई। मुसलिम लीग और काग्रस की राजनीतिक एकता का महत्व है। मुहम्मदाबाद के राजा मजहरुलहक, ए० रसूल और जिन्ना लीग क नता थ।

होमरूल आदोलन सरकार की दमन नीति का लक्ष्य बना हुआ था। वेसेंट के 'यू इडिया' से जमानत की बहुत बडी रकम मागी गई और वह जब्त कर ली गई। 1917 मे एनी वेसेंट का उटकमड म नजरबद कर लिया गया। उनकी और वाडिया एव अरुडले जसे अय नताओ की नजरवदी से होमरूल लीग काफी जनप्रिय हुआ और कुछ दिना बाद जिना भी इसम शामिल हो गए। 1917 म तिलक और पाल को पजाब और दिल्ली स वाहर चले जाने का आदेश दिया गया।

1918 म उदारवादियो ने काग्रेस मे सबध विच्छेद कर लिया और लिवरल फेडरेशन की स्थापना की। हाल ही म घोषित मोटेग्यु चेम्सफोड रिफाम स के बारे मे मतभेद के कारण ही यह फूट पडी थी। उदारवादी नए सुधारो के अनुसार विधान के कार्यान्वयन के पक्ष म थे, लेकिन 1918 के काग्रेस अधिवेशन ने इन सुधारा के बहिष्कार का प्रस्ताव लिया।

आतकवादी और क्रातिकारी आदोलन का उदय

राष्ट्रीय आदोलन के अगल चरण की प्रमुख घटनाआ के अवलोकन के पहले, बीसवी सदी के प्रथम दशक म जो क्रातिकारी और आतकवादी आदोलन हुए थे, उनका सक्षिप्त विवरण आवश्यक है। उदारवादिया के कायक्रम और काय रीति की असफलता स हुए मोहभग यूरोप के देशो के क्रातिकारी आदोलनो तथा रूसी शून्यवादियो एव अय यूरोपियन गुप्त दलो द्वारा अपनाए गए षडयत्रकारी आतकवादी तरीका के अध्ययन ने कुछ भारतीया को हिंदुस्तान म भी आतकवादी सगठन और कायप्रणाली की प्रेरणा दी।

कजन के शासनकाल म सरकार द्वारा उठाए गए कदम और राष्ट्रीय आदोलन क विरुद्ध की गई दमनात्मक कारवाई के कारण उदारवादी लोग भी लडाकू बहिष्कार आदोलन का समथन करने लग लोगा म विक्षोभ फला और उन्होने राजनीतिक आतकवाद का रास्ता अपनाया। इनके कायक्रम म राजनीतिक हत्या भी शामिल थी खासकर बदनाम अफसरो की। एसी उम्मीद की जाती थी कि अफसरशाही म आतक फलगा और उनका मनोबल कमजोर होगा। इन आतकवादियो का यह भी खयाल था कि अगर राजनीतिक हत्या का कायक्रम बडे पैमाने पर अपनाया जाए तो उससे सशस्त्र क्राति क लिए उपयुक्त वातावरण तयार होगा। धनी भारतीया और सरकार स पसा लने की नीयत स सशस्त्र डकती भी इनके कायक्रम म शामिल थी। गुप्त सस्थाआ बम बनान की प्रयोगशालाओ हथियार बनान क लिए कारखाना आदि की स्थापना और सचालन क लिए द्रव्य की जरूरत थी। कुछ एस क्रातिकारी दला का भी जन्म हुआ जिनका कायक्रम अधिक व्यापक था। य फौज म विद्रोह और किसाना की बगावत कराना चाहत थ।

बगाल पजाब और महाराष्ट्र इन क्रातिकारी और आतकवादी कायवाहिया

के मुख्य केंद्र थे। बगाल आतकवाद का तूफानी केंद्रबिंदु था सभवत इसलिए कि बगाल म शिक्षित नौजवान बहुत बडी तादाद म बेकार थे और सभवत इसलिए भी कि बगाली चरित्र विशेष रूप से भाव प्रवण है। क्रातिकारियो और आतकवादियो ने भारत के बाहर लदन, पेरिस और न्यूयाक म भी अपने केंद्र स्थापित किए थे। अब हम सक्षेप म इन आदोलनो से सबधित प्रमुख आख्याना और घटनाओ की चर्चा करेगे।[58] 1897 मे पूना म रड और आयस्ट की हत्या की पहले ही चर्चा की जा चुकी है।

श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 1905 म लदन म इडियन होमरूल सोसायटी की और कुछ ही दिनो बाद हाइगेट म इडिया हाउस की स्थापना की। दोनो क्रातिकारी केंद्र थे। यहा क्रातिकारी साहित्य और हथियार तयार किए गए जो अवैध तरीके से भारत भेजे गए। भारत मे नाजायज रूप से भेजे गए एसे एक पफलेट का नाम था 'वदे मातरम्' जिसम कजन वाइली की हत्या की प्रशसा की गई थी। वाइली इडिया आफिस का अधिकारी था और 1909 म इडिया हाउस के सदस्य ढीगरा न उसकी हत्या की। इस पुस्तिका म राजनीतिक आतकवाद की भूमिका के बारे म कहा गया 'हिंदुस्तानी और अग्रेज हर तरह के सरकारी अधिकारी को आतकित किए रहो और तब अत्याचार के समूच यत्र का विनाश समीप होगा अलग अलग हत्याओ का तरीका अफसरशाही को क्रियाहीन बनाने और लोगो को जगान का सबसे अधिक कारगर सभव तरीका है।'[59]

वी० डी० सावरकर इग्लड म कृष्ण वर्मा क बहुत बडे सहयोगी थ। वी०डी० सावरकर के भाई जी० डी० सावरकर हिंदुस्तान म थे। उन्ह क्रातिकारी काय के लिए जिंदगी भर के लिए देश निकाले की सजा मिली। उसी साल नासिक म जैक्सन पर, जिसने सावरकर को सजा दी थी गोली चलाई गई। इस सिलसिल म चलाए गए नासिक षड्यत्र कस म का हर को मृत्यु की और सत्ताइस अन्य आदमियो को जेल की सजा मिली। 1909 म तत्कालीन वायसराय लाड मिंटो की हत्या का प्रयास हुआ।

बगाल म यह आदोलन काफी लोकप्रिय हुआ। रोलट रिपोट के अनुसार अनुशीलन समिति आतकवादियो का प्रमुख सगठन थी। कलकत्ता और ढाका म इसक मुख्य केंद्र थे, यों सारे प्रात मे इसके और भी कई छोट मोट केंद्र थ। अनुशीलन समिति ने क्रातिकारी साहित्य का प्रचार और गुप्त दलो का सगठन किया।

बग विभाजन के बाद के दिनो बगाल म आतकवादी काफी सक्रिय रह। बम और पिस्तौल आतकवादियो क प्रमुख हथियार थे और उनकी वजह स बहुत सार पुलिस अफसरो, मजिस्ट्रेटो मुखबिरो और सरकारी वकीलो को भी जान स हाथ धोना पडा। अलीपुर षडयत्र कस के मुखबिर गोसाइ और इस मुकदम स स॰ पुलिस, वकील तथा आर ी अधीक्षक बाद म आतकवादियो द्वारा मार गए। इस प्रात म इस तरह के कई षड्यत्र केस हुए, जिनस पता चलता

क्रातिकारी दलो की कार्यवाही कितनी व्यापक थी।

अरविंद और वारीन्द्र घोष जैसे कुछ राष्ट्रवादी नेताओ के वारे म सदेह था कि वे आतकवादी और क्रातिकारी आदोलनो के वडे करीव थे। 1908 म षडयत्र के आरोप पर अरविंद को गिरफ्तार किया गया, लेकिन सवूत की कमी के कारण उन्ह रिहा कर दिया गया। वाद म वे ब्रिटिश भूक्षेत्र छोडकर पाडिचेरी म रहने लगे। मार्लि मिटो रिफार्म स और 1911 म वग विभाजन के समाप्त हो जाने के वाद भी वगाल म आतकवाद जीवित रहा।

पजाव म क्रातिकारी दल 1907 म वने। इनम वहुत सारे क्रातिकारी आर्य समाजी थे। 1912 के वाद कुछ मुसलमान भी इस आदोलन म शरीक हुए। हरदयाल 1910 म यूरोप से भारत लौटे और उन्होने पजाव म क्रातिकारी दल सगठित किए। इस कार्य म उन्ह खासकर रासविहारी और अमीनचद स मदद मिली। 1911 म लाहौर म, एक वम विस्फोट के सिलसिले म अमीरचद और अन्य लोग गिरफ्तार हुए उन पर मुकदमा चला और उन्ह फासी की सजा मिली। दिल्ली म तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग की हत्या की चेष्टा हुई।

1911 म अमरीका पहुचने के वाद हरदयाल न वहा क्रातिकारी सगठन वनाए और 1914 म सनफ्रासिस्को से 'गदर' (विद्रोह) नामक पत्र निकालना शुरू किया। अमरीका सरकार ने उन्ह 1914 म गिरफ्तार कर लिया। उन्ह जमानत पर छोडा गया और तव वरकतुल्ला के साथ वे स्विटजरलैड भाग गए। उनके जाने के वाद रामचद्र गदर आदोलन के नेता हुए।

गदर पार्टी के लोग अमरीका म रहने वाले भारतीयो के वीच आप्रवास कानूनो के विरुद्ध आदोलन सगठित कर रहे थे। 1914 म, कई भारतीय यात्रियो, खासकर सिक्खो और मुसलमानो को लेकर, 'कामागाटा मारू' नामक जहाज हागकाग स वैनकुवर के लिए रवाना हुआ। जव जहाज वैनकुवर पहुचा तो कनाडा की सरकार ने यात्रियो को उतरने नही दिया। सरकार का कहना था कि उसके आप्रवास सवधी कानून इन यात्रियो को कनाडा आने की अनुमति नही देते। जहाज जवरदस्ती वदरगाह स वाहर भेज दिया गया। हागकाग म वदले जहाज कलकत्ता लाया गया जहा सरकार ने उन्ह सीधे पजाव पहुचा देने के लिए पहले स ही गाडी ठीक कर रखी थी। करीव तीन सौ सिक्खो न पजाव जाने स इकार कर दिया। फलस्वरूप जो गोली चली उसम अठारह आदमी मारे गए। वाद म कुछ सिक्ख गिरफ्तार कर लिए गए। जो पजाव वापस गए वे भी काफी क्रुद्ध थे। उन्होने क्रातिकारी केंद्र वनाए और लोगो म क्रातिकारी आदोलन सगठित किए।

इन क्रातिकारी दलो न 1914 15 म पजाव और अन्य प्रातो म भी कई प्रकार के काय किए, जैसे सशस्त्र डकैती, पुलिस अधिकारियो की हत्या, पजाव की सैनिक टुकडियो और मेरठ तथा कानपुर जैसे सैनिक केद्रो म क्रातिकारी प्रचार आदि।

सरकार न 1915 म डिफेंस आफ इंडिया एक्ट पारित किया, जिसम

अधिकारिया को नजरबदी का अधिकार मिला। सरकार ने विशेष ट्राइब्यूनल्स भी बहाल किए जिन्होने बाद म बीस आदमियो को मौत की, अट्ठावन को आजीवन कारावास की और अट्ठावन को थोडे दिना के लिए कैद की सजा दी।[60] इसके बाद क्रातिकारी आदोलन क्षीणप्राय हो गया।

गदर के नताओ ने न्यूयाक और शघाई के जमन कौसल स राजनीतिक सपक स्थापित किया। 1915 मे रगून के एक बलूच रेजिमेट और सिंगापुर की पाचवीं लाइट इनफट्री म विद्रोह के बीज बोने म भी उन्ह सफलता मिली, लेकिन विद्रोह दबा दिए गए।

मौटेग्यु-चेम्सफोड रिफाम् स

मौटेग्यु चेम्सफोड रिपोट 1918 म प्रकाशित हुई। इस प्रतिवेदन पर आधारित रिफाम् स ऐक्ट अगले साल पारित हुआ। इस रिपोट ने द्वैतप्रथा शुरू की, जिसके अनुसार प्रातीय सरकार के अधीनस्थ विषय दो भागो म बाट दिए गए, हस्तातरित' और 'सुरक्षित'। हस्तातरित विषय मत्रिया के जिम्मे दिए गए जो निर्वाचित विधायिका सभा के प्रति जिम्मेदार थे। इनम स्थानीय शासन, जन स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे विषय थे। वित्त, भू राजस्व, पुलिस इत्यादि सुरक्षित विषय थे, जो मत्रिया क नियत्रण म नही थे।

इन सुधारो की आलोचना का प्रमुख यह आधार था कि सबसे अधिक महत्व-पूण विषय सुरक्षित रखे गए थे और हस्तातरित' विषया म भी वास्तविक प्रगति के लिए वित्त की आवश्यकता थी जो मत्रियो के नियत्रण के बाहर था। इस प्रति वदन मे काग्रेस और लीग की उन मागा की कोई सुनवाई नही थी, जो काग्रेस और लीग की सम्मिलित योजना म प्रस्तुत की गई थी। इस योजना म भारत क लिए आत्मनिर्धारण के सिद्धात और आत्मशासन की भी माग की गई थी।

मुस्लिम लीग न मौटेग्यु-चेम्सफोड रिपोट को अस्वीकार कर दिया और 1918 म काग्रेस लीग योजना दुहराई। इडियन नेशनल काग्रेस न 1918 के अत म अपना अधिवेशन किया, और इसम यह प्रस्ताव पारित किया गया कि भारत का प्रगतिशील राष्ट्र माना जाए और उस आत्मनिधारण का अधिकार दिया जाए।' दिल्ली काग्रेस न भी भारत के लिए पूण उत्तरदायी सरकार की माग का प्रस्ताव पारित किया। इसने भी काग्रेस लीग योजना की बातें दुहराईं।

युद्ध और युद्ध क बाद भारतीय जनता मे असतोष फैला। युद्ध का वित्तीय भार, मूल्या म वृद्धि, मुनाफाखोरी आदि से जनसाधारण की आर्थिक तक्लीफें काफी तजी स बढी। युद्ध के बाद बडे भयकर रूप म इनफ्लुएजा की महामारी आई जिसम बहुत सारे लोग मरे।

लडाई के बाद जमनी, आस्ट्रिया और रूम म क्रातिया हुइ, जिनके फलस्वरूप होहनजालन, हैप्सबग और रोमानोव राजवश राजच्युत हो गए। इन क्रातिया का एशिया के लोगो क दिमाग पर काफी असर पडा। एशिया के दशो म व्यापक

राजनीतिक उद्वेग का जन्म हुआ। इधर तिलक और अन्य लोगों के होमरूल आंदोलन ने भी लोगों की राजनीतिक चेतना बढ़ाई और इस तरह जन साधारण को आधार बनाकर राष्ट्रीय आंदोलन के संगठन के लिए वातावरण तैयार हुआ।

चूंकि डिफेंस आफ इंडिया ऐक्ट लड़ाई के बाद समाप्त हो जाने वाला था, इसलिए 1919 में भारत सरकार ने रौलेट बिल के जरिए कार्यकारिणी (प्रशासन) को व्यापक अधिकार देना चाहा, जैसे मुकदमा चलाए बिना लोगों को गिरफ्तार करने का अधिकार। लोगों के हर तबके ने बिल का विरोध किया। गांधी ने धमकी दी कि बिल कानून हो जाएगा तो वे सत्याग्रह करेंगे। लोगों के विरोध के बावजूद मार्च में रौलेट बिल पारित हो गया। नेताओं ने 6 अप्रैल को नए कानून के प्रति विरोध प्रदर्शन का फैसला लिया और इस दिन सारे देश में हड़ताल, प्रदर्शन आदि हुए।

> हिंदुओं और मुसलमानों में अभूतपूर्व भ्रातृत्व इस असाधारण उत्तेजना का एक द्रष्टव्य तत्व था। राष्ट्रीय मंच पर उनके नेताओं की एकता काफी दिनों से स्थापित हो चुकी थी। जनता के इस उभार के दिनों में साधारण लोग भी अपने विभेद भूल गए। मेल मिलाप के असाधारण दृश्य देखने के लिए हिंदुओं ने मुसलमानों के हाथ से पानी पिया और मुसलमानों ने हिंदुओं के हाथ से। इन जुलूसों की पताकाओं पर हिंदू मुसलिम ऐक्य का ही नारा सर्वप्रमुख था और प्रायः यही नारा लगाया भी जाता था। एक मसजिद के मंच से हिंदू नेताओं को भाषण भी देने दिया गया था। (इंडिया, 1919)

अमृतसर के अधिकारियों ने पंजाब कांग्रेस के दो नेताओं सत्यपाल और डा० किचलू को किसी अज्ञात जगह भेज दिया। इससे जनता का उद्वेग बढ़ा और अमृतसर, गुजरानवाला और कुसूर में हिंसात्मक कार्य हुए। दिल्ली, कलकत्ता, बंबई, अहमदाबाद और भारत के अन्य भागों में भी उपद्रव हुए। गोलीबाड़ और कारावास के रूप में सरकारी दमन कार्य भी बढ़ा। इन सारे उत्पातों के कारण गांधी ने सत्याग्रह वापस ले लिया।

जालियांवाला बाग की दुःखद घटना

13 अप्रैल को अमृतसर में जालियांवाला बाग की दुखद घटना घटी। जनरल डायर के आज्ञानुसार शांतिपूर्ण सभा में हाजिर निहत्थे लोगों पर सैनिकों द्वारा किए गए गोलीबाड़ में 400 आदमी मरे और 1200 घायल हुए। जब लोगों में उस घटना की खबर पहुंची तो क्रोध और आतंक की एक लहर फैल गई।

15 अप्रैल को लाहौर, अमृतसर और पंजाब के कई जिलों में फौजी कानून लागू कर दिया गया। खास कचहरियां खोली गईं जिनमें सरकारी तौर पर न्याय होता था। बहुत बड़े पैमाने पर गिरफ्तारी हुई और लोगों को कारावास और मृत्यु की सजा दी गई। कोड़े की मार की भी सजा दी जाने लगी और अमृतसर की एक खास गली से जो लोग गुजरते थे उन्हें पेट के बल चलने को बाध्य किया

जाता था।[61] फौजी कानून 11 जून तक चला। इस अवधि म पजाब को सेंसरशिप के जरिए देश के और भागों से पूरी तरह अलग रखा गया। जलियावाला बाग की घटना आठ महीने बाद विलायत पहुची।

लोगा की जोरदार माग के फलस्वरूप जालियावाला बाग की घटना की जाच करने के लिए हटर कमेटी बहाल हुई। कमेटी न मार्च, 1920 म अपनी रिपाट प्रकाशित की। रिपाट म केवल इतना कहा गया कि डायर का काय गभीर आनुमानिक त्रुटि का परिणाम था जो हालत की युक्तिसगत आवश्यकताआ और हदा स आगे बढ गया। सेक्रेटरी आफ स्टेट माटेग्यु ने इस विचार की पुष्टि की और कहा कि डायर उद्देश्य की ईमानदारी और क्तव्य की निर्भीक भावना से अनुप्रेरित था। असगत कारावास गोलीकाड कशाघात जैसे तरीको से पजाब म आदोलन का दमन करनेवाला और डायर के लिए जिन लोगा न सजा की माग की थी उन्ह इस रिपोट से सतोष नही हुआ। काग्रेस ने अपनी अलग समिति बनाई जिसकी माच मे प्रकाशित रिपोट म सरकार द्वारा किए गए विभिन्न दमन कार्यों की गिनती भी थी।

1919 म जन आदोलन का तेजी से विकास हुआ। राजनीतिक आदोलन, हडताल आदि बढ रहे थे। राष्ट्रीय आदोलन को पहली बार जन आधार मिल रहा था और लोगो म राजनीतिक उद्वेग बढ रहा था।

1919 के अत म अमृतसर म इडियन नेशनल काग्रेस का अधिवेशन हुआ। तिलक प्रतिसवेदी सहयोग की नीति के समथक थ। सी० आर० दास का कहना था कि रिफाम्स को अस्वीकार कर देना चाहिए। गाधी ने अपना दृष्टिकोण इन शब्दो म प्रस्तुत किया रिफाम्स ऐक्ट और तत्सबधी वक्तव्य ब्रिटिश जनता के इस अभिप्राय के परिचायक है कि वह भारत के साथ न्याय करना चाहती है और अब इस सबध म कोई सदेह नही रहना चाहिए इसलिए हमारा क्तव्य है कि रिफाम्स की कटु आलोचना न कर हम उन्हे सफल बनाने के प्रयास करें।[62]

अमृतसर काग्रेस के समझौतावादी प्रस्ताव म कहा गया रिफाम्स एक्ट अपर्याप्त असतोषप्रद और निराशाजनक है इस काग्रेस का यह भी मत है कि ब्रिटिश पार्लियामट आत्म निर्धारण के सिद्धात के अनुसार भारत म पूण उत्तरदाई सरकार बनाने के लिए कदम उठाए। लेकिन इस काग्रेस का विश्वास है कि ऐसा होने तक लोग यथासभव रिफाम्स को इस तरह कार्यान्वित करेंगे कि पूण उत्तरदाई सरकार की शीघ्र स्थापना हो सके।'

असतोषप्रद रिफाम्स एक्ट, रौलेट एक्ट, पजाब म फौजी शासन और सरकार की आम दमनात्मक नीति के कारण जो राजनीतिक तनाव कायम हुआ था वह खिलाफत के सवाल के कारण 1920 म और अधिक बढा। भारतीय मुसलमान सेव्रे की सधि की शर्तों स क्रुद्ध थ। इसके अनुसार मुस्लिम राज्य तुर्की को सीरिया, फिलीस्तीन, अरब और तुर्की साम्राज्य के अन्य एशियाई इलाका स वचित कर दिया गया। मुसलमाना का कहना था कि उनके पवित्र स्थान इन्ही

भूक्षेत्रों में स्थित है, इसलिए ये क्षेत्र हरदम तुर्की के सुलतान के अधीन होने चाहिए, क्योंकि वह सारी दुनिया के मुसलमानों का खलीफा अर्थात धार्मिक नेता है। गांधी और दूसरे कांग्रेसी नेता खिलाफत के पक्ष में थे और उन्होंने मुहम्मद अली और शौकत अली के साथ देश में शक्तिशाली खिलाफत आंदोलन चलाया। सेव्रेज की संधि की शर्तें मई, 1920 में प्रकाशित हुई। जून में इलाहाबाद में सभी दलों के संयुक्त सम्मेलन में कार्यक्रम तैयार करने के लिए, गांधी और प्रमुख मुसलिम नेताओं की कमेटी बनी।

खिलाफत आंदोलन के कारण मुसलमान राष्ट्रीय आंदोलन के करीब आए। 'खिलाफत, पंजाब के दमन कार्य और नाकाफी सुधारों का अदृश्य प्रवाह, इस त्रिवेणी ने राष्ट्रीय असंतोष की धारा को आयतन एवं परिमाण दोनों दृष्टियों से समृद्ध बनाया। स्थिति सब तरह से असहयोग के लिए परिपक्व थी।'[63] तिलक में अहिंसक असहयोग के आंदोलन के लिए बहुत उत्साह नहीं था। लेकिन उन्होंने इसका विरोध नहीं किया और न इसमें उन्होंने बाधा ही डाली।[64] 1 अगस्त 1920 को तिलक का देहावसान हो गया।

गांधी और गांधीवाद का दौर

असहयोग आंदोलन से भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नए दौर की शुरुआत होती है। इस दौर में आंदोलन के सर्वप्रमुख नेता गांधी थे और गांधीवाद इसका दर्शन था। गांधी भीमकाय पुरुष की तरह समूचे दृश्यपट पर छा गए। राष्ट्रीय आंदोलन का उनका अनुदान अनन्य और अद्वितीय है। राष्ट्रीय मुक्ति के संग्राम में जन साधारण और जन आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका का समर्थन वाले वे पहले राष्ट्रीय नेता थे। पहले के नेतागण इस संघर्ष को कारगर बनाने में जनता के निर्णायक महत्व को नहीं समझ रहे थे।

गांधी ने संघर्ष का ऐसा कार्यक्रम बनाया जिसमें जनसाधारण राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति जागरूक हो सके और मजदूर, किसान, पूंजीपति, विद्यार्थी वकील, दूसरे पेशेवर लोग, औरतें आदि सब तरह के लोग इस आंदोलन में भाग ले सकें। अपने विचारतंत्र की सीमाओं, खामियों, कमजोरियों के बावजूद, पहली बार गांधी ने ही राष्ट्रीय आंदोलन को जनसाधारण का बहुवर्गीय आधार प्रदान किया। उनके नेतृत्व में भारतवासी राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संग्राम के वीर, देशभक्त, निर्भीक योद्धा सिद्ध हुए। बड़ी तादाद में लोग जेल गए और बहादुरी से साम्राज्य की पुलिस और सेना की गोलियों और लाठियों का सामना किया। अपनी समझौता परस्त नीति के बावजूद गांधी ने लोगों में शैतान स्वरूप ब्रिटिश सरकार के प्रति अजर अमर घृणा और स्वराज्य की अदमनीय पिपासा भर दी।

किसानों के लिए उनका कार्यक्रम था कि वे सरकार को भू-राजस्व नहीं दें। इससे सरकार के आर्थिक आधार के कमजोर हो जाने का खतरा आया। उन्होंने छात्रों से शिक्षण-संस्थाएं छोड़ने का अनुरोध किया क्योंकि इन संस्थाओं में ही

सरकारी अफसर और कर्मचारी निकलते थे। उन्होंने वकीलों से कचहरियां छोड़ने को कहा, जिससे सरकार की कानून व्यवस्था ठप्प हो जाए। उन्होंने औरतों का आह्वान किया शराब और विदेशी कपड़ों की दुकानों की पिकेटिंग करने के लिए, और औरतों ने हजारों की तादाद में यह काम किया और जेल गईं। उन्होंने लोगों से कहा कि वे सरकार द्वारा बनाए गए अनुचित कानूनों का उल्लंघन करें। उनके आह्वान पर करोड़ों की तादाद में लोग गोली और लाठी की बौछार के बीच जुलूसों और गैर कानूनी सभाओं में सम्मिलित हुए।

यह बड़ा उत्साहवर्द्धक दृश्य था कि हजारों लाखों की तादाद में औरतें, जो सदियों से मकीण घरेलू जीवन की शृंखला में आबद्ध थीं और जिन्हें सत्तावादी सामाजिक व्यवस्था ने घर में गुलामों की तरह रखा था, सड़कों पर आ निकलीं और उन्होंने अपने पुरुष साथी देशभक्तों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर गैर कानूनी प्रदर्शनों में भाग लिया।

गांधी ने अपने पूर्ववर्ती काल से 'बायकाट' और स्वदेशी जैसे तरीके अपनाए और उनका इस्तेमाल किया, लेकिन उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालने के और भी अधिक कारगर नए तरीके भी अपनाए सत्याग्रह, असहयोग, नागरिक अवज्ञा (व्यक्तिगत एवं सामूहिक) कर नहीं देना, कानूनों का खुला उल्लंघन, जान-बूझकर जेल जाना, सार्वजनिक प्रदर्शन और जुलूस, भूख हड़ताल, राष्ट्रीय संघर्ष को उन्होंने ये प्रमुख नए अस्त्र दिए।

गांधी राजनीति के क्षेत्र में तो महान व्यक्तित्व थे ही, वे बहुत बड़े समाज सुधारक भी थे। वे मानवता की भावना से ओतप्रोत थे, और उन्होंने सामाजिक संबंधों के हर क्षेत्र में अन्याय के विरुद्ध जेहाद किया। सबसे अधिक प्रपीड़ित वर्ग के विरुद्ध हिंदू समाज के चिरकालीन जघन्य अपराध के प्रतीक अस्पृश्यता की क्रूर, बर्बर प्रथा की उन्होंने नैतिक आक्रोश के आग्नेय शब्दों में भर्त्सना की। इस अति शय अमानुषिक प्रथा के निवारण, उन्मूलन के लिए उन्होंने संघर्ष किए और इसे अपने राजनीतिक कार्यक्रम का आवश्यक अंग बनाया। उन्होंने उच्च वर्ग के हिंदुओं के नैतिक भाव का जोरदार शब्दों में आह्वान किया और युगों के अन्याय के विरुद्ध उनकी विवेक बुद्धि को जागृत करने की चेष्टा की।

गांधी क्लासिकल किस्म के राष्ट्रवादी नेता थे और इसलिए पूरी तरह सांप्रदायिकता विरोधी। उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों दोनों की सांप्रदायिकता को राष्ट्र विरोधी और मानवता विरोधी कहा और अपनी समस्त अथकनीय शक्ति के साथ उनके खिलाफ युद्ध किया। अंत में उन्होंने 'भारतीय जन के सामाजिक संबंधों से सांप्रदायिकता के उन्मूलन के लिए जीवित अर्घ्य के रूप में अपने जीवन रक्त का दान दिया।'

गांधी की रुचियां सर्वगुण संपन्न और सर्वव्यापक थीं जिनकी परिधि भारतीय राष्ट्र जीवन का हर पहलू उजागर है। भाषा और साहित्य में भी रुचि थी। उन्होंने गुजराती को समृद्ध किया हिंदी को जनप्रिय बनाया ...

की विभिन्न भाषाओ के साहित्य पर भी अपनी अमिट छाप छोडी है।

इस बहुमुखी कायक्रम के कार्यान्वयन के लिए महात्मा गाधी ने स्वय आत्म-त्यागी पेशेवर कार्यकर्त्ताओ के जत्थे तयार करने के लिए कई केंद्र स्थापित किए और अन्य लोगो को भी ऐसे केंद्र खोलने के लिए प्रेरित किया। उन्होने सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक और शक्षिक सस्थाओ का जाल बिछा दिया। इनमे प्रशिक्षित कायकर्त्ताओ ने उन सिद्धाता के आधार पर जिन्हे गाधीवाद की सज्ञा दी गई है, गाधी द्वारा चलाए गए कायक्रम की सफलता के लिए काम किए।

असहयोग आदोलन

सितबर, 1920 के कलकत्ता काग्रेस म अहिंसक असहयोग का कायक्रम स्वीकार करते हुए एक प्रस्ताव पारित हुआ। ऐसे सघर्ष के पिछले अनुभव के कारण गाधी को इस आदोलन का नेतृत्व सौपा गया। यह आदोलन तब तक चलाया जानेवाला था जब तक खिलाफत और पजाब सबधी गलतिया सुधार नही ली जाती और स्वराज्य स्थापित नही हो जाता।

गाधी न नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धातो को राजनीतिक सत्याग्रह आदोलन का आधार बनाया। इस तरह उन्होने राजनीति म धम का पुट मिलाया और इस तरह राजनीति को रहस्यवादी स्वरूप प्रदान किया। राजनीतिक आदोलन के सिद्धातो और कायक्रमो को निश्चित करने का उनका मानदड यह था कि उनसे भारतीय जनता की नैतिक शक्ति कितनी मजबूत होती है। उन्होने प्राय 'आत्मिक बल' 'अमूत सत्य' (सत्य का परिभाषित किए बिना), और राजनीतिक विरोधी के नैतिक हृदय परिवतन की चर्चा की। जब वस्तुनिष्ठ शक्तिया के वज्ञानिक विश्लेषण के बदले अमूत और अस्पष्ट धार्मिक सिद्धाता के आधार पर राजनीतिक कायक्रम का निरूपण होता है, तब उसके उद्देश्य और लक्ष्य की स्पष्टता और काय प्रणाली की तार्किकता समाप्त हो जाती है।

लोगो न काग्रेस के आह्वान पर आदोलन म जमकर भाग लिया। विद्यार्थियो द्वारा शिक्षण सस्थाओ के स्वच्छापूण परित्याग का शिक्षण सस्थाओ पर बडा बुरा असर पडा। लेकिन कचहरियो का बहिष्कार कुछ खास सफल नही हुआ।

इसी काल म कई स्वाधीन राष्ट्रीय शिक्षण सस्थाए स्थापित हुई जसे नशनल मुसलिम युनिवर्सिटी अलीगढ, गुजरात विद्यापीठ तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, बगाल नेशनल युनिवर्सिटी, काशी विद्यापीठ और बिहार विद्यापीठ।

दिसबर, 1920 म काग्रेस का साधारण अधिवेशन नागपुर म हुआ। कायक्रम सवसम्मति से पारित हुआ। काग्रेस के पुराने लक्ष्य 'साम्राज्य के अतगत स्वशासन' के बदले नया लक्ष्य निर्धारित हुआ, शातिपूण एव वधानिक तरीको स स्वराज्य की स्थापना।' यह तय हुआ कि असहयोग आदोलन कारगर नही होन पर नागरिक अवज्ञा का कायक्रम अपनाया जाए। लेकिन इनके बारे म कोई स्पष्ट योजना नही थी और न कोई निश्चित लक्ष्य।

लेकिन सावजनीन अवज्ञा आदोलन पर सबका मन लगा हुआ था। यह क्या था, यह क्या होगा ? गांधी ने स्वय कभी इसे परिभाषित नही किया कभी इसकी व्याख्या नही की, कभी इसे स्पष्ट तौर पर देखा या रूपायित नही किया, खुद अपने लिए भी नही। स्पष्ट, द्रष्टा और शुद्ध मानस को यह स्वय पग पग पर स्पष्ट हो जाएगा [85]

काग्रेस द्वारा चलाए गए असहयोग आदोलन के अलावा दूसरे तरह के भी आदोलन इस काल म हुए, जस आसाम बगाल रेलवे मजदूरो की हडताल, मिदनापुर जिले के किसानो का टक्स नही देन का आदोलन मालाबार का मोपला विद्रोह और पजाब म महतो के खिलाफ अकालियो का विद्रोह।

5 नवबर 1921 को दिल्ली म काग्रेस की कायकारिणी समिति की सभा हुई और उसने तय किया कि नागरिक अवज्ञा आदोलन शुरू किया जाए। इसने प्रत्येक प्रातीय कमेटी को अपन मे क्षेत्र नागरिक अवज्ञा के कार्यान्वयन का पूण अधिकार और उत्तरदायित्व सौपा। भूराजस्व का भुगतान नहा करना भी कायक्रम म शामिल था। प्रातीय कमेटियो को यह अधिकार था कि वे इसके लिए जो भी तरीका उचित समझें उसके अनुसार काम करें। लेकिन नागरिक अवज्ञा आदोलन के लिए चुने जान वाले किसी भी व्यक्ति के लिए कुछ आवश्यक शर्तें निश्चित कर दी गइ।

इसी अवधि म सरकार ने भारत म प्रिस आफ वेल्स के आगमन का प्रबध किया और काग्रेस ने इसके बहिष्कार का नारा दिया। जब 17 नवबर को प्रिस आफ वेल्स भारत पहुचे तो देश भर म हडताल और प्रदशन हुए। कइ जगह दगे हो गए। बबई मे चार दिन तक उपद्रव होत रहे। पुलिस न कइ जगहो पर गोली चलाई और कुल मिलाकर 53 आदमी मारे गए और 500 घायल हुए।

व्यापक जनहिंसा के कारण गाधी को काफी विक्षोभ हुआ और उन्होने कहा कि उनकी नाक म स्वराज की बडी बुरी गध आ रही है।

इस मौके पर देश म स्वयसेवक आदोलन म भी तजी आई। काग्रेस और खिलाफत के स्वयसेवकों ने विदेशी कपडों की दुकानो पर पिकेटिंग की और हडतालें सगठित की। उनकी सख्या गैर कानूनी करार दी गई, फिर भी वे अपना काम करत रह और बडी तादाद म गिरफ्तार होत रह। सरकार ने आदोलन के सभी प्रमुख नताओ को साल खतम होन स पहले गिरफ्तार कर लिया था और उन्ह जेल भेज दिया, उनम सी० आर० दास, पडित मोतीलाल नेहरू पडित जवाहरलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, अली बधु आदि प्रमुख थ। केवल गाधी जेल के बाहर रह।

बुर्जुआ नतत्व म भारतीय जनता का जन आदोलन उस वक्त अपनी पराकाष्ठा पर था, जब साल के अत म इडियन नशनल काग्रेस न अहमदाबाद म अपना अधिवेशन किया। इस अधिवशन के निर्वाचित सभापति सी० आर० दास जेल म थ, इसलिए उनकी जगह पर हकीम अजमल खां न इसकी अध्यक्षता की। इस

अधिवेशन का सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव था

> यह कांग्रेस बाध्य होकर अपना यह निश्चय दर्ज करती है कि जब तक पंजाब और खिलाफत के सिलसिले में की गई गलतियां सुधारी नहीं जाती, स्वराज की स्थापना नहीं होती, भारत सरकार का नियंत्रण गैर जिम्मेवार कारपोरेशन के बदले देश की जनता के हाथों में नहीं चला जाता, तब तक पहले से भी अधिक उत्साह से अहिंसक असहयोग का कार्यक्रम चलता रहेगा।
>
> इस अधिवेशन का विश्वास है कि 18 बरस या अधिक की आयु का प्रत्येक व्यक्ति तुरंत स्वयंसेवक संगठन में शामिल होगा।
>
> इस अधिवेशन का विचार है कि आवश्यक सुरक्षाओं के साथ व्यक्तिगत और सामूहिक नागरिक अवज्ञा पर ध्यान केंद्रित करने के लिए जहां कहीं और जब तक आवश्यक हो अन्य सारे कांग्रेस कार्यक्रम रोक दिए जाएं।
>
> यह अधिवेशन महात्मा गांधी को कांग्रेस का एकमात्र कार्यकारी अधिकारी नियुक्त करता है।

अधिवेशन में कांग्रेस के एक प्रमुख मुसलिम नेता मौलाना हसरत मोहानी ने चेष्टा की कि स्वराज के राजनीतिक तत्व को स्पष्ट और निश्चित किया जाए। उन्होंने स्वराज की व्याख्या प्रस्तुत करनी चाही, 'सारे विदेशी नियंत्रण से मुक्त पूर्ण स्वतंत्रता।' गांधी ने इस राय का विरोध किया। उन्होंने कहा, 'जिस हलकेपन के साथ इस प्रस्ताव पर आप में से कुछ लोग विचार कर रहे हैं, उससे मुझे दुःख हुआ है। इससे मुझे तकलीफ हुई है क्योंकि इसमें उत्तरदायित्व का अभाव दिखाई पड़ता है।'[66]

अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में कर भुगतान नहीं करने की कोई चर्चा नहीं की गई। लार्ड रीडिंग ने इसे शुभ माना।

> क्रिसमस वाले सप्ताह में कांग्रेस ने अपनी सालाना मीटिंग अहमदाबाद में की। बंबई के दंगे फसाद का गांधी पर काफी असर पड़ा और दंगे के चलते वे सार्वजनिक नागरिक अवज्ञा के खतरों से अवगत हो गए, कांग्रेस के प्रस्तावों में इस बात का सबूत मिलता है, इन प्रस्तावों में नागरिक अवज्ञा के संगठन का आह्वान तो अवश्य किया गया, लेकिन टैक्स नहीं देने की कोई बात नहीं हुई।[67]

जनवरी, 1922 के मध्य में एक सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया, जिसकी अध्यक्षता सर एम० विश्वेश्वरैया ने की और जिसमें जिन्ना, जयकर और अन्य लोग शामिल हुए। गांधी भी इस सम्मेलन में मौजूद थे और उन्होंने कांग्रेस की बात रखी। सम्मेलन ने सरकार की दमनात्मक नीति की निंदा की। इसने वायसराय के साथ गतिरोध वार्ता के दरम्यान नागरिक असहयोग वापस ले लेने की राय कांग्रेस को दी। इसने खिलाफत, पंजाब और स्वराज की समस्याओं के समाधान के लिए अधिकृत गोलमेज सम्मेलन का प्रस्ताव रखा। 17 जनवरी को कांग्रेस की

कायकारिणी समिति ने कहा कि महीने के अत तक नागरिक अवज्ञा का कायक्रम स्थगित रहेगा। लेकिन वायसराय ने सवदलीय सम्मेलन की राय नही स्वीकार की। फलस्वरूप गाधी ने वायसराय को 1 फरवरी को सूचित किया कि उन्होंने गुजरात के बारदोली जिले म नागरिक अवज्ञा की शुरुआत करने का फसला ले लिया है।

5 फरवरी को युक्त प्रात के चौरीचौरा नामक जगह म हिंसक कारवाई हुई। प्रमुखत किसाना की एक भीड न एक थाने पर हमला कर दिया और उसम आग लगा दी, जिससे 22 सिपाही मर गए। गाधी न नागरिक अवज्ञा के कायक्रम को रोक देने का फैसला दिया। उन्होंने 12 फरवरी को बारदोली म कायकारिणी समिति की सभा बुलाई और यह प्रस्ताव पारित हुआ कि 'चौरीचौरा म भीड के अमानुषिक व्यवहार के कारण नागरिक अवज्ञा का कायक्रम रोक दिया जा रहा है। प्रस्ताव म यह भी कहा गया कायकारिणी समिति काग्रेस के कायकर्ताओ और सगठनो को यह सलाह देती है कि वे किसाना को सूचित कर दें कि जमीदारो को मालगुजारी नहीं देना काग्रेस के प्रस्तावो के प्रतिकूल है और देश हित के लिए हानिकर।' इसन जमीदारो को यह आश्वासन भी दिया कि काग्रेस आदोलन उनके कानूनी हको पर कोई हमला नही करना चाहता और जहा रयतो की शिकायतें भी हैं कायकारिणी की राय है कि उन शिकायतो को पारस्परिक राय मशविरे और पच की मदद से हल कर लिया जाए।' इससे यह पता चलता है कि गाधी और दूसरे काग्रेसी नेता जमीदार वग के मूलभूत अधिकारो की रक्षा करना चाहते थ। कायकारिणी समिति ने चर्खे का प्रचार नशाबदी, राष्ट्रीय शिक्षण सस्थाओ की स्थापना आदि रचनात्मक कायक्रम अपनाए।

कुछ काग्रेसी नताओ को, जो जेल म थ, बारदोली का फैसला बतरह नापसद आया। 'जनता का उत्साह उबाल पर आ रहा था कि उसी वक्त पीछे हटने की आज्ञा जारी हो गई और यह घटना किसी घोर राष्ट्रीय विपत्ति से कुछ कम नही थी। देशबधु दास, पडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपत राय (जो उन दिनो जेल म थ) जसे महात्मा के प्रमुख अनुयायियो म भी जनसाधारण के जसा आक्रोश था। मैं उस वक्त देशबधु के साथ था और मैंने देखा कि वे क्रोध और दुख से आप के बाहर थे।'[68]

पडित मोतीलाल और लाला लाजपत राय ने जेल से कायकारिणी के फसले के विरुद्ध गाधी को खत लिखा। एक स्थान विशेष के दुष्कम के लिए सारे देश को सजा देने के लिए इन लोगो न गाधी की आलोचना की। पडित जी न पूछा कि केप कमोरिन के पास कोई गाव अगर अहिंसक नही रह पाया तो हिमालय की तराई म किसी शहर को क्या सजा दी जाए।[69]

13 माच को राजद्रोह के आरोप म खुद गाधी को गिरफ्तार कर लिया मुकदमा चला और उन्ह छ साल की जेल की सजा हुई। लेकिन दो साल पूरे होने के पहले ही वे छोड दिए गए। आदोलन वापस ले लिए जाने पर

जो हालत थी उसके बारे म सरकार की राय का वायसराय द्वारा सेक्रेटरी आफ स्टेट को भेजे गए विवरण से पता चलता है

> शहरो के निम्न वर्गों पर असहयोग आदोलन का बडा गहरा असर पडा। कुछ इलाको म किमानो पर भी इसका असर पडा है, खासकर युक्त प्रात, विहार और उडीसा, बगाल और आसाम के कुछ हिस्सो मे। पजाव म अकाली आदालन देहातो के सिक्खो म भी फैल गया है। सारे देश म मुसलिम आबादी का बहुत बडा हिस्सा गुस्से और कटुता से भरा था। पहले कभी जितने व्यापक रूप से शानि और व्यवस्था भग हुई है, कही उससे अधिक व्यापक अशाति के लिए सरकार तैयार है, और वह इस तथ्य को जरा भी नजरअदाज नही करती कि स्थिति चिताजनक है। (टलीग्राफिक कारसपाडेस, रिगार्डिग द सिचुएशन इन इडिया, 7 फरवरी, सी एम डी० 1586, 1922)।

असहयोग आदोलन को वापस लेना और इसके परिणाम

वारदोली के फैलने के साथ ही असहयोग आदालन समाप्त हो जाता है। यह आदालन पहले के सारे आदोलना स इस अथ म भिन्न था कि यह मुख्यत जन-आदालन था। इसम किसाना, मजदूरा क भी कुछ वर्गों न भाग लिया। इस तरह जा राष्ट्रीय आदोलन 1917 तक उच्च और मध्य वर्गों म ही सीमित था उसे पहली बार असहयोग के दिनों म जनसाधारण का आधार और समर्थन मिला। लेकिन किसानो और मजदूरो मे अभी विशिष्ट वर्गीय या दलीय चतना इस हद तक नही आ सकी थी कि वे स्वतत्र राजनीतिक शक्ति हो सकें, अपना वग नतृत्व, कायक्रम, झडा आदि विकसित कर सकें और उनक साथ राष्ट्रीय आदोलन म शामिल हो सकें। असहयाग आदालन क दिना म वे बुर्जुआ नेतृत्व के अनुयाई रहे। वारदोली प्रस्ताव स स्पष्ट था कि यह नेतृत्व जमीदारी जसे निहित स्वार्थों से सबद्ध था और वह किसी भी जन आदोलन का उसे भय था जिससे निहित स्वार्थों पर खतरा पहुच।

हम ऊपर दख चुक हैं कि लाजपत राय और पडित मातीलाल नेहरू जस नताओ के अनुसार आदोलन गाधी की गलत राजनीति क कारण असफल हुआ।

कवल भूराजस्व का छोडकर और किसी भी विषय पर आदोलन के कायक्रम म जनसाधारण की कोइ विशिष्ट आर्थिक माग नही थी, मजदूरी म वृद्धि और मजदूरो क लिए सामाजिक न्याय प्रदान करने वाले विधान और खेती म लगी हुई आबादी क लिए कर और ऋण की कमी ऐसी कोइ भी माग सरकार के सम्मुख नही रखी गई। नतृत्व न यह नही समझा कि जनसाधारण क राजनीतिक असताप की जडें उनकी आर्थिक स्थिति म हैं राष्ट्रवाद सबधी किसी अमूर्त भावना म नही।

औद्योगिक बुर्जुआजी न लडाई क दिना म औद्योगिक प्रसार के कारण काफी

आर्थिक ताकत हासिल कर ली थी। उन लोगो ने प्राय असहयोग आदोलन का समर्थन किया। इसके बाद औद्योगिक बुर्जुआजी ने काग्रेस द्वारा सचालित राष्ट्रीय आदोलन की नीतियो और कायक्रमो पर पर्याप्त निर्णायक प्रभाव डाला। बारदोली के फसल के बाद राष्ट्रीय आदोलन का ह्रास हुआ। मुसलिम लीग और काग्रेस का सहयोग समाप्त हो गया और आदोलन के दरम्यान जो हिंदू मुसलिम एकता बनी थी वह खतम होने लगी।

स्वराज पार्टी की स्थापना

काउसिल म प्रवेश के कायक्रम को लेकर 1923 मे स्वराज पार्टी की स्थापना हुई। देशबधु दास, पडित मोतीलाल नेहरू विट्ठलभाई पटेल जेल से रिहा हो चुके थे। वे इस दल के प्रमुख नेता थ। ब्रिटिश साम्राज्य के अतगत डोमोनियन स्टटस प्राप्त करना स्वराज पार्टी का लक्ष्य था। पार्टी कायक्रम न पूजीवाद और जमीदारी की रक्षा की गारटी दी। कायक्रम म कहा गया कि 'व्यक्तिगत और निजी सपत्ति को मान्यता प्राप्त रहगी और उसकी रक्षा होगी। यह भी घोषणा की गई कि यह पार्टी पूजी के शोषण स श्रम की रक्षा करेगी और श्रम को अनुचित मागो से पूजी की रक्षा करेगी। एक तरफ तो हम ऐसे सगठन का रास्ता निकालना होगा जिसक जरिए पूजीपतियो या जमीदारो द्वारा श्रम का शोषण रोका जा सके, लेकिन दूसरी तरफ हम इस बात का भी खयाल रखना पडेगा कि ये सगठन मनमानी और असगत मागो के जरिए शोषण के माध्यम न बन जाए, श्रम को सुरक्षा प्रदान करन की जरूरत है लेकिन वस ही औद्योगिक कारखानो की रक्षा भी आवश्यक है।[0] स्वराजवादियो का निजी सपत्ति, वग समन्वय और पूजी एव श्रम म हितो क तादात्म्य के सिद्धात म विश्वास था।

स्वराज पार्टी ने काउसिलो को राजनीतिक क्रियाकलाप का केंद्र बनाया। काग्रेस के रचनात्मक कायक्रम से यह पार्टी सतुष्ट नही थी। इस पार्टी न पहल तो यह कहा कि काउसिल म जाने का उनका मकसद था विधायिका सभाओं को भीतर स कमजोर करना। लेकिन, धीरे धीरे यह नीति बदल गई। स्वराज पार्टी के लोगो न 1924 म सरकार की स्टील प्रोटेक्शन कमेटी म काम किया और 1925 म स्कीन कमेटी म। विधायिका सभाओ को भीतर स कमजोर करन की प्रारभिक नीति क बदले धीरे धीरे विधायिका सभाओं म भाग लेन और उनके इस्तमाल और सरकार के साथ सहयोग की नीति अपनाई गई।"[11]

स्वराज पार्टी न 1924 म केंद्रीय सभा म स्टील प्रोटेक्शन बिल का समथन किया। इस बिल के अनुसार टाटा स्टील कपनी को सरकार की ओर स आर्थिक सहायता दी गई हालांकि इस उद्योग म लग हुए मजदूरो क हितों की रक्षा का कोई प्रबध नहा हो सका।

स्वराज पार्टी अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर 1925 म थी, जब काग्रेस न अपना सारा राजनीतिक काम स्वराज पार्टी को हस्तातरित कर दिया था। स्वराज

पार्टी भारतीय वुजुआजी का विधानवादी दल था। राष्ट्रवादी जनादोलन का ज्वार जब उतर गया तब भारतीय बुजुआजी ने अपने वर्गीय हितो और कायक्रम के प्रश्रय के लिए विधायिका सभाओ का इस्तेमाल करना चाहा। इस वग की मागें थी, औद्योगिक प्रसार, बडे बडे उद्योगो का विकास आदि।

साप्रदायिक तनाव मे वृद्धि

आगे बढने के पहल, असहयोग आदोलन के वाद के वर्षों म साप्रदायिक तनाव सघष म जो वद्धि हुइ, उसकी थोडी सी चर्चा आवश्यक है। आदोलन क दिनो म हिंदुओ और मुसलमानो की एकता बनी थी और उन्होने सयुक्त सघष भी किए थे। लकिन आदालन के वाद विरोधी प्रक्रिया शुरू हुइ। दानो सप्रदाया के प्रति क्रियावादिया ने मौके से फायदा उठाया और दुश्मनी के बीज बाने शुरू किए। मुसलिम लीग और हिंदू महासभा दानो न युद्धकारी साप्रदायिक प्रचार शुरू किए। इससे राष्टीय एकता और राष्ट्रीय चेतना कमजार हुइ।

इन दाना साप्रदायिक दला पर इन सप्रदाया के जमीदारा और अ य रूढि वादी निहित स्वार्थों का कब्जा था। पडित जवाहरलाल नेहरू के अनुसार 'हिंदू आर मुसलिम' साप्रदायिकता सही अर्थों म साप्रदायिकता भी नहा, वस्तुत सामाजिक रूढिवादी प्रतिक्रियात्मक शक्तियो न साप्रदायिकता के मुखौटे म अपना चहरा छिपा रखा है।[2]

असहयोग आदालन क वाद वाल काल म कई साप्रदायिक झगडे हुए। 1924 म दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर लखनऊ शाहजहापुर, इलाहाबाद, जबलपुर, कोहट म और 1925 म दिल्ली, कलकत्ता, इलाहाबाद और दूसरी जगहा म साप्रदायिक दगे हुए। बाद क वर्षों म भी दश के विभि न भागो म एस दग हुए।

समाजवादी और साम्यवादी विचारो का विकास

असहयोग क बाद वाल काल म समाजवादी और साम्यवादी नता एव मजदूर वग के अपन स्वतत्र आर्थिक और राजनीतिक वग सगठना का भी उदय और विकास हुआ। राष्ट्रीय आदोलन क इतिहास म य लगातार अधिकाधिक महत्वपूण सिद्ध हुए। रूस म समाजवादी क्राति की सफलता और समाजवादी राज्य की स्थापना क कारण आमूल परिवतन क इच्छुक राष्ट्रवादी लाग समाजवादी और साम्यवादी सिद्धाता की ओर आकृष्ट हुए। जा लाग गाधीवादी विचारधारा और गाधी क रचनात्मक काय स और स्वराज पार्टी की वधानिकता स असतुष्ट थ उन्होन समाजवादी जीवन दशन का अध्ययन और अनुसरण किया। इस नए दशन की रोशनी म उन्होन स्वाधीन भारत क बारे म अलग कायक्रम बनाए। 1923 म एम० ए० डाग न बबई म द सोशलिस्ट नामक पहला समाजवादी साप्ताहिक निकाला। 1924 म सरकार न डाग, मुजफ्फर अहमद और कुछ और लागा का षडयत्र क आरोप पर गिरफ्तार किया और इस सिलसिल म जो कानपुर

कासपिरसी केस चला, उसमें अभियुक्तों को चार चार साल की कठोर कारावास की सजा मिली। समाजवादी विचारों का यह स्वल्प विकास भी देश के लिए नई बात थी।

बाद के बरसों में मूलभूत सुधार के इच्छुक नौजवानों में समाजवादी विचार फैलने लगे। बंबई बंगाल और पंजाब में वकर्स एंड पीजंटस पार्टियां बनीं। उन दलों ने राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के कार्यक्रम का प्रचार किया। उन्होंने मजदूरों और किसानों की आर्थिक और राजनीतिक मांगों का समर्थन किया और उन्हें वर्गजन्य मांगों की पूर्ति के लिए वर्ग आधार पर संगठित किया। स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए उन्हें मजदूरों और किसानों के संघर्ष का सीधा तरीका पसंद था।

वकर्स एंड पीजंट्स पार्टियों ने मजदूर संघ बनाए और कई हड़तालों का संगठन और पथ प्रदर्शन किया। 1928 में बंबई की पार्टी ने गिरनी कामगर यूनियन की स्थापना की, जिसकी सदस्य संख्या 65,000 (पैंसठ हजार) थी। बंबई के सूती कारखानों के मजदूरों की हड़ताल बंगाल, नागपुर रेलवे के मजदूरों की हड़ताल, साउथ इंडियन रेलवे की हड़ताल और कई अन्य हड़तालें भी जो 1928 में हुईं, उन्हीं पार्टियों के सदस्यों द्वारा संगठित और संचालित थीं।

इन्हीं दिनों इंग्लैंड के अत्यंत विकसित मजदूर संगठनों और समाजवादी एवं साम्यवादी पार्टियों ने फ़िलिप स्प्राकवे, स्प्रैट, बेन ब्रैडली और अन्य कई प्रतिनिधियों को उदीयमान मजदूर वर्गीय और राष्ट्रीय आंदोलनों की मदद के लिए भारत भेजा। मेरठ कासपिरसी केस में स्प्रैट और ब्रैडली गिरफ्तार भी हुए उन पर मुकदमा चला और उन्हें सजा भी मिली।

साइमन कमीशन के बहिष्कार से लाहौर कांग्रेस तक

1926 के बाद राष्ट्रवादियों में लगातार असंतोष बढ़ता गया। गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम और स्वराज पार्टी की वैधानिकता दोनों की निरर्थकता का एहसास बढ़ रहा था। रुपए की विनिमय दर को 1 शि० 6 पें० पर निश्चित करना, ब्रिटिश इस्पात के लिए अधिमानिक दर लागू करना, आदि आर्थिक कारवाइयों के कारण *भारतीय बुर्जुआजी में सरकार के प्रति गहरे विक्षोभ के भाव पैदा हुए।*

1927 में गैर हिंदुस्तानियों से बने साइमन कमीशन की स्थापना से राजनीतिक दलों और पार्टियों में असंतोष और गहराया। कांग्रेस का मद्रास अधिवेशन (1927) बढ़ते हुए राजनीतिक असंतोष के वातावरण में हुआ। कांग्रेस में वाम पक्ष का उदय हो गया था जो डामिनियन स्टेटस के लक्ष्य से संतुष्ट नहीं था और पूर्ण स्वराज को अपना लक्ष्य बनाना चाहता था। इसने उधर के कार्यक्रम पर भी जोर दिया।

मद्रास अधिवेशन में कांग्रेस के इतिहास ने एक नया मोड़ लिया। पहली बार यहीं कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज को अपना लक्ष्य घोषित किया। इसने साइमन कमीशन के बहिष्कार का और इंटरनेशनल लीग अगेंस्ट इंपीरियलिज्म (ऑ.अ

वाद विरोधी अतर्राष्ट्रीय सस्था) से सबद्ध होने का फैसला किया। काग्रस ने जापानियो एव अन्य साम्राज्यी ताकतो के विरुद्ध चीन की जनता की लडाई का समर्थन किया। गाधी ने मद्रास के स्वतत्रता सबधी प्रस्ताव का अनुचित माना। उनका कहना था कि प्रस्ताव पर ठीक से, पूरी तरह विचार नही किया गया था और उस बिना सोचे-समझे पास कर दिया गया था।

स्वतत्रता को काग्रेस का लक्ष्य मान लिया गया, इसलिए स्वराज पार्टी को भी दुख हुआ। वे तो साम्राज्य के मातहत डोमिनियन स्टेटस भर चाहते थे। मद्रास अधिवेशन के ठीक पहले मोतीलाल नेहरू न कहा, 'सरकार की हाल की कार्यवाहिया के फलस्वरूप केवल उन सारे लोगा के हाथ मजबूत होग जो पूर्ण स्वराज चाहते है और जिनकी सख्या लगातार बढती रही है। जो साम्राज्य के अधीन पूर्ण जिम्मेदार सरकार चाहते है वे निस्सदेह अब भी बहुमत म है, लेकिन मेरा खयाल है कि यह बहुमत बनाए रखना बडा मुश्किल है।'[3]

1928-29 म देश म खासकर बबई और बगाल म, बडी तेजी से छात्रा और नौजवाना क आदोलन बढे। इसी के साथ जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता म आल इडिया इडिपेंडेंस लीग की स्थापना हुई जिसकी कई जगह शाखाए बनी। इन सगठना न स्वतत्रता की माग का समर्थन किया और आमूल परिवर्तन का कार्यक्रम अपनाया। इनकी सहानुभूति जनसाधारण के आदोलनो और मागो से थी और उन्होने उनका समर्थन किया। वे साधारणत स्वतत्रता, देशी रियासतो और जमीदारिया क उन्मूलन और जनता की हालत सुधार सकने वाले राष्ट्रीय प्रजातात्रिक कार्यक्रम क पक्ष म थे। इडिपेंडेंस लीग वर्कर्स एड पीजट्स पार्टिया और छात्रो और नौजवाना क सगठना न साइमन कमीशन के बहिष्कार म महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

स्टैच्युटरी कमीशन 3 फरवरी, 1928 का भारत पहुचा। उस दिन विरोध म अखिल भारतीय हडताल सगठित की गई। देश क कई भागा मे सभाए हुई प्रदर्शन हुए। दिल्ली, लखनऊ, मद्रास, कलकत्ता पटना और अन्य शहरा म बडे बडे जुलूस निकले कई जगहा म पुलिस और प्रदर्शनकारिया म मुठभेड हुई। लाहौर म जब पुलिस भीड का तितर बितर कर रही थी तो लाला लाजपत राय को लाठी स चाट लगी। वक्ता का कहना था कि कुछ महीना बाद उनकी मौत उसी वक्त लगी चोट क कारण हुई थी।

फरवरी म एक सर्वदलीय सम्मेलन हुआ, जिसम पडित मोतीलाल नेहरू जस काग्रेस क दक्षिणपथी नेता और सर तेज बहादुर सप्रू और अली इमाम जस उदारवादी नेता भी शामिल हुए। अगस्त म सम्मेलन न अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की जिस नेहरू रिपोर्ट क नाम स जाना जाता है। उसम भारत क सविधान की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गई। इस योजना म स्वायत्तशासी डोमिनियन पर आधारित सविधान की माग की। रिपोर्ट न व्यक्तिगत और निजी सपत्ति क अधिकार को भी स्वीकार किया।

समाजवादियो और वामपथी राष्ट्रवादियो न इस योजना की आलोचना की। उनका कहना था कि इसने स्वतत्रता के लक्ष्य को तिलाजलि दे दी थी और जमींदारी एव अय प्रतिक्रियावादी सापत्तिक स्वार्थों को मरक्षण प्रदान किया था।

1928 29 म सारे देश म कई हडतालें हुइ। बम्बई की सूती मिला की आम हडताल म 15 लाख मजदूर शामिल हुए। हडताल का नेतत्व गिरनी कामगर यूनियन और बाव टक्सटाइल लेबर यूनियन ने किया। हडताला का क्रम 1929 मे पराकाष्ठा पर था। 1927 मे कुल 1,31,655 मजदूर ही हडतालो म शामिल हुए थे लेकिन 1929 म 531 059।

हडतालो से भारतीय मजदूर वग की वढती हुई वग चेतना और लडाकूपन का पता चलता है। यह भी ज्ञातव्य है कि इन हडतालो का नेतत्व प्राय (जस बबई में) वकस एव पीजटस पार्टी के लोगा ने किया। मजदूर वग स्वतत्र सामाजिक शक्ति के रूप में विकसित हो रहा था। मजदूरो ने राजनीतिक जुलूसा में भी अपन झडे क साथ भाग लिया। इससे भी उनकी वढती हुई राजनीतिक चेतना का पता चलता है। वे साइमन कमीशन के बहिष्कार मे भी बहुत वडी तादाद म शामिल थे।

काग्रेस का कलकत्ता अधिवेशन दिसबर, 1928 म हुआ। यह डोमिनियन स्टटस (नेहरू रिपोट मे प्रस्तावित) और शीघ्र स्वतत्रता की माग के समथका के बीच राजनीतिक युद्ध का रणक्षेत्र था। सुभाष बोस और जवाहरलाल नेहरू स्वतत्रता के पक्षधर थे। गाधी अधिवेशन म उपस्थित थ और उन्होन समझौता वादी प्रस्ताव स्वीकृत करान के लिए सारी शक्ति लगा दी और सब तरह से प्रतिनिधिया पर अपन प्रभाव का उपयोग किया। इस प्रस्ताव म कहा गया कि अगर साल भर के अदर डामिनियन स्टेटस मिल जाए ता उसे स्वीकार कर लिया जाएगा, अयथा अहिंसक असहयोग आदालन शुरू करना पडेगा।

बोस और जवाहरलाल नेहरू द्वारा लाया गया सशोधन अस्वीकार हो गया। सशोधन म कहा गया था काग्रेस मद्रास अधिवेशन क फैसल के साथ है जिसमें पूण स्वराज को भारतीय जनता का लक्ष्य माना गया था। इसका यह भी विचार है कि सच्ची स्वतत्रता तब तक नही आ सकती जब तक ब्रिटिश सबध समाप्त नहीं हो जाता।[14] काग्रेस क कलकत्ता अधिवेशन स आमूल परिवतन के समथको की बढती हुई शक्ति का परिचय मिलता है।

मजदूर वग की बढती हुइ राजनीतिक चेतना का इस बात स पता चलता है कि कलकत्ता की मिला के 50,000 मजदूर जुलूस बनाकर पडाल में आए दो घट तक वहा रहे और राष्ट्रीय स्वतत्रता का प्रस्ताव पारित किया। इन्ही दिना कलकत्ता म वकस एड पीजटस पार्टी न अपना पहला अखिल भारतीय सम्मेलन किया। इसन पूण स्वतत्रता, देशी रियासता और जमींदारी क उन्मूलन, मूल उद्योगा क राष्ट्रीयकरण, आठ घट क कायकारी दिन, आदि माना का कायक्रम अपनाया।

मार्च 1929 में सरकार ने मजदूर वर्ग और राष्ट्रीय आंदोलन के कई नेताओं को षड्यंत्र के आरोप में गिरफ्तार कर लिया। मेरठ कांसपिरेसी केस चार वर्ष तक चला जिसके अंत में कुछ अभियुक्तों को छोड़ दिया गया और कुछ को बड़ी लंबी सजाएं मिलीं, जिनकी अवधि अपील के बाद काफी घटा दी गई। अभियुक्तों में कम्युनिस्ट और गैर कम्युनिस्ट और स्प्रट, ब्रडली और हचिंसन, तीन अंग्रेज भी थे। अभियुक्तों में तीन आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे।

1929 के मध्य में, वायसराय ने पब्लिक सेफ्टी आर्डिनेंस जारी किया, जिसने गवर्नर जनरल इन काउंसिल को यह अधिकार दिया कि वे भारत से ब्रिटिश और विदेशी कम्युनिस्टों को निकाल बाहर कर दें।[75] उसी माह ट्रेड डिस्प्यूट एक्ट भी पास हुआ। जिसके अनुसार सहानुभूति में या सरकार पर दबाव डालने के लिए, या आवश्यक जनसेवाओं में की गई हड़ताल गैर कानूनी घोषित कर दी गई।

1929 में सरकार ने बढ़ते हुए आंदोलनों के खिलाफ कड़े कदम उठाए। 'द माडर्न रिव्यू' के संपादक रामानंद चटर्जी 'इंडिया इन बांडेज' को प्रकाशित करने के आरोप में गिरफ्तार कर लिए गए। भगतसिंह और दत्त को आजन्म देश निकाला की सजा दी गई क्योंकि उन्होंने सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेंबली के अधिवेशन में बम और प्रचारात्मक पर्चे फेंके थे। कलकत्ता में सुभाष बोस और कुछ अन्य प्रमुख कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिए गए और उन पर राजनीतिक आरोपों पर मुकदमा चलाया गया।

भगतसिंह और दत्त लाहौर जेल में थे और उन्हें आजन्म देश निकाला की सजा मिल चुकी थी लेकिन जब ये जेल में थे तभी उन पर लाहौर के सुपरिंटेंडेंट आफ पुलिस, मि० साडर्स की हत्या का भी आरोप लगाया गया। उस मुकदमे को लाहौर कांसपिरेसी केस के नाम से जानते हैं और इसमें दत्त तो छूट गए लेकिन भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी की सजा मिली।

कई राजनीतिक बंदियों ने जिनमें लाहौर कांसपिरेसी केस के कैदी और जतीनदास भी थे राजनीतिक बंदियों के लिए विशेष सुविधाओं की मांग पर भूख हड़ताल की। 64 दिन की भूख हड़ताल के बाद जतीनदास की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु से लोग काफी उत्तेजित हुए। बर्मा में रेवरेंड विजय ने, जो राजद्रोह के आरोप में जेल में थे, साधारण सुविधाओं की प्राप्ति के लिए भूख हड़ताल की। 164 दिन की भूख हड़ताल के बाद उनकी मौत हो गई। देश में राजनीतिक वातावरण काफी तनावपूर्ण हो रहा था।

वायसराय लार्ड इर्विन ने 31 अक्टूबर को एक वक्तव्य में कहा 'हिज मजेस्टी की सरकार की ओर से मुझे यह कहने का अधिकार है कि 1917 की घोषणा में यह निहित है कि डोमिनियन स्टेटस की प्राप्ति भारत की सांविधानिक प्रगति का न्यायोचित परिणाम होगा।

वायसराय के वक्तव्य से कांग्रेस और गैर कांग्रेसी नेताओं में राजनीतिक मेल मिलाप की कुछ उम्मीद बनी। वे दिल्ली में मिले और उनकी आपस में एक

घोषणापत्र (दिल्ली मेनिफेस्टो) प्रकाशित हुआ जिसम आशा व्यक्त की गई कि भारत की आवश्यकताओ के उपयुक्त डोमिनियन स्टेटस की योजना बनाने के हिज मैजेस्टी की सरकार के प्रयास म हम सहयोग दे सकेंगे।' यह भी कहा गया कि प्रस्तावित गोलमेज सम्मेलन की सफलता के लिए उपयुक्त वातावरण बनाने के निमित्त राजनीतिक बदियो को क्षमादान होना चाहिए और सम्मेलन म भारतीय राजनीतिक दलो को साथक प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। इस घोषणापत्र पर गाधी जी, मोतीलाल नेहरू जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती बेसट सर टी० बी० सप्रू आदि के हस्ताक्षर थे। इस घोषणापत्र पर जवाहरलाल का हस्ताक्षर बडा असगत माना गया, क्योकि वे पूण स्वतत्रता के समथक थे और समझौता नही चाहते थे। बाद मे उन्होने कहा कि यह घोषणापत्र राजनीतिक दृष्टि से गलत था।

23 दिसबर, 1929 को काग्रेस के प्रतिनिधि के रूप म गाधी और मोतीलाल नेहरू तथा अन्य दलो के प्रतिनिधि के रूप म जिन्ना और सप्रू दिल्ली म वायसराय से मिले। गाधी ने इस बात का आश्वासन मागा कि गोलमेज सम्मेलन भारत के लिए पूण डोमिनियन की माग की पूर्ति को आधार मानकर अपनी कायवाही शुरू करे। ऐसा आश्वासन दे सकने म वायसराय ने अपनी असमर्थता जाहिर की फल स्वरूप समझौता वार्ता विफल हो गई।

पूण स्वराज का लक्ष्य घोषित

काग्रेस का लाहौर अधिवेशन तनावपूण राजनीतिक वातावरण म हुआ। लाहौर काग्रेस कमेटी के अनुसार स्वराज का अथ था पूर्ण स्वतत्रता। इसने आल इडिया काग्रेस कमेटी को यह अधिकार दिया कि वह जब उचित समझे अवज्ञा आदोलन शुरू कर दे। इस आदोलन के अनुसार कर का भुगतान भी रोक दिया जाने वाला था।

अपने अध्यक्षीय भाषण म जवाहरलाल नेहरू ने अपने को जनतत्रवादी और समाजवादी कहा। हमारे लिए स्वाधीनता का अथ है ब्रिटिश साम्राज्य से पूण मुक्ति।' उन्होन यह भी कहा, 'मूल सत्य है अधिकार ग्रहण, चाहे आप इस जो नाम दें। मैं नही मानता कि भारत के लिए उपयुक्त किसी भी तरह का डोमिनियन स्टटस हम वास्तविक अधिकार दे सकेगा।' लाहौर काग्रेस से एक और राष्ट्रीय जनआदोलन की शुरुआत हुई। काग्रेस न 26 जनवरी को स्वतत्रता दिवस मनाने का निश्चय किया। इसन 26 जनवरी, 1930 को पहला स्वतत्रता दिवस मनाया। सारे देश म व्यापक प्रदशन हुए, सभाए हुई।

30 जनवरी को गाधी न 'यग इडिया' म ग्यारह सूत्री माग रखी। पूण मद्य निषेध, रुपए के विनिमय दर को घटाकर 1 शि० 4 पे० करना, भूराजस्व को न कम 50 प्रतिशत कम करना, नमक कर का उन्मूलन विदेशी कपड़ा पर रक्षात्मक कर हटाना, कास्टल टरिफ रिजर्वेशन बिल को पारित करना,

मागे इस कायक्रम म थी। उन्होने लिखा, ' भारत के लिए आवश्यक लेकिन इन अत्यत सीधी सादी मागो पर वायसराय हमे सतुष्ट करे। तब नागरिक अवज्ञा की कोई चर्चा नहीं होगी और काग्रेस किसी भी सम्मेलन म खुशी स शरीक होगी।'

वामपथी राष्ट्रवादियो न इस ग्यारह सूत्री कायक्रम की आलोचना की। उनका कहना था कि इस कायक्रम म स्वतत्रता की माग को घटा कर और सशोधित कर उसके बदले केवल कुछ सुधारो की माग की गई है। लेकिन सरकार न भी इन मागो पर कोई ध्यान नहीं दिया।

नागरिक अवज्ञा आदोलन

फरवरी म साबरमती म काग्रेस कमेटी की बैठक हुई और इसने गाधी और उनके सहकर्मियो को नागरिक अवज्ञा आदोलन के नेतृत्व और सचालन का सारा अधिकार सौप दिया। आदोलन शुरू करने के पहले गाधी पूर्णत आश्वस्त होना चाहते थे कि इसमे प्रत्यक्षत या परोक्षत किसी भी तरह थोडी सी भी हिंसा नहीं होगी। फिर भी उनकी राय थी कि अगर अहिंसक आदोलन नहीं शुरू किया गया तो स्वतत्रता के लिए लोगो की अधीर व्याकुलता के कारण देश भर म हिंसक आदोलन शुरू हो जाएगा। 2 मार्च 1930 को वायसराय को लिखे गए अपने पत्र म उन्होने यह राय जाहिर की थी 'हिंसा म विश्वास करने वाले दल ताकतवर हो रहे है और उनका असर महसूस होने लगा है। ब्रिटिश सरकार की सगठित हिंसा के साथ ही हिंसा म विश्वास करने वाले दलो की असगठित हिंसा के विरुद्ध भी मैं अहिंसा की शक्ति को क्रियाशील बनाना चाहता हू। चुपचाप बैठने का मतलब है उपर्युक्त दोनो प्रकार की शक्तियो की लगाम ढीली छोड देना।' तत्कालीन स्थिति के बारे म गाधी का यही मतव्य था।

अत म गाधी न सघर्ष शुरू करने का फैसला किया। उन्होने घोषणा की कि प्रथम चरण म वे आदोलन को अपने आप तक एव सावधानी से चुने गए अपने उत्कृष्ट अनुयायियो तक ही सीमित रखेंगे और ये लोग 7 अप्रैल को डाडी म सरकार के नमक कानून का उल्लघन करेंगे। गाधी और जिन अन्य लोगो न नमक कानून तोडा उन्हे गिरफ्तार नहीं किया गया। फिर भी इसके चलते देश म बहुत सारे प्रदर्शन हुए और अनधिकृत आदोलन शुरू हो गए।

9 अप्रैल को गाधी ने आदोलन के लिए यह कार्यक्रम निश्चित किया : हर गाव म गैर कानूनी तौर पर नमक बनाया जाए या लाया जाए, महिलाए शराब की दुकानो, अफीम के अड्डो और विदेशी कपडे की दुकानो पर पिकेटिंग करे। युवा और बूढे चरखा कातें ... विदेशी कपडे जला दिए जाए। हिंदू छुआछूत छोडे। विद्यार्थी सरकारी स्कूल और कालेज छोड दे और सरकारी नौकर अपनी नौकरियो से इस्तीफा दे दे ... तब हम देखेंगे कि पूर्ण स्वराज हमारा दरवाजा खटखटा रहा है।'

[illegible] और नगरो का बहिष्कार, पिकेटिंग और [illegible]। विद्यार्थियो [illegible] छोड दिया। पुलिस [illegible]

प्रतिबंध के बावजूद कांग्रेस कमेटियों ने सभाएं कीं और इन गैर-कानूनी सभाओं को तोड़ने के लिए सरकार ने गोली और लाठी का सहारा लिया।

देश में दूसरे तरह के भी आंदोलन शुरू हुए। अप्रैल में कुछ क्रांतिकारियों ने चटगांव में पुलिस शस्त्रागार को लूट लिया। मई में शोलापुर में जन प्रदर्शनों के सिलसिले में भीड़ और पुलिस के बीच संघर्ष हुए। कई सरकारी मकान और शराब की दुकानें नष्ट कर दी गईं। काफी लोग पुलिस की गोलियों के शिकार हुए। फौजी कानून लागू कर दिया गया और आंदोलन को दबाने के लिए फौज बुलाई गई।

लेकिन सबसे गंभीर घटनाएं अप्रैल में पेशावर में हुईं। शहर में कई जन प्रदर्शन हुए जिनमें पुलिस और लोगों की भीड़ में संघर्ष हुए। एक हथियार-बंद गाड़ी को प्रदर्शनकारियों ने जला दिया और इसके कारण पुलिस ने गोली चलाई तो कई लोग मारे गए और घायल हुए। इस काल की एक महत्वपूर्ण घटना यह थी कि जब अठारहवीं रॉयल गढ़वाली राइफल्स के कुछ हिंदुस्तानी सैनिकों को भीड़ पर गोली चलाने को कहा गया तो उन्होंने इससे इंकार कर दिया। बाद में उनपर फौजी कचहरी में मुकदमा चला और उन्हें लंबी अवधि के लिए कारावास की सजा मिली। बड़ी तादाद में फौजें बुलाई गईं और तब जाकर शहर पर काबू पाया जा सका।

5 मई को अधिकारियों ने गांधी को गिरफ्तार कर लिया। उनकी गिरफ्तारी पर सारे देश में हड़ताल और प्रदर्शन आदि हुए। कई जगह पर उपद्रव हुए। शोलापुर की जिन घटनाओं की ऊपर चर्चा की जा चुकी है वे गांधी की गिरफ्तारी के बाद हुईं थीं। सरकार ने भी दमन तेज कर दिया। कई आर्डिनेंस जारी किए गए। जून में इसने कांग्रेस और इसकी शाखाओं को अवैध घोषित कर दिया। जुलाई खत्म होने के पहले प्रेस आर्डिनेंस के अंतर्गत 67 अखबारों और 55 छापाखानों को बंद कर दिया गया। दमन कायम तो हो रहा था। कांग्रेस के इतिहासकार पट्टाभि सीतारमय्या के अनुमान के अनुसार इस अवधि में राजनीतिक बंदियों की संख्या 90 000 तक पहुंच गई थी। जनवरी 1931 में सरकार ने गांधी और कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति के अन्य नेताओं को रिहा कर दिया।

गांधी इर्विन समझौता

काफी बातचीत के बाद, मार्च में गांधी इर्विन समझौता हुआ। इस समझौते की शर्तों के अनुसार सरकार दमन की कार्रवाई रोकने और हिंसा करने के लिए जिम्मेदार लोगों के अतिरिक्त सब राजनीतिक बंदियों को रिहा करने को तैयार हो गई। अपनी ओर से गांधी जी आंदोलन स्थगित करने को तैयार हो गए। तय हुआ कि गोलमेज सम्मेलन भारत के संविधान की बातचीत करेगा और संघीय सरकार का सिद्धांत इस संविधान का अनिवार्य अंग होगा। [illegible] पुरानी, विदेश नीति, अल्पसंख्यकों की स्थिति, भारत का [illegible] गए, और

दायित्व एवं अनुबंध के निर्वाह आदि मामलों में भारतीय हितों के संरक्षण और भारतीय उत्तरदायित्व की भी गारंटी होगी।

वामपक्षी राष्ट्रवादियों ने इस राजीनामे की आलोचना की और इसे समझौतावादी कहा। उनका कहना था कि जिस लक्ष्य के लिए संघर्ष शुरू हुआ था, यह राजीनामा उससे व्यतिक्रम का परिचायक है। 1931 के कराची अधिवेशन ने राजीनामे का अनुमोदन किया। बोस और जवाहरलाल इससे सहमत नहीं थे लेकिन राष्ट्रीय हित में दोनों ने इसके पक्ष में मत दिया।

इस अधिवेशन में कांग्रेस ने मौलिक अधिकारों पर भी एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया, जिसमें सभी नागरिकों को नागरिक अधिकार की सुरक्षा प्रदान की गई। यह अधिवेशन यातायात के साधनों और प्रमुख उद्योगों के राष्ट्रीयकरण, मजदूरों के लिए जीवन और श्रम की अच्छी शर्तों, दूरगामी कृषि सुधार, अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा सबके लिए वयस्क मताधिकार आदि के पक्ष में था।

कुछ ही दिनों बाद गांधी इंग्लैंड के लिए रवाना हुए जहां वे गोलमेज सम्मेलन में शामिल हुए। उन्होंने संघीय योजना, अल्पसंख्यकों की स्थिति, सेना आदि पर कई वक्तव्य दिए और कांग्रेस के दृष्टिकोण को परिभाषित किया। उन्होंने सांप्रदायिक निर्वाचन इकाइयों का विरोध किया और इस प्रश्न पर विचार विभेद के कारण सम्मेलन विसर्जित हो गया और शिष्टमंडल के सदस्य वापस भारत लौट आए।

जिन कुछ महीनों गांधी बाहर रहे वे व्यापक किसान असंतोष के महीने थे। कृषि संकट के कारण खेती की उपज की कीमतों में जो भारी कमी हुई उसके कारण भारतीय किसानों की आर्थिक स्थिति बड़ी बुरी थी। यहां का कृषि संकट उस विश्वव्यापी आर्थिक संकट का ही भाग था जो 1929 में शुरू हुआ, और अभी चल ही रहा था। 1931 के उत्तरार्द्ध में, युक्त प्रांत गुजरात और बर्मा के कुछ इलाकों में कुछ किसानों ने लगान और मालगुजारी देने से इंकार कर दिया था। सरकार का आरोप था कि कांग्रेस किसानों को उकसा रही है और इस तरह गांधी इर्विन इकरारनामे की शर्तों को तोड़ रही थी। दूसरी ओर कांग्रेस का कहना था कि इकरारनामे के बावजूद सरकार ने दमन की नीति का परित्याग नहीं किया था।

नागरिक अवज्ञा आंदोलन का पुनर्जन्म

दिसंबर में भारत लौटने के तुरंत बाद गांधी ने नए वायसराय लार्ड विलिंगडन से मिलना चाहा लेकिन लार्ड विलिंगडन इसके लिए तैयार नहीं हुए। जब कांग्रेस और सरकार के बीच बातचीत अंततः भंग हो गई तब कांग्रेस ने नागरिक अवज्ञा आंदोलन को पुनरुज्जीवित करने का निर्णय लिया। 4 जनवरी, 1932 को गांधी गिरफ्तार कर लिए गए। सरकार ने तुरंत कई आर्डिनेंस, जारी किए, जैसे इमरजेंसी पावर्स आर्डिनेंस, अनलाफुल इन्स्टिगेशन आर्डिनेंस, प्रिवेंशन आफ मोलेस्टेशन एंड बायकाटिंग आर्डिनेंस, अनलाफुल एसोसिएशन्स आर्डिनेंस। कांग्रेस

के संगठन अवैध करार दिए गए। लगभग सारे कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया, और बहुत सारे नागरिक अवज्ञा के स्वयंसेवकों को भी जेल में डाल दिया गया। आर्डिनेंसों द्वारा मिले हुए अधिकार के बल पर सरकार ने कई संगठनों की संपत्ति जब्त कर ली और इस संघर्ष के समर्थक अखबारों के खिलाफ कारवाई की। अप्रैल 1933 में कांग्रेस के अनुमान के अनुसार गिरफ्तार लोगों की संख्या 120 000 थी।

नागरिक अवज्ञा के अतिरिक्त, 1932 में दो और आंदोलन हुए, एक काश्मीर में, दूसरा अलवर में। दोनों देशी रियासतें थीं, जिनमें सत्तावादी रजवाड़ों का शासन था। अलवर के किसानों के विद्रोह का आधार आर्थिक था। किसानों से लगान की बहुत ऊंची दर की वसूली के कारण ही यह आंदोलन हुआ था। यह विद्रोह काफी व्यापक था और अंत में ब्रिटिश सेना की मदद से दबाया जा सका।

प्रधान मंत्री मैकडानल्ड ने जुलाई में कम्युनल अवार्ड (साम्प्रदायिक निर्णय) की घोषणा की, जिसके अनुसार दलित जातियों एवं अन्य अल्पसंख्यकों के लिए अलग निर्वाचक इकाइयों की व्यवस्था हुई। गांधी दलित जातियों के किसी भी पृथक निर्वाचन के विरुद्ध थे और उन्होंने प्रधान मंत्री के निर्णय के विरुद्ध आमरण अनशन शुरू किया। इसके फलस्वरूप पूना पैक्ट का जन्म हुआ, जिसमें सम्मिलित हिंदू निर्वाचन क्षेत्रों की बात बरकरार रही, लेकिन दलित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित कर दिए गए। सुरक्षित स्थानों की संख्या वायसराय के फैसले में निश्चित किए गए स्थानों की संख्या से अधिक थी।

मई 1933 में गांधी ने फिर अनशन शुरू किया। इस अनशन द्वारा वे अपने और अपने सहयोगियों को आध्यात्मिक नैतिक शक्ति प्रदान करना चाहते थे, जिससे वे अपने को अधिक अच्छी तरह से हरिजनों के उद्धार में लगा सकें। इस उपवास का व्यवहारतः यह परिणाम निकला कि लोगों का ध्यान राजनीतिक संघर्ष से विमुख होकर दूसरी ओर चला गया। सरकार ने शीघ्र ही गांधी को जेल से रिहा कर दिया। अनशन के संदर्भ में गांधी की राय से ही कांग्रेस अध्यक्ष ने फिलहाल नागरिक अवज्ञा आंदोलन को स्थगित कर दिया।

नागरिक अवज्ञा आंदोलन से सबक

सुभाष बोस और विट्ठलभाई पटेल उन दिनों यूरोप में थे और उन्होंने एक संयुक्त वक्तव्य में नागरिक अवज्ञा आंदोलन के स्थगन के बारे में कहा, "नागरिक अवज्ञा आंदोलन के स्थगन के गांधी के इस कार्य में स्पष्ट है कि उन्होंने अपनी असफलता कबूल कर ली है ... हम लोगों का स्पष्ट विचार है कि राजनीतिक नेता के रूप में गांधी असफल हो गए हैं। नए सिद्धांतों और नई कार्य पद्धति के आधार पर कांग्रेस के आमूल पुनर्गठन का वक्त आ गया है और इसके लिए नए नेता की जरूरत है।"

गांधी की राय पर कांग्रेस ने अगस्त [illegible] में सार्वजनिक नागरिक [illegible] आंदोलन को [illegible] का फैसला किया। आल इन्डिया कांग्रेस कमेटी ने

1934 में व्यक्तिगत और सार्वजनिक नागरिक अवज्ञा आन्दोलन को पूरी तरह वापस ले लिया। केवल गांधी को इसके लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया कि वे चाहें तो इस पर अमल कर सकते हैं। जून 1934 में सरकार ने सारे कांग्रेस संगठनों को फिर वैध मान लिया। फिर भी, कई नौजवान संगठन और अन्य संस्थाएं अवैध ही रहीं।

कुछ कांग्रेसियों से बढ़ते हुए मतभेद के कारण गांधी ने कुछ ही दिनों बाद कांग्रेस की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। कांग्रेस संगठन से अलग होने के पूर्व गांधी ने कांग्रेस की सांगठनिक संरचना और उसके संविधान में परिवर्तन के लिए उसे तैयार कर लिया था। ऐसा उन्होंने कांग्रेस में वामपंथी राष्ट्रवादियों और समाजवादी शक्तियों की बढ़ती हुई ताकत के कारण किया। कांग्रेस की प्रांतीय समितियों के सदस्यों की संख्या घटा दी गई और ऊपर की समितियों में चुनाव के तरीके बदल दिए गए जिससे अल्पसंख्यक दलों को नुकसान हुआ। वामपंथियों ने इन संशोधनों को अप्रजातांत्रिक कहा और उनकी आलोचना जायज भी थी। 1935 में पार्लियामेंट में संघीय संविधान पारित हुआ लेकिन दो साल बाद 1937 में प्रांतीय स्वायत्तता की योजना लागू हो सकी।

नागरिक अवज्ञा आंदोलन भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में दूसरा सार्वजनिक राष्ट्रीय संघर्ष था जो 1934 में समाप्त हो गया। इसका जन आधार 1920-21 के आन्दोलन से अधिक व्यापक था। इससे भारतीय जनता में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना का सबूत मिलता है। साधारण लोग जिनमें किसान भी थे बड़ी तादाद में राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल हुए। पहली बार उनके अपने व्यापक, स्वतंत्र, राजनीतिक एवं आर्थिक संगठन भी बने। फिर भी, आंदोलन का संचालन कांग्रेस के बुर्जुआ नेताओं के हाथ में रहा।

बुर्जुआ नेतृत्व के अगुआ थे गांधी, और गांधीवादी राजनीतिक विचारधारा और तदनुरूप वर्ग संबंधों के अनुकूल इस नेतृत्व ने राष्ट्रीय आन्दोलन का क्षेत्र, संकुचित और सीमित रखा। मजदूरों और किसानों की स्वतंत्र कार्यवाइयों का, जैसे हड़ताल करना या लगान नहीं देना, इस नेतृत्व ने नियमतः विरोध किया। किसानों और मजदूरों ने इन आंदोलनों का अपने ही वर्ग के नेताओं की अगुआई में संगठित किया और उनके अपने अनन्य राजनीतिक नारे थे, जिनसे उनके आंदोलन ताकतवर और प्रभावोत्पादक हुए। बुर्जुआ नेतागण सदा इस भाव से भरे रहे कि ये स्वतंत्र संघर्ष अनियंत्रित होकर जमींदार जैसे-जैसे निहित स्वार्थों का नाश कर पहुंचाएंगे। इस भय से ही इन आंदोलनों के प्रति उनका दृष्टिकोण निर्धारित था।* गांधी की ग्यारह सूत्री मांगों से स्पष्ट है कि वे सदा समझौते और

*[illegible] ग्रामीण आर पूंजीपति [illegible] वर्ग पर आधारित भारतीय समाज [illegible]
[illegible] और [illegible]। उनका [illegible] विचार
[illegible] सामाजिक [illegible] है और [illegible]
[illegible]

निपटारे की भावना से प्रेरित रहते थे। आंदोलन की असफलता के कारण राष्ट्रवादी तत्वों में मायूसी आई। 1936 में कांग्रेस की सदस्यता घटकर कुल पांच लाख पर आ गई।

गांधी और गांधीवाद की सीमाएं

भारतीय राष्ट्रवाद की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति गांधी में हुई। फिर भी जैसा कि न्यू-पर्सपेक्टिव के एक संपादकीय में कहा गया है:

> अपने सामाजिक मूल और आरंभिक अनुभवों एवं प्रभावों के कारण विचारतः वे राष्ट्रवादी दृष्टिकोण की बुर्जुआ सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर सके यद्यपि उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील और राष्ट्रवादी था।
>
> भावनिष्ठ दृष्टि से देखें तो उन्होंने राष्ट्रवाद की आत्मा को स्थापित किया, विदेशी गुलामी के प्रति घनघोर घृणा की भावना और उस गुलामी को समाप्त करने की वीरोचित इच्छा और दृढ़ निश्चय को जन्म दिया। गांधी आदर्श राष्ट्रवादी थे और उनकी चेतना में कहीं लेशमात्र भी प्रांतीय विशिष्टता और सांप्रदायिकता का अंश नहीं था।
>
> गांधी की चेतना का नवनिर्माण मूलतः पूंजीवाद ने किया था और इसलिए उनका दृष्टिकोण बुर्जुआ वर्ग दृष्टिकोण से निर्णीत था। इसका अर्थ यह है कि साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष, इस संघर्ष की कार्य पद्धति और राष्ट्रीय स्वातंत्र्य प्राप्ति के संबंध में उनकी धारणाएं इस वर्गजन्य दृष्टिकोण से निर्धारित थीं।
>
> गांधी की विचारधारा और उनके राजनीतिक, आर्थिक एवं आचारशास्त्रीय सिद्धांत और दृष्टिकोण राष्ट्रीय बुर्जुआजी की ऐतिहासिक जरूरत के अनुरूप थे। राष्ट्रीय बुर्जुआजी और साम्राज्य के हितों में तथ्यतः विरोध था क्योंकि साम्राज्यशाही भारतीय समाज के उन्मुक्त उद्योगीकरण और साधारण आर्थिक विकास की अनुमति नहीं देती थी। इस तरह राष्ट्रीय बुर्जुआजी की भूमिका प्रगतिशील थी। गांधीवाद में भी प्रगतिशील तत्व थे। लेकिन राष्ट्रीय बुर्जुआजी साम्राज्यवाद

वाद सिद्धांतों की अनिवार्य परिणति है। उनका विचार था कि [illegible] और [illegible] का नैतिक शक्ति के पर्याप्त उत्थान से जनसाधारण की [illegible] और उनका [illegible] की जा सकती है। उनका कहना था [illegible] बिना किसी कारण के [illegible] समर्थन [illegible] मैं [illegible] हूं। मेरा उद्देश्य है [illegible] अपना [illegible] जिसमें आप अपना सारा निजी [illegible] आमासी [illegible] और मुक्त [illegible] करें। मेरी कल्पना के [illegible] और [illegible] एक समान [illegible] है। आप [illegible] में [illegible] [illegible] उत्पन्न हुआ तो [illegible] और [illegible] पूजा [illegible] और [illegible] चाहिए। ([illegible] 1934 में [illegible] 1934 के [illegible] में प्रकाशित)।

और विदेशी वित्तीय पूजी पर आश्रित थी और इसका अधतत्र जमीदारो के हित से सलग्न और सबद्ध था, इसलिए यह साम्राज्यवाद और सामतवाद से समझौता करने को बाध्य था। फिर यह खतरा भी हरदम मौजूद था ही कि जन आदोलन तगडा होकर देशी पूजीवाद को भी चुनौती देने लगेगा। इसके चलते राष्ट्रीय बुजुआजी ने क्राति विरोधी होते हुए भी, विरोध पक्ष से, सुधारवादी सामाजिक शक्ति की भूमिका अदा की।

गाधीवाद ने राष्ट्रीय बुजुआजी की दोनो जरूरतो को पूरा किया। जन आदोलनो के जरिए इसने साम्राज्य पर दबाव डाला और साथ ही सघर्ष को सीमित भी रखा और ऐसे रास्तो से सघर्ष चलाया कि भारत के सपत्तिशील वर्गों को इससे नुकसान नही हो।

अपने जीवन दर्शन की वर्गजन्य सीमाओ के कारण गाधी का विश्वास था कि पूजीवादी सामाजिक व्यवस्था को आधार बनाकर सुखी, सपन्न राष्ट्रीय अस्तित्व का निर्माण किया जा सकता है। भारतीय पूजीवाद अपने शैशव मे नही था और उसका कोई उज्ज्वल समृद्ध भविष्य नही था। यह ह्रासोन्मुख विश्व पूजीवाद की एक कमजोर कडी था। इसे विशद लाभ के अजस्र स्रोत के रूप मे मडी और उपनिवेश उपलब्ध नही थे। अमरीका, ब्रिटेन और अन्य देशो के विशालकाय पूजीवादो के साथ प्रतिद्वद्वात्मक सघर्ष मे इसकी सफलता की आशा करना बेकार था। इसका अस्तित्व अनिश्चित था और इसके लाभ सीमित थे, इसलिए यह मजदूरो के जीवन का स्तर थोडा भी ऊचा नही कर सकता था।

लेकिन वर्गगत सीमाओ के कारण गाधी इस वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक तथ्य को समझ सकने मे असमर्थ थे। उन्होने यह नही समझा कि प्रतियोगिता पर आधारित पूजीवादी अर्थतत्र के अपने वस्तुनिष्ठ नियम है, पूजीपतियो की अपनी कोई स्वतत्र इच्छाशक्ति नही। आर्थिक क्षेत्र मे उनका व्यवहार प्रतियोगी आर्थिक सरचना की आवश्यकताओ द्वारा निर्णीत होता है। पूजीवादी सामाजिक भूमि मे वर्ग सघर्ष स्वत उत्पन्न होता है।

अपने वर्ग की सीमाओ के कारण गाधी बुर्जुआ दृष्टिकोण का अतिक्रमण नही कर सके और युद्ध, शोषण और दमन के सामाजिक कारणो को नही समझ सके। फलत उन्होने आदमी की आचरण सबधी कमजोरी को इन सबका कारण बतलाया। सामाजिक सरचना के आमूल परिवर्तन को दुनिया की बुराइयो के समाधान के लिए आवश्यक मानने के बदले उन्होने हृदय परिवर्तन के सिद्धात को सारी बुराइयो के रामबाण इलाज के रूप मे देखा।

सामाजिक व्यवस्था को बदलने की जरूरत नही, बरन आदमी के हृदय का आमूल नैतिक परिवर्तन होना चाहिए। पूजीवादी सामाजिक सबधो की जगह समाजवादी सामाजिक सबधो के प्रतिष्ठापन के बदले उन्होने पूजीवादी सामाजिक सबधो के मानवीकरण की चेष्टा की। लेकिन पूजीवाद के अपने अतरतम मे विशिष्ट शोषणात्मक गुण है और इसलिए उसका मानवीकरण सभव नही। गाधी

ने समाज के वग चरित्र म सामाजिक बुराइयो की जड नही देखी, वरन पूजीवादी व्यवस्था न ही आदमी के जिस नतिक आचारमूलक पतन का ज म दिया था उसी को उ होने सारी बुराइया का कारण माना।

लेकिन जब गाधी की बुजुआ चेतना की बात की जाती है तो इसका यह अथ नही कि यह चेतना किसी साधारण पूजीपति की स्वायपरक घिनौनी चेतना का पर्याय है। ऐसा सोचना गलत होगा। गाधी इस अथ म बुजुआ थे कि पूजीवादी सापत्तिक व्यवस्था पर आधारित समाज के औचित्य म उनकी आस्था थी और वे मानते थ कि सामाजिक अराजकता के अतिरिक्त इस व्यवस्था का कोई विकल्प नही। गाधी ने पूजीवादी शोषण की बात मानी और ज्वलत शब्दा म उसकी बबरता की निंदा की, लेकिन वे अपने मूलभूत बुजुआ दष्टिकोण की परिधि का अतिक्रमण नही कर सके। गाधी का जनसाधारण म विश्वास था, लेकिन साथ ही वे बुजुआ सामाजिक व्यवस्था मे भी विश्वास करते थ। उस समाज की सीमाआ म रहकर जनसाधारण की हालत सुधारी नही जा सकती थी, क्योकि विश्व की पूजीवादी व्यवस्था के ह्रास के काल म खासकर भारत जसे देश म जहा सप न पूजीवाद का विकास असभव था, मानवतावादी सुधार क कायक्रम को लागू करन क लिए जिस आर्थिक आधार की आवश्यकता हाती है वह बन नही सकता।

> विकास के एसे चरण म हमे प्राय ऐस उदात्त मानवतावादी मिलत है, जि ह दखकर कष्ट होता है, क्याकि व जनसाधारण की तकलीफ दूर करन की नाकामयाब कोशिश करत रहते हैं और साथ ही समाज को बदलन के जनसाधारण के सारे प्रयत्ना का अनवरत विराध भी करत हैं। सामाजिक व्यवस्था की उपयुक्तता और अपरिवतनशीलता म अटूट विश्वास के कारण वे परिवतन का विरोध करने को बाध्य है। वह उदात्त मानवतावादी जो ह्रासो मुख सामाजिक व्यवस्था की प्रतिक्रियात्मक प्रकृति को नही पहचान पाता, ऐतिहासिक दृष्टि म आवश्यक सामाजिक परिवतन का विराधी हो जाता है।

यद्यपि जसा कहा जा चुका है, गाधी अनन्य रूप स साप्रदायिकता विराधी थ और हिंदू-मुसलिम एकता के लिए सघष करत रह, दु खद सत्य यह है कि राष्ट्रीय आदोलन के हर चरण म हिंदू-मुसलिम विरोध घटन क बदले बढता ही गया। इसकी वजह थी कि वे इस विरोध क सामाजिक एतिहासिक कारणा का समझ सकन म असमथ रह। उनके अनुसार 'भारतीय समाज की भौतिक जीवनप्रक्रियाए नही, वरन लोगा की आचरण सबधी कमजोरी' इस विरोध का कारण थी। 'ऐतिहासिक दृष्टि स तो मुसलमाना का सप्रदायवाद वस्तुत पूजीपतियो, जमीदारो, सूदखोर महाजना और व्यापारिया द्वारा प्रयुक्त व्यापक आर्थिक उत्पीड़न की कुरूप विकृत अभिव्यक्ति था। भारत म य लाग मुख्यत हिंदू थ। आर्थिक तौर पर अक्षममुसलिम उच्चवर्गों न अपन सक्षम हिंदू प्रतियोगियो क साथ सघष म मुसलिम जनता क बढ़त उत्पीड़न को साप्रदायिक मोड़ दकर उसका

इस्तेमाल किया। मुस्लिम सम्प्रदायवाद का यही जनक था।'

जब मुस्लिम सम्प्रदायवाद पनपा, तो इसे खतम करने का एक ही कारगर तरीका था, यह कि भारतीय जनता हिंदू और मुसलमान दोनों को, उनके संयुक्त आर्थिक हितों के आधार पर एकताबद्ध किया जाए और उन्हें हिंदू मुसलमान दोनों तरह के निहित स्वार्थों के खिलाफ लड़ाई में उतारा जाए। इसी प्रकार मुसलिम सम्प्रदायवादियों को मुसलिम जनता से अलग किया जा सकता था। 'गांधी ने तीस वर्षों तक भावपूर्ण देशभक्ति को उभारकर आदमी की मानवीय गहराइयों की थाह लेकर और अक्सर उपवास के द्वारा सम्प्रदायवाद के उन्मूलन के लिए योगचित प्रयास किए। फिर भी सम्प्रदायवाद बढ़ता गया।

गांधी और गांधीवादी विचारधारा द्वारा शासित संचालित राष्ट्रीय आंदोलन अजीब संयोग था शौर्यपूर्ण प्रगति और आकस्मिक एवं मनमाजी ठहराव का, चुनौती और उसके बाद आवांछित समझौते का और इसके परिणाम थे अनिश्चय उलझन और जनसाधारण के परिप्रेक्ष्य का धुंधला होना। फलस्वरूप वे प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियां मजबूत हुईं जिन्हें गांधी खतम करना चाहते थे।

उग्रवादी (मूलभूत परिवर्तन चाहने वाले) संगठनों का उदय

1936 के बाद राष्ट्रीय आंदोलन उग्रमुखी हुआ। लखनऊ कांग्रेस के अध्यक्ष पद से जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता का समर्थन देने वाली सभी शक्तियों के संयुक्त मोर्चे के कार्यक्रम के लिए प्रतिनिधियों का आह्वान किया। उन्होंने मजदूर संघों और किसान संगठनों (देश में अब तक किसान सभाओं का उद्भव हो चुका था) की संबद्धता की सिफारिश की, जिससे कांग्रेस द्वारा संचालित राष्ट्रीय आंदोलन का जन आधार व्यापक हो सके। इस तरह के संगठनों को संबद्ध करने का प्रस्ताव तो कांग्रेस द्वारा स्वीकृत नहीं हो सका, बल्कि एक जन संपर्क समिति का निर्माण हुआ।

अब तक कई उग्रवादी संगठनों का उद्भव हो चुका था। कांग्रेस के भीतर ही अखिल भारतीय आधार पर सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। कांग्रेस के बाहर जमींदारी के उन्मूलन और भूमिकर, ऋण, लगान आदि में कमी की तात्कालिक मांगों के आधार पर स्वामी सहजानन्द, प्रो० रंगा और इंदुलाल याज्ञिक के नेतृत्व में किसान संगठन स्थापित हो चुके थे। लखनऊ कांग्रेस के फैसलों पर इन शक्तियों के उद्भव का प्रभाव देखा जा सकता है।

अप्रैल, 1936 के लखनऊ अधिवेशन में कांग्रेस ने फैसला किया कि वह नए संविधान के तहत 1937 में होने वाले चुनाव में भाग लेगी। उसी साल दिसंबर में फिर कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें पारित प्रस्ताव [illegible] स्पष्ट [illegible] 1935 [illegible] पूर्णतः अस्वीकार कर दिया गया। प्रस्ताव में यह [illegible] कांग्रेस [illegible]

मताधिकार के सिद्धांत पर चुनी गई ऐसी विधान सभा द्वारा ही लाया जा सकता है जिसे अंततः देश का संविधान निश्चित करने का अधिकार हो। कांग्रेस इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए काम कर रही है और जनसाधारण को संगठित करती है। विधायिका सभाओं में कांग्रेस के प्रतिनिधियों को सदा यह उद्देश्य अपने सामने रखना होगा।

कांग्रेस के चुनाव घोषणा पत्र में नागरिक स्वतंत्रता और नागरिकों के समानाधिकार की मांग की गई थी। इसमें यह भी कहा गया था कि कांग्रेस काश्तकारी, लगान और कर विषयक सुधार, खेती की जमीन पर बढ़ते हुए बोझ के सम्यक् वितरण करने और लगान की राशि में पर्याप्त कमी के द्वारा निम्न किसानों की मदद और अनार्थिक काश्त पर से लगान और कर को हटा लेना आदि मांगों का समर्थन करती है। घोषणा पत्र में किसानों के ऋण के सवाल की जांच पड़ताल की और उस कर्ज़ को कम करने की भी बात की गई।

औद्योगिक मजदूरों के लिए घोषणा पत्र में कहा गया कि उनके लिए समुचित जीवन स्तर एवं काम की स्थिति और घंटे तथा उनके सामाजिक कल्याण संबंधी कानून आदि की व्यवस्था होगी। घोषणा पत्र में यूनियन बनाने और अपने हितों के लिए हड़ताल करने के मजदूरों के अधिकार का भी समर्थन किया गया। घोषणा पत्र में यह भी कहा गया कि कांग्रेस सामाजिक, आर्थिक और अन्य क्षेत्रों में सेक्स संबंधी असमानता के उन्मूलन के पक्ष में है। इसने अस्पृश्यता निवारण और पिछड़ी जातियों के उद्धार का पक्ष लिया। घोषणा पत्र में खादी और ग्रामोद्योग को सहायता और इनके हितों को नुकसान पहुंचाए बिना बड़े उद्योगों को सुरक्षा प्रदान करने की भी बात थी।

इस कार्यक्रम और कांग्रेस की प्रतिष्ठा के कारण, चूंकि इसने अतीत में अनेक महान राष्ट्रीय आंदोलन शुरू किए और चलाए थे, चुनाव घोषणा पत्र का बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा और कांग्रेस ने चुनावों में बहुत बड़ी जीत हासिल की। बंबई, मद्रास, संयुक्त प्रांत, मध्य प्रदेश, बिहार और उड़ीसा में कांग्रेस को निर्णायक बहुमत प्राप्त हुआ और बंगाल तथा आसाम में यह सबसे अधिक शक्तिशाली पार्टी सिद्ध हुई।

प्रांतों में कांग्रेस के मंत्रिमंडल

मार्च, 1937 में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने फैसला किया कि जिन प्रांतों की विधायिका सभाओं में कांग्रेस का बहुमत है वहां वह सरकार बना सकती है, लेकिन तब तक ऐसा नहीं किया जा सकता जब तक कि विधायिका सभाओं में कांग्रेस के नेता इस बारे में आश्वस्त नहीं हो और स्पष्टतः यह नहीं कह सकें कि गवर्नर हस्तक्षेप के अपने विशेषाधिकार का प्रयोग नहीं करेंगे और सांविधानिक क्रियाकलाप में मंत्रियों द्वारा की गई कार्यवाहियों को रद्द नहीं करेंगे। सरकार स्वीकार करने वाले प्रस्ताव में कुछ अस्पष्टता थी। जन उपाधियों

और कुछ वामपंथी राष्ट्रवादियों, को विरोध था।

जहां विधायिका सभाओं में कांग्रेस का बहुमत था, उन प्रांतों में कुछ दिनों तक, दूसरे दलों के सदस्यों से बनी हुई अंतरिम सरकारों ने काम किया। 22जून को वायसराय ने घोषणा की कि प्रांतों के गवर्नर साधारणतः इस तौर पर काम करेंगे कि मंत्रियों से संघर्ष नहीं हो, चाहे वे मंत्री किसी भी दल के हों। इस तरह के टकराव से बचने के लिए और उसके समाधान के लिए, वे हर संभव प्रयत्न करेंगे। इस संदर्भ में कांग्रेस ने मंत्रिमंडल बनाने का फैसला किया।

इस फैसले के तुरंत बाद बंबई, मद्रास, बिहार, संयुक्त प्रांत, उड़ीसा और मध्यप्रदेश में कांग्रेस के मंत्रिमंडल बने। बाद में नार्थ वेस्ट फ्रंटियर प्राविंस में भी कांग्रेस का मंत्रिमंडल बना, क्योंकि कुछ गैर कांग्रेसी सदस्यों की मदद से, जो कांग्रेस का अनुशासन मानने को राजी थे कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हो गया।

सत्ताधारण के बाद कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने तुरंत राजनीतिक कैदियों को रिहा कर दिया। ऐसी संस्थाएं जो अवैध करार दी गई थीं अब फिर वैध मान ली गई। राजनीतिक कैदियों के देशनिकाले और नजरबंदी के हुक्म को रद्द कर दिया गया। कई अखबारों की जमानतें वापस कर दी गई।

फिर भी कुछ ही दिनों में वामपंथी राष्ट्रवादियों, समाजवादियों और मजदूर तथा किसान संगठनों के नेताओं ने नागरिक अधिकारों को सीमित करने और दमनात्मक कारवाई के लिए कांग्रेसी सरकारों की आलोचना शुरू कर दी। क्रिमिनल ला अमेंडमेंट ऐक्ट को कांग्रेस ने हरदम से दमनात्मक कानून माना था। आलोचकों का कहना था कि राजगोपालाचारी की मदद से मद्रास का कांग्रेसी मंत्रिमंडल हिंदी विरोधी आंदोलन के विरुद्ध इस ऐक्ट का उपयोग कर रहा था। आलोचकों को और अधिक विक्षोभ हुआ जब गांधी ने भी इसके इस्तेमाल का समर्थन किया। उन्होंने हरिजन में लिखा, 'मैंने कभी यह एक्ट नहीं पढ़ा है लेकिन राजाजी की स्पष्ट घोषणा से पता चलता है कि इसमें कुछ अच्छे प्रकरण भी हैं जो कांग्रेस जिस नई स्थिति का सामना कर रही है उसमें उपयुक्त हैं। अगर ऐसी बात है तो इसका इस्तेमाल न कर राजाजी बेवकूफी करेंगे।'

बाटलीवाला नामक एक प्रमुख समाजवादी को मद्रास से निकाल बाहर कर दिया गया। 1938 में बंबई में बांबे ट्रेड डिस्प्युट्स एक्ट बना। इस एक्ट ने हड़ताल की स्वतंत्रता सीमित कर दी और मजदूर संगठनों के रजिस्ट्रेशन के कायदे निश्चित कर दिए। मजदूर नेताओं के अनुसार ये कायदे उन यूनियनों के लिए फायदेमंद थे जिन्हें मिल मालिकों ने खुद गढ़ा लिया था। बांबे प्राविंसियल ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने विरोध में हड़ताल संगठित की। इस सिलसिले में पुलिस की गोली से एक आदमी मरा और बहुत से घायल हुए।

चुनाव घोषणा पत्र में हड़ताल के अधिकार की सुरक्षा प्रदान की गई थी। जब कांग्रेस सरकार ने इस अधिकार को सीमित करना चाहा तो प्रतिपक्ष के लिए उसकी आलोचना हुई। पुलिस गोलाबारी की भी निंदा हुई।

अहमदावाद म मजदूरा ने हडताल की तो काग्रेस सरकार न दफा 144 लागू किया। जब राजनीतिक बदियो की रिहाई दिवस के अवसर पर शोलापुर के मजदूरो ने प्रदशन सगठित किए तो उनके नेताओ को गिरफ्तार कर लिया गया। उनम से कुछ पर मुकदमा चला और उन्ह सजा भी मिली। जब किसाना ने ताख के राजा के खिलाफ सघष शुरू किया तो नाथ वेस्ट फटियर प्रात की काग्रेसी सरकार ने भी क्रिमिनल ला अमडमट ऐक्ट का इस्तमाल किया जिसके लिए उसकी आलोचना हुई।

अखिल भारतीय किसान सभा के अध्यक्ष स्वामी सहजानद ने बाबू राजेंद्र प्रसाद के जवाब म 'दि अदर साइड आफ द शील्ड' नामक पुस्तिका लिखी। इसम उन्होने बडे बडे शब्दो मे चुनाव के पहले दिए गए वचन को भग करने के लिए और किसान आदोलन के खिलाफ दमनात्मक काय के लिए काग्रेस की आलोचना की। इडियन सिविल लिबर्टीज यूनियन के सचिव डा० मनन ने सिविल लिबर्टीज अडर प्राविसियल अटानमी म लिखा

> यह तो मानना ही पडेगा कि प्रमुख दमनात्मक कानून ज्यो के त्यो हैं। क्रिमिनल ला अमडमट एक्ट भी इन्ही म है
>
> इस ऐक्ट के इस्तमाल के सिलसिले म पजाब की सरकार ने सबस अधिक जघन्य अपराध किए हैं। 1937 म पजाब म इस कानून के अतगत 24 मुकदम चले इसके बाद बगाल का स्थान आता है।
>
> जहा तक तादाद का सवाल है इस एक्ट के इस्तेमाल म मद्रास की काग्रेस सरकार इन दोना से भी आगे बढी हुई है।
>
> बबई की सरकार न अहमदाबाद के सूती कारखाना के मजदूरा की हडताल के सिलसिल म इस ऐक्ट का लागू किया और शोलापुर म भी इस ऐक्ट का इस्तमाल हुआ।

पर्याप्त वित्त के अभाव म मत्रिमडल समाज कल्याण के विधेयक न तो पारित कर सके और न लागू कर सके। किसाना के बारे म काग्रेस सरकार न कुछ काम किए, लेकिन वे अपर्याप्त थे। काग्रेस सरकार की बाब टनेंसी बिल स जसा कि बिल की प्रस्तावना के रूप म दिए गए वक्तव्य म कहा गया है, केवल चार प्रतिशत किसाना को फायदा हुआ। खेतिहर मजदूरा के लिए लगभग कुछ नहा किया गया।

किसान सगठना की बढती हुई ताकत तथा काग्रेस की बाम खिलाफी का इन सगठना द्वारा की गई आलोचना स किसाना के असताप का परिचय मिलता है।

काग्रेस सरकारा की यह भी आलोचना की गई कि चुनाव घोषणा पत्र के विरुद्ध प्रातीय स्वायत्तता सिद्धात को लागू किया जा रहा है। यह आलोचना काग्रेस के ही वामपथियो न की।

1935 के बाद की एक महत्वपूर्ण घटना यह भी थी कि भारत के देशी रियासतो के लोगो की राजनीतिक चेतना लगातार बढती रही। इसम कई रियासतो म प्रजा मडल या जनसगठन स्थापित हुए। आगे चलकर रियासतो के इन

जनसंगठनों का आल इंडिया स्टेट्स पीपल्स कांफ्रेंस के रूप में एकीकरण हुआ। इन संगठनों ने नागरिक स्वातंत्र्य, प्रतिनिधि संस्थाओं, किसानों की हालत में सुधार, बेगार का उन्मूलन, राज्यों के एकाधिकार की समाप्ति आदि की मांग की। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं ने रियासतों के लोगों के आंदोलनों और संगठनों में सक्रिय रुचि ली। कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन (1938) में पारित प्रस्ताव में कहा गया

> कांग्रेस प्रस्तावित संघीय योजना की निंदा करती है और प्रांतीय तथा स्थानीय कांग्रेस कमेटियों और साधारण जनता से और प्रांतीय सरकारों और मंत्रिमंडलों से अपील करती है कि इसका कार्यान्वयन नहीं होने दें। अगर लोगों की घोषित इच्छा के बावजूद इसे लादने की चेष्टा होती है तो हर तरह से इस चेष्टा का विरोध होना चाहिए और प्रांतीय सरकारों और मंत्रिमंडलों को इसमें कोई सहयोग नहीं देना चाहिए। अगर इस तरह की बात हो जाए तो ऐसी स्थिति में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी को यह अधिकार और निर्देश दिया जाता है कि इस सिलसिले में आवश्यक कार्यवाही का रास्ता निर्धारित करे।

गांधी और सुभाष बोस के बीच मतभेद

कांग्रेस के वामपक्ष और दक्षिणपक्ष के बीच की दरार बढ़ती जा रही थी, खासकर कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के काल में। 1939 में कांग्रेस के अध्यक्षीय चुनाव के लिए सुभाष चंद्र बोस खड़े हुए। उन्होंने संघ के विरुद्ध व्यापक, देशव्यापी संघर्ष का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। उन्होंने दक्षिणपंथी कांग्रेसी नेतृत्व की नीतियों और राजनीतिक क्रियाकलापों की कड़ी आलोचना की। बोस को सोशलिस्ट पार्टी, साम्यवादियों और कांग्रेस के उग्रवादियों का समर्थन प्राप्त था। गांधी ने अध्यक्ष पद के लिए पट्टाभि सीतारमैया का समर्थन किया जो दक्षिणपंथ के प्रमुख और अनुभवी नेता थे। बोस त्रिपुरी में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। उनके पक्ष में 1 575 और विपक्ष में 1 376 मत आए। बोस के निर्वाचन से कांग्रेस के अंदर उग्रवादी तत्त्वों के तीव्र विकास और दक्षिणपंथी नेताओं की नीतियों के प्रति बढ़ते हुए असंतोष का परिचय मिलता है। बोस के निर्वाचन के फलस्वरूप कार्यकारिणी समिति के 15 सदस्यों में से 12 ने इस्तीफा दे दिया।

1939 के त्रिपुरी कांग्रेस ने संघीय योजना को अस्वीकार करते हुए राष्ट्रीय मांग का प्रस्ताव पारित किया। अधिवेशन ने घोषणा की कि संघीय योजना लागू होने पर भारतीय जनता इसका विरोध करेगी। एक अन्य प्रस्ताव में गांधी के नेतृत्व में आस्था प्रकट की गई और इसमें कहा गया कि कांग्रेस अध्यक्ष गांधी की इच्छा के अनुसार ही कार्यकारिणी के सदस्यों को मनोनीत करें। इस प्रस्ताव से संगठन में गांधी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो गया। कार्यकारिणी के चुनाव के बारे में बोस और गांधी में समझौता नहीं हो सका। फलस्वरूप बोस ने इस्तीफा

दे दिया और उनकी जगह राजेंद्रप्रसाद चुने गए। बोस ने बाद में फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की।

मई में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई और इसने जो प्रस्ताव पारित किए उससे कांग्रेस का संविधान अधिक दुर्नम्य हो गया। कांग्रेस मंत्रिमंडल पर नियंत्रण रखने के प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों के अधिकार को कम कर दिया गया और कांग्रेस कमेटी की सहमति के बिना कांग्रेस सदस्यों के आंदोलन शुरू करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसके चलते कांग्रेस के पदासीन नेतृत्व की इच्छा के विरुद्ध कोई आंदोलन संगठित करना असंभव हो गया।

दक्षिणपंथी नेतृत्व के प्रभाव के कारण कार्य की स्वतंत्रता खत्म करने का जो निर्णय लिया गया उसका वामपंथी दलों ने विरोध किया। इसके लिए बोस पर आरोप लगाया गया कि वे कांग्रेस का अनुशासन भंग कर रहे हैं। इसलिए उन्हें बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षता से भी इस्तीफा देना पड़ा।

कांग्रेस ने संघीय योजना अस्वीकार कर दी थी और यह फैसला भी लिया जा चुका था कि अगर यह लागू किया गया तो इसके खिलाफ जनआंदोलन शुरू किया जाएगा। कांग्रेस के भीतर और बाहर उग्रवादी शक्तियां बढ़ रही थीं। उसी तरह किसानों और मजदूरों के आंदोलन भी बढ़ रहे थे और रियासतों की जनता के प्रजातांत्रिक और सामंत विरोधी संघर्ष भी अधिक व्यापक हो रहे थे। जब देश में ये सारी घटनाएं हो रही थीं, तभी द्वितीय महायुद्ध शुरू हो गया।

जगह की कमी की वजह से और चूंकि राजनीतिक राष्ट्रवाद का सपाट इतिहास लिखना नहीं वरन भारतीय राष्ट्रवाद के उद्भव की सामाजिक पृष्ठभूमि और उसकी उत्पत्ति के सामाजिक कारणों का विवेचन करना हमारा उद्देश्य है इसलिए भी अब हम यह अध्ययन समाप्त करते हैं।

सदर्भ

1 [illegible] राय सिंह।
2 वही (2) [illegible] उद्धत पृ० 14-15।
3 [illegible] राय एड [illegible]।
4 [illegible] पृ० 35।
5 वही पृ० 35।
6 [illegible] पृ० 274।
7 [illegible] [illegible] दत्त और गुप्त।
8 [illegible] पृ० 559।
9 [illegible] [illegible] और [illegible]।
10 [illegible] पृ० 55।
11 [illegible] पृ० 75।

12 दखें टामसन एड गरेट प० 492।
13 वही प० 493।
14 देखें जान स्टुअट मिल हास वाह न।
15 बच प० 151।
16 सर जी० आयर प० 177।
17 हास वाह न प० 360।
18 सर विलियम वडरबन, प० 10।
19 आर० पी० दत्त प० 279।
20 सर विलियन वडरबन द्वारा उद्धत प० 77।
21 बच द्वारा उद्धत प० 170।
22 एड्रूज एड मुखर्जी, प० 128 29।
23 दखें पट्टाभि सीतारमया पृ 26-27।
24 एनी बसट प० 7।
25 बैलाक द्वारा उद्धत प० 120।
26 सुरद्रनाथ बनर्जी प० 94-95।
27 वही, प० 315 16।
28 काग्रस प्रसिडसियल एड्रसेज फस्ट सिराज प० 254 55।
29 वही प० 7 8।
30 फिरोजशाह मेहता आर० पी० दत्त द्वारा उद्धत प० 288।
31 आर० सी० दत्त प० XVIII।
32 गोखल प० 1005 6।
33 दख पट्टाभि सीतारमया प० 94 95।
34 बनी पृ० 109।
35 वही।
36 रानाडकस जिल्द II प० 151।
37 पट्टाभि सातारमया द्वारा उद्धत पृ० 112 13।
38 काग्रस प्रसिडसियल एड्रसज, सकड सिरीज प० 12।
39 वहा प० 167।
40 काग्रस प्रसिडसियल एड्रसज फस्ट सिरीज प० 738 39।
41 पट्टाभि सातारमया प० 11।
42 बी० सी० पाल बच (2) द्वारा उद्धत प० 103।
43 बी० सी० पाल प० 36।
44 बच (2) द्वारा उद्धत प० 144।
45 वही प० 45।
46 वहा प० 145 46।
47 वहा, प० 127 28।
48 वहा प० 146।
49 आर० पी० दत्त प० 292।
50 जवाहरलाल नहरू प० 23 24।
51 आर० पी० दत्त पृ० 418।
52 वहा, पृ० 416।
53 तिलक बच (2) द्वारा उद्धत पृ० 26।

54 वहा प० 29।
55 वही, पृ० 34-35।
56 वही, प० 49।
57 पट्टाभि सीतारमया द्वारा उद्धत प० 164-65।
58 यह सारी सूचना मुख्यत रौलेट कमटी रिपोट पर आधारित है।
59 डब्ल्यू० राय स्मिथ प० 80।
60 देखें डब्ल्यू० राय स्मिथ प० 80।
61 देखें पट्टाभि सीतारमया प० 280।
62 यग इडिया, 31 ्सिबर 1919।
63 पट्टाभि सीतारमया प० 235।
64 वहा प० 33।
65 वही।
66 पट्टाभि सीतारमया द्वारा उद्धत पृ० 383।
67 लाड रीडिंग टेलिग्राफिक कारेसपाडस रिगार्डिंग द सिचुएशन इन इंडिया (सी एम डी० 1586 1922।
68 सुभाष बोस प० 90।
69 पट्टाभि सीतारमया पृ० 399 400।
70 स्वराजवादी वक्तव्य, पट्टाभि सीतारमया द्वारा उद्धत पृ० 462।
71 देखें पट्टाभि सीतारमया।
72 जवाहरलाल नेहरू प० 459।
73 जोन ब्यूकप द्वारा उद्धत प० 185।
74 पट्टाभि सीतारमया द्वारा उद्धत पृ० 560।
75 गवनमेंट आफ इंडिया रिपोट, इंडिया 1928 29।
76 गाधी आर० पी० दत्त द्वारा उद्धत पृ० 33।
77 आर० पी० दत्त द्वारा उद्धत प० 342।

19

राष्ट्रिक इकाइयो और अल्पसख्यको की समस्या

भारत मे राष्ट्रिक इकाइया और अल्पसख्यको की समस्या

राष्ट्रिक इकाइया और अल्पसख्यको की समस्या भारत के राष्ट्रीय आदोलन की जटिलतम समस्या थी। आध्रवासियो, मलयालियो, कर्नाटकवासियो, महाराष्ट्रियो, बलूचियो इत्यादि राष्ट्रिक इकाइयो एव मुसलमानो, सिक्खो, दलित जातियो आदि अल्पसख्यको मे जैसे-जैसे राजनीतिक जागरण आया, वैसे वैसे राजनीतिक स्वातत्र्य के लिए किए गए सयुक्त राष्ट्रीय आदोलन और स्वातत्र्योत्तर भारत की भावी राज्यव्यवस्था की दृष्टि से यह प्रश्न विशिष्ट और निर्णायक महत्व का होता गया। राष्ट्रिक इकाइयो और अल्पसख्यको की समस्या भारत की ही तरह आस्ट्रिया, हगरी, रूस आदि देशो के भी आधुनिक इतिहास मे उदित हुई है और उन देशो मे भी इसके समाधान की आवश्यकता पडी है।

ऐसा नही है कि अपने ऐतिहासिक विकास के आधुनिक चरण मे हर देश को राष्ट्रिक इकाइयो के प्रश्न का सामना करना पडा हो। उदाहरणार्थ, अग्रेजो और फ्रासीसियो को अपने राष्ट्रगत सगठन और फिर परवर्ती युग के अपने सपूर्ण विजयशील अस्तित्व के दिनो मे भी इस समस्या का सामना नही करना पडा। इसके विपरीत पूर्वी यूरोप के देशो, जैसे आस्ट्रो-हगेरियन साम्राज्य और बालकन क्षेत्र मे इस सवाल से निपटना पडा।[1] इस अतर के खास ऐतिहासिक कारण है।

राष्ट्रिक इकाइयो की उत्पत्ति के कारण

आधुनिक राष्ट्रो की ऐतिहासिक प्रगति के सर्वेक्षण से इस विशिष्ट तथ्य का पता चलता है कि वे समाज के पूजीवादी विकास के परिणाम है। पूजीवादी आर्थिक विकास के विस्तार की प्रक्रिया किसी भी राष्ट्र की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अनेकता का अतिक्रमण कर उसे एक राजनीतिक और व्यवस्था के अतर्गत सगठित शील राष्ट्र के रूप मे एकताबद्ध कर देता है।

आधुनिक पूजीवाद के आगमन पर आबादी के विभिन्न वर्गो और देश के विभिन्न भागो मे पारस्परिक सपर्क बढ़ता है। आधुनिक पूजीवादी वर्ग

शक्तिशाली समाकलनात्मक तत्व है। यह सामतवाद द्वारा लगाए गए व्यवधानो, अवरोधो को खतम कर बहुत बडी तादाद म लोगो को औद्योगिक केद्रो म एकत्र करता है। यह शहरो और देहातो को जोडता है और मध्य वग का निर्माण करता है, जो शुरू म राष्ट्रीयता की नई विचारधारा का एकमात्र प्रतिनिधि है। आधुनिक राष्ट्रो का उदभव मध्यवर्गीय प्रजातात्रिक क्रातियो से जुडा हुआ है, इन क्रातियो ने सामती अलगाव और बिखराव को खतम किया और पहली बार समान विचारो के आधार पर बडी-बडी आबादियो को सयुक्त सघष मे एकताबद्ध किया। इस तरह सत्रहवी सदी की क्राति के फलस्वरूप ब्रिटिश राष्ट्र का उदय हुआ और 1789 की महान क्राति के फलस्वरूप फ्रासीसी राष्ट्र का।

कुछ देशो म केंद्रीभूत राष्ट्रीय राज्यो की स्थापना के पहले ही आर्थिक एव भाषागत और सास्कृतिक समेकन की प्रक्रिया ने राष्ट्रिक इकाइयो को सुगठित राष्ट्रो के रूप म गठित कर लिया था, और वहा राष्ट्रिक इकाइयो और अल्पसख्यको की कोई विशेष समस्या नही थी। इसके विपरीत कुछ देशो म पूजीवादी आर्थिक विकास की प्रक्रिया म लोगो को एकीकृत कर सकने की जो शक्ति है उसके फलस्वरूप विभिन्न जातियो के लोग सम्मिलित आर्थिक और सास्कृतिक जीवन के भागी की हैसियत से राष्ट्र के रूप म परिवर्तित हो सकें इसके पहले ही ऐतिहासिक कारणो से केंद्रीभूत राज्य सत्ता स्थापित हो गई, और वहा ऐतिहासिक विकास के क्रम म राष्ट्रिक इकाइयो और अल्पसख्यको की समस्या का जन्म हुआ। स्तालिन ने इस ऐतिहासिक तथ्य की सारगर्भित विवेचना की है

> आधुनिक राष्ट्र का निश्चित युग, उदीयमान पूजीवाद युग की देन है। सामतवाद के उन्मूलन और पूजीवाद के विकास की प्रक्रिया जनता के राष्ट्र रूप म परिवतन की भी प्रक्रिया थी। पूजीवाद की विजयशील प्रगति और सामती जनकता पर उसकी जीत के युग म ब्रिटिश फ्रेंच, जमन और इटालियन राष्ट्रो का उदय हुआ।
>
> जहा राष्ट्रो का निमाण केंद्रीभूत राज्य सत्ता के उदय के साथ-साथ हुआ, वहा राष्ट्रो को अनिवायत राज्य सत्ता का परिवेश मिला और वे स्वतत्र बुर्जुआ पूजीवादी राष्ट्रीय राज्यो के रूप म परिणत हुए। ग्रेट ब्रिटेन (आयरलंड को छोडकर) फ्रास और इटली म यही स्थिति थी। इसके विपरीत, पूर्वी यूरोप के देशो म, केंद्रीभूत राज्यो की स्थापना (तुर्क, मगोल, इत्यादि लोगो के हमलो से) आत्मरक्षा की आवश्यकताओ के कारण जल्दी हुई, सामतवाद के विघटन और इस तरह राष्ट्रो के निमाण के पहले। फलस्वरूप, इन देशो म, राष्ट्र राष्ट्रीय राज्यो के रूप म विकसित नही हो सकते थे और न ही हुए, और वे मिश्रित बहुराष्ट्रिक बुर्जुआ पूजीवादी ... परिणत हुए ... आस्ट्रिया, हगरी और रूस म यही स्थिति थी।[3]
>
> आर्थिक तथा अन्य प्रकार के विकास एव अधिक ... ।

के राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दमन के इन बहुराष्ट्रिक राज्यों की विभिन्न राष्ट्रिक इकाइयों में राष्ट्रिक इकाई की चेतना का विकास हुआ।[4] दमित लेकिन आर्थिक तौर पर समेकित और चैतन्य राष्ट्रिक इकाइयों ने, जिनके अपने विभिन्न भू भागीय क्षेत्र थे, राजनीतिक स्वतंत्रता और सार्वभौम राज्य सत्ता के लिए आंदोलन शुरू किए। इसी तौर पर धार्मिक (जैसे यहूदी) या प्रजातीय अल्पसंख्यकों ने जो देश के समस्त भू भाग में बिखरे हुए थे, चैतन्य होने पर धार्मिक स्वतंत्रता, और अपनी भाषा और संस्कृति के विकास की उचित सुरक्षा के लिए आंदोलन किए।

राष्ट्र और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक, उनके अंतर

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक जनसमुदाय से राष्ट्र इस तरह भिन्न है कि राष्ट्र के लोग निश्चित भू भाग में रहते हैं, प्रायः एक ही भाषा बोलते हैं, और उनका सम्मिलित आर्थिक जीवन होता है, और उनकी सम्मिलित मनोवैज्ञानिक संरचना होती है जो उनकी संस्कृति द्वारा उद्भासित है।

> राष्ट्र ऐतिहासिक तौर पर विकसित होता है, यह भाषा, भूक्षेत्र, आर्थिक जीवन और सांस्कृतिक ऐक्य में परिलक्षित मनोवैज्ञानिक अस्तित्व का स्थिर, निश्चित संयोग है।[5]

किसी राष्ट्र के लोग विभिन्न धर्मों के अनुयायी हो सकते हैं, लेकिन इससे उनके राष्ट्रत्व पर कोई असर नहीं पड़ता, क्योंकि धर्म स्थाई तत्व नहीं है। 'अश्मीभूत धार्मिक कर्मकांड और म्रियमाण मनोवैज्ञानिक अवशेष' उनके चतुर्दिक 'जीवंत सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश' से लगातार परिशोधित होते रहते हैं।[6] इस तरह ब्रिटेन के लोगों में से कुछ प्रोटेस्टेंट हैं, कुछ कैथोलिक और उनके बीच भौतिकवादियों, अनीश्वरवादियों और थियासफिस्टों के भी इक्का-दुक्का छोटे-मोटे दल हैं, फिर भी वे एक राष्ट्र के सदस्य हैं।

भारत के मुसलमानों और दलित जातियों जैसे राष्ट्रीय अल्पसंख्यक राज्य के सारे भूक्षेत्र में फैले हुए होते हैं। ये लोग प्रायः धर्म के सूत्र में परस्पर बंधे रहते हैं और अप्रजातांत्रिक समाज व्यवस्था के कारण किसी विशिष्ट सामाजिक अन्याय के भागी होते हैं। लेकिन ये भिन्न, पृथक राष्ट्र नहीं होते, क्योंकि ऐसे किसी दल के सारे सदस्य किसी भूभाग विशेष के वासी नहीं होते और उनका सम्मिलित आर्थिक जीवन नहीं होता। वस्तुतः इनके अलग अलग हिस्से विभिन्न भूभागों में रहने वाले विभिन्न राष्ट्रिक इकाइयों के अंग होते हैं। इन राष्ट्रिक इकाइयों की अपनी अलग-अलग भाषाएं होती हैं और इनका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन परस्पर भिन्न होता है।

भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन की विशिष्टता

प्राक् ब्रिटिश भारत का भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक

तौर पर असपृक्त भारतीय जनता का कमोवेश सयुक्त आधुनिक राष्ट्र के रूप म परिवतन का रास्ता अग्रेज और फ्रासीसी जनता के राष्ट्रीय समेकन के रास्त स भिन्न था। ब्रिटिश पूजीवाद न आर्थिक और राजनीतिक साधना क जरिए भारतीय सामतवाद का अपग किया, पूजीवादी आर्थिक रूपो और प्रक्रियाओ क जरिए भारत का आर्थिक एकीकरण किया, आवागमन और सचार के आधुनिक साधना की स्थापना की जो मध्ययुगीन अलग्न जनजीवन क बहुमुखी विकास और सगठन के लिए अत्यत आवश्यक हैं, और भारत म केंद्रीभूत राज्य व्यवस्था का जनक था।[7]

फिर भी, चूकि भारतीय समाज का यह रूपातर विदशी पूजीवाद के हितो द्वारा अनुप्रेरित था और चूकि इस रूपातर की प्रकृति, व्यापकता और गहराई इन विदेशी हिता द्वारा अनुकूलित थी, इसलिए यह रूपातर अधूरा और विकृत रहा। इस रूपातर ने अव्यवस्थित मध्य युगीन जनसमुदाय स भारतीय राष्ट्र के उद्भव क लिए वस्तुनिष्ठ आधार तैयार किया और इस रूपातर के अधूरेपन क कारण हिंदुस्तान राष्ट्र क रूप म ब्रिटेन या फ्रास के समान समर्थित नही हो सका।

इन यूरोपीय देशा म सामतवाद पर विजय के फलस्वरूप जो राष्ट्रीय राज्य बने, उन्होने उन राष्ट्रो के सामाजिक और आर्थिक जीवन स सारे सामती अवशेष निकाल फेंके, तथा मुक्त और तीव्र आर्थिक एव सास्कृतिक विकास को जमकर मदद पहुचाई। लेकिन हम दख चुके हैं कि भारत म अग्रेजी शासन न सामती अवशेषो को जीवित रहने दिया और प्राय भारतीय समाज क प्रतिक्रियावादी तत्वो को, शासन के सामाजिक स्तभ के रूप म समथन प्रदान किया और साथ ही साप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रा, विधायिका सभा म हिता के प्रतिनिधित्व और अन्य तरीको से राजनीतिक सतुलन की नीति अपनाई। इन कारणा स पुराने विभेद बने रहे और भारतीय जनता के राष्ट्रीय सगठन की प्रक्रिया अवरुद्ध हुई। ब्रिटिश सरकार न भारतीय अर्थतत्र को साधारणत ब्रिटेन के अर्थतत्र के अधीन रखा, जिसके फलस्वरूप इसका तीव्र और उन्मुक्त विकास नही हो सका यद्यपि देश के राष्ट्रीय सगठन के लिए यह अत्यत आवश्यक था। आवागमन के साधना और वाणिज्य का विकास, शहरा की प्रगति और उनका उद्योगीकरण और तज्जन्य सामाजिक एक्य और सास्कृतिक उत्थान, जीवन के य सारे नए तथ्य सकुचित और विकृत होते गए। सतुलन और विशिष्ट साप्रदायिक एव दूसर प्रकार क हिता की रक्षा के नाम पर देश के साप्रदायिक और दूसर प्रकार के रूढिवादियो का समथन प्रदान करने की अग्रेजी शासन की जो नीति थी, उसन राष्ट्र विरोधी विभाजन की प्रवृत्ति को ही प्रश्रय दिया। इन्ही प्रमुख कारणो स भारतीय जन का राष्ट्रीय समेकन उस ऊचाई तक नही पहुच सका जहा उन्नीसवी सदी म अग्रेज और फ्रासीसी पहुच गए थे।

[illegible] अप्राप्त परिपक्वता म सप्रदायवादियो और अन्य [illegible] प्रतिक्रियावादी [illegible] की भूमिका [illegible] भी योगदान [illegible]। [illegible] पिछड़े [illegible] [illegible] [illegible] और

आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की अवरुद्ध स्थिति में फले फूले थे। जो प्रगतिशील तत्व नए भारतीय समाज में ब्रिटिश काल में उत्पन्न हुए थे उनकी तथा समस्त भारतीय समाज की भी मुक्त आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति पर रजवाड़ों, जमींदारों, सम्प्रदायवादियों और अन्य देशी प्रतिक्रियावादियों की मदद से अंग्रेजी सरकार ने जो प्रतिबंध लगाए थे, उनके खिलाफ प्रगतिशील तत्वों के अधिकाधिक समवेत और सतर्क संघर्ष के परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद का उदय हुआ। इस तरह भारतीय सामंती अवशेषों तथा अन्य प्रतिक्रियावादी तत्वों द्वारा समर्थित ब्रिटिश पूंजीवादी शासन से भारतीय राष्ट्रवाद को टक्कर लेनी पड़ी। इसके विपरीत, अंग्रेजी और फ्रांसीसी जनता को राष्ट्रीयता को, राष्ट्रीय जनतांत्रिक विकास के काल में देशी सामंती वर्गों के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ा। भारतीय राष्ट्रवाद की यह एक मूलभूत विशेषता थी।

भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन की यह भी खासियत थी कि विदेशी पूंजीवादी राष्ट्र की गुलामी में रहते हुए उपनिवेशी जनता के आंदोलन के रूप में, इसे जन आधार 1920 के बाद प्राप्त हुआ, उस वक्त जब विश्व पूंजीवादी व्यवस्था का ह्रास शुरू हो गया था और शक्तिशाली समाजवादी दुनिया का उदय हो चुका था। भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन उस साम्राज्यवादी व्यवस्था के खिलाफ था जिसका विरोध समाजवादी आंदोलन द्वारा भी हो रहा था।

भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन की तीसरी विशेषता यह थी कि बुर्जुआजी, जिसने बाद के चरण में इस आंदोलन को जनता का आंदोलन बनाया, समझौते की प्रवृत्ति से ग्रस्त रही और शासक साम्राज्यवादी से मेल मिलाप चाहती रही। इसकी यह वजह थी कि भारतीय बुर्जुआजी देश के प्रतिक्रियावादी जमींदार और सूदखोर महाजन तबकों से पूर्णतः सम्बद्ध थी अपनी आर्थिक कमजोरी के कारण ब्रिटिश वित्तीय पूंजी पर आश्रित थी और साथ ही जन आंदोलन के विस्तृत होते हुए आयामों से डरी हुई थी, क्योंकि इन्हें वह अपने वर्ग हितों के लिए खतरनाक मानती थी। बुर्जुआजी के वर्ग हित की दृष्टि से यह तर्क संगत भी था। जन आन्दोलनों की बढ़ती हुई ताकत में यह संभावना निहित थी कि देश की गैर पूंजीवादी राष्ट्रीय शक्तियों की पूर्ण विजय होगी और कालान्तर में समाजवादी व्यवस्था स्थापित होगी।

इस तरह, पूंजीवाद के उदय के दौरान में सामंतवाद के विरुद्ध अंग्रेज और फ्रांसीसी लोगों के जो राष्ट्रीय जनतांत्रिक आंदोलन हुए, उनकी परिणति बुर्जुआजी की विजय और इन देशों में आधुनिक पूंजीवादी समाज की स्थापना में और इनके विश्व पूंजीवादी विकास का दौर शुरू हुआ। इसके विपरीत, विश्व पूंजीवाद के अवरोह के युग में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध चलाए गए भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में यह संभावना परिलक्षित थी कि इसकी परिणति गैर पूंजीवादी विजय में होगी और इसलिए दुनिया के दूसरे भागों के साथ साथ भारतीय जनता भी राष्ट्रीय अस्मिता समाजवादी चरण में प्रवेश करेगी।

सुपुप्त राष्ट्रिक इकाइयो का जागरण

ऊपर कहा जा चुका है कि राष्ट्रिक इकाइयो एव अल्पसख्यको की समस्या भारतीय राष्ट्रवादी आदोलन की एक प्रमुख समस्या थी। अब हम यह विचार करें कि इस समस्या का जन्म कैसे हुआ और कैसे भारतीय राष्ट्रवादी राजनीति म यह समस्या इतनी महत्वपूर्ण हुई।

विभिन्न सप्रदायो और प्राता मे राष्ट्रवाद का विकास समय और रफ्तार दोनो दृष्टियो से असम प्रक्रिया थी। हम देख चुके है कि अग्रेजो की भारत विजय और भारत पर उनके शासन और उसकी सहगामी शक्तियो की क्रियाओ द्वारा सर्जित स्थिति के फलस्वरूप भारत मे राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।

चूकि अग्रेजो की प्रभुता और तज्जन्य नई शक्तियो का विस्तार सारे देश म एक साथ नही हुआ था, इसलिए जिस स्थिति न राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना को जन्म दिया, वह विभिन्न भागो और सप्रदायो म असमान तौर पर परिपुष्ट हुई। कुछ प्राता और सप्रदायो म राजनीतिक चेतना पहल आई। फलस्वरूप, भारतीय जनता के राष्ट्रीय आदोलन क समानातर बाद म, मुसलमानो, दलित जातियो, सिक्खो और गैर ब्राह्मणो जसी सामाजिक धार्मिक श्रेणियो के और आध्रप्रदेश वासियो, मलयालियो, कर्नाटक वासियो तमिल लोगो, कन्नड, और मराठियो, उडिया लोगो और गुजरातियो, पजाबियो सिधियो, बगालियो बिहारियो आदि प्रातीय सामाजिक दलो के जिनकी एक भाषा और सस्कृति थी स्वतत्र राजनीतिक आदोलन शुरू हुए।

इन प्रातीय सामाजिक समुदायो म निहित जो सुपुप्त राष्ट्रिक इकाइया थी, उनका वतमान सदी के चौथे दशक म इस हद तक राजनीतिक जागरण हो गया था कि ये लोग अपने को विभिन्न इकाइया, भिन्न राष्ट्रिक इकाइया मानने लगे। इसके कई कारण थ, जस इन प्राता की आर्थिक प्रगति, जिससे औद्योगिक और वाणिज्यिक वर्गों का काफी विकास हुआ, शिक्षित वर्गों की सख्या म वृद्धि, 1930-34 का नागरिक अवज्ञा आदोलन जो पहली बार इन राष्ट्रिक इकाइयो की जनता के कुछ लोगो को राष्ट्रीय आदोलन की परिधि म लाया और जिसस उनम राष्ट्रीय चेतना की ज्योति जली। सपन्न प्रातीय साहित्यो का भी इन वर्षों म उदय हुआ। इनम इन प्रातो क बुद्धिजीवी वग की राष्ट्र चेतना को अभिव्यक्ति मिली। विशिष्ट राष्ट्रिक इकाइयो के रूप म स्वतत्र जीवन की इन राष्ट्रिक इकाइयो की इच्छा आकाक्षा को भी इन साहित्यिक रचनाओ न वाणी दी। इस तरह आबादी के अधिकाधिक लोगो म राष्ट्र चेतना का प्रसार हुआ। इन राष्ट्रिक इकाइयो के आदोलन आत्मनिर्णय की भावना और विशिष्ट राष्ट्रिक इकाइयो क रूप म स्वतत्र जीवन व विकास की आकाक्षा से अनुप्रेरित थ। ये आदोलन उनके द्वारा अनुभूत ब्रिटिश शासन के विशिष्ट दबावो के परिणाम थ।

जसे जसे इन आबादियो मे दल चेतना बढ़ी, वसे-वसे उनम यह भावना भी

आई कि वे मुक्त सामूहिक जीवन व्यतीत करें, ऐसा जीवन जो वर्तमान प्रांतीय सीमाओं और विभाजनों द्वारा अवरुद्ध नहीं हो। ये प्रांत भाषागत आधार पर नहीं, वरन अंग्रेजों के बढ़ते हुए प्रभाव के युग में प्रशासनिक सुविधा के लिए बने थे। इनमें से कुछ राष्ट्रिक इकाइयों ने, जैसे बिहारियों, आंध्रवासियों, कर्नाटकवासियों, जिनकी अपनी पृथक भाषा और संस्कृति थी, प्रांतों के पुनर्गठन की मांग की, जिससे वे भूक्षेत्रों की दृष्टि से भी एकीकृत हो जाएं। उदाहरणार्थ, आंध्र वाले मद्रास से अलग होना चाहते थे और कर्नाटक वाले महाराष्ट्र से अलग संयुक्त कर्नाटक चाहते थे। बिहार और उड़ीसा आदि के लोगों ने भी ऐसी ही मांगें प्रस्तुत कीं।

इन नवजागृत राष्ट्रिक इकाइयों ने अपनी-अपनी भाषाओं और अपने-अपने साहित्य को समृद्ध बनाया, अपने विश्वविद्यालय स्थापित किए, अपने 'राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना की, सब तरह से अपनी संस्कृति को पुनरुज्जीवित किया, और उसे सुसंपन्न बनाया। आंध्र, महाराष्ट्र और कर्नाटक के अपने व्यापार संघ भी स्थापित हुए। इनसे इन जातियों में जाति चेतना के उद्भव और एकीकरण की उनकी इच्छा का परिचय मिलता है। इन लोगों की यह इच्छा कि उनके अपने अलग प्रांत बनें जहां लोग एक ही भाषा बोलें जहां उनकी एक संस्कृति हो, एक भारतीय राज्य की धारणा के विरुद्ध नहीं थी। प्रांतों के पुनर्विभाजन की मांग केवल इसलिए की गई कि इनका निर्माण ब्रिटिश शासन की जरूरतों की दृष्टि से किया गया था। इन जागृत जातियों ने पृथक सार्वभौम राज्य सत्ता की या भारत के राजनीतिक विभाजन की मांग नहीं की।

इंडियन नेशनल कांग्रेस ने स्थिति को पहचाना और उसने भाषागत आधार पर प्रांतों के पुनर्गठन की योजना अपनाई। स्वतंत्र भारत के लिए जिस संघीय राज्य की कल्पना उसने की उसके अनुसार सुरक्षा, संचार, विदेशी संबंध आदि कुछ मामलों में केंद्र के अधिकार और नियंत्रण के अतिरिक्त अन्य मामलों में प्रांतों को व्यापक स्वायत्तता मिलने वाली थी। उसने यह भी कहा कि कोई भी भूभागीय इकाई भारतीय संघ में रहने को बाध्य नहीं होगी और अगर वह चाहे तो उसे अलग हो जाने का हक होगा।

दो विरोधी प्रवृत्तियां

लेकिन इन जागृत राष्ट्रिक इकाइयों में बढ़ते हुए आंदोलन में दो विरोधी प्रवृत्तियां काम कर रही थीं पहली प्रगतिशील और दूसरी राष्ट्र विरोधी, विघटनशील और प्रतिक्रियावादी।

जब इन राष्ट्रिक इकाइयों ने भूभागीय एकीकरण एवं अपनी भाषा और संस्कृति के मुक्त विकास आदि की मांग की तो उन्होंने पूर्ण आत्माभिव्यक्ति और आत्मोन्नति की अपनी राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक इच्छा ही प्रदर्शित की। उनकी इस इच्छा एवं दूसरी राष्ट्रिक इकाइयों और समस्त भारत के साथ राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के आधार पर राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने की उनकी इच्छा न तो राष्ट्र विरोधी

नही था। वस्तत इस नवजागरण से राष्ट्रीय एकता की उनकी इच्छा और अधिक बलवती ही हुई, क्योकि स्वतत्रता प्राप्ति पर वे अन्य लोगो के साथ, सघ मे विशिष्ट राष्ट्रिक इकाइयो के तौर पर, अपना भी मुक्त विकास कर सकेगे। इस प्रवृत्ति से आशा की जा सकती थी कि स्वतत्र भारत विभिन्न राष्ट्रिक इकाइयो के सपन्न जटिल बहुमुखी सामाजिक और सास्कृतिक अस्तित्व का सम्मिश्रण होगा। यह निश्चय ही प्रगतिशील प्रवृत्ति थी।

लेकिन इसके साथ एक दूसरे तरह की प्रवृत्ति भी काम कर रही थी। इन नवजागृत राष्ट्रिक इकाइयो के वाणिज्यिक और औद्योगिक तत्वो ने इन राष्ट्रिक इकाइया क साधारण लोगो की जातीय चतना का दुरुपयोग किया। उन्होने दूसरी राष्ट्रिक इकाइया एव प्राता के व्यापारिक और औद्योगिक प्रतियोगिया के खिलाफ शत्रुता की भावना जगाकर निजी स्वार्थों का राष्ट्रीय पहनावा देने की चेष्टा की। इसी तरह राष्ट्रिक इकाइ विशेष के पेशेवर वर्गों के लोगो ने भी अपनी राष्ट्रिक इकाई क जनसाधारण के बीच दूसरी इकाई या दूसर प्रात के पेशेवर लोगो के खिलाफ घृणा क प्रचार द्वारा अपने निजी स्वार्थों को राष्टीयता का बाना पहनाया। इस तरह ये पेशेवर और वाणिज्यिक एव औद्योगिक तबके वस्तुत भारतीय जनता के व्यापक राष्ट्रीय ऐक्य के विघटन म लग हुए थे। यह एकता सपूण भारतीय जन की स्वतत्रता और प्रगति के लिए और विभिन्न राष्ट्रिक इकाइया के विशिष्ट राष्टीय, स्वतत्र विकास क लिए अत्यत आवश्यक थी। लेकिन अतर्प्रांतीय शत्रुता की भावना से राष्ट्रीय ऐक्य और सयुक्त राष्ट्रीय आदोलन की इच्छा कमजोर हुई एव प्रगतिशील सामाजिक, राजनीतिक और सास्कृतिक कार्यों के लिए विभिन्न सामाजिक दलो क बीच सहयोग की भावना मजबूत हो रही थी उसे नुकसान पहुचा।

भारतीय मुस्लिम, राष्ट्रीय अल्पसख्यक

भारतीय राष्ट्रवाद आदोलन के ढाचे म ही नवजागृत राष्ट्रिक इकाइयो के अतिरिक्त मुसलमानो दलित जातिया, सिक्खो और अन्य अल्पसख्यको के भी आदोलनो हुए। ऊपर जिस सद्धातिक मानदड का निरूपण हो चुका है, उसके अनुसार ये सामाजिक दल राष्ट्रिक इकाइया नही थे, क्योकि इनकी एक भाषा नही थी, इनका अपना निश्चित भूभाग नही था और इनका अपना सम्मिलित आर्थिक जीवन भी नही था। य वस्तुत सामाजिक धार्मिक श्रेणियो के लोग थे।

इनम पहला स्थान मुसलमानो और दलित जातियों का था और ये सारे देश म बिखरे हुए थ। व उन प्राता की भाषा बोलत थ जहा वे रहते थ। वे विभिन्न प्रातीय, सामाजिक समुदायो म एकाकित अग थ, और उनके आर्थिक जीवन के भागी थ। मालाबार म मुसलमान (मापला) वही पोशक भी पहनत थ जो हिंदू बगाल और कुछ और प्राता म भी यही बात थी। प्राय उनका खान पान भी समान रहा था। बगाली मुसलमान और मापला प्राय चावल खाते थे, जो

भौगोलिक आर्थिक और ऐतिहासिक कारणों से बंगाल और मालाबार का मुख्य खाद्य था। लेकिन उसी धर्म को मानने वाले उनके बिरादर पंजाब में गेहूं की रोटी खाते थे, जो पंजाबियों का, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान, मुख्य भोजन था। इन धार्मिक समुदायों के सदस्यों के बीच एकता का एकमात्र सूत्र धर्म ही था। उनका दैनिक जीवनयापन और आर्थिक एवं सामाजिक आदान प्रदान जिस प्रांतीय आबादी के वे अंग थे उसी के द्वारा निर्णीत होता था।

सभी मुसलमानों के समान आर्थिक हित नहीं थे। उनकी तादाद लगभग नौ करोड़ थी और वे सारे देश में फैले हुए थे। हिंदुओं की ही तरह उनमें भी जमींदार और रजवाड़े नवाब पशेवर लोग दुकानदार, सूदखोर महाजन किसान और मजदूर आदि श्रेणियां थीं। हिंदुओं की ही तरह मुसलमानों की भी सामाजिक संरचना में विभिन्न आर्थिक वर्ग थे जिनके भिन्न और विरोधी स्वार्थ थे। वस्तुत जीवंत आर्थिक यथार्थ ने इन इकाइयों को विभिन्न वर्गों में बांट रखा था और वह इनके विभिन्न वर्गों को दूसरे संप्रदायों के विभिन्न वर्गों के साथ एकताबद्ध होने के लिए बाध्य कर रहा था। धर्म की समानता से यह महत्वपूर्ण तथ्य तो धूमिल नहीं होता कि भिन्न संप्रदायों के जमींदार, पूंजीपति और मजदूर अपने समान आर्थिक हितों के कारण एकताबद्ध हो रहे थे और दूसरे संप्रदाय के वैसे ही वर्गों के साथ एकजुट होकर अपने विशिष्ट वर्गजन्य स्वार्थों की पूर्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे। वर्ग विभाजन के आधार पर एकीकरण की ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील प्रक्रिया संप्रदायवादी प्रचार के कारण अवरुद्ध हो रही थी, और वर्ग विभाजन वास्तविक आर्थिक संरचना पर ही आधारित था।

इसी तरह राजनीतिक क्षेत्र में सभी धर्मों के भारतीयों के स्वार्थ एक थे जो उन्हें ब्रिटिश शासन के खिलाफ संयुक्त राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने को, एकताबद्ध होने को बाध्य करते थे क्योंकि ब्रिटिश शासन भारतीय समाज के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में बाधक था। अपने विशिष्ट आर्थिक और दूसरे प्रकार के अपने वर्गजन्य हितों द्वारा अनुप्रेरित विभिन्न धर्मों के कुछ वर्गों ने अपने राजनीतिक और आर्थिक संगठन भी बनाए जैसे जमींदारों के संघ मजदूरों के संघ और समाजवादी पार्टियां वाणिज्य संघ, किसान सभा आदि।

इस तरह, भारतीय मुसलमानों की अपनी विशिष्ट भाषा, अपना अलग आर्थिक जीवन और अपना पृथक भूभागीय क्षेत्र नहीं था। ये तो ऐसे अलग राष्ट्रीय समुदाय थे न उनकी अपनी एकाश्मिक सामाजिक संरचना थी। ये वर्गों में विभक्त थे जिनके अलग अलग आर्थिक और राजनीतिक हित थे।

आल इंडिया मुस्लिम लीग मुसलमानों का प्रमुख संगठन था। इस पर जमींदार और बुर्जुआजी तत्वों का प्रभुत्व था। इन और मुसलमान पेशेवर वर्ग के कुछ लोगों ने जो नौकरियों या विधायिका सभा में स्थानों के लिए हिंदू पेशेवर वर्गों के प्रतियोगी थे, मुसलमान जनता की राजनीतिक चेतना को सांप्रदायिक रास्ता पर चला[illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

है वह खंडित नहीं होता। भारत पर अंग्रेजी शासन और भारतीय समाज के वर्ग चरित्र से भारतीय जनता की जो राष्ट्रीय और निम्न तबकों की जो वर्गीय एकता कायम हुई थी, उसे साम्प्रदायिकता के विकास से नुकसान हुआ।

लेकिन यह मानना पड़ेगा कि सिंध, बलूचिस्तान और नार्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रांतों की जनता में जो मुख्यतः मुसलमान थे, बहुत हद तक विभिन्न राष्ट्रिक इकाइयों के गुण मौजूद थे। उनके अपने भूभागीय क्षेत्र थे, अपनी भाषा और संस्कृति थी, अपना आर्थिक जीवन था। वे आंध्र प्रदेशवासियों, मलयालियों आदि की तरह राष्ट्रिक इकाइयों की श्रेणी में आते थे, अंतर केवल इतना था कि वे मुख्यतः एक ही धर्म के लोग थे। लेकिन उन्हें राष्ट्रिक इकाई माना जाता है, तो धर्म साम्य की वजह से नहीं, वरन इसलिए कि उनका अपना विशिष्ट भूभागीय क्षेत्र था, अपनी अलग भाषा और संस्कृति थी, और उनका अपना संयुक्त आर्थिक जीवन था। वे किसी कल्पित भारतीय मुस्लिम राष्ट्र के अंग नहीं थे, वरन विशिष्ट राष्ट्रिक इकाइयों के लोग थे, जिनमें अधिकांश एक ही धर्म के अनुयायी थे।

मुसलमानों में साम्प्रदायिकता के उद्भव के कारण

मुस्लिम जनता के राजनीतिक जागरण का गलत, साम्प्रदायिक तरीके से इस्तेमाल किया जा सका, इसके कई कारण हैं। मुस्लिम सम्प्रदाय में पेशेवर और बुर्जुआ वर्गों का विकास हिंदू सम्प्रदाय की अपेक्षा बाद में हुआ। मुसलमानों ने देखा कि हिंदू उनसे पहले से ही सरकारी नौकरियों और व्यापार, उद्योग और वित्त में प्रमुख स्थानों पर आसीन हैं। नौकरियों और औद्योगिक एवं वाणिज्यिक हितों की लड़ाई में अपने हिंदू प्रतियोगियों के विरुद्ध उन्हें अपने सम्प्रदाय के जनसाधारण की मदद की जरूरत थी। एक ही वर्ग के विभिन्न अंगों के पारस्परिक विरोध को उन्होंने साम्प्रदायिकता का नाम दिया और कहा कि यह वस्तुतः हिंदू और मुस्लिम सम्प्रदायों का पारस्परिक विरोध है। उन्हें राजनीतिक तौर पर जागृत मुस्लिम जन साधारण का समर्थन भी मिला। वर्तमान स्थिति में उनकी व्यापक दरिद्रता और बढ़ते हुए राष्ट्रीय आंदोलन के फलस्वरूप उनमें राष्ट्रीय चेतना अधिकाधिक विकसित हो रही थी। मुस्लिम सम्प्रदाय के ऊंचे तबकों, जमींदारों, बुर्जुआजी और पेशेवर वर्गों ने मुस्लिम जनता की बढ़ती हुई राष्ट्रीय और वर्ग चेतना को विकृत साम्प्रदायिक रूप देना चाहा, जिससे वे अपने स्वार्थों की पूर्ति और निहित स्वार्थों के विरुद्ध सभी सम्प्रदायों के गरीब लोगों के संयुक्त जन आंदोलन को रोकने के लिए इन लोगों का समर्थन प्राप्त कर सकें।

सम्प्रदायवाद के प्रचार में अंग्रेजों का भी हाथ था। उन्होंने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व, साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र और साम्राज्य हित में प्रांतों के पुनर्गठन आदि तरीकों से अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिए राजनीतिक संतुलन की समर नीति अपनाई थी। इससे भी इन सम्प्रदायवाद बढ़ा और इससे भारत के लिए जनता के संयुक्त राष्ट्रीय आंदोलन का विकास अवरुद्ध हुआ।[1] इस ओर देख

कि कुछ ब्रिटिश राजनेताओं ने भी यह समझा कि ब्रिटिश प्रभुसत्ता को सबल बनाने के लिए ही संतुलन की नीति अपनाई गई थी। सम्प्रदायवाद मूलतः ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारतीय सामाजिक अर्थतंत्र के विशिष्ट विकास, विभिन्न सम्प्रदायों के असम आर्थिक और सांस्कृतिक विकास और ब्रिटिश सरकार और इन सम्प्रदायों के निहित स्वार्थों की रणनीति का परिणाम था।

मुसलमानों के राष्ट्रीय जागरण में विलंब के कारण

चालीस करोड़ की आबादी में मुसलमानों की संख्या नौ करोड़ थी। ये हिंदुस्तान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक थे। इनकी राजनीतिक प्रगति और इनके राजनीतिक आंदोलनों का सर्वेक्षण आवश्यक है।

भारतीय मुसलमानों का पहला संगठित आंदोलन वहाबी आंदोलन था। यह धर्म सुधार आंदोलन के रूप में शुरू हुआ था, लेकिन बाद में इसमें राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तत्व भी आ मिले।[9] राजनीति वाले अध्याय में बतलाया जा चुका है कि यह ब्रिटेन विरोधी आंदोलन के रूप में शुरू हुआ और बंगाल के कुछ मुसलमान किसानों में भी फैला, जिसके फलस्वरूप किसान विद्रोह हुए यद्यपि वे दबा दिए गए। यह आंदोलन 1857 के विद्रोह के कुछ दिनों बाद खतम हो गया।

1857 का परवर्ती काल भारतीय मुसलमानों के इतिहास में राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से संभवतः सर्वाधिक अंधकारमय युग था। चूंकि 1857 के विद्रोह में मुसलमानों ने हिंदुओं की अपेक्षा अधिक प्रमुख भाग लिया था इसलिए ब्रिटिश सरकार ने भारतीय मुसलमानों का भरोसा नहीं किया और उनका दमन करने की नीति अपनाई।[10] अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिए ब्रिटेन ने भारत पर अपने संपूर्ण शासनकाल में राजनीतिक संतुलन की नीति अपनाई। विद्रोह के पहले भी, 1843 में लार्ड एलनबरा ने कहा था, 'मैं इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता कि मुसलमान मूलतः हमारे शत्रु हैं और हमें हिंदुओं को खुश रखने की नीति अपनानी चाहिए।'[11] विद्रोह के दबने के कुछ ही दिनों बाद लार्ड एलफिंस्टन ने कहा, 'लोगों में फूट डालो और इस तरह उन पर शासन करो,' यह पुराने रोमन लोगों का आदर्श था और यही हमारा भी आदर्श है।'[12] फौज में ऊंचे ओहदों से मुसलमानों को अलग किया गया।[13] इसका उच्चवर्गीय कुलीन मुसलमानों की आर्थिक स्थिति पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा क्योंकि ये अभी तक फौज को ही अपना पेशा बनाते रहे थे।

प्रशासनिक एवं अन्य प्रकार के कार्यों के लिए ब्रिटिश सरकार ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा की शुरुआत की। इससे अरबी और फारसी भाषाओं का महत्व घटा और मुस्लिम बुद्धिजीवियों की आर्थिक स्थिति पर इसका बुरा असर पड़ा। ब्रिटिश सरकार की इस नीति के विरुद्ध अपने रोष और आक्रोश के कारण वे नई शिक्षा से विमुख रहे यद्यपि हिंदू नई शिक्षा संस्थाओं में शामिल हो रहे थे और उनके बीच से अंग्रेजीदां बुद्धिजीवियों का एक नया वर्ग उभर रहा था। पर मुसलमानों

के सास्कृतिक पिछडेपन का कारण तो था ही इसके चलते वे प्रशासनिक ओहदा और कानून, डाक्टरी आदि पेशाओ से वचित रह गए। नई शिक्षा के माध्यम से हिंदू बुद्धिजीवियो ने प्रजातत्र और स्वतत्रता के पश्चिमी विचारो को हृदयगम किया और वे भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के नेता और अगुआ हुए।

एक अन्य कारण से भी मुस्लिम सप्रदाय म राजनीतिक चेतना का विकास हिंदुओ के बाद हुआ। मुस्लिम सप्रदाय का आर्थिक राजनीतिक और सास्कृतिक दृष्टि से प्रभावशाली बहुत बडा हिस्सा उत्तरी भारत म केंद्रित था, जो मुख्यत हिंदू आबादी वाले इलाको से अपेक्षाकृत बाद म ब्रिटेन की राजनीतिक प्रभुता और सास्कृतिक प्रभाव म आया। 'बगाल, बबई मद्रास, इन तीन बदरगाह वाले इलाको म, जहा से अग्रेजी सस्कृति और व्यापार का सारे देश म प्रसार हुआ, बुर्जुआजी का पहले उदय हुआ। इसलिए य अपेक्षाकृत पहले स्वाधीनता की स्थिति म पहुच गए। इन इलाको के लोग खासकर मध्यम वर्ग के लोग मुख्यत हिंदू थे। बगाल मे मुसलमानो की सख्या काफी है लेकिन वे प्राय किसान है और इसलिए परिवर्तनो से अप्रभावित रहे।'[14]

इन्ही प्रमुखत हिंदू इलाको म पहले नई अर्थव्यवस्था की स्थापना हुई, आवागमन के आधुनिक साधनो का प्रसार हुआ औद्योगिक नगर बसे, नई शिक्षण सस्थाए बनी। हिंदू प्राक ब्रिटिश काल म भी व्यापार पर अधिकार जमाए हुए थ और राजस्व विभागो म जमे हुए थे। उन्होने बडी जल्दी अपने को नए शासन तत्र की आवश्यकताओ के अनुरूप ढाल लिया और नई स्थिति का फायदा उठाया। इसलिए पहले उन्ही के बीच राष्ट्रवादी और प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग का विकास हुआ।

सर सैयद अहमद और मुस्लिम नवजागरण

सर सैयद अहमद खा (1817 98) मुसलमानो के पहले नेता थ जिन्होने मुसलमानो को एकता के सूत्र म बाधने के प्रयास किए और उन्हे पाश्चात्य शिक्षा और सस्कृति के प्रति आकृष्ट किया। उन्होने ब्रिटिश सरकार और भारतीय मुसलमानो के बीच अच्छे सबध की स्थापना की चेष्टा की। 1860 म प्रकाशित अपनी किताब 'द लायल मुहमडस आफ इंडिया' म उन्होने यह सम्मति दी कि मुसलमान मूलत राजभक्त है, ब्रिटिश सरकार को मुसलमानो के प्रति राजनीतिक सशय का भाव छोड देना चाहिए और मुसलमानो को प्रशासन म भाग लेना चाहिए तथा भारत म अग्रेजो द्वारा लाई गई नई प्रगतिशील शिक्षा का स्वागत करना चाहिए।

सर सैयद ने भारतीय मुसलमानो के लिए पाश्चात्य शिक्षा का काफी प्रचार किया। इस योजना म आधुनिक शिक्षा और इस्लाम को बराबर बौद्धिक आधार पर परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया। इस्लाम ने सबध और मुस्लिम मध्य वर्ग को आर्थिक उन्नति म सर सैयद ने अलीगढ़ म मुहमडन एग्लो

ओरियंटल कालेज की स्थापना की। बाद में यही कालेज अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी बना। अलीगढ़ आंदोलन के प्रति मुसलमानों के मध्य वर्ग में काफी उत्साह था। अलीगढ़ कालेज में आधुनिक मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग तैयार हुआ। इस बुद्धिजीवी वर्ग में पाश्चात्य संस्कृति के लिए उत्साह और ब्रिटिश सरकार के प्रति राजनीतिक भक्ति की भावना कूट कूट कर भरी हुई थी। 'मुसलमानों को ब्रिटिश ताज की सुयोग्य और उपयोगी प्रजा' बनाना ही कालेज का लक्ष्य था।[15] इस संस्था के संस्थापकों ने भारत में अंग्रेजी राज को विश्व का अभूतपूर्व चमत्कार माना।[16]

सर सैयद ने इंडियन नेशनल कांग्रेस का विरोध किया, और मुसलमानों को इसमें शामिल होने से रोका। 'मैंने तथाकथित नेशनल कांग्रेस के खिलाफ 'दि इंडियन युनाइटेड पैट्रिआटिक एसोसिएशन' की स्थापना कर अपने ऊपर एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व लिया है।'[17] उनका यह निश्चित विचार था कि अंग्रेजी सरकार मुस्लिम पेशेवर वर्गों का पक्ष लेगी और उन्हें सहायता देगी। 'अगर आप निष्ठाहीनता का संशय नहीं पैदा करें तो सरकार अवश्य इस बात पर (फौज में कर्नल और मेजर की बहाली के सवाल पर) ध्यान देगी।'[18] सर सैयद को इस बात का डर था कि अगर मुसलमानों को ब्रिटिश सरकार की मदद नहीं मिली, तो अपनी श्रेष्ठतर शिक्षा और आर्थिक शक्ति से हिंदू मुसलमानों को अभिभूत कर लेंगे इसलिए उन्होंने राज के प्रति भक्ति की सलाह दी, और चूंकि कांग्रेस ने सरकार के विरोध और उसकी उदारवादी आलोचना की नीति अपनाई थी, इसलिए उन्होंने कांग्रेस का विरोध किया। 1885 से इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना पर सर सैयद उदारवादी बुद्धिवादियों द्वारा संचालित भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के सक्रिय विरोधी के रूप में सामने आए। काउंसिल के रूप की [illegible] में सर सैयद अहमद खां ने संयुक्त के बदले साम्प्रदायिक निर्वाचन का समर्थन किया।

सर सैयद के अलीगढ़ आंदोलन ने मुसलमानों, खासकर उनके मध्य वर्गों में नवीन चेतना लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। चिराग अली, सैयद महदी अली, मुस्तफा खां, खुदा बख्श, [illegible] हाली, नजीर अहमद और मुहम्मद शिबली नुमानी इस आंदोलन के प्रमुख नेता और इसके विचारों के प्रमुख प्रतिपादक थे। उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने, बुद्धिवादी दृष्टिकोण से मुसलमानों की आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप कुरान की नई व्याख्या करने और अपनी सामाजिक व्यवस्था का संशोधन आधुनिक और प्रजातांत्रिक पद्धति पर [illegible] करने के लिए मुसलमानों का आह्वान किया।[19] अलीगढ़ आंदोलन के प्रतिक्रियात्मक [illegible] के फलस्वरूप मुस्लिम सम्प्रदाय में [illegible] मध्य [illegible] हुआ, जो उनका [illegible] के [illegible] व्यापक [illegible] गया।

1890 और 1905 के बीच भारत में महान राजनीतिक उथल-पुथल हुई। राजनीतिक [illegible] अध्याय में इस उथल-पुथल के कारणों का [illegible] जा चुका है। अब हम यह देख रहे हैं, [illegible] के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन किस, [illegible]

लाजपत राय और घोष वगैरह जैसे उग्रवादियों के अधिकाधिक प्रभाव में आया। पाल, घोष और अन्य नेताओं ने राष्ट्रीयता की भावना को सनातन हिंदू विचारों का बाना पहनाया और यह बात मुस्लिम मध्य वर्ग की राजनीतिक चेतना को पसंद नहीं आई। लेकिन 1905 या उसके बाद के वर्षों में राष्ट्रीय आंदोलन में मुसलमानों के भाग नहीं लेने के और भी कारण थे। कांग्रेस का असल हथियार था ब्रिटिश माल का बहिष्कार। बहिष्कार आंदोलन की सफलता से ब्रिटिश पूंजीवाद को काफी नुकसान और भारतीय उद्योगपतियों को फायदा हुआ, लेकिन भारतीय उद्योगपतियों में अधिकांश हिंदू थे। "1905 में भारत का उद्योगीकरण अब उपेक्षणीय नहीं रह गया था। फिर भी अधिकांश मध्यवर्गीय मुसलमान या तो किरानी थे, या विभिन्न पेशों में लगे थे, वे मिल मालिक नहीं थे। विदेशी माल के बदले देशी माल के इस्तेमाल से उन्हें कोई लाभ नहीं था। बहिष्कार के चलते तो अलबत्ता उन चीजों की कीमत बढ़ गई। जिन्हें वे खरीदते थे।"[9] मुसलमानों का खयाल था कि स्वदेशी के उपयोग द्वारा वे केवल हिंदू मिल मालिकों को ही लाभ पहुंचाएंगे। लार्ड कर्जन ने बंग विभाजन को प्रशासकीय सुविधा की दृष्टि से उचित माना। लेकिन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के उग्रवादी नेताओं के अनुसार यह कदम भारतीय राष्ट्रवाद को कमजोर करने के लिए उठाया गया था। उनका कहना था कि इस तरह बंगाल की राजनीतिक तौर पर आगे बढ़ी हुई आबादी में फूट डाली जा रही थी। मुख्यतः मुस्लिम आबादी वाले पूर्वी बंगाल और आसाम को मुख्यतः हिंदू आबादी वाले पश्चिम बंगाल से अलग कर सांप्रदायिक संतुलन या प्रतितोल का सिद्धांत लागू किया जा रहा था। भारतीय राष्ट्रवादियों के अनुसार सांप्रदायिक आधार पर बंगाल का बंटवारा राजनीतिक तौर पर अग्रगामी हिंदुओं के विरुद्ध पिछड़े हुए मुस्लिम संप्रदाय की मदद पहुंचाने के लिए किया जा रहा था। फिर भी उन्नीसवीं सदी के अंत में शिक्षित मुस्लिम मध्य वर्ग में तेजी से राजनीतिक चेतना का उभार हो रहा था। प्रशासनतंत्र में उन्हें आत्मसात करने में सरकारी आयोजना के कारण उनमें भी सरकार की आलोचना की भावना धीरे धीरे ही सही, पर बढ़ने लगी।

मुस्लिम लीग और उसका सांप्रदायिक और उच्चवर्गीय स्वरूप

मुसलमानों का पहला राजनीतिक संगठन मुस्लिम लीग की स्थापना 1906 में हुई। इसके मुख्यतः मुस्लिम संप्रदाय के उच्चवर्गीय और पेशेवर वर्गों के लोग थे। मुस्लिम लीग की स्थापना के ठीक पहले एच० एच० आगा खां के नेतृत्व में मुसलमानों का एक शिष्टमंडल उन दिनों के वायसराय लार्ड मिंटो से जा मिला। इस शिष्टमंडल ने निर्वाचन की किसी भी स्कीम में पृथक प्रतिनिधित्व की मांग की। वायसराय ने यह मांग मान ली और कहा

> आपकी मांग का आधार इसमें निहित है कि म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या लेजिस्लेटिव काउंसिल में निर्वाचन की कोई भी व्यवस्था...

जाए, जिसके अनुसार निर्वाचित प्रतिनिधित्व लागू किया जाए या बढ़ाया जाए, तो मुस्लिम सम्प्रदाय को सम्प्रदाय की हैसियत से अलग प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। आपका कहना है कि अभी निर्वाचक इकाइयां जिस तरह की हैं उनसे अधिकांश में मुस्लिम उम्मीदवारों के जीतने की कोई संभावना नहीं है। अगर संयोगवश कोई मुस्लिम उम्मीदवार जीत भी जाए तो ऐसा तभी संभव है जब वह उम्मीदवार अपने सम्प्रदाय के विरोधी बहुसंख्यक लोगों के विचारों के हित में अपने सम्प्रदायगत विचारों का परित्याग कर दे। ऐसी हालत में वह किसी भी तरह अपने सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। आप ठीक ही कहते हैं कि आपकी बातों का मूल्यांकन आपकी सांख्यिक शक्ति के आधार पर नहीं वरन् आपके सम्प्रदाय के राजनीतिक महत्व और साम्राज्य के हित में की गई आपकी सेवाओं के आधार पर होना चाहिए। मैं पूरी तरह आपसे सहमत हूं।[1]

लॉर्ड मार्लि का ख्याल था कि पृथक् निर्वाचन के दावे को लॉर्ड मिंटो से मिले समर्थन के कारण ही मुसलमानों ने अपने साम्प्रदायिक राजनीतिक संगठन की बात सोची और उसे रूप दिया। उसने लॉर्ड मिंटो को लिखा, 'मैं मुसलमानों के सवाल पर आपसे दुबारा बहस नहीं करना चाहता। लेकिन मैं एक बार फिर यह नम्र निवेदन करूंगा कि उनके अतिरिक्त दावे के समर्थन में आपने जो पहली वक्तृता दी उसी से मुस्लिम खरगोश की यात्रा शुरू हुई।'[2]

मुस्लिम लीग की स्थापना भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक विकास में मील का पत्थर है। यह उनका पहला राजनीतिक संगठन था। लीग ने निम्नांकित लक्ष्य प्रस्तावित किए '(1) भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा की भावना भरना (2) भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक एवं दूसरे प्रकार के अधिकारों की रक्षा करना और संयत भाषा में सरकार के सामने उनकी आवश्यकताएं और आकांक्षाएं प्रस्तुत करना, (3) जहां तक संभव हो, और ऊपर (1) और (2) में उल्लिखित उद्देश्यों को नुकसान पहुंचाए बगैर, मुसलमानों और भारत के अन्य सम्प्रदायों में मैत्री की भावना का प्रचार करना।'[3]

लीग के 1908 के अमृतसर अधिवेशन में जो मांगें रखी गईं उनसे इसके साम्प्रदायिक एवं उच्च और मध्यवर्गीय चरित्र का परिचय मिलता है। अधिवेशन में पारित प्रस्तावों द्वारा लार्ड मार्ले और प्रीवी काउंसिल में मुस्लिम प्रतिनिधित्व और सेवाओं में प्रतिशत आरक्षण की मांग की गई। इस तरह लीग ने मुस्लिम पढ़े लिखे वर्ग के नौकरियां संबंधी हितों और भावनाओं को अभिव्यक्ति दी।

'सम्प्रदायों, वर्गों और हितों' की ब्रिटिश रणनीति

1909 के मार्ले मिंटो रिफार्म्स ने भारतीय मुसलमानों के लिए पृथक् चुनाव क्षेत्रों और प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की और इस तरह भारतीय संविधान में साम्प्रदायिक सिद्धांत का प्रवेश हुआ। यह सिद्धांत बाद में सिखों, ईसाइयों, पारसियों और अन्य के

अन्य अल्पसख्यक दला पर भी लागू हुआ। 1935 के गवनमट आफ इंडिया एक्ट म कई सम्प्रदाया के लिए अलग निर्वाचन का विधान था।

ब्रिटिश सरकार न जमींदारा, यूरोपियना, व्यापारिया और उद्योगपतिया जस गर साम्प्रदायिक दला क लिए भी अलग चुनाव क्षेत्रा का प्रबध किया। साधारण चुनाव इकाइया क साथ ही सम्प्रदाया, वर्गों और हिता के लिए विशिष्ट निर्वाचक गणा की भी व्यवस्था की गइ।

भारतीय राष्ट्रवादिया ने अलग चुनाव क्षेत्रा और प्रतिनिधित्व की प्रथा की कडी आलोचना की। उनका कहना था इनके चलत राष्ट्रीय एकता का विकास अवरुद्ध हो रहा था और साम्प्रदायिक विभेद बढ रहे थ। उन्हान यह भी कहा कि ब्रिटेन न भारतीय जनता की राष्ट्रीय एकता का कमजोर करन के लिए जान बूझकर यह राजनीतिक हथकडा इख्तियार किया था।

कइ ब्रिटिश राजनेताआ का यह विचार था कि प्रतितोल की नीति अर्थात वर्गों या सम्प्रदाया के बीच परस्पर सतुलन बनाए रखने की नीति भारत पर अग्रेजा का प्रभुत्व बनाए रखने के लिए अत्यत आवश्यक थी। इस प्रश्न पर हमन पहले ही लाड एलेनबरा और माउटस्टुअट एलफिन्स्टन क विचार उद्धृत किए ह। 1926 म लाड ओलिवियर न लिखा, 'भारतीय मामला की जिस भी अच्छी जानकारी है उस यह मानन म दिक्कत नही होगी कि, कुल मिलाकर भारत की अफसरशाही मुस्लिम सम्प्रदाय का पक्ष लती है, कुछ तो गहरी सहानुभूति क कारण, लेकिन मुख्यत हिंदू राष्ट्रवाद क विरुद्ध प्रतितोल की आवश्यकता क कारण।' [3]

हम दख चुके ह कि 1906 म मुस्लिम नताआ के शिष्ट मडल को दिए गए अपन जवाब म लाड मिटो न स्पष्ट कर दिया कि मुसलमाना क लिए साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की स्वीकृति साम्राज्य के लिए उनक द्वारा की गइ सवा का पुरस्कार है। लजिस्लेटिव काउसिल क सामन अपन भाषण म उसन यह भी कहा, 'भारतीय हिता क्या सम्प्रदाया क लिए और अधिक प्रतिनिधित्व न ब्रिटिश प्रशासन क कमजोर होन क बदल और मजबूत होगा।' [3]

ब्रिटिश प्रभुत्व का अनुरक्षण तत्कालीन भारत म अग्रेजा का प्रमुख लक्ष्य था। उनके शासन क विभिन्न चरण म इसी बात न उनकी राजनीति का स्वरूपित किया। उदारवादी ब्रिटिश विचारका और राजनेताओं न भी [illegible] मुखापक्षी का ही सपना दखा, न कि स्वशासन का। [illegible] सरकार ही किसी जन समूह का अच्छा प्रशासन प्रदान कर सकती है। जसा [illegible] न लिखा है, साम्राज्यवाद के अतगत स्वाधीनता का कोई स्थान नहीं। साम्राज्यवाद क अतगत रहन क बाद ही स्वतत्र सरकार का पुरस्कार हो सकती है। 16 मई 1907 का मिटो न मार्ले का लिखा, हम बात उदारवादी सरकार का दिखा न सकू। आप नहीं कह सकत और हम [illegible] म हम जा कुछ करेंगे वह [illegible] मह सराइ क अलावा और कुछ नहीं है। [4]

स्पष्टत, प्रतितोल की नीति आवश्यक थी और भारत म ब्रिटिश प्रभु [illegible]

जाए, जिसके अनुसार निर्वाचित प्रतिनिधित्व लागू किया जाए या बढ़ाया जाए, तो मुस्लिम सप्रदाय को सप्रदाय की हैसियत से अलग प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। आपका कहना है कि अभी निर्वाचक इकाइया जिस तरह की हैं उनमे अधिकाश म मुस्लिम उम्मीदवारो के जीतने की कोई सभावना नहीं है। अगर सयोगवश कोई मुस्लिम उम्मीदवार जीत भी जाए तो ऐसा तभी सभव है जब वह उम्मीदवार अपने सप्रदाय के विरोधी बहुसख्यक लोगो के विचारों के हित म अपने सप्रदायगत विचारो का परित्याग कर दे। ऐसी हालत म वह किसी भी तरह अपने सप्रदाय का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। आप ठीक ही कहते है कि आपकी बातो का मूल्याकन आपकी साख्यिक शक्ति के आधार पर नही वरन आपके सप्रदाय के राजनीतिक महत्व और साम्राज्य के हित म की गई आपकी सेवाओ के आधार पर होना चाहिए। मैं पूरी तरह आपसे सहमत हू।[1]

लार्ड मार्लि का ख्याल था कि पृथक निर्वाचन के दावे को लार्ड मिंटो से मिले समर्थन के कारण ही मुसलमानो ने अपने साप्रदायिक राजनीतिक सगठन की बात सोची और उसे रूप दिया। उसने लार्ड मिंटो को लिखा, 'मैं मुसलमानो के सवाल पर आपसे दुबारा बहस नही करना चाहता। लेकिन मैं एक बार फिर यह नम्र निवेदन करूगा कि उनके अतिरिक्त दावे के समर्थन म आपने जो पहली वक्तृता दी, उसी से मुस्लिम खरगोश की यात्रा शुरू हुई।'[2]

मुस्लिम लीग की स्थापना भारतीय मुसलमानो के राजनीतिक विकास म मील का पत्थर है। यह उनका पहला राजनीतिक सगठन था। लीग ने निम्नाकित लक्ष्य प्रस्तावित किए '(1) भारतीय मुसलमानो म ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा की भावना भरना (2) भारतीय मुसलमानो के राजनीतिक एव दूसरे प्रकार के अधिकारो की रक्षा करना और सयत भाषा म सरकार के सामने उनकी आवश्यकताए और आकाक्षाए प्रस्तुत करना, (3) जहा तक सभव हो, और ऊपर (1) और (2) म उल्लिखित उद्देश्यो को नुकसान पहुचाए बगैर, मुसलमानो और भारत के अन्य सप्रदायो म मैत्री की भावना का प्रचार करना।'[3]

लीग के 1908 के अमृतसर अधिवेशन म जो मागे रखी गइ उनसे इसके साप्रदायिक एव उच्च और मध्यवर्गीय चरित्र का परिचय मिलता है। अधिवेशन म पारित प्रस्तावो द्वारा लोकल बोर्डों और प्रीवी काउसिल म मुस्लिम प्रतिनिधित्व और सेवाओ म प्रतिशत आरक्षण की माग की गई। इस तरह लीग ने मुस्लिम पेशेवर वर्गों के नौकरियो सबधी हितो और भावनाओ को अभिव्यक्ति दी।

'सप्रदायो, वर्गों और हितो' की ब्रिटिश रणनीति

1909 के मार्लि मिंटो रिफार्म स ने भारतीय मुसलमानो के लिए पृथक चुनाव क्षेत्रो और प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की और इस तरह भारतीय सविधान म साप्रदायिक सिद्धात का प्रवेश हुआ। यह सिद्धात बाद म सिक्खो, दलित जातियो और देश के

अन्य अल्पसंख्यक दलों पर भी लागू हुआ। 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट में कई संप्रदायों के लिए अलग निर्वाचन का विधान था।

ब्रिटिश सरकार ने जमींदारों, यूरोपियनों, व्यापारियों और उद्योगपतियों जैसे गैर सांप्रदायिक दलों के लिए भी अलग चुनाव क्षेत्रों का प्रबंध किया। साधारण चुनाव इकाइयों के साथ ही 'संप्रदायों, वर्गों और हितों' के लिए विशिष्ट निर्वाचक गणों की भी व्यवस्था की गई।

भारतीय राष्ट्रवादियों ने अलग चुनाव क्षेत्रों और प्रतिनिधित्व की प्रथा की कड़ी आलोचना की। उनका कहना था कि इनके चलते राष्ट्रीय एकता का विकास अवरुद्ध हो रहा था और सांप्रदायिक विभेद बढ़ रहे थे। उन्होंने यह भी कहा कि ब्रिटेन ने भारतीय जनता की राष्ट्रीय एकता को कमजोर करने के लिए जान बूझकर यह राजनीतिक हथकंडा इख्तियार किया था।

कई ब्रिटिश राजनेताओं का यह विचार था कि प्रतितोल की नीति अर्थात वर्गों या संप्रदायों के बीच परस्पर संतुलन बनाए रखने की नीति भारत पर अंग्रेजों का प्रभुत्व बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक थी। इस प्रश्न पर हमने पहले ही लार्ड एलेनबरो और माउंटस्टुअर्ट एलफिंस्टन के विचार उद्धृत किए हैं। 1926 में लार्ड ओलिवियर ने लिखा, 'भारतीय मामलों की जिसे भी अच्छी जानकारी है उसे यह मानने में हिचक नहीं होगी कि, कुल मिलाकर भारत की अफसरशाही मुस्लिम संप्रदाय का पक्ष लेती है, कुछ तो गहरी सहानुभूति के कारण, लेकिन मुख्यतः हिंदू राष्ट्रवाद के विरुद्ध प्रतितोल की आवश्यकता के कारण।'

हम देख चुके हैं कि 1906 में मुस्लिम नेताओं के शिष्ट मंडल को दिए गए अपने जवाब में लार्ड मिंटो ने स्पष्ट कर दिया कि मुसलमानों के लिए सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की स्वीकृति साम्राज्य के लिए उनके द्वारा की गई सेवाओं का पुरस्कार है। लेजिस्लेटिव काउंसिल के सामने अपने भाषण में उसने यह भी कहा, 'भारतीय हितों एवं संप्रदायों के लिए और अधिक प्रतिनिधित्व से ब्रिटिश प्रशासन के कमजोर होने के बजाय और मजबूत होगा।'

ब्रिटिश प्रभुत्व का अनुरक्षण यथासंभव भारत में अंग्रेजों का प्रमुख लक्ष्य था। डलहौजी के विभिन्न चरणों में इसी बात ने उनकी राजनीति का स्वरूप दिया। उदारवादी ब्रिटिश विचारकों और राजनेताओं ने भी भारत में केवल सुधारों का ही उपदेश दिया, न कि स्वशासन का। स्वशासन सरकार ही किसी जन-समूह को अच्छा प्रशासन प्रदान कर सकती है। जैसा जेम्स मिल ने लिखा है, साम्राज्यवाद के अंतर्गत स्वशासन पाने का सवाल न था। साम्राज्यवाद का अंत होने के बाद ही स्वतंत्र सरकार की शुरुआत हो सकती है। 16 मई 1767 को [illegible] [illegible] मुहम्मदाबाद के अलावा और कुछ नहीं है।

स्पष्ट, प्रतितोल की नीति आवश्यक थी और भारत में ब्रिटेन के प्रभुत्व का

बनाए रखने के लिए अपनाई गई। 1857 के विद्रोह के बाद रजवाडो और जमीदारा ने प्रतितोल का काम किया। लाड लिटन भारतीय आभिजात्य के बल पर ब्रिटिश शासन चलाना चाहते थे। लाड डफरिन ने जन विद्रोह की वढती हुई शक्ति को रोकने के लिए उदारवादी बुद्धिजीवियो का इस्तेमाल किया और साविधानिक आदोलन के मच के रूप म इडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना म उन्ह मदद दी। लेकिन कुछ ही दिनो म यह एहसास हाने लगा कि काग्रेस विद्रोहात्मक रुख अपनाने लगी है। इडियन नेशनल काग्रेस के उग्रवादी राष्ट्रवादिया म अधिकाश हिंदू पेशेवर और मध्य वर्गा के लोग थे और उनके विरुद्ध प्रतिताल के रूप म लाड मिटो ने बढते हुए मुस्लिम पेशेवर वर्गों का इस्तेमाल किया।

इस नीति की आलोचना

बाद म दलित जातियो, सिक्खा, अन्य अल्पसख्यक दलो म राजनीतिक चेतना का उदय और विकास हुआ, और सुधार की जो योजनाए तैयार हुई उनमे विशेष निर्वाचक समुदाय एव विशेष प्रतिनिधित्व और अन्य अधिकार दिए गए। इस तरह नवजागृत राजनीतिक इकाइया को खुश किया और बढत हुए राजनीतिक आदालन का प्रतितोल तयार हुआ। के० बी० कृष्ण ने इस तथ्य की चर्चा या की है

> अग्रेजा ने कई कृतिम वर्गा की रचना की। जसे ही इन वर्गा की सप्टि हुई, उनम सघप शुरू हुआ। अग्रेजा ने इन सघर्षा को प्रेरणा प्रदान की और उन्ह कानून की मदद से तीव्र किया। वकीला, स्कूलो के अध्यापका, विद्यार्थिया और अन्य मध्य वर्गीय लोगा के अधिकारा और मागा के विराध म रजवाडा, इलाकेदारा, उद्योगपतियो और मुसलमानो को खडा किया गया लाड लिटन और कर्जन न बाबुआ की सख्या काग्रेस और उसकी मागो' के उचित प्रतितोल के रूप म लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तिया की परिषद की चर्चा की। अपन पत्रा और गश्ती चिट्ठिया म मिटो और मार्लि दोना के प्रतितोल के विचार का खुलकर उपयोग किया। आज भारत का नया सविधान पूरी तरह स प्रतितोलित नीतिया के पूण पारस्परिक सतुलन पर आधारित है।[7]

इसी लेखक ने यह भी लिखा है

> भारतीय विद्रोह न नए प्रकार के साम्राज्यवाद की नीव डाली। इससे मरा तात्पय यह है कि विद्रोह के बाद के काल की नीति उदारवादी और साम्राज्य वादी नीतियो का सम्मिश्रण है। इस नए साम्राज्यवाद का एक पहलू है प्रतितोल की नीति। यह उदारवादी भी है और साम्राज्यवादी भी उदारवादी इस अथ मे कि यह नीति जसे जस वर्गों का उदय हुआ, वसे वसे उन्ह मान्यता देती और उनके दाव स्वीकार करती, साम्राज्यवादी इस अथ म कि जो दावे स्वीकार किए जाते थे व सदा साम्राज्यवादी हितो द्वारा सीमित और परिधिबद्ध रह और इसम सरकार ने हरदम विभिन्न वर्गा और स्वार्थो की पारस्परिक होड का इस्तेमाल किया।[8]

इस लेखक ने आगे यह भी कहा है कि 'इस नीति का मूल वैचारिक आधार है 'सम्प्रदायों, वर्गों और स्वार्थों का सिद्धांत।' इस सिद्धांत का प्रजातंत्र से कभी कोई सरोकार नहीं रहा है। यह एकमात्र स्वार्थों वर्गों, कुछ धार्मिक सम्प्रदायों के संतुलन से संबंधित है क्योंकि इनमें से प्रत्येक ने सत्ता और शक्ति के लिए शोर करना शुरू किया।[9] आगे यह भी कहा गया है

1 भारत सरकार द्वारा अपनाया गया वर्गीकरण अवैज्ञानिक है मिले जुले विभाजनों से भरा हुआ, वास्तविक राष्ट्रिय इकाइयों, या ऐतिहासिक सम्प्रदायों की उपेक्षा पर आधारित

2 इस सिद्धांत ने भारतीय नरम दल की राजनीति को जन्म दिया।

3 इससे धार्मिक आधार पर कृत्रिम साहचर्य और संगठन स्वार्थों और वर्गों की फसल उग आई। मुसलमानों के बाद, सिक्ख, भारतीय ईसाई, एंग्लो इंडियन अछूत और अन्य लोग सामने आए

साम्प्रदायिक निर्वाचक इकाइयों की स्थापना का असल उद्देश्य था कि प्रतिनिधित्व के लिए जमीन व्यापार और वाणिज्य पर आधारित सीमित चुनाव क्षेत्रों की स्थापना के बाद, मुसलिम पेशेवर वर्ग को हिंदू पेशेवर वर्ग के प्रतितोल के रूप में तैयार करना। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत का मूल इसी में निहित है।[30]

लेखक ने भारत में अंग्रेजों की आधारभूत नीति को साम्राज्यिक सत्ता को मजबूत बनाना बल प्रयोग, प्रतितोल, रियायत आदि का सम्मिश्रण' माना है।[31]

जो छूट और रियायत दी गई प्रायः उनका भी उद्देश्य था भारत में ब्रिटिश सत्ता को बनाए रखना। 'जो रियायतें दी गई हैं या भविष्य में दी जाएंगी, वे कितनी ही उदार क्यों न हों भारत पर अपने आधिपत्य को छोड़ने का हमारा जरा भी इरादा नहीं है और इसकी भी कोई संभावना नहीं दीख पड़ती कि आने वाली पीढ़ियों का ऐसा कोई इरादा होगा।[32] किसी भी देश की जनता के विभिन्न, विशिष्ट सामाजिक दलों को दी गई रियायतों या किए गए सुधार की प्रवृत्ति होती है वहां की जनता को विभक्त करना और संयुक्त आंदोलन के विकास को अवरुद्ध करना। मार्ले मिंटो रिफार्म्स से, मांटेग्यु चेम्सफोर्ड रिफार्म्स से, 1935 के गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट द्वारा लाया गया संविधान जिसने देश में अधिकाधिक अल्पसंख्यक दलों और हितों को विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान किया, इन सबने इनमें से कई दलों के बीच विरोध और फूट का सृजन किया, बावजूद इसके कि भारतीय समाज के निम्न वर्गों के राजनीतिक जागरण के कारण राष्ट्रीय आंदोलन अधिकाधिक मजबूत होता जा रहा था।

1912 के बाद मुसलमानों में बढ़ता हुआ असंतोष

भारतीय मुसलमानों में राजनीतिक [illegible] 1912 के [illegible]
इनमें [illegible] असंतोष [illegible] प्रथम विश्वयुद्ध के [illegible]

मुस्लिम मध्य वर्ग राजनीतिक दृष्टि से अधिकाधिक परिपक्व हुआ। अनवर पाशा के राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक यंग टर्क आंदोलन के कारण भी भारतीय मुसलमान भारत के लिए स्वशासन का कार्यक्रम लेकर आगे बढ़े। 1913 में लीग ने यह कार्यक्रम अपनाया। मुसलमान अब अधिकाधिक राष्ट्रीय आंदोलन की परिधि में आने लगे थे।

> प्रथम विश्व युद्ध के पहले के वर्षों में मुसलमानों का नया मध्य वर्ग, शिक्षित और वाचाल साम्राज्यी व्यवस्था में अपनी अधीनस्थ स्थिति से बाहर निकल आया और अपना असंतोष अभिव्यक्त करने लगा।[33]

मुसलमानों की राजनीतिक चेतना के नए और उच्चतर चरण में डा० अंसारी, अबुल कलाम आजाद, मौलाना मुहम्मद अली और हकीम अजमल खां उनके प्रमुख नेता थे। 1912 में आजाद ने 'अल हिलाल' का प्रकाशन शुरू किया और मुहम्मद अली ने अंग्रेजी पत्र 'कामरेड' और उर्दू पत्र 'हमदर्द' की स्थापना की और उन्हें संपादित किया। इन पत्रों ने मुसलमानों की राजनीतिक चेतना को गहरा किया और मुसलमानों में राष्ट्रीय भावना का प्रसार किया। 1913 के लखनऊ अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने ब्रिटिश ताज के मातहत भारत के उपयुक्त स्वशासन की प्राप्ति को अपना उद्देश्य बनाया।

1914 में प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत के बाद, ब्रिटिश सरकार ने मुसलमानों के उन राजनीतिक नेताओं और दलों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जिनके कार्यों को उन्होंने युद्ध संचालन की सफलता के लिए घातक माना। उसने 'अल हिलाल', 'कामरेड' और 'हमदर्द' का प्रकाशन बंद कर दिया, और मुहम्मद अली, शौकत अली, मौलाना आजाद और हजरत मोहानी जैसे मुस्लिम नेताओं को नजरबंद कर दिया।

लीग और कांग्रेस दोनों के अपने अलग अलग अधिवेशन लखनऊ में हुए। लीग के अधिवेशन में कांग्रेस के भी प्रमुख नेता उपस्थित थे, जैसे पंडित मालवीय, गांधी और अन्य लोग। हिज हाइनेस आगा खां ने लीग के नए राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अनुमोदन नहीं किया और कुछ ही दिनों बाद उन्होंने लीग के स्थाई सभापतित्व से त्याग पत्र दे दिया। यह इस बात का परिचायक था कि लीग राजनीतिक तौर पर उग्रवादी हो रहा था।

अठारहवें अध्याय में हमने लीग और कांग्रेस के बीच 1916 के लखनऊ पैक्ट की चर्चा की है। दोनों संगठनों में पारस्परिक सहयोग का यह पहला दृष्टांत था। जिन क्षेत्रों में मुसलमान अल्पसंख्यक थे उन क्षेत्रों के लिए इस पैक्ट में उनके लिए पृथक निर्वाचक इकाइयों और अधिक प्रतिनिधित्व की बात थी और अंग्रेजी सरकार से मांग की गई कि 'योजना में निहित सुधारों को लागू कर स्वशासन की दिशा में निश्चित कदम उठाए जाएं' और यह भी कि 'साम्राज्य के पुनर्गठन में, भारत अधीनस्थता की स्थिति से हटाकर आत्मशासी क्षेत्रों के साथ बराबर के साझीदार की हैसियत में लाया जाए।

मुस्लिम मध्य वर्ग लीग का प्रमुख सामाजिक आधार था और यह लगातार राष्ट्रीय धारणाओं और उद्देश्यों की ओर झुक रहा था, यद्यपि अब भी साम्प्रदायिकता ही इसका आधार थी। 1918 के दिल्ली अधिवेशन में लीग ने मांग की कि भारत में स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय का सिद्धांत लागू किया जाए।

खिलाफत और हिजरत आंदोलन

राजनीति वाले अध्याय में खिलाफत आंदोलन के उदय और इतिहास की चर्चा की जा चुकी है। गांधी और अन्य कांग्रेसी नेताओं के सक्रिय सहयोग से मुस्लिम नेताओं ने खिलाफत कांफ्रेंस की स्थापना की। कांफ्रेंस ने खिलाफत तथा अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का फैसला लिया और ब्रिटिश माल के बहिष्कार और सरकार के साथ असहयोग का कार्यक्रम अपनाया।

तुर्की को पवित्र भूमि आटमन, थ्रेस और स्मर्ना लौटा दिया जाए, खिलाफत कांफ्रेंस और लीग की इस मांग का गांधी और इंडियन नेशनल कांग्रेस ने बड़े उत्साह के साथ समर्थन किया।

1919 में उल्मा अर्थात मुसलमान धर्माधिकारियों ने अपना संगठन जमायत उल उल्मा बनाया। इसने खिलाफत कांफ्रेंस की मांगों का समर्थन किया। इसने असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए भारतीय मुसलमानों का आह्वान किया। असहयोग आंदोलन भारत का पहला राष्ट्रीय जन आंदोलन था, जिसे गांधी ने खिलाफत कांफ्रेंस की मदद से शुरू किया था। तुर्की की संधि द्वारा किए गए अन्याय का मार्जन, पंजाब और देश के अन्य भागों में की गई सरकार की दमनात्मक कारवाई का निराकरण, स्वराज की स्थापना आदि असहयोग आंदोलन के उद्देश्य थे।

असहयोग आंदोलन के इतिहास के विभिन्न चरणों की चर्चा अठारहवें अध्याय में की जा चुकी है। अपने नेताओं के आह्वान पर मुसलमानों ने बड़ी तादाद में इस आंदोलन में भाग लिया। इस असाधारण आंदोलन का एक विशिष्ट पक्ष था हिंदुओं और मुसलमानों के बीच अभूतपूर्व भाईचारा।[31] इस आंदोलन के क्रम में मुहम्मद अली, शौकत अली और कई अन्य मुसलमान नेता गिरफ्तार हुए। [illegible] पर सरकार द्वारा लगाए गए प्रतिबंध के उल्लंघन के लिए [illegible] मुसलमान [illegible] जेल गए। इस आंदोलन के हर चरण में मुसलमानों ने खुलकर भाग लिया।

सिंध और नार्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रांतों के कुछ मुसलमानों ने हिजरत आंदोलन का संगठन किया। उनकी दृष्टि में [illegible] विरोध प्रदर्शन [illegible] भारत छोड़कर अफगानिस्तान में जा बसने का फैसला किया। लेकिन अफगान सरकार ने उन्हें वहां अनुमति नहीं दी। आंदोलन असफल रहा। 1921 में मोपला विद्रोह शुरू हुआ। [illegible] का विचार था कि वह [illegible] के [illegible] के खिलाफ [illegible] करो। परिणाम [illegible] [illegible] आंदोलन [illegible] भाग [illegible] लिए [illegible] का आह्वान किया था।

मोपला विद्रोह से यह देखने में आता है कि कैसे किसानों और जमींदारों का आर्थिक विरोध साम्प्रदायिक रूप ले लेता है, अगर इन वर्गों के लोग विभिन्न धर्मों के अनुयायी हैं। 'मोपला विद्रोह मुख्यत हिंदू महाजनों (सूदखोरों) और जमींदारों और सरकार के विरुद्ध मोपला किसानों का आदोलन था। मद्रास के प्रचार विभाग द्वारा प्रसारित विज्ञप्ति में इस समस्या का यह विश्लेषण किया गया,' मोपला लोगों को विद्रोह पर उतारू करने वाले दो कारण हैं। इनमें धार्मिक अभिप्रेरणा अधिक शक्तिशाली है, लेकिन मोपला लोगों के कठोर जीवन और नम्बूदिरी जमींदारों के राजसी भवनों के बीच आर्थिक विरोध भी कम महत्वपूर्ण नहीं है'[35]

1921 में अहमदाबाद में मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ। इसके सभापति पद से अपने अध्यक्षीय भाषण में मौलाना हजरत मोहानी ने कहा 'मुसलमानों को समझना चाहिए कि भारतीय गणतन्त्र की स्थापना से उन्हें दुहरा लाभ होगा, प्रथमत, प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र के नागरिक की हैसियत से उन्हें औरों की ही तरह समान अधिकार और फायदे मिलेंगे, और फिर, अंग्रेजों के प्रभाव क्षेत्रों को सकुचित कर वे मुस्लिम ससार को राहत की सास लेने का मौका देंगे, जो रचनात्मक कार्यों के विकास के लिए आवश्यक है।'[36]

उसी वक्त अहमदाबाद में ही हुए कांग्रेस के अधिवेशन में मोहानी ने यह प्रस्ताव भी रखा कि स्वशासन के बदले भारतीय गणतन्त्र की स्थापना कांग्रेस का लक्ष्य हो। गांधी का इस विचार से घोर मतभेद था और उन्होंने (मानसिक) हल्केपन' के लिए मोहानी की भर्त्सना भी की। मोहानी का प्रस्ताव कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया। चौरी चौरा काड के बाद गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस की कार्यकारिणी ने असहयोग आदोलन वापस ले लिया।

भारतीय मुसलमानों की राजनीतिक चेतना के विकास की दृष्टि से असहयोग आदोलन का बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है। इससे यह तथ्य प्रकाश में आया कि जो राजनीतिक चेतना पहले उच्च एव मध्य वर्गीय मुसलमानों तक ही सीमित थी वह अब मुस्लिम सम्प्रदाय के निम्नवर्गीय जनसाधारण के भी कुछ भागों में प्रविष्ट हो चुकी थी। यह सही है कि खिलाफत धार्मिक प्रश्न था, लेकिन यह स्वराज्य के संघर्ष से जुड़ा हुआ था और इसने मुसलमानों की राष्ट्रीय चेतना को आगे बढ़ाया। इस मौके पर पहली बार बहुत सारे हिंदुओं और मुसलमानों ने भारत के लिए स्वशासन जैसे राष्ट्रीय लक्ष्य के लिए परस्पर सहयोग किया। कांग्रेस और मुसलमानों के राजनीतिक संगठनों के संयुक्त नेतृत्व द्वारा निर्णीत प्रत्यक्ष कार्यवाही के विभिन्न मुद्दों पर उन्होंने साथ काम किया। अब उनके बीच का संघर्ष इस बात पर मुनहसिर नहीं था कि जनसेवाओं में पदों और विधायिका सभाओं में स्थानों का विभाजन कैसे हो।

गांधी और कांग्रेस की कार्यकारिणी द्वारा आदोलन के वापस ले लिए जाने से लोगों में नैराश्य की भावना का जन्म हुआ। सुलतान और खलीफा के रूप में छठे मुहम्मद के पदच्युत किए जाने और उसकी जगह पर केवल तुर्की के लोगों

द्वारा अब्द अल मजीद के खलीफा बनाए जाने से भारतीय मुसलमानों में निराशा की यह भावना और बढ़ी। इतिहास ने भारतीय मुसलमानों के साथ निर्मम मजाक किया। उन्होंने जो संघर्ष शुरू किया था उसका एक प्रमुख लक्ष्य था कि उनके पवित्र तीर्थ स्थान तुर्की के सुलतान को लौटा दिए जाएं, क्योंकि वह सारी दुनिया के मुसलमानों का धर्म प्रमुख था, लेकिन उधर तुर्की के लोगों ने स्वयं अपने राज्य को धर्म निरपेक्ष बना दिया और धर्म और राजनीति को पृथक कर दिया।

असहयोग आंदोलन के खतम होने पर हिंदू मुस्लिम एकता भी जो इस काल में काफी बढ़ी थी खतम होने लगी। राष्ट्रीय एकता के बदले सांप्रदायिक शत्रुता और विभाजन की भावना बढ़ने लगी। असहयोग आंदोलन के बाद वाले युग में कई सांप्रदायिक दंगे हुए जिनमें कोहाट का दंगा सबसे अधिक गंभीर था।

1922 के बाद जो राजनीतिक उत्साह भंग हुआ, उसके बारे में जवाहरलाल ने लिखा है, 'यह संभव है कि इस महान आंदोलन को सहसा रोक देने से (नेहरू असहयोग आंदोलन को वापस ले लेने के फैसले की चर्चा कर रहे हैं) देश में बड़ी दुखद स्थिति आ गई। राजनीतिक संघर्ष में अनियमित और निरर्थक हिंसा की प्रवृत्ति तो खतम हो गई लेकिन इस अवरुद्ध, दमित हिंसा भावना को कोई राह तो मिलनी थी, और आने वाले वर्षों में शायद इसी के कारण सांप्रदायिक अशांति बढ़ी।'[37]

शायद यह सही नहीं कि 'दमित हिंसा भावना' के कारण 'सांप्रदायिक अशांति' बढ़ी। सांप्रदायिकता के प्रसार का शायद यह दुहरा कारण था कि अव्वल तो राजनीतिक चेतना की जड़ें ठीक तरह से नहीं जमी थीं खासकर पिछड़े हुए मुसलमानों में, और दोयम कि असहयोग आंदोलन के बाद राष्ट्रीय नेताओं ने कोई समुचित कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं किया। गांधी ने दल को गैर राजनीतिक, रचनात्मक कार्यक्रम तो दिया, जिसमें मदिरा निषेध, सूत कातना और अस्पृश्यता निवारण आदि मुद्दे थे, लेकिन मुस्लिम जन साधारण में यह कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय नहीं हो सकता था। राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व कांग्रेस के हाथों में था और भारतीय जनता के लिए उचित राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रम बनाने में यह असफल रही। कांग्रेस की इस असफलता के कारण भी सांप्रदायिक प्रचार बहुत हद तक कारगर हुआ।

एक अन्य कारण से भी मुसलमान राष्ट्रीयता की भावना से अधिकाधिक विलग होते गए और सांप्रदायिक दृष्टिकोण अपनाने लगे। इंडियन नेशनल कांग्रेस गैर सांप्रदायिक धर्म निरपेक्ष राष्ट्रीय संस्था थी और भारतीय जनता की राष्ट्रीय मुक्ति इसका लक्ष्य था। फिर भी, गांधी जैसे इसके प्रमुख नेताओं ने कभी-कभी राष्ट्रीय आंदोलन में हिंदू धार्मिक भावनाओं का लाभ भी उठाया था। उदाहरणार्थ, गांधी ने स्वराज की व्याख्या रामराज्य के रूप में की, लेकिन यह [illegible] मुसलमानों को उत्साहित नहीं कर सकी। राजनीतिक स्वराज्य के धर्म निरपेक्ष आधार पर हिंदू धार्मिक भावनाओं के आरोपण से मुसलमानों का [illegible] हुआ

कि कांग्रेस द्वारा शुरू किया गया राष्ट्रीय आंदोलन हिंदू आंदोलन था। आर० पी० दत्त ने कहा है, 'राष्ट्रीय आंदोलन का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम, धर्म की भावना के परे, भारतीय जनता को एकजुट कर सकता है और उसे ऐसा करना चाहिए। इस तरह सशक्त, धर्म निरपेक्ष, आधुनिक, एकताबद्ध, प्रजातांत्रिक आंदोलन ही इस चरण में सांप्रदायिक उद्वेग के विरुद्ध सबसे बड़ी ताकत सिद्ध हो सकता है।'[38]

सांप्रदायिकता के मूल तत्व

सांप्रदायिकता विभिन्न धर्मों के निहित स्वार्थों के पारस्परिक संघर्ष की ही छद्म अभिव्यक्ति थी। इन निहित स्वार्थों ने अपने इस संघर्ष को सांप्रदायिक जामा पहना रखा था। विभिन्न संप्रदायों के पेशेवर वर्गों की पदों और स्थानों की लड़ाई भी इसी छद्म रूप में लड़ी जाती रही। सांप्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष का एक सर्वाधिक कारगर तरीका यह था कि विभिन्न संप्रदायों के निम्न वर्गों का उनके सम्मिलित आर्थिक और अन्य हितों की लड़ाई में एकताबद्ध किया जाए।

हिंदू और मुस्लिम साधारण लोगों के सम्मिलित आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थ थे। विधायिका परिषद (लेजिस्लेटिव काउंसिल) में स्थानों या जन सेवाओं में पदों के विभाजन से उनका कोई हित साधन संभव नहीं था। उनके सम्मिलित राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों पर आधारित कार्यक्रम ही उन्हें उत्साहित और एकताबद्ध कर सकता था। सम्मिलित स्वार्थों की प्राप्ति से संबंधित आंदोलनों में उन्होंने जितना ही भाग लिया, उतना ही उसके लिए सांप्रदायिकता का मूल्य घटा और राष्ट्रीय एकता बनी।

> सांप्रदायिक प्रश्न का धार्मिक समस्याओं से कोई संबंध नहीं, उसका संबंध है लाभ और लूट एवं प्रतिशत से अनुग्रह एवं पदों से। सांप्रदायिक प्रश्न साधारणतः विभिन्न मतों के पेशेवर वर्गों के विभिन्न तबकों की आपसी लड़ाई का प्रश्न है।
>
> इंडियन स्टेच्युटरी कमीशन को बंबई की सरकार द्वारा दिए गए स्मार पत्र में इस विषय पर कहा गया है, 'मुसलमानों में शिक्षा का प्रसार भी इसका कारण है मुसलमानों एवं अन्य पिछड़े हुए वर्गों में राजनीतिक चेतना के विकास से उनमें अपनी कमजोरी का भी एहसास हुआ अन्य बातों के साथ ही इस कारण से भी कि आगे बढ़े हुए वर्गों को जन सेवाओं में काफी अधिक स्थान प्राप्त थे, और इसके साथ ही उन्हें ओहदा और प्रभाव भी प्राप्त था।' यहां बंबई की सरकार ने यह बात मानी है कि सांप्रदायिक प्रश्न पिछड़े और आगे बढ़े हुए वर्गों में ओहदों और पारिश्रमिक का झगड़ा था।[39]

कुछ दूसरे प्रकार के भी संघर्ष थे जिन्होंने मूलतः आर्थिक होने पर भी सांप्रदायिक रूप लिया। बंगाल जैसे प्रांतों में ऐतिहासिक कारणों से, किसान प्रधानतः मुसलमान थे और जमींदार मुख्यतः हिंदू। किसानों के सांस्कृतिक पिछड़ेपन व

कारण सम्प्रदायवादियों के लिए मुसलमान बटाईदारों और हिंदू जमींदारों के बीच के वास्तविक आर्थिक संघर्ष को साम्प्रदायिक संघर्ष के रूप में प्रस्तुत और परिणत करना आसान था। इसी कारण हिंदू महाजनों और मुस्लिम कर्जदारों के द्वंद्व कभी-कभी इस तौर पर परिभाषित किए जाते थे मानो वे हिंदुओं द्वारा मुसलमानों के शोषण के प्रतिफलन थे और इस तरह इन्हें भी सम्प्रदायवादियों ने साम्प्रदायिक रूप दिया। जमींदार बटाईदार का या सूदखोर कर्जदार का संघर्ष गलत तौर पर साम्प्रदायिक संघर्ष के रूप में वर्णित हुआ। इस तरह सम्प्रदायवादियों ने विभिन्न सम्प्रदायों के विभिन्न वर्गों के संघर्षों को साम्प्रदायिक रूप प्रदान किया। अपनी पुस्तक 'द प्राब्लम आफ मिनारिटिज' में के० बी० कृष्ण ने ऐसे सारे संघर्षों का निम्नांकित वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।

1 विभिन्न मतों और सम्प्रदायों के पदावर वर्गों में संघर्ष है। हिंदू पदावर वर्गों की तुलना में मुस्लिम, सिक्ख, भारतीय ईसाई, एंग्लो इंडियन और अछूत पदावर वर्ग शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से पीछे थे। सुधारों एवं राजनीतिक आकांक्षाओं ने इन वर्गों में प्रतियोगिता की भावना और बढ़ाई दी। इस संघर्ष ने अल्पसंख्यकों या निर्वाचक इकाइयों की समस्या का नाम इख्तियार कर लिया है।

2 यह संघर्ष विभिन्न मतों और सम्प्रदायों के वाणिज्यिक, औद्योगिक और बनिया-व्यापारी वर्गों में भी फैला हुआ है। हिंदू और मुसलमान बनियों की प्रतियोगिता उनकी छुट्टियों के समय और धार्मिक अथवा आदालत के समय खास तौर पर देखने में आती है। हिंदू सूदखोर और मुसलमान कर्जदार, हिंदू जमींदार और मुसलमान किसान, हिंदू और मुसलमान सूदखोर, हिंदू और मुसलमान जमींदार इनके संघर्ष भी इसी श्रेणी में आते हैं।

3 अंतत, पिछड़ेपन, अशिक्षा, कभी-कभी विरोधी राजनीतिज्ञों के षड्यंत्रों, भीड़ के पागलपन और हुल्लड़बाजी और समाज के अन्य विरोधों द्वारा उकसाये विभिन्न मतों के प्रतिगामी वर्गों का पारस्परिक संघर्ष है। ये संघर्ष स्पष्ट ही सामाजिक असंतोष के कारण उत्पन्न हुए। बल्कि सामंती स्थिति में भारतीय पूंजीवाद के उदय के साथ ब्रिटिश साम्राज्यवाद और प्रतिक्रिया की ताकतों ने इन संघर्षों को तीव्र किया।[60]

असहयोग आंदोलन के बाद मुस्लिम सम्प्रदाय के राजनीतिक आंदोलन का ह्रास हो गया। मुस्लिम लीग फिर से मुस्लिम प्रतिक्रियावादियों का अड्डा बन गई। यह उस सम्प्रदाय का प्रतिक्रियावादी राजनीतिक नेतृत्व ग्रहण कर सकी। साथ ही राष्ट्रीय मुसलमानों का दल एक छोटा सा ग्रुप रह गया।

[illegible] जमींदारों की त्रिपुरा के [illegible] भारतवान थे, [illegible] के आधार [illegible] हुआ। तभी राजनीतिक [illegible] का [illegible] किया। मुस्लिम लीग भी, जिस [illegible] मुस्लिम [illegible] पर [illegible] नहीं हो सका। [illegible]

कि कांग्रेस द्वारा शुरू किया गया राष्ट्रीय आंदोलन हिंदू आंदोलन था। आर० पी० दत्त ने कहा है, 'राष्ट्रीय आंदोलन का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम, धर्म की भावना के परे, भारतीय जनता को एकजुट कर सकता है और उसे ऐसा करना चाहिए। इस तरह सशक्त, धर्म निरपेक्ष, आधुनिक, एकताबद्ध, प्रजातांत्रिक आंदोलन ही इस चरण में सांप्रदायिक उद्वेग के विरुद्ध सबसे बड़ी ताकत सिद्ध हो सकता है।'[38]

सांप्रदायिकता के मूल तत्व

सांप्रदायिकता विभिन्न वर्गों के निहित स्वार्थों के पारस्परिक संघर्ष की ही छद्म अभिव्यक्ति थी। इन निहित स्वार्थों ने अपने इस संघर्ष को सांप्रदायिक जामा पहना रखा था। विभिन्न संप्रदायों के पेशेवर वर्गों की पदों और स्थानों की लड़ाई भी इसी छद्म रूप में लड़ी जाती रही। सांप्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष का एक सर्वाधिक कारगर तरीका यह था कि विभिन्न संप्रदायों के निम्न वर्गों को उनके सम्मिलित आर्थिक और अन्य हितों की लड़ाई में एकताबद्ध किया जाए।

हिंदू और मुस्लिम साधारण लोगों के सम्मिलित आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थ थे। विधायिका परिषद (लेजिस्लेटिव काउंसिल) में स्थानों या जन सेवाओं में पदों के विभाजन से उनका कोई हित साधन संभव नहीं था। उनके सम्मिलित राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों पर आधारित कार्यक्रम ही उन्हें उत्साहित और एकताबद्ध कर सकता था। सम्मिलित स्वार्थों की प्राप्ति से संबंधित आंदोलनों में उन्होंने जितना ही भाग लिया उतना ही उसके लिए सांप्रदायिकता का मूल्य घटा और राष्ट्रीय एकता बनी।

> सांप्रदायिक प्रश्न का धार्मिक समस्याओं से कोई संबंध नहीं उसका संबंध है लाभ और लूट एवं प्रतिशत से अनुग्रह एवं पदों से। सांप्रदायिक प्रश्न साधारणतः विभिन्न मतों के पेशेवर वर्गों के विभिन्न तबकों की आपसी लड़ाई का प्रश्न है।
>
> इंडियन स्टैच्युटरी कमीशन को बंबई की सरकार द्वारा दिए गए स्मार पत्र में इस विषय पर कहा गया है, 'मुसलमानों में शिक्षा का प्रसार भी इसका कारण है मुसलमानों एवं अन्य पिछड़े हुए वर्गों में राजनीतिक चेतना के विकास से उनमें अपनी कमजोरी का भी एहसास हुआ, अन्य बातों के साथ ही इस कारण से भी कि आगे बढ़े हुए वर्गों को जन सेवाओं में काफी अधिक स्थान प्राप्त थे, और इसके साथ ही उन्हें ओहदा और प्रभाव भी प्राप्त था।' यहां बंबई की सरकार ने यह बात मानी है कि सांप्रदायिक प्रश्न पिछड़े और आगे बढ़े हुए वर्गों में ओहदा और पारिश्रमिक का झगड़ा था।[39]

कुछ दूसरे प्रकार के भी संघर्ष थे जिन्होंने मूलतः आर्थिक होने पर भी सांप्रदायिक रूप लिया। बंगाल जैसे प्रांतों में ऐतिहासिक कारणों से, किसान प्रधानतः मुसलमान थे और जमींदार मुख्यतः हिंदू। किसानों के सांस्कृतिक पिछड़ेपन के

कारण सप्रदायवादियो के लिए मुसलमान बटाइदारो और हिंदू जमीदारो के बीच के वास्तविक आर्थिक सघर्ष को साप्रदायिक सघर्ष के रूप मे प्रस्तुत और परिणत करना आसान था। इसी कारण हिंदू महाजनो और मुस्लिम कर्जदारो के द्वद्व कभी-कभी इस तौर पर परिभाषित किए जाते थे मानो वे हिंदुओ द्वारा मुसलमानो के शोषण के प्रतिफलन थे और इस तरह इन्हे भी सप्रदायवादियो ने साप्रदायिक रूप दिया। जमीदार बटाईदार का या सूदखोर कर्जदार का सघर्ष गलत तौर पर साप्रदायिक सघर्ष के रूप मे वर्णित हुआ। इस तरह सप्रदायवादियो ने विभिन्न सप्रदायो के विभिन्न वर्गो के सघर्षो को साप्रदायिक रूप प्रदान किया। अपनी पुस्तक 'द प्राब्लम आफ मिनारिटिज' मे के० बी० कृष्ण ने ऐसे सारे सघर्षो का निम्नाकित वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।

1 विभिन्न मतो और सप्रदायो के पेशेवर वर्गो मे सघर्ष है। हिंदू पेशेवर वर्गो की तुलना मे मुस्लिम, सिक्ख, भारतीय इसाई, एग्लो इडियन और अछूत पेशेवर वर्ग शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से पीछे थे। सुधारो एव राजनीतिक आकाक्षाओ ने इन वर्गो मे प्रतियोगिता की भावना और बढाई ही। इस सघर्ष ने अल्पसख्यको या निर्वाचक इकाइयो की समस्या का नाम इख्तियार कर लिया है।

2 यह सघर्ष विभिन्न मतो और सप्रदायो के वाणिज्यिक औद्योगिक और बनिया-व्यापारी वर्गो मे भी फैला हुआ है। हिंदू और मुसलमान बनियो की प्रतियोगिता उनकी छुट्टियो के समय और नागरिक अवज्ञा आदोलन के समय खास तौर पर देखने मे आती है। हिंदू सूदखोर और मुसलमान कर्जखोर, हिंदू जमीदार और मुसलमान किसान, हिंदू और मुसलमान सूदखोर, हिंदू और मुसलमान जमीदार इनके सघर्ष भी इसी श्रेणी मे आते है।

3 अतीत, पिछडेपन, अशिक्षा, कभी कभी विरोधी राजनीतिज्ञो के षडयत्रो, भीड के पागलपन और हुल्लडबाजी और समाज के अन्य विरोधो द्वारा सर्जित विभिन्न मतो के प्रतिगामी वर्गो का पारस्परिक सघर्ष है। ये सघर्ष देश के सामाजिक अर्थतत्र के कारण उत्पन्न हुए। लेकिन सामती स्थिति मे भारतीय पूजीवाद के उदय के काल मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद और प्रतितोल की उसकी नीति ने इन सघर्षो को तीव्र किया।[40]

असहयोग आदोलन के बाद मुस्लिम सप्रदाय के राजनीतिक आदोलन का ह्रास होने लगा। मुस्लिम लीग फिर से मुस्लिम प्रतिगामियो का सगठन बन गई। यह उस सप्रदाय का प्रगतिशील राजनीतिक नेतृत्व नही प्रदान कर सकी। लीग मे राष्ट्रीय मुसलमानो का बस एक छोटा सा दल रह गया।

साइमन कमीशन की नियुक्ति से जिसमे केवल गैर भारतीय ही थे, भारतीय जनता मे व्यापक विक्षोभ का जन्म हुआ। सभी राजनीतिक दलो ने इसके बहिष्कार का फैसला किया। मुस्लिम लीग भी, जिसमे मुख्यत केवल मुस्लिम रजवाडो ही थे, इसके साथ सहयोग के प्रश्न पर एकमत नही हो सकी। फलस्वरूप

लीग म फूट पड गई। सर मुहम्मद सफी, मलिक फिराज खा नून, सर मुहम्मद इकबाल के नेतृत्व म एक दल लाहौर म मिला। सर मुहम्मद सफी ने इस सभा की सदारत की। इसने कमीशन का स्वागत करते हुए एक प्रस्ताव पास किया। लीग के दूसरे दल ने जिन्ना के सभापतित्व म कलकत्ता मे अपना सम्मेलन किया। इसने कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव लिया।

इडियन नेशनल काग्रेस ने नेहरू कमेटी रिपोट प्रकाशित की जिसम भारत के सविधान के आधारभूत तत्वा का निरूपण किया गया था (देखे अध्याय अठारह)। कमेटी ने सुरक्षित स्थानो के साथ सयुक्त निर्वाचक इकाइयो, सिध के पृथक्करण और बलूचिस्तान और नाथ वस्ट फ्रटियर प्रात को दूसरे प्राता के समकक्ष बनान की अनुशसा की। इसने पथक चुनाव क्षेत्रा की योजना की भर्त्सना की। फिर, इसका यह भी फसला था कि केंद्रीय एव प्रातीय विधायिका सभाओ म स्थानो का आरक्षण सारी आबादी म मुसलमानो के अनुपात के आधार पर निर्धारित हो।[41] अपने नता जिन्ना के जरिए लीग न काग्रेस से नेहरू सविधान म कई सशोधन लाने को कहा। इन सशाधनो म एक यह था कि केंद्रीय विधायिका म एक तिहाई स्थान मुसलमाना के लिए आरक्षित रहे। काग्रेस ने प्रस्तावित सशोधना का स्वीकार नही किया और सयुक्त सघष के लिए काग्रेस और लीग के बीच समझौते की सभावना समाप्त हो गई।

जिन्ना की चौदह सूत्री योजना

तत्पश्चात 1929 म जिन्ना ने अपनी मशहूर चौदह सूत्री याजना प्रकाशित की जो बाद म लीग के प्रचार आदोलन का आधार हुई। ये चौदह सूत्र नेहरू कमटी की रिपोट के सर्वाधिक महत्वपूण सुझावा के विरोधी थे। इस योजना की कुछ मुख्य बात ये थी, कुछ विषयो पर प्रातीय स्वायत्तता क साथ सघीय राज्य की स्थापना केंद्रीय विधायिका सभा म कम से कम एक तिहाई मुस्लिम प्रतिनिधित्व, प्रथक निर्वाचक इकाइया, किसी भी केंद्रीय या प्रातीय मत्रिमडल म एक तिहाई मुस्लिम मत्रियो की व्यवस्था।

कुछ ही दिना बाद लीग के राष्ट्रीय मुसलमानो और रूढिवादी तत्वो म फूट हो गई। राष्ट्रीय मुसलमान कुछ छोटे मोट सशोधना के साथ नेहरू रिपाट का समथन करना चाहते थे। उन्होन नेशनलिस्ट मुस्लिम पार्टी की स्थापना की। 1930 34 के नागरिक अवज्ञा आदोलन का इतिहास अध्याय अठारह म दिया जा चुका है। राष्ट्रीय मुसलमाना ने इसम जोश क साथ भाग लिया। गोलमज काफ्रेंस म गर सरकारी तौर पर आगा खा न लीग का नतृत्व लिया। काफ्रेंस के भारतीय दलो मे साप्रदायिक प्रश्न पर असहमति के बावजूद ब्रिटिश प्रधानमत्री रमजे मैकडानल्ड न कम्यूनल अवाड की घाषणा कर दी।

1933 के बाद जिन्ना के नेतृत्व म मुस्लिम लीग न फिर स अपना को सगठित और एकजुट करना शुरू किया। जिन्ना अध्यक्ष चुन गए और व्यापकतर राजनीति

क्रियाकलाप या कायक्रम अपनाया गया। 1935 के बबई अधिवेशन म लीग ने 1935 के गवनमट आफ इंडिया एक्ट की सघीय योजना की भत्सना की और उसे इसलिए अस्वीकार कर दिया कि इससे जनता की स्वशासन की माग पूरी नही हो रही थी।

1937 के चुनावो म अपनी महान सफलता के फलस्वरूप कांग्रेस कई प्रातो म सरकार बना सकी। जिन्ना और अय मुस्लिम नेताओ ने कांग्रेस की सरकारो से अपना असतोप व्यक्त किया। उन्होने यह दोषारोपण किया कि ये सरकारे मुस्लिम हितो के विरुद्ध थी और इन्होने हिंदुओ के प्रति पक्षपात का रुख अपनाया।

कांग्रेसी सरकारो की जिन्ना द्वारा की गई आलोचना

1937 म लीग के लखनऊ अधिवशन के अपने अध्यक्षीय भाषण म जिना ने कहा

> कांग्रेस के वतमान नतागण, खासकर पिछले दस वर्षो म, भारत के मुसलमाना का अपन से अधिकाधिक विलग और विमुख करने के लिए जिम्मदार रहे है। इन्हाने ऐसी नीति का अनुसरण किया है जो केवल हिंदुओ के हित मे है। जिन छ प्राता मे उन्हे बहुमत प्राप्त है उनम सरकार बनाने के बाद उन्हाने अपने कार्यो, शब्दो और कायक्रम द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि मुसलमान उनसे याय और औचित्य की उम्मीद नही कर सकते। जो थाडे बहुत अधिकार और उत्तरदायित्व उन्हे मिले हैं, उनक मिलते ही बहुसख्यक सप्रदाय ने यह स्पष्टत प्रदर्शित कर दिया है कि हिंदुस्तान हिंदुआ के लिए है।[41]

सभवत यह कांग्रेस की गलती थी कि उसन प्राता म कांग्रेस और लीग की सम्मिलित सयुक्त सरकारे नही बनाइ और इस तरह यह खयाल बना कि वे सत्ता पर एकाधिकार चाहत थे। विद्या मदिर की योजना म हिंदू धम की गध भी थी। कुछ कांग्रेस मत्रिया ने जाने अनजान कुछ हिंदुओ के प्रति पक्षपात भी किया होगा। कांग्रेसी सरकारा के सामाजिक और आर्थिक कायक्रम भी भारतीय जनसाधारण की आशाओ-उम्मीदा की पूर्ति नही कर सके होगे, और उन्हान किया भी नहा। चुनाव पूव की अपनी घोषणा के बावजूद, कांग्रेसी सरकारो ने क्रिमिनल ला अमडमट ऐक्ट जसे कानूना का उपयोग किया, हडतालिया पर गोलीकाड का अनुमोदन किया, और बाद ट्रेड डिसप्युटस ऐक्ट जस कानून बनाए जिसके जरिए हडताल करने क मजदूरा के प्रजातात्रिक अधिकार का हनन हुआ। लेकिन लीग का यह दावा कि कांग्रेसी सरकारा न जान-बूझकर मुस्लिम सप्रदाय के दमन और उस पर हिंदुआ क प्रभुत्व की स्थापना की सुविचारित नीति अपनाई, सत्य की विडबना मात्र है, सपूर्णत असत्य।

कांग्रेसी सरकारें मूलत भारतीय बुर्जुआजी क हिता को आग बढा रही थी, और इसलिए कुछ छोटे मोटे सुधारा क बावजूद व भारतीय समाज के गरीब तबको की आर्थिक एव अन्याय मागा की पूर्ति करने म असफल रही। इनमे

कारण सप्रदायवादी लीग के नेतागण मुस्लिम जनता के कुछ हिस्सा को काग्रेस के विरुद्ध कर सके और उन्हे अपनी तरफ मोड सके। चूकि अधिकाश जमीदार और पूजीपति हिंदू थे इसलिए लीग के नेता गरीब मुसलमानो को बरगलाने म सफल रहे और ये गरीब मुसलमान ऐसा सोचने लगे कि हिंदू जमीदारो और उद्योग पतियो के जिस शोषण के व शिकार थे उसे काग्रेसी नेता, जो अधिकाश हिंदू थे, जान बूझकर, साम्प्रदायिकता की भावना के कारण, स्थाई बना रहे थे। इस तरह साम्प्रदायिक प्रचार के जरिए मुसलमानो का वगजन्य आर्थिक असतोष और विक्षोभ साम्प्रदायिक रास्तो पर लाया जा सका और साम्प्रदायिक विरोध के रूप म परिणत किया जा सका।

बाद के अपने सारे अधिवेशनो म लीग ने काग्रेस विरोधी प्रचार को और तीव्र ही किया। इसने काग्रेस के उस प्रस्ताव के विरुद्ध भी प्रचार किया जिसके अनुसार विश्वजनीन बालिग मताधिकार और मुसलमानो के लिए पथक निर्वाचक इकाइयो के आधार पर चुनी गई सविधान सभा की माग की गइ थी। लीग का कहना था कि प्रमुखत हिंदू आबादी के इस देश म इस तरह की सविधान सभा पर बहुसख्यक हिंदुओ का ही आधिपत्य होगा।

मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माग

पथक निर्वाचक इकाइयो और विशिष्ट अधिकार की अपनी पुरानी माग से हटकर लीग अब पाकिस्तान अर्थात सावभौम हिंदू और सावभौम मुस्लिम राष्ट्र म देश के विभाजन की माग की ओर अग्रसर हो रही थी। 1940 के लाहौर अधिवेशन मे लीग ने पाकिस्तान की माग की घोषणा की। दो राष्ट्रो का सिद्धात इस माग का राजनीतिक वचारिक आधार था। इस सिद्धात के अनुसार मुसलमान एक विशिष्ट राष्ट्र थे यद्यपि वस्तुत वे एक सामाजिक धार्मिक प्रकार के लोग थे जो सारे देश म बिखरे हुए थ। राष्ट्र की यह धारणा राष्ट की अन्य धारणाओ से अलग थी, जैसे उस धारणा से जिसके अनुसार राष्ट्र ऐतिहासिक तौर पर विकसित ऐसा जन समुदाय है जो एक भाषा का व्यवहार करता है जिसका एकसम सयुक्त आर्थिक जीवन है, जिसका अपना अलग निश्चित भूभाग है और जिसकी अपनी सम्मिलित मनोवैज्ञानिक सरचना और सस्कृति है।

1939 म युद्ध होने पर भारत की राजनीतिक स्थिति मे परिवतन आया। इडियन नेशनल काग्रेस को यह बात नागवार लगी कि ब्रिटेन ने भारतीय जनता की राय के बिना भारत को लडाई म झोक दिया था, फलस्वरूप, काग्रेस के निर्देश पर प्रातो के काग्रेसी मत्रिमडलो ने इस्तीफा दे दिया। काग्रेसी मत्रिमडलो के त्यागपत्र पर मुस्लिम लीग ने मुक्ति दिवस मनाकर खुशी का इजहार किया। आल इडिया मुस्लिम लीग ने 1940 के लाहौर अधिवेशन म पाकिस्तान अथात दो राष्ट्रो के सिद्धात पर आधारित मुसलमानो के सावभौम राष्ट्र की स्थापना की माग का प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव म कहा गया

तय हुआ कि आल इंडिया मुस्लिम लीग की यह सुविचारित राय है कि इस देश मे कोई भी साविधानिक योजना कार्यान्वित नही हो सकेगी और न मुसलमाना को मजूर ही होगी, अगर उसे यह आधारभूत सिद्धात स्वीकाय नही कि भौगोलिक दृष्टि से समीपस्थ इलाके ऐसे क्षेत्रो मे बटे हो और आवश्यक क्षेत्रीय समायोजन के आधार पर इस तरह बने हो कि जिन इलाको मे मुसलमान बहुसख्यक है जसे पश्चिमी और पूर्वी इलाका म वे स्वतत्र राज्य हो और उनकी विभिन्न इकाइया स्वायत्तशासी और सावभौम हो। इन इकाइयो और क्षेत्रो म अल्पसख्यको के लिए सविधान म पर्याप्त, कारगर और अधिदेशात्मक सुरक्षा मिलनी चाहिए, जिससे उनके धार्मिक, सास्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक और अन्याय अधिकारो तथा हितो की, उनके साथ सलाह मशविरे के आधार पर रक्षा की जा सके, इसी तरह भारत के उन भागो म जहा मुसलमान अल्पसख्यक है वहा सविधान म खास तौर पर उनके लिए और अय अल्पसख्यको के लिए पर्याप्त कारगर और अधिदेशात्मक सुरक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे उनके धार्मिक, सास्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रशासनिक और अय अधिकारो और हितो की उनके साथ सलाह मशविरे के आधार पर रक्षा की जा सके।
यह अधिवेशन कायकारिणी समिति को यह अधिकार भी प्रदान करता है कि वह इस आधारभूत सिद्धातो की रोशनी मे ऐसा सविधान बनाए, जिसम इस बात की व्यवस्था हो कि अतत इन विभिन्न क्षेत्रो को सुरक्षा, विदेशी मामलो, सचार कस्टम्स आदि बातो म भी पूरा अधिकार मिल सके।

लीग ने 1941 म अपना अगला अधिवेशन मद्रास म किया। जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे कहा 'हम किसी भी हालत म अखिल भारतीय सविधान और केंद्र म एक सरकार नही चाहते हम इस उपमहाद्वीप म स्वाधीन राष्ट्र और स्वाधीन राज्य की स्थापना के लिए कृतसकल्प हैं।

दूसरे मुस्लिम सगठन

लीग की पाकिस्तान योजना के बारे म काग्रेस उदारवादियो, दलित जातियो आदि राजनीतिक दलो और सगठनो के चिंतन की चर्चा करने के पहले हम सक्षेप मे कुछ अय मुस्लिम राजनीतिक सगठनो का उल्लेख करेंगे जो 1928 के बाद स्थापित हुए और जिनसे भारतीय मुसलमाना की बढती हुई राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना का परिचय मिलता है।

1930 म अब्दुल गफ्फार खा ने खुदाई खिदमतगार नामक सस्था की स्थापना की। नाथ वेस्ट फ्रटियर प्रात के राजनीतिक तौर पर जागत मुसलमानो की सस्था काग्रेस समथक थी। नागरिक अवज्ञा आदोलन के काल म इस सगठन ने प्रात के कुछ भागो म किसानो के बीच कर नही देने का आदोलन चलाया। इस सगठन का विचार था कि गाधीवादी सघर्ष के तरीको से राष्ट्रीय स्वतत्रता

प्राप्त करने की आवश्यकता है। बलूचिस्तान मे राष्ट्रीय मुसलमान काग्रेस समर्थक वतन पार्टी मे सगठित थे। भारतीय मुसलमानो का एक अन्य राजनीतिक सगठन भी था आल इडिया मोमिन कान्फ्रेंस जो मुख्यत मुस्लिम जुलाहो का सगठन था। इसने साधारणत इडियन नेशनल काग्रेस का समर्थन किया और लीग एव पाकिस्तान का विरोध।[33]

कुछ राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओ ने 1930 मे पजाब मे अहरार पार्टी की स्थापना की। कुछ दिनो तक इस प्रात की मुस्लिम जनता पर इस पार्टी का बहुत अधिक राजनीतिक प्रभाव रहा। काग्रेस द्वारा चलाए गए 1930 34 के नागरिक अवज्ञा आदोलन मे और 1940 के सत्याग्रह मे भी अहरार पार्टी के लोगो ने भाग लिया। आल इडिया शिया पोलिटिकल कान्फ्रेंस भारतीय शिया लोगो का सगठन था। कान्फ्रेंस ने साधारणत इडियन नेशनल काग्रेस का समर्थन किया।

बगाल की कृषक प्रजा पार्टी के नेता फजलुल हक प्रभावशाली वक्ता और तेजी से बदलने वाले राजनीतिक फनकार थे। इस पार्टी का कार्यक्रम था ससदीय और सावैधानिक तरीके से कृषि क्राति और मुस्लिम किसानो मे इस पार्टी का आधार बडा व्यापक था। हक के नेतृत्व मे इस दल का रुझान कभी साप्रदायिक रहा और कभी राष्ट्रवादी। 1931 मे अल्लामा मशरीकी द्वारा स्थापित खासकर पार्टी का भी भारतीय मुसलमानो के बीच महत्वपूर्ण स्थान था।

खासकर आदोलन प्रारभिक इस्लाम के धार्मिक विचारतत्र पर आधारित था। खासकर लोग आधुनिक इस्लाम को भ्रष्ट मानते थे और उन्होने इसके पुनर्जन्म और मुस्लिम समाज के नैतिक उत्थान का व्रत लिया था। इस आदोलन का दावा था कि यह समाज के गरीब तबके का प्रतिनिधित्व करता है। इसने शुद्ध, पवित्र जीवन और समाज सेवा मे जीवनार्पण के लिए अपने सदस्यो का आह्वान किया।

खाकसार पार्टी अर्द्ध सैनिक अनुशासन पर आधारित थी। यह अपने सदस्यो से नेता के प्रति पूर्ण आस्था और आज्ञानुवर्तिता की अपेक्षा करती थी। यह पार्टी कभी कभी विश्व विजय का भी सपना देखती थी। फिर से राजा, शासक, विश्व विजय और धरती का सर्वोपरि स्वामी होना हमारा लक्ष्य है।'[34] खाकसार आदोलन मे फासिज्म की तीव्र गध है। पजाब, सयुक्त प्रात और सिंध मे यह आदोलन सबसे अधिक तगडा हुआ। दक्षिण भारत के भी कुछ इलाको मे यह फैला।

1940 मे अल्लाबख्श के सभापतित्व मे आजाद मुस्लिम कान्फ्रेंस की स्थापना हुई। इडियन नेशनल काग्रेस जमायतुल उल्मा, अहरार पार्टी और अन्य राष्ट्रवादी मुस्लिम सगठनो मे जो राष्ट्रवादी मुसलमान थे यह उन सबका मिला जुला दल था। यह दल मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माग के विरुद्ध था और इसने काग्रेस की इस माग का समर्थन किया कि प्रातो का भाषा के आधार पर पुनर्गठन हो और इन नए प्रातो का आत्मनिर्धारण का हक मिले, यहा तक कि वे चाहे तो अलग भी हो सकें, लेकिन यह सब भारत की स्वतत्रता के प्रसग मे हो।[35]

पाकिस्तान के सिद्धात का इतिहास

देश के प्रमुख मुस्लिम सगठना की चर्चा करने के बाद अब हम मुस्लिम लीग की पाकिस्तान योजना और उसके सैद्धातिक आधार के बारे मे विभिन्न लोगो के विचार प्रस्तुत करेंगे। जिस सिद्धात पर यह योजना आधारित थी वह धम की समानता से बना था और उसके अनुसार मुसलमान अलग राष्ट्र थ। जिन्ना के अनुसार महान मुस्लिम कवि इकबाल न पाकिस्तान के सिद्धात का निरूपण *किया था।*

> *यह सब विदित है कि पाकिस्तान का सिद्धात हजरत अल्लामा इकबाल के* मस्तिष्क की देन है। वे अपनी जनता की श्रेष्ठतम आकाक्षाओ के प्रवक्ता थे।[46]

1930 म मुस्लिम लीग के अध्यक्षीय भाषण म इकबाल ने कहा था, मैं पजाब नाथ वेस्ट फ्रटियर प्रात, सिध और बलूचिस्तान को एक राज्य के रूप म सयुक्त देखना चाहता हू। स्वायत्त शासन ब्रिटिश साम्राज्य के अतगत मिले या उससे बाहर, उत्तर पश्चिम भारत के मुसलमाना की नियति मुझे यही मालूम पडती है कि अतत उनका एक सयुक्त उत्तर पश्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य बनेगा।[47]

लेकिन नए सविधान के लागू होने और कई प्राता म काग्रेसी सरकारो की स्थापना के बाद ही कही पाकिस्तान की धारणा मुस्लिम राजनीतिक दलो के ध्यान म खास तौर पर आई। *1940* मे लीग के लाहौर अधिवेशन मे अध्यक्षीय पद से जिन्ना ने यह घोषणा की कि भारतीय मुसलमान महज एक धार्मिक सप्रदाय भर नही है, वरन पृथक राष्ट्र भी ह। भारत की समस्या महज अत साप्रदायिक नही, वरन स्पष्टत अतर्राष्ट्रीय है और इस पर इसी रूप म विचार होना चाहिए। जब तक यह आधारभूत सत्य स्वीकार नही किया जाता, तब तक कोई भी सविधान बने उससे अनथ ही होगा अगर ब्रिटिश सरकार सचमुच चाहती है कि इस उपमहाद्वीप के लोग शाति और सुखपूवक रहे तो हम सबके लिए एक ही रास्ता है और वह यह कि भारत को 'स्वायत्तशासी राष्ट्रीय राज्यो' म विभक्त कर प्रमुख राष्ट्रा के लिए अलग दशा की व्यवस्था की जाए।'[48] जिन्ना ने यह भी कहा कि हिंदू और मुसलमान एक भारतीय राष्ट्र के रूप म सपन्न नही हो सकत। उनका तक था

> यह समझना बडा मुश्किल है कि हमार हिंदू दोस्त इस्लाम और हिंदू धर्म की वास्तविक प्रकृति को समझ पाने म कैसे असफल रह जाते हैं। वे शब्द के सही अथ मे धम हैं ही नही, वरन विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाए हैं आर यह सोचना महज सपना है कि वे कभी भी सम्मिलित राष्ट्र के रूप म विकसित हो सकेंगे हिंदुआ और मुसलमाना के अलग-अलग धम दशन सामाजिक प्रथाए और साहित्य है। न तो वे आपस मे शादी-ब्याह करत है

आर न एक साथ खान-पान, वस्तुत वे दो ऐसी भिन्न समस्याओं के लोग है जो विरोधी विचारो और धारणाओं पर आधारित है स्पष्ट है कि उन्हें विभिन्न इतिहास स्रोतो से प्रेरणा मिलती है। उनके महाकाव्य भिन्न है, उनके वीरोचित काव्य नायक भिन्न है प्राय एक का नायक दूसरे का शत्रु है और इसी तरह उनकी हार और जीत अलग अलग है। ऐसे दो राष्ट्रो को, बहुसख्यक और अल्पसख्यक के रूप म एक राज्य म नाथ देने से लगातार असतोष और विक्षोभ बढेगा ही, और ऐसे राज्य की सरकार के लिए जो ताना-बाना बनेगा वह नष्ट होकर रहेगा

मुस्लिम भारत ऐसा कोई सविधान स्वीकार नही कर सकता जिससे अनिवार्यत हिंदू बहुसख्यक राज्य बन। अल्पसख्यको पर लादे गए किसी भी लोकतात्रिक व्यवस्था म अगर हिंदू और मुसलमान एक साथ रह तो वह वस्तुत हिंदू राज्य व्यवस्था ही होगी। काग्रेस आला कमान जिस तरह के लोकतत्र के पक्ष म है वह इस्लाम मे जो सबसे अधिक मूल्यवान है उसका पूर्ण विनाश करके रहेगा

राष्ट्र की किसी भी परिभाषा के अनुसार मुसलमान अलग राष्ट्र है और उनका अपना अलग देश, अपना अलग भूभाग, अपना अलग राज्य होना ही चाहिए हम चाहते है कि हमारे लोग पूरी तरह अपने आध्यात्मिक सास्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन का सर्वोत्तम विकास कर सके और उनका जीवन जिसे हम सवश्रेष्ठ मानते है और जो हमारे अपने आदर्शो और हमारे जन जीवन की प्रतिभा के समरूप है उसके अनुरूप हो।[49]

पाकिस्तान के समथको ने भारत म सघीय राज्य की योजना को अस्वीकार कर दिया जिसके अनुसार केंद्रीय विधायिका के प्रति जिम्मेदार केंद्रीय मत्रिमडल सुरक्षा, सचार, विदेशी मामलो आदि पर नियत्रण रखता। उनका कहना था कि केंद्रीय विधायिका पर हिंदू बहुसख्यको का आधिपत्य होगा क्योकि देश म उन्ही का बहुमत था।

मुस्लिम लीग ने अधिकारी तौर पर कोइ ऐसी योजना प्रकाशित नही की थी जिसम स्वायत्तशासी सावभौम मुस्लिम राज्यो के स्वरूप और उनकी प्रशासनिक और आर्थिक व्यवस्था की विस्तृत और ठास व्यवस्था हो, लकिन व्यक्तिगत तौर पर मुस्लिम बुद्धिजीवियो न अपनी योजनाए बनाइ थी। पजाबी' अलीगढ के प्रोफसरान डा० लतीफ सर सिकदर हयात खा, रहमत अली और सर अब्दुला हारून कमेटी आदि की योजनाए इनम प्रमुख थी। ये योजनाए एक दूसर से भिन्न थी, लकिन वे सब इस प्रश्न पर सहमत थी कि भारत म हिंदू और मुसलमान दो पृथक् राष्ट्र है। जसा ऊपर कहा जा चुका है, इनम से कोई भी योजना लीग द्वारा नही अपनाई गइ थी और लीग न पाकिस्तान की खुद अपनी कोइ व्यापक और ठास योजना नही प्रस्तुत की थी।

पाकिस्तान के बारे में विभिन्न राजनीतिक दलों और नेताओं के विचार

अब हम देखेंगे कि देश के प्रमुख राजनीतिक दलों के विचार उस सिद्धांत के बारे में क्या थे जिसके अनुसार भारतीय मुसलमान पृथक राष्ट्र थे और जिसके अनुसार उनके बहुमत वाले इलाकों में उनके अलग राज्य बनने चाहिए।

(क) इंडियन नेशनल कांग्रेस के नेताओं के एतद्विषयक विचार

उदारवादियों की ही तरह तिलक, पाल, और घोष आदि उग्रवादियों के नेतृत्व में भी इंडियन नेशनल कांग्रेस की हरदम यही राय थी कि भारतीय समग्रशील राष्ट्र हैं। उन्हें इस राष्ट्र भावना का एहसास दिलाना और प्रशासनिक सुधार एवं आत्म शासन के लिए एकताबद्ध संघर्ष के रास्ते पर उन्हें चलाना कांग्रेस के प्रचार कार्य का एक महान लक्ष्य था। पहले के नेताओं के बाद गांधी आदि जो अन्य नेता आए उनका भी ऐसा ही खयाल था, हालांकि उन्होंने यह भी माना कि मुसलमानों और दलित जातियों जैसे अल्पसंख्यक जन समुदायों के हितों की पूरी रक्षा होनी चाहिए। उनका विचार था कि सही अर्थों में लोकतांत्रिक संविधान इन हितों की सब तरह की सुरक्षा प्रदान कर सकेगा।

कांग्रेस के नेतागण साम्प्रदायिक सुविधाओं और पृथक् निर्वाचक इकाइयों के सिद्धांत के विरुद्ध थे। उनका खयाल था कि इनसे साम्प्रदायिकता की भावना गहरी और स्थायी होगी। लेकिन वे हिंदू मुस्लिम एकता को देश की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक मानते थे और इसलिए उन्होंने पृथक निर्वाचक इकाइयों, विशेष सुविधाओं, या स्थानों के आरक्षण संबंधी दलित जातियों और मुसलमानों की मांगों को मान लिया। 1916 का कांग्रेस लीग पैक्ट और 1933 में विधायिका सभाओं में स्थानों के प्रश्न पर दलित जातियों को गांधी द्वारा दी गई रियायत (पूना पैक्ट) इसके उदाहरण हैं। फिर भी, कांग्रेस ने मुसलमानों या भारत की किसी अन्य अल्पसंख्यक जाति को कभी पृथक राष्ट्र नहीं माना।

कांग्रेस की राय थी कि भारतीय जनता अपनी समष्टि में भारतीय राष्ट्र है। लेकिन उसने ब्रिटिश सरकार द्वारा विभिन्न प्रांतों में देश के विभाजन की आलोचना की। उसका कहना था कि यह विभाजन भारतीय राष्ट्र के विभिन्न भाषा भाषी दलों के अनुकूल नहीं है। कांग्रेस ने भाषा के आधार पर देश के प्रांतों के पुनर्गठन की योजना बनाई।

कांग्रेस ने भारतीय राष्ट्र के भाषागत और प्रांतीय सांस्कृतिक वैविध्य को स्वीकार किया, लेकिन वह देश के लिए संघीय राजतंत्र के पक्ष में थी। इसके अनुसार सम्मिलित और जीवित हितों पर संघ का नियंत्रण और बाकी मामलों में भाषा के सिद्धांत पर बनी संघीय इकाइयों का अधिकार होना चाहिए, साथ ही प्रांतों को अधिकतम प्रांतीय स्वायत्तता उपलब्ध होनी चाहिए। 1942 के दिल्ली

अधिवेशन में कांग्रेस की कार्यकारिणी द्वारा पारित प्रस्ताव में कहा गया कि किसी भी क्षेत्रीय इकाई को अपनी इच्छा के विरुद्ध भारतीय राष्ट्र में शामिल होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

लेकिन गांधी और अन्य कांग्रेसी नेताओं ने लीग के इस सिद्धांत को कि मुसलमान अलग राष्ट्र है, कभी स्वीकार नहीं किया, वरन उसका विरोध ही किया। उन्होंने धर्म को राष्ट्रत्व का निर्णायक लक्षण नहीं माना यद्यपि उन्होंने यह स्वीकार किया कि किसी धर्म विशेष को मानने वालों की सांस्कृतिक और सांप्रदायिक अल्पसंख्यक इकाई के रूप में गणना हो सकती है। लीग के नेताओं के द्विराष्ट्रीय सिद्धांत के विरुद्ध तर्क देते हुए गांधी ने कहा

> द्विराष्ट्रीय सिद्धांत असत्य है। भारत के अधिसंख्यक मुसलमानों ने धर्म परिवर्तन से इस्लाम स्वीकार किया है। जैसे ही उनका धर्म परिवर्तन हुआ वे एक अलग राष्ट्र नहीं हो गए। बंगाली मुसलमान वही भाषा बोलते हैं जो भाषा बंगाली हिंदू बोलते हैं। वे एक ही भोजन करते हैं, उनके मनोरंजन भी एक हैं। वे एक ही प्रकार के कपड़े पहनते हैं
>
> यही बात दक्षिण में भी गरीबों में दखन में आती है जो भारत की जनता है बहुत सारे मुस्लिम समुदायों में उत्तराधिकार का वही कानून लागू है जो हिंदुओं में प्रचलित है भारत में हिंदू और मुसलमान दो राष्ट्र नहीं हैं। जिन्हें भगवान ने एक बनाया है, उन्हें आदमी कभी अलग नहीं कर सकता।[0]

प्रख्यात अमरीकी पत्रकार लुई फिशर से भी गांधी ने ऐसे ही विचार व्यक्त किए थे। उन्होंने कहा

> हम लोग दो राष्ट्र नहीं हैं भारत में हमारी सम्मिलित संस्कृति है। उत्तर में हिंदी और उर्दू को हिंदू और मुसलमान दोनों समझते हैं। मद्रास में हिंदू और मुसलमान दोनों तमिल बोलते हैं बंगाल में दोनों बंगाली बोलते हैं और कोई हिंदी या उर्दू नहीं। सांप्रदायिक दंगे हरदम गाय या धार्मिक जुलूस संबंधी घटनाओं को लेकर होते हैं। इसका अर्थ है कि हमारे अंध-विश्वासों के कारण उपद्रव होते हैं और इसलिए नहीं कि हम विभिन्न राष्ट्रिक इकाइयां हैं।[1]

हिंदू मुस्लिम फूट के लिए गांधी ने बहुत हद तक ब्रिटिश सरकार को दोषी ठहराया। लुई फिशर से ही गांधी ने यह भी कहा था, जब तक यह तीसरी शक्ति इंग्लैंड यहां है तब तक हमारे सांप्रदायिक विभेद हमें परेशान करते रहेंगे। बहुत पहले उन दिनों के वायसराय लार्ड मिंटो ने कहा था कि भारत पर आधिपत्य बनाए रखने के लिए मुसलमानों और हिंदुओं को अलग रखना होगा

लेकिन गांधी का यह भी विश्वास था कि अगर भारतीय मुसलमान अलग होने को दृढ़ संकल्प हैं तो कोई भी शक्ति उन्हें अलग होने से रोक नहीं सकती। उन्होंने कहा, मुझे ऐसा अहिंसक तरीका मालूम नहीं जिसके जरिए नौ करोड़ मुसलमानों को भारत के शेष लोगों की इच्छा मानने को बाध्य किया जा सके,

चाहे अ य लोग बहुत बडी तादाद मे ही क्यो न हो। मुसलमानो को आत्मनिर्णय का वही अधिकार मिलना चाहिए जो शेष भारत को। इस देश का कोई भी भाग देश से अलग होने की माग कर सकता है।'[3]

आगे उ होने यह भी कहा अगर भारत के मुसलमान सचमुच इस बात पर अड जाते है तो अहिंसा मे विश्वास करने वाले आदमी की हैसियत से म इस प्रस्तावित विभाजन का सबल प्रतिरोध नही कर सकता। लेकिन म मन से इस विभाजन या जीवच्छेदन का समथक नही हो सकता। इसे रोकने के लिए मे सारी सभव अहिंसक कायवाई करूगा विभाजन एक सफेद झूठ है। मेरी आत्मा किसी भी हालत म यह मानने को तयार नही कि हिंदू धम और इस्लाम दो पूणत विरोधी सस्कृतिया और सिद्धात है लेकिन जब मुसलमान यह सोचते है कि व अलग राष्ट्र है तो मैं अपना विश्वास जबरन उन पर नही लाद सकता।'[4]

मुस्लिम नताओ का यह कहना था कि हिंदू मुसलमानो का आर्थिक शोषण कर रहे है। एक प्रमुख काग्रेसी नेता सत्यमूर्ति ने इस तक को गलत बतलाया। उनका कहना था कि ये सप्रदाय आर्थिक तौर पर सभरूप नही थ। हिंदू सप्रदाय म एक तरफ पूजीपतियो, जमीदारो और अन्य सपन्न लोगो के वग थे और दूसरी ओर मजदूरो किसानो और अन्य गरीब लोगो के। मुस्लिम सप्रदाय की भी बनावट ऐसी ही थी। जसे गरीब और अमीर मुसलमानो के आर्थिक हित समान नही थ। वसे ही गरीब और अमीर हिंदुओ के भी आर्थिक हित एक जसे नही थ। सत्यमूर्ति का कहना था कि इस तरह यह कहना गलत है कि हिंदू सप्रदाय मुस्लिम सप्रदाय का आर्थिक शोषण कर रहा है।[5]

एक अन्य प्रमुख काग्रेसी नेता राजेंद्र प्रसाद के अनुसार भारत म साम्प्रदायिकता पृथक चुनाव इकाइयो और विशेष सुविधाओ के कारण बढी। यह भी उतना ही स्पष्ट है कि पृथक निर्वाचक इकाइयो ने साप्रदायिकता की भावना को किसी भी अ य तथ्य की अपेक्षा अधिक जागत किया और बढावा दिया है। यह भावना उन्ही सप्रदायो तक सीमित नही रही है जिन्हे पृथक निर्वाचक इकाइया मिली है लेकिन उन सप्रदायो म भी फली है जो इसके शिकार हुए है। यह भावना विभिन्न उपसप्रदायो और जातियो म भी फैली है। यह भावना हम अतीत से अभी हाल म प्राप्त हुई है।'[6]

राजेंद्र प्रसाद ने यह भी कहा कि पाकिस्तान की माग आधुनिक ससार की 'राष्ट्रो के सयुक्तीकरण' की प्रवृत्ति के विरुद्ध है। आज की दुनिया म छोटे राष्ट्रो के लिए बचा रहना और स्वतत्र बने रहना बहुत कठिन है। चूकि आधुनिक स्थिति म योजनाबद्ध अथतत्र के माध्यम से ही राष्ट्र म प्रगति या समद्धि आ सकती है और चूकि छोटे राज्य अपने सीमित साधनो के आधार पर योजनाबद्ध अथतत्र नही अपना सकते, इसलिए भारत को कई राज्यो म बाटने अर्थात पाकिस्तान की योजना भारत के हिंदुओ और मुसलमानो दोनो के आर्थिक भविष्य को खतरे म डाल रही है। राजेंद्र प्रसाद ने यह भी दिखाया कि भारत के बाहर के मुस्लिम

राज्यों के लोग 'अपने देश की राजनीति और अर्थनीति को अधिकाधिक धर्मेतर तथ्यों पर आधारित करने लगे हैं। मुस्लिम लीग और पाकिस्तान के सिद्धांत के प्रणेता चाहे जो कहें, इस बात में कहीं कोई शक नहीं कि यूरोप के ईसाई राज्यों की ही तरह दुनिया के मुस्लिम राज्य भी आज धर्म निरपेक्ष हो रहे हैं। सवाल यह है कि क्या भारतीय मुसलमान घटनाओं के ज्वार की दिशा मोड़ सकेंगे और भारत में किसी अन्य आधार पर कोई राज्य स्थापित और संचालित कर सकेंगे।' उन्होंने यह भी कहा कि अगर भारत हिंदुस्तान और पाकिस्तान में बंट जाएगा तो अल्पसंख्यकों की समस्या और भी उलझ जाएगी।[7]

1942 में डा० एम० ए० लतीफ को लिखे गए अपने पत्र में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पाकिस्तान योजना पर अपने विचार अभिव्यक्त किए। उन्होंने इस आधार पर इस योजना का विरोध किया कि यह भारत की आर्थिक एकता को भंग कर देगी, और ऐसी आर्थिक एकता भारतीय राष्ट्र के भौतिक कल्याण और उसकी सुरक्षा के लिए आवश्यक है, क्योंकि किसी देश की सैनिक शक्ति उसकी आर्थिक शक्ति पर निर्भर है। अगर यह योजना लागू होती है तो देश के लिए सुनियोजित अर्थतंत्र का कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकेगा और ऐसा कार्यक्रम देश की उत्पादक शक्ति को बढ़ाने, उसके जरिए भारतीय जनता की गरीबी को खतम करने और उनके भौतिक और सांस्कृतिक अस्तित्व को ऊंचा उठाने के लिए आवश्यक है। आज देश के लिए सुनियोजित अर्थतंत्र की और इसके लिए, और साथ ही देश की सुरक्षा के लिए सक्षम केंद्रीय सत्ता की बड़ी जरूरत है।'[58] उन्होंने यह भी कहा कि चूंकि पाकिस्तान के पास पर्याप्त प्राकृतिक साधन नहीं होंगे, इसलिए अगर राजनीतिक विभाजन के कारण देश कई आर्थिक इकाइयों में बंट जाए, तो सबसे अधिक नुकसान खुद पाकिस्तान का होगा।

पंडित नेहरू ने यह भी कहा कि आज दुनिया में बड़े बड़े संघों के निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ रही है। पाकिस्तान की योजना इस प्रवृत्ति के विरुद्ध है। अगर भारत कई राज्यों में बंट गया, तो ये राज्य छोटे-छोटे और अपेक्षाकृत कमजोर होंगे, और बड़े बड़े राष्ट्रों के उपग्रह जैसे होकर रह जाएंगे। इसीलिए जवाहरलाल भारत के विभाजन के विरुद्ध थे। उन्होंने कांग्रेस के विचार को यों प्रस्तुत किया

> इस तरह कांग्रेस दृढ़ता के साथ भारत की एकता और संघीय पद्धति के पक्ष में है ऐसा संघ जिसमें इकाइयों को स्वायत्तता होगी फिर भी दिल्ली में इसने स्पष्ट कर दिया कि अगर कोई भूभागीय इकाई साफ साफ इस राय की है कि वह भारतीय संघ से अलग हो जाए तो उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध काम करने को बाध्य नहीं किया जा सकता। यह स्वाभाविक है कि हम ऐसी बात का स्वागत नहीं करेंगे और यह कुछ भौगोलिक और अन्य तथ्यों पर निर्भर होगा।[9]

(ख) काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी

इडियन नेशनल काग्रेस की एक प्रशाखा काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने भी लीग के द्विराष्ट्रीयता के सिद्धात का स्वीकार नही किया और अपने प्रस्तावो के द्वारा पाकिस्तान की माग का विरोध किया। पार्टी के दो प्रमुख नेताओ, ए० मेहता और ए० पटवधन ने लिखा 'पाकिस्तान की अन्य माग गणनातीत अनिष्ट की सभावना से परिपूर्ण है विभाजन हिंदू मुस्लिम समस्या का समाधान करने के बदले उसे और अधिक उलझाएगा, और उसके कारण भारत की मुक्ति का दिन और दूर चला जाएगा। यह देश के राजनीति रूपी शरीर के घावो के लिए मलहम का काम करने के बदले उन पर विघटन का अम्ल डालता है।[60]

इन सोशलिस्ट नेताओ का विचार था कि मुस्लिम और हिंदू क्षेत्रो को समरूप बनाने के लिए आबादी के हेर फेर की तकनीक अव्यावहारिक है। डा० लतीफ की योजना की आलोचना करते हुए उन्होने कहा, 'इस तरह के हेर फेर का भारत की समूची आबादी के दो तिहाई भाग पर असर पडेगा। इसका अर्थ होगा अभूतपूर्व पमाने पर मानवता का उन्मूलन। इसका बडा व्यापक जन विरोध होगा और लोगो को भयकर दुर्दशा का सामना करना पडेगा।[61] इन नेताओ की यह भी राय थी कि चूकि भारतीय अर्थतत्र मिश्रित है, इसलिए भारत म कई सार्वभौम राज्यो की स्थापना से यह अर्थतत्र भग होगा और यह पाकिस्तान और हिंदुस्तान दोनो के आर्थिक हितो के लिए घातक होगा।

पाकिस्तान और हिंदुस्तान दोनो देशो मे कुछ 'विदशी' अल्पसख्यक रह जाएग। मेहता और पटवधन का कहना था कि इस तरह अल्पसख्यको की समस्या और जटिल होगी। उन्होने लिखा, विभाजन के बाद भी हिंदू और मुस्लिम दोनो राज्यो मे दूसरे सप्रदाय के विदेशी अत क्षेत्र रह जाएगे और विदेशी सत्ता या आधिपत्य से भूभाग वापस लेने के सिद्धात से इन अत क्षेत्रो की शाति और सुरक्षा पर हरदम खतरा बना रहेगा यह भूक्षेत्र वापस लेनेवाली बात तो बनी ही रहेगी क्योकि विभाजन के बाद भी लीग को उम्मीद है कि वह हिंदुस्तान म रह गए मुसलमानो का सगठित करेगी और उनका नेतृत्व करेगी। हिंदू लोग भी एसा ही दावा करेग। इस तरह दोनो राज्यो म सुस्पृक्त अल्पसख्यको के रूप म एक महान अभिशाप विद्यमान रहेगा और इनकी निष्ठा पर शका बनी रहेगी '[6]

(ग) भारतीय उदारवादी

भारतीय उदारवादियो न पहले ही मान रखा था कि भारत कई सप्रदायो से बना हुआ राष्ट्र है। फलस्वरूप उदारवादी नेताओ ने द्विराष्ट्रीयता के सिद्धात और उस पर आधारित पाकिस्तान की योजना का विरोध किया। डा० आर० पी० परांजपे ने कहा, 'हम तरह यह समझ लेना चाहिए (आवश्यक है) कि आज का भारत न तो हिंदू भारत है और न मुस्लिम भारत, वरन मात्र भारत है, और हम सिर्फ

वह शक्ति जो भारत की एकता बढाती है उसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए और जो भी इस एकता को खडित करती है उस शक्ति का तिरस्कार होना चाहिए।'[63]

सर चिमनलाल एच० सेटलवाड ने जिन्ना के तर्को का यह जवाब दिया, मि० जिन्ना कहते है कि हिंदू और मुसलमान एक राष्ट्र नही हो सकते, क्योकि वे एक साथ खाते पीते नही, आपस मे शादी ब्याह नही करते और उनके दो भिन्न धर्म दर्शन है। लेकिन हिंदुओ मे भी तो विभिन्न जातियो के लोग है जो एक साथ खाते पीते नही और जो आपस मे शादी-ब्याह नही करते जैन, बौद्ध, लिंगायत तमिल, तेलुगु आदि के अपने विभिन्न धर्म है और वे विभिन्न देवताओ की पूजा करते है। शिया और सुन्नी लोगो मे तीव्र धार्मिक मतभेद है जिनके कारण उनके बीच खून खराबी से भरे हुए दंगे होते रहते है। क्या इन सबको विभिन्न राष्ट्रो के रूप मे वर्गीकृत करना होगा और उन्हे विभिन्न राष्ट्र मानना होगा ?'[64]

(घ) हिंदू महासभा

हिंदू महासभा ने पाकिस्तान की माग का जमकर अनम्य, अटल विरोध किया। हिंदू महासभा के अध्यक्ष वी० डी० सावरकर ने लिखा हम हिंदुओ के लिए भारत माता एक और अविभाज्य है। वैदिक युग से आज तक भारत की एकता एक स्थापित तथ्य है। इसलिए विभिन्न क्षेत्रो मे भारत के बटवारे की माग हिंदू कभी बर्दाश्त नही कर सकते '[65]

सावरकर ने यह घोषणा की कि हिंदू लोग स्वत एक राष्ट्र है और सपूर्ण भारत उनकी पवित्र राष्ट्रभूमि है। हमारी एक सम्मिलित पितृभूमि और तज्जन्य क्षेत्रीय ऐक्य तो है ही, हमारा एक सम्मिलित पवित्र क्षेत्र भी है जो हमारी सम्मिलित पितृभूमि के समरूप है, उससे अभिन्न है। यह तथ्य ससार मे और कही दृष्टव्य नही है। यह हिंदुस्तान यह भारत भूमि हमारी पितृ भूमि भी है और पुण्य भूमि भी हमारे कुछ ऐसे सजातीय सबध भी है, सास्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक भाषा भाषी और जातीय, जिन्होने अनगिनत सदियो के पारस्परिक सपर्क और स्वांगीकरण की प्रक्रिया के जरिए हमे समरूप और जैविक राष्ट्र के रूप मे ढाल लिया है।'[66]

तात्पर्य इस सिद्धात के अनुसार भारतीय मुसलमान भी अलग राष्ट्र हैं। सावरकर ने इसे माना भी। सावरकर ने भारतीय मुसलमानो को अलग राष्ट्र तो अवश्य माना, लेकिन उन्होने मुस्लिम गृहभूमि की उनकी माग को मान्यता प्रदान करने से इकार कर दिया। उन्होने आर्यावर्त या भारत को मात्र हिंदुओ का गृहक्षेत्र माना और हिंदू राज का सपना देखा यह तर्कसंगत नही था।

(च) डा० अम्बेदकर

'थाटस आन पाकिस्तान' नामक अपनी पुस्तक मे अम्बेदकर ने पाकिस्तान पर अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होने रेनन द्वारा निरूपित राष्ट्र के आदर्शवादी सिद्धात

को माना। रेनन के अनुसार, 'राष्ट्र एक जीवित आत्मा है, एक आध्यात्मिक सिद्धात। दो तथ्य जो वस्तुत एक ही है, इस जीवित आत्मा इस आध्यात्मिक सिद्धात का निर्माण करते हैं। इनमे एक अतीत मे और एक वतमान मे निहित है। एक स्मतियो के सपन्न उत्तराधिकार का स्वत्व भोग है तो दूसरा साथ रहने की इच्छा या वास्तविक स्वीकार भाव है परपरा से मिले हुए अविभाजित उत्तराधिकार के सुयोग्य सरक्षण की इच्छा है।'[67]

डा० अम्बेदकर ने कहा कि इस मानदड स देखने पर हिंदू और मुसलमान एक राष्ट्र नही है। वे दो हथियारबद फौजे है जो एक दूसरे के खिलाफ सघर्ष कर रही है। उनका अतीत एक दूसरे के विनाश का अतीत है राजनीति और धम दोनो क्षेत्रो म आपसी शत्रुता का अतीत है हिंदुओ और मुसलमानो का जो तथा कथित समान तत्व एक साथ बाधती है, उनस अधिक गहराई स राजनीतिक और धार्मिक शत्रुता उन्हे विभाजित करती है।[68]

डा० अम्बेदकर ने यह भी कहा कि मुसलमान केवल एक सप्रदाय भर नही, वरन राष्ट्र है इसलिए भारतीय राज्य का कोई ऐसा सविधान जो अल्पसख्यक सप्रदायो के हितो की गारटी करता है इस समस्या का हल नही कर सकता। उन्होने सप्रदाय और राष्ट्र के विभेद का निम्नाकित विवेचन किया

> यह अतर मूलत यह है सप्रदाय का सुरक्षा का अधिकार है, राष्ट्र को पृथक्करण की माग का अधिकार है मेरे विचार से अतिम नियति के सवालो मे इस अतर के कारण निहित है जिस राज्य म कई सप्रदाय है, उसम एक सप्रदाय दूसरे सप्रदाय के खिलाफ हो सकता है लेकिन अपनी अतिम नियति के बारे म उनकी भावना यह होती है कि वह एक है। लेकिन जो राज्य कई राष्ट्रो से बना है उसम अगर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के खिलाफ उठ खडा होता है तो उनका अतर उनकी अतिम नियति के अतर स जुडा हुआ है सप्रदाय केवल सरकार के रूप और उसकी पद्धति म परिवतन चाहता है लेकिन राष्ट्र को विखडन का अधिकार मिलना चाहिए, क्योकि यह सरकार के रूप म परिवतन मात्र से सतुष्ट नही होगा। इसका झगडा अतिम नियति के प्रश्न स जुडा है।'[69]

लीग के मुसलमानो ने बहुत देर से यह जाना था कि भारतीय मुसलमान राष्ट्र है और डा० अम्बेदकर ने इसकी यह व्याख्या की, कोई समुदाय अपने को गलती से सप्रदाय मान ले सकता है यद्यपि इसम राष्ट्र के तत्व मौजूद हो सकते है।'[70]

डा० अम्बेदकर का खयाल था कि पाकिस्तान और हिंदुस्तान म एकता सभव नही है। वास्तविक एव अविभाज्य होने के लिए एकता या सादृश्य और बधुत्व की भावना पर आधारित होना पडेगा। इस एकता को आध्यात्मिक होना पडता। चूकि मुसलमान स्वाधीन आध्यात्मिक इकाई है इसलिए हिंदुओ और मुसलमानो की एकता सभव नही। अम्बेदकर ने कहा कि पाकिस्तान का सारे तरह भाग म

सावभौम केंद्रीय सत्ता की स्थापना के प्रति विरोध म निहित है। पाकिस्तान का अथ है मुस्लिम इलाको म मुसलमानो के पृथक सावभौम राज्य की स्थापना।

डा० अम्बेदकर का विचार था कि जिन इलाको मे मुसलमान अधिक सख्या म हैं वहा स्वाधीन मुस्लिम राज्यो का निर्माण होना चाहिए। आबादी के हेर फेर से इन इलाको को समरूप बनाया जा सकता है। आधुनिक साधना और प्रक्रियाओ के कारण इस तरह का हेर फेर बहुत कठिन भी नही होगा। डा० अम्बेदकर ने यह भी कहा कि इसमे जितनी परेशानी होगी और जो खच लगेगा उससे अधिक हम लाभ होगा, क्योकि इस अत्यत जटिल और विशद समस्या का स्थाई हल मिल जाएगा।

(छ) कम्युनिस्ट पार्टी आफ इडिया

जिन इलाको म मुसलमान अधिक तादाद म थे, वहा उनके स्वायत्तशासी राज्य और भारत से पृथक हो सकने के अधिकार को कम्युनिस्ट पार्टी आफ इडिया न स्वीकार किया। पार्टी के एक प्रमुख नेता डा० जी० अधिकारी ने लिखा, 'अगर हम पाकिस्तान की माग के सारभूत तत्व पर ध्यान दे तो असल मे यह माग पजाब सिध, बलूचिस्तान और बगाल के पूर्वी क्षेत्रा आदि की मुस्लिम राष्ट्रिक इकाइया के आत्मनिणय और अलग हो सकने के अधिकार की माग है।'[71] 1943 के पार्टी अधिवेशन के प्रस्ताव के निम्नाकित खड म राष्ट्र जातिया और स्वतत्र भारत के सभावित राज्यतत्र के प्रश्न पर पार्टी के विचार दिए गए हैं

(अ) भारतीय जनता क जिस किसी अश का अपना सलग्न भूभाग है, सम्मिलित ऐतिहासिक परपरा, सम्मिलित भाषा, सस्कृति, मानसिक सरचना और आर्थिक अस्तित्व है उसे पथक राष्ट्रिक इकाई की मान्यता मिलेगी, स्वतत्र भारतीय सघ स्वायत्तशासी राज्य के रूप म रहने का उसे हक होगा, और इच्छा हो तो उसके अलग होने का भी उसे अधिकार होगा। इसका आशय यह है जो भूभाग इन राष्ट्रिक इकाइयो के गृहक्षेत्र है जो आज के ब्रिटिश प्राता और तथाकथित 'भारतीय राज्यो' की कृत्रिम सीमाओ द्वारा विभिन्न भागो म विभक्त है, उन्हे स्वतत्र भारत म फिर से एक कर दिया जाएगा और उन राष्ट्रिक इकाइयो को वापस कर दिया जाएगा। इस तरह भविष्य का स्वतत्र भारत पठान, पश्चिमी पजाबी (मुख्यत मुस्लिम), सिक्ख, सिधी हिंदुस्तानी राजस्थानी गुजराती, बगाली, आसामी बिहारी, उडिया और आध्र तमिल, कर्नाटक महाराष्ट्र, केरल क रहने वाला आदि विभिन्न राष्ट्रिक इकाइयो के स्वायत्तशासी राज्यो का सघ होगा।

(ब) अगर इन नए राज्यो म अल्पसख्यक बिखरे हुए हो तो सस्कृति, भाषा शिक्षा आदि क्षेत्रो म उनके अधिकार कानून द्वारा सुरक्षित होंगे

(स) अधिकारो की ऐसी घोषणा ऊपर बतलाई गई प्रत्यक राष्ट्रिक इकाई को और इसलिए मुस्लिम धम को मानने वाली राष्ट्रिक इकाइयो को भी

स्वायत्तशासी राज्यगत अस्तित्व और सबध विच्छेद का अधिकार प्रदान करती है। इसलिए ऐसी घोषणा नेशनल काग्रेस और लीग के बीच एकता का आधार हो सकती है। इससे जहा कही मुसलमान बहुत बडी तादाद मे है और जहा उनका अपना सलग्न गृहक्षेत्र है, वहा उन्हे अपना स्वायत्त शासी राज्य बनाने और चाहे तो अलग होने का भी अधिकार होगा ऐसी घोषणा पाकिस्तान की माग के सार तत्व को स्वीकार करती है।

(द) लेकिन इस रूप मे सबध विच्छेद के अधिकार की स्वीकृति का अर्थ यह नही है कि इससे सचमुच सबध विच्छेद होगा ही। इसके विपरित, पारस्परिक सशय को दूर कर, इस तरह की घोषणा आज की स्थिति मे कायगत एकता लाती है और कल के स्वतत्र भारत मे उच्चतर एकता का आधार बनती है। ऐसी घोषणा के फलस्वरूप जो राष्ट्रीय एकता बनेगी और मातभूमि की रक्षा के सयुक्त सघष मे मजबूत होगी, इससे सारी भारतीय राष्ट्रिक एक साथ रहने और स्वतत्र भारतीय सघ की स्थापना की आवश्यकता को समझ सकेगी, क्योकि हर राष्ट्रिक इकाइ का राज्य ऐसे सघ का स्वतत्र और समानाधिकारी सदस्य होगा और उसे अलग हो सकने का अधिकार होगा। इस तरह ये राष्टिक इकाइया यह समझ सकेगी कि देश मे भावी स्वतन्त्रता लाकतन्त्र का बचाने का यही रास्ता है '

डा० अधिकारी के अनुसार राष्ट्रीयता की भावना के विकास और भारतीय जनता मे राष्ट्रीय आदोलन के प्रसार के कारण भारत मे राष्टिक इकाइया का आदोलन विकसित हुआ। उन्होने कहा कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय आदोलन 'भारत के कोन-काने मे फल रहा है और सबसे अधिक पिछडी हुइ राष्ट्रिक इकाइया और सप्रदायो की किसान जनता भी इसके भवर-प्रभाव मे आ रही है। देश की मुक्ति का अखिल भारतीय आदोलन बहु राष्टिक और बहुजातीय आदा लन के रूप मे विकसित हो रहा है। भारत की राजनीतिक और आर्थिक मुक्ति का सम्मिलित लक्ष्य व्यक्तिगत चेतना की जागती हुइ आखा मे परिलक्षित हो रहा है।'[73]

साप्रदायिक निवाचक इकाइयो विशिष्ट प्रतिनिधित्व और भारतीय मुसलमान अलग राष्ट्र है इस सिद्धात पर आधारित मुस्लिम लीग की माग के परिप्रेक्ष्य मे, देश के सबसे महत्वपूर्ण अल्पसख्यक सप्रदाय मुसलमानो की समस्याओ पर विभिन्न राजनीतिक सगठनो और दलो के दष्टिकोण और विचार का हम उल्लेख कर चुके।

1930 के बाद भारत की राष्ट्रीय राजनीति मे राष्ट्रिक इकाइया और अल्पसख्यका की समस्या केंद्रीय महत्व की है। इस सवाल पर घनघोर विवाद हुए और विभिन्न दलो की ओर से तीव्र राजनीतिक प्रतिक्रिया हुइ।

अगर हम भारतीय समाज के वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक विकास समस्या और इसकी प्रवृत्तिया को समझने का प्रयास करें, ता।

सामाजिक ऐतिहासिक स्थिति को समझ सकेंगे जिसमे इस समस्या का सही समाधान सभव है।

राष्ट्रिक इकाइयो की समस्या, इसकी आवश्यक शर्तें और इसका प्रगतिशील समाधान

किसी सामाजिक स्थिति से ही कोई सामाजिक समस्या उभरती है। उस समस्या का समाधान उन सामाजिक शक्तियो के निराकरण पर ही सभव है जिनसे उस समस्या का जन्म हुआ। भारत मे जो 'सुप्त' राष्ट्रिक इकाई वाले दल थे उनका सम्मिलित आर्थिक जीवन था, उनकी समान भाषा और सस्कृति थी। इनके राजनीतिक जागरण के फलस्वरूप राष्ट्रिक इकाइयो की समस्या का उद्भव हुआ था। इन राष्ट्रिक इकाइयो के आदोलन पर्याप्त भूभागीय एकीकरण और आर्थिक जीवन, भाषा एव सस्कृति के मुक्त विकास की उनकी इच्छा को अभिव्यक्त करते थे और यह विकास ब्रिटिश शासन के कारण अवरुद्ध था।

इस समस्या के समाधान की पहली शर्त यह थी कि इन राष्ट्रिक इकाइयो के विकास के पथ मे ब्रिटिश शासन के रूप मे जो अवरोध था उसे खतम किया जाए और यह भी कि इन राष्ट्रिक इकाइयो को आत्मनिर्णय, यहा तक कि सबध विच्छेद का भी अधिकार दिया जाए। हम फिर भी यह विचार करना है कि क्या ब्रिटिश शासन से मुक्ति और आत्मनिर्णय के अधिकार की प्राप्ति राष्ट्रिक इकाइयो की समस्या के प्रगतिशील समाधान के लिए पर्याप्त है।

पिछले दो सौ वर्षो के विश्व इतिहास के सर्वेक्षण से पता चलता है कि राष्ट्रिक इकाइयो की समस्या के सार्थक सफल समाधान के लिए मात्र राष्ट्रीय स्वातंत्र्य ही काफी नही है। आस्ट्रिया, हगरी और बालकन प्रायद्वीप मे राष्ट्र जातियो की समस्या उन देशो की स्वतत्रता के बावजूद ज्यो की त्यो बनी रही। इसका कारण यह था कि समाज की पूजीवादी आर्थिक सरचना के ढाचे मे राष्ट्रिक इकाइयो की समस्या का पूर्ण समाधान सभव नही था।

पूजीवादी समाज राष्ट्रो के बीच और एक ही देश की राष्ट्रिक इकाइयो के बीच भी प्रतियोगी सघर्ष पर आधारित है। फिर, चूकि पूजीवाद मे व्यक्तियो राष्ट्रिक इकाइयो और राष्ट्रो के विकास की प्रवृत्ति और गति असमान होती है इसलिए पूजीवादी आर्थिक आधार पर विकसित होने वाले राष्ट्रो और राष्ट्रिक इकाइयो की आर्थिक शक्ति और सपन्नता एक जैसी नही होती। राष्ट्रो और विश्व के अर्थतत्र के पूजीवादी सगठन के कारण, ये राष्ट्र और राष्ट्रिक इकाइया बाजार, कच्चे माल और पूजी निवेश के क्षेत्रो के लिए अनवरत सघर्ष करती रहती है। फलस्वरूप, युद्ध और शत्रुता एव लोगो के शोषण और उनकी परतत्रता का जन्म होता है।

बाजार और कच्चे माल की खोज मे शक्तिशाली पूजीवादी राष्ट्र औपनिवेशिक साम्राज्यो का निर्माण करते है और अन्य राष्ट्रो को परतत्र बनाते है। देश के भीतर भी राष्ट्रिक इकाइया जो पूजीवादी आर्थिक आधार पर विकसित होती है, ग

दूसरे से और बाकी दुनिया से भी पूंजीवादी आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए संघर्ष करती है। साम्राज्यवाद अर्थात पूंजीवाद के ह्रास के युग में ये संघर्ष खास तौर पर तेज होते हैं। इससे दुनिया के राष्ट्रों के बीच एकता की भावना नहीं बढती है वरन राष्ट्रीय शत्रुता, साम्राज्यवादी युद्ध और गुलाम देशों की राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष बढते हैं।

राष्ट्रों और राष्ट्रिक इकाइयों के बीच संघर्ष समाज के पूंजीवादी संगठन में निहित है। यह संघर्ष तभी खतम होगा जब समाज प्रतियोगिता के बदले सहयोग और सहकारिता अर्थात समाजवादी अर्थतंत्र पर आधारित हो।

पूंजीवाद का आधार है लाभार्थ उत्पादन और प्रतियोगिता का सिद्धांत। इसलिए यह मानवता को शत्रु राष्ट्रों के रूप में खंडित विभाजित करता है और राष्ट्रों को संघर्षशील, युद्धरत युद्धेच्छु, राष्ट्रिक स्वार्थ वाले दलों और वर्गों में विभक्त करता है। समाजवाद उपभोगमूलक उत्पादन और सहयोग के सिद्धांत पर आधारित है। इसलिए यह मानवता को सहयोगी समुदाय के रूप में एकताबद्ध करने में सहायक है और राष्ट्रों एवं राष्ट्रजातियों के बीच बंधुत्व के संबंध स्थापित करता है। समाजवाद में, राष्ट्रों या राष्ट्रिक इकाइयों में कोई पूंजीवादी दल नहीं होता, जो प्रतियोगिता के कट्टर विधान और आर्थिक आवश्यकता के द्वारा अनुप्रेरित होकर लोगों के बीच अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रिक इकाइयों के बीच शत्रुता का सृजन करे जिससे बाजार का विस्तार और कच्चे माल के स्रोतों की प्राप्ति जैसे उनके वर्गीय स्वार्थों की पूर्ति हो सके। समाजवादी आर्थिक आधार पर संगठित राष्ट्रिक इकाई स्वतंत्र समुदाय भाईचारे और सहयोग के लिए स्वैच्छिक संघ के सदस्य होते हैं। इस तरह समाजवाद राष्ट्रों या राष्ट्रिक इकाइयों में एक वर्ग का दूसरे वर्ग पर शासन तो समाप्त करता ही है साथ ही राष्ट्रों और राष्ट्रिक इकाइयों के बीच सहयोग का मार्ग तैयार करता है।

समाजवादी राष्ट्रीय अस्तित्व की स्थिति में ही अल्पसंख्यकों की समस्या का संपूर्ण हल संभव है। स्वतंत्र भारत में लोकतांत्रिक संविधान अल्पसंख्यकों के नागरिक एवं अन्य अधिकारों की सुरक्षा कर सकता है। लेकिन पिछड़े हुए समाजों में पूंजीवादी आर्थिक विकास की स्थिति में उन देशों की बुर्जुआजी और पेशेवर वर्ग व्यापारिक एवं औद्योगिक हितों और नौकरियों तथा पदों की अपनी लड़ाई में अपने संप्रदायों की जनता के जागरण का इस्तेमाल करने का लोभ संवरण नहीं कर सकेंगे। इससे देश में संप्रदायवाद एवं साम्प्रदायिक वितृष्णा और संघर्ष का उद्भव होना अवश्यंभावी है।

समाजवाद समाज के वर्ग चरित्र का अंत कर बुर्जुआजी के अनुभागीय संघर्षों के उन्मूलन में भी सफल होता है। यह राष्ट्रों और राष्ट्रिक इकाइयों की ही तरह संप्रदायों के बीच भी शांतिपूर्ण और सहयोगी संबंधों के लिए पथ प्रशस्त करता है।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता राष्ट्रिक इकाइयों के लिए आत्म निर्णय का अधिकार समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना राष्ट्रिक इकाइयों और

की समस्या के पूण समाधान के लिए शर्तें आवश्यक थी।

साम्राज्यवाद के विनाश के बाद भी, उन सामाजिक तत्वा पर विजय पान का सवाल रह जाएगा जो स्वाथ जीवन और सप्रदायवाद का जन्म देते ह। और यही समाजवाद समस्या के समाधान के रूप म सामने आता है। प्रजातत्र समाजवाद स अविच्छेद्य है। यही भारतीय पूजीवादियो और सामत वादियो से सघष का प्रारभ होता है। राष्ट्रजाति का प्रश्न हमारे सामाजिक अस्तित्व क प्रश्न स अलग नही। यह सामाजिक क्राति की पूरक समस्या है। पूजी के आधिपत्य के प्रश्न से अलग कर इस पर विचार नही किया जा सकता '[73]

सदभ

1 देखें कार और मकाटनी।
2 विटरनिज प० 6।
3 स्टालिन प० 8।
4 देखें मकाटनी और कार।
5 स्टालिन प० 7।
6 कृष्ण पृ० 18।
7 दखें कार।
8 देखें कृष्ण।
9 देखें डब्ल्यू० सी० स्मिथ प० 1।
10 ग्रहम प० 58।
11 पटलेकर द फ्यचर आफ इस्लाम इन इडिया एशिया जिल्द 28 स० 11 (नवबर 1928) प० 874 म उद्धत।
12 आर पी० दत्त प 389 म उद्धत।
13 हटर प० 156।
14 डब्ल्यू० सी० स्मिथ पृ० 22।
15 विल्सन प० 188।
16 ग्रहम प० 178।
17 वही प० 273 मे उद्धत।
18 कृष्ण पृ० 97 म उद्धत।
19 देखें डब्ल्यू० सी स्मिथ।
20 वही प० 201।
21 बकन प० 244।
22 मार्लि पृ० 325।
23 दखें ए० मेहता एड ए० पटवधन प० 82।
24 नार्थ आनिवियर ट टाइम्स को पत्र 10 जुलाई 1926।
25 कृष्ण द्वारा उद्धत पृ० 90।

26 वही पृ० 314।
27 वही प० 85।
28 वही प० 132।
29 वही प० 133।
30 वही प 131।
31 वही प० 72।
32 लाड क्रोमर प० 126 127।
33 डब्ल्यू० सी० स्मिथ प० 225।
34 इंडिया इन 1919।
35 कृष्ण प० 266।
36 ए० मेहता एड ए० पटवधन द्वारा उद्धत प० 38।
37 पंडित जवाहर लाल नेहरू प० 86।
38 आर पी० दत्त प० 418।
39 कृष्ण प० 278।
40 वही प० 296।
41 दख पट्टाभि सीतारमया।
42 ए० मेहता एड ए पटवधन द्वारा उद्धत प० 43।
43 देख अंसारी ट्रिब्यून 21 माच 1942।
44 मशरीकी डब्ल्यू० सी० स्मिथ द्वारा उद्धत प० 278।
45 अल्लाबख्श ट्रिब्यून 10 अक्टूबर 1942।
46 इन्डियाज प्राब्लम आफ हर फ्यूचर कांस्टिट्यूशन प० 103।
47 वक्वार प० 10।
48 जिना प० 12।
49 वही प० 13 14।
50 देखें अशरफ प० 78 79।
51 देखें फिशर प० 36 37।
52 वही प० 34-35।
53 देख अशरफ प० 75।
54 वही प० 82 83।
55 वही पृ० 93।
56 राजेंद्र प्रसाद पृ० 6-7।
57 देख राजद्र प्रसाद पृ० (2) प० 319 21।
58 देखें डा० नजीर यार जग पृ० 211।
59 वही पृ० 119।
60 देखें ए० मेहता एड ए० पटवधन प० 211।
61 वही प० 213।
62 वही प० 219।
63 डा० आर० पी० परांजपे डा० अशरफ द्वारा उद्धत प० 64 65।
64 सर सी० सेटलवाड डा० अशरफ द्वारा उद्धत पृ० 6।
65 वी० डी० सावरकर डा० अशरफ द्वारा उद्धत पृ० 40-41।
66 वी डी० सावरकर डा० अम्बेदकर द्वारा उद्धत प० 135।
67 डा० अम्बेदकर द्वारा उद्धत प० 29।

68 डा० अम्बदकर प० 3० ।
69 वही प० 329 30 ।
70 वहा प० 337 38 ।
71 डा० जी० अधिकारी प० 36 ।
72 वहा प० 15 16 ।
73 वही प 4 ।
74 कृष्ण प० 346 47 ।

उपसंहार

भारत मे राष्ट्रवाद के विकास के प्रमुख चरण

अपने इस अध्ययन म हमने देखा कि ब्रिटिश शक्तिया की पारम्परिक त्रिया प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद का उदय और विकास हुआ। हमने यहा इस बात की भी व्याख्या प्रस्तुत की है कि क्या प्राक ब्रिटिश भारत के आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण म राष्ट्रीयता का उदय सभव नही था और न ही हुआ। ब्रिटिश शासन काल के भारतीय समाज के आधारभूत आर्थिक रूपातरण का भी हमने अभिचिन्हित किया है, क्योकि अमयुक्त भारतीय जन समुदाय की राष्ट्र के रूप म एकाविति के लिए यह आर्थिक रूपातरण अत्यत आवश्यक था। भारतीय जनता के सयुक्तीरण और उसके बीच राष्ट्रीय चेतना के प्रस्फुरण म आवागमन के आधुनिक साधना नई शिक्षा समाचारपत्रो आदि नए तथ्या क विशिष्ट अनुदान को भी हमने आका है।

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास क कई चरण थे। जसे जसे यह एक चरण स दूसरे चरण की तरफ बढा इसका सामाजिक आधार भी अधिक व्यापक होता गया, इसके लक्ष्य अधिकाधिक साहसिक हुए और अधिक स्पष्टता स परिभाषित हुए और यह विभिन्न रूपा म अभिव्यक्त हुआ। भारत और सारे विश्व म विभिन्न शक्तिया क विकास के फलस्वरूप भारतीयो न अधिकाधिक तादाद म राष्ट्रीय चतना और दृष्टि अपनाई और राष्ट्रीय आदोलन की कक्षा म आए। राष्ट्रीय जीवन के सामाजिक राजनीतिक सास्कृतिक, हर क्षत्र म यह राष्ट्रीय जागरण परिलक्षित हुआ।

हम यह भी दख चुके हैं कि नए वर्गा ने जो नए अथतत्र क फलस्वरूप पदा हुए थे और एक ही राज्य सत्ता क अधीन रह रहे थ, अपन युग की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति म अपना मुक्त और पूर्ण विकास अवरुद्ध पाया और इसलिए अपन विकास के रास्त के अवरोधा का हटान के लिए उन्होने अपन अखिल भारतीय सगठन बनाए और आदोलन किए। इस दरम्यान इन बाता क फलस्वरूप भी भारतीय आदोलन विकसित होता रहा और उसम अधिकाधिक शक्ति आती गई।

प्रथम चरण

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास के प्रथम चरण म इसका सामाजिक आधार अत्यत सकीर्ण था। उन्नीसवी सदी के प्रथम दशको म अग्रेजो द्वारा भारत म स्थापित शिक्षण सस्थाओ मे जिन्ह शिक्षा मिली और जिन्होने पाश्चात्य सस्कृति के प्रजातान्त्रिक और राष्टवादी विचारो को आत्मसात किया उन बुद्धिजीवियो मे राष्ट्रीय चेतना और महत्वाकाक्षा का सबसे पहला विकास हुआ। राजा राममोहन राय और उनके साथी प्रबुद्ध भारतीयो ने भारतीय राष्टवाद के हरावल दस्ते का काम किया। व भारतीय राष्ट्र की धारणा के प्रतिपादक थे और उन्होने जनसाधारण के बीच इस धारणा का प्रचार किया। उन्होने समाज और धर्म सुधार के आदोलन चलाए जो प्रजातत्र बुद्धिवाद और राष्टीयता आदि नए सिद्धाता के आधार पर भारतीय समाज और धम के पुर्ननिर्माण के प्रयास थे। वस्तुत ये आदोलन भारतीय जनता के ही एक भाग की उदीयमान राष्टीय प्रजातान्त्रिक चेतना के प्रतीक थ। भारतीय राष्ट्रवाद के इन प्रथम योद्धाओ न प्रेस की स्वतन्त्रता जसे प्रजातान्त्रिक अधिकारो का समथन किया और माग की कि देश के प्रशासन म देश के लोगो का भी हाथ रहे।

दूसरा चरण

भारतीय राष्टवाद के विकास का प्रथम चरण 1885 तक रहा और उस साल इंडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना म इसकी चरम परिणति हुई। दूसर चरण की अवधि मोटामोटी तौर पर 1885 म 1905 तक रही। इस अवधि म काग्रेस और राष्टीय आन्दोलन का नेतृत्व उदारवादी बुद्धिजीवियो के हाथ म था। उनकी चिंतन पद्धति और कायशली म ही इस आदोलन के कायक्रम और स्वरूप का निर्माण हुआ और इनम भारत के विकासमान, पूजीवादी समाज के हितो का प्रतिफलन हुआ। इस काल म व्यापारी वग के कुछ भाग और शिक्षित मध्यम वग के लोग राष्टवादी आदोलन की परिधि म आए। उन्नीसवी सदी के अन्त तक देशी और विदेशी व्यापार के विस्तार के परिणामस्वरूप व्यापारी वग और उसी तरह आधुनिक शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप शिक्षित मध्य वग काफी विकसित हो चुका था। आधुनिक उद्योग धधो के उदभव और विकास के कारण उद्योग पतियो का वग पैदा हुआ और उसकी ताकत भी बढती गई। य काग्रेस की तरफ आने लग और काग्रेस न देश के उद्योगीकरण का कायक्रम अपनाया और 1905 म स्वदेशी आदोलन चलाया।

उदारवादियो के नेतृत्व म काग्रेस न मुख्यत शिक्षित वर्गो और व्यापारी वग की मागो को आग बढाया जसे नौकरियो के भारतीयकरण की माग राज्य के प्रशासन तत्र म भारतीयो की सहभागिता की माग, पूजी के बहिर्गमन पर रोक थाम की माग, इत्यादि। इसन प्रतिनिधि सस्थाओ की स्थापना और नागरिक

स्वातत्य जैसे सवाल भी उठाए। सघप के जो तरीक अपनाए गए उन पर भी उदार वादी धारणाओ का प्रभाव स्पष्ट था। उन्ह सावैधानिक आदोलन, कारगर बहस, ब्रिटिश जनता की प्रजातात्रिक विवक बुद्धि और परपराओ पर भरोसा था।

अग्रेजी सरकार ने भारत के राष्ट्रीय आदोलन की महत्वपूण मागा का आदर नही किया। फलस्वरूप उदारवादिया की विचारधारा और कायपद्धति म राष्ट्रवादियो के कुछ अशो की आस्था समाप्त हो गई, और काग्रेस के भीतर ही नए जीवन दशन, नई राजनीतिक विचारधारा और सघप के नए तरीको के आधार पर नए दल का सजन हुआ।

ब्रिटिश शासन काल की सामाजिक प्रशासनिक स्थिति म सबको रोजगार मिलना असभव था, अस्तु शिक्षित मध्य वग क नौजवानो म बेरोजगारी की तादाद बढती गई। उन्नीसवी सदी क अत म विनाशकारी दुर्भिक्ष और महामारी क कारण लोगो की तकलीफें बेतरह बढी। इस तरह काग्रेस मे जन्मे इन नए अतिवादी दल क प्रचार प्रसार के लिए जमीन तैयार हुई। लाड कजन के शासन काल म सरकार द्वारा किए गए अप्रिय कार्यो जसे, वग विभाजन और इडियन युनिवर्सिटीज एक्ट, के कारण लोग सरकार से और अधिक विमुख हुए। राजनीतिक दृष्टि से चतन्य मध्य वग क लोग अतिवादी, गरम दल के लोगो के इद गिद आन लगे। तिलक, अरविंद घाष बी० सी० पाल और लाजपत राय इस दल क नेता थ। 1905 तक कुछ उदारवादी लोग भी ब्रिटिश सरकार म अपनी आस्था खोन लग थे। लकिन न तो उन्होन अपने जीवन दशन का ही परित्याग किया और न सघप सबधी अपनी कायनीति का ही। अतिवादिया की विचारधारा मूलत उदारवादिया की विचार धारा से उलटी थी। उदारवादिया का यह घोर विश्वास था कि भारत का प्रगति शील सामाजिक, राजनीतिक और सास्कृतिक उत्थान ही ब्रिटन का लक्ष्य था अतिवादिया क अनुसार ब्रिटेन भारत का गुलाम बनाए रखने और उसके आर्थिक शोषण का इच्छुक था। फिर, उदारवादियो न पाश्चात्य सस्कृति का गुणगान किया लेकिन अतिवादिया ने भारत के अतीत और उसकी पुरातन सस्कृति की गौरव गाथा गाई और उन्ह पुनर्जीवित करना चाहा।

ब्रिटिश प्रजातत्र से अनुरोध और आग्रह क द्वारा राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने की उदारवादी काय पद्धति से भी अतिवादिया की कोई आस्था नही थी। इसक विपरीत उनका खयाल था कि मागो की पूर्ति क लिए बायकाट आदोलन जस गैर ससदीय आदोलन के जरिए सरकार पर दबाव डालन की जरूरत थी। व प्रशासकीय सुधार स ही सतुष्ट हाने वाल नही थ। उन्हान स्वशासन की माग की जिसका 1906 म उदारवादिया न भी समथन किया।

राष्ट्रीय आदोलन क दूसर चरण म राजनीतिक अशाति आतकवादी आदोलन क रूप म प्रस्फुटित हुआ। कुछ राष्ट्रवादी नवयुवक आतकवादी दलो म सगठित हुए और उन्होन राजनीतिक स्वतत्रता क लिए अफसरो की हत्या और यदा कदा सना म छोटी-मोटी बगावत क तरीक का सहारा लिया।

तीसरा चरण

राष्टीय आदालन का तीसरा चरण 1905 से 1918 तक चला। आदालन के इस चरण म उदारवादिया की जगह अतिवादी नेतृत्व म आए। सरकार की दमनात्मक कारवाई के बावजूद, राष्ट्रीय आदालन विकासशील रहा। अतिवादिया के राजनीतिक प्रचार के फलस्वरूप लोगो म राष्ट्रीय आत्मसम्मान और आत्मविश्वास की भावना जगी। उदारवादियो के कथनानुसार राजनीतिक स्वातत्र्य क लिए अग्रेजो पर निभर रहने के बदले अब लोग स्वय अपनी शक्ति पर भरोसा करने लगे। लेकिन आदोलन की यह एक बहुत बडी कमजोरी थी कि इसके नेताओ ने इसे पुनर्जीवित हिंदू दशन पर आधारित करन की काशिश की। इसक चलते कुछ हद तक आदालन न रहस्यवादी रूप इख्तियार कर लिया और इसका गर धार्मिक स्वरुप कमजोर हुआ। फलस्वरूप मुसलमाना पर इसका बहुत प्रभाव नही पड सका।

तीसरे चरण म भारतीय राष्ट्रीय आदोलन ने जुझारू और चुनौतीपूण रूप लिया और निम्न मध्य वग म इसक बढत हुए प्रभाव क कारण इसका सामाजिक आधार पहले से अधिक व्यापक हुआ। युद्ध के दिना मे होमरूल आदालन के कारण लोगा म राजनीतिक चेतना और सबल हुई। इसी काल म उच्चवर्गीय मुसलमाना म राजनीतिक चेतना आई और उन्हाने 1906 म अपने राजनीतिक सगठन, मुस्लिम लीग की स्थापना की। कई कारणो स उच्च और मध्य वर्गीय मुसलमानो की उदीयमान राजनीतिक चेतना का स्वरूप साम्प्रदायिक था जिसके फलस्वरूप उनक सगठन का आधार साम्प्रदायिक था।

चौथा चरण

भारत के राष्ट्रीय आदालन क विकास का चौथा चरण 1918 म शुरू हुआ आर मोटा मोटी तौर पर 1930 34 के नागरिक अवज्ञा आदालन तक रहा। इस काल का एक महत्वपूण तथ्य यह है कि राष्टीय आदोलन को व्यापक जन आधार मिला और इसन प्रत्यक्ष जन आदोलन के हथियार का इस्तेमाल करना शुरू किया। अभी तक राष्टीय आदालन मुख्यत उच्च और मध्य वर्गा तक ही सीमित था, अब यह तजी स भारतीय जनता के बीच फैला।

प्रथम विश्वयुद्ध क ठीक बाद के वरसो म कई कारणा स भारतीय जन साधारण म राष्ट्रीय चतना का आविर्भाव हुआ। युद्धोत्तर आर्थिक सकट सरकारी वादा खिलाफी क कारण हुए मोहभग और बढ़ती हुई दमनात्मक कारवाइ आदि का किसानो, मजदूरा पर भी गहरा असर पडा और व काफी आदोलित थे।

यूराप मे कई देशा म हुई प्रजातात्रिक क्रातिया और रूस म हुइ समाजवादी क्राति जैसी महान अतर्राष्ट्रीय घटनाआ क कारण भारतीय जनता की राजनीतिक चेतना म स्पष्ट विकास हुआ था। प्रथम विश्वयुद्ध क दिना क होमरूल आदालन

के कारण भी लोगा मे राजनीतिक चेतना का विस्तार हुआ था और उसम तीव्रता आइ थी। सेव्र की मधि के कारण भारतीय मुसलमाना म बडा क्षोभ था और इस तरह मयुक्त राष्ट्रीय जन आदोलन के लिए पृष्ठभूमि तैयार थी।

लडाई के दिना के औद्योगिक विकास के फलस्वरूप भारतीय पूजीपति आर्थिक दष्टि से सशक्त हो चुके थे। उन्होने भी पहले की अपेक्षा अधिक तत्परता से भारतीय राष्टीय काग्रेस और उसके द्वारा शुरू किए गए असहयोग आदोलन का समथन किया। काग्रेस द्वारा दिए गए स्वदेशी और वायकाट के नारा स तथ्यत उद्योग पतिया की स्वाथ सिद्धि हो रही थी और उन्हाने रुपए-पैसे मे उनकी मदद की। वग सामजस्य और सामाजिक शाति के गाधीवादी सिद्धात और 1919 के कलकत्ता काग्रेस मे स्वदेशी के प्रस्ताव के गाधी द्वारा समथन के फलस्वरूप अब भारतीय बुजुआजी के कुछ अशो ने काग्रेस और गाधी के नतृत्व में सगठित राष्ट्रीय आदोलना का समथन करना शुरू कर दिया। 1918 के बाद भारतीय औद्योगिक बुर्जुआजी काग्रेस और भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के कायक्रम कायनीति युद्ध और रण नीति आदि क निर्धारण मे सशक्त भूमिका अदा करने लगी।

इस युग मे देश म समाजवादी और साम्यवादी दला का भी उदभव शुरू हुआ। 1928 के आसपास ये दल वग सघष के सिद्धात पर आधारित स्वतत्र राजनीतिक और टेड यूनियन आदोलन शुरू करने म सफल हो चुके थे। व देश म समाजवादी राज्य की स्थापना के पक्ष म थे और उ होने इसे ही राष्टीय आन्दोलन का लक्ष्य माना। असहयोग आदोलन म जिन राजनीतिक चेतना सपन्न मजदूरा न भाग लिया था, उनका अपना कोई स्वतन्त्र राजनय कायक्रम नही था। लेकिन 1926 के बाद जिन मजदूरा ने साइमन कमीशन के बायकाट जस आन्दोलना म भाग लिया था उनके अपने नारे थे उनका अपना अलग झडा था और अलग उनके अपने नेतागण थे। इस तरह मजदूर वग न राष्ट्रीय आदोलन म स्वतत्र राजनीतिक इकाई के रूप म प्रवेश किया। राष्ट्रीय आदोलन क इतिहास म यह एक नई बात थी।

इसी काल म काग्रेस न अपरिभाषित स्वराज क बदल स्वतत्रता का अपना लक्ष्य बनाया। बहुत सारे यूथ और इनडिपेंडेस लीगा का जन्म हुआ और उन्होंने भी स्वतत्रता को ही अपना लक्ष्य माना। लेकिन इन घटनाओ के साथ साथ प्रतिक्रियावादी, साप्रदायिक शक्तिया ने भी अपने सगठन बनाने शुरू किए और इस काल म कई साप्रदायिक दगे हुए। राष्ट्रीय आदोलन के इस चरण की चरम परिणति हुई 1930-34 के नागरिक अवज्ञा आन्दोलन म जिसे सघर्ष न गाधी के नतृत्व म सगठित किया था। भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास म यह दूसरा जन-आदोलन था।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इस चरण म खास तौर पर ये फायदे हुए, इस आन्दोलन का आधार अधिक व्यापक हुआ, स्वतत्रता को लक्ष्य बनाया, स्वतत्र राजनीतिक शक्ति के रूप म मजदूर का आन्दोलन म आ।

और इनडिपेंडेंस लीगों का जन्म हुआ और किसानों ने बड़ी तादाद में आंदोलन में भाग लेना शुरू किया। आंदोलन में निम्नांकित बातों ने अवरोधक का काम किया गांधी ने धर्म और राजनीति का जो समन्वय करना चाहा, उसके कारण राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय आंदोलन में धुंधलापन और उलझाव आए, कांग्रेस संगठन पर पूंजीपतियों का जोर बढ़ा और इसके फलस्वरूप कांग्रेस के कार्यक्रम और कार्यनीति में ऐसे संशोधन हुए जिनसे राष्ट्रीय प्रगति के बदले उनके वर्गीय स्वार्थों की सिद्धि अधिक होती थी, सांप्रदायिक भावना में तेजी आई।

पांचवां चरण

राष्ट्रीय आंदोलन के अगले चरण की अवधि थी 1934 से 1939 तक, अर्थात द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत तक। इस काल में कुछ नई बातें हुई। गांधीवादी विचारधारा कार्यक्रम और कार्यनीति में कुछ कांग्रेसियों की आस्था खतम हो गई और उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की। यह पार्टी वर्ग के आधार पर किसान और मजदूरों के संगठन के पक्ष में थी, और इसने उन्हें ही राष्ट्रीय आंदोलन की अभिप्रेरक शक्ति बनाना चाहा। लेकिन यह पार्टी विषमवर्णी थी और इसमें ऐसे लोग थे जो विभिन्न कारणों से गांधीवाद से अलग हुए थे और जिनका सामाजिक आधार निम्न बुर्जुआ था। गांधीवाद से भिन्न, उससे अलग कुछ अन्य प्रवृत्तियों का भी जन्म हुआ जैसे सुभाष बोस के नेतृत्व में फारवर्ड ब्लाक। इस काल में दलित जातियों का आंदोलन लगातार बढ़ता रहा। मुस्लिम लीग भी इस दौर में संगठनात्मक और राजनीतिक दृष्टि से पहले की अपेक्षा सुदृढ़ हुई। फिर राष्ट्रीय और सांप्रदायिक किस्म के कई अन्य मुस्लिम संगठनों का भी इस काल में उदय हुआ।

इस दौर में कम्युनिस्ट पार्टी का तेजी से विकास हुआ और छात्रों, मजदूरों और किसानों में लगातार इसका प्रभाव बढ़ता रहा। साथ ही इस काल में किसानों के आंदोलन भी तेजी से बढ़े। अधिकाधिक किसानों में राष्ट्रीय और वर्गीय चेतना का उद्भव और विकास हुआ। उनके अपने संगठन बने, उनके अपने नेता सामने आए, उनके अपने कार्यक्रम और नारे थे और उनका अपना झंडा था। अब तक राजनीतिक तौर पर जागरूक किसान कांग्रेस के नेतृत्व में थे, अब इनकी बहुत बड़ी तादाद ने अपने वर्ग की मांगों को सामने रखना शुरू किया। इन लोगों ने जमींदारी और ऋणग्रस्तता के उन्मूलन की मांग की। आल इंडिया किसान सभा ने जागरूक किसानों को एकजुट किया और इसने भारत में समाजवादी राज्य की स्थापना का लक्ष्य सामने रखा। इसने किसानों के स्वतंत्र संघर्षों का संगठन किया और राष्ट्रीय आंदोलन में स्वतंत्र इकाई के रूप में भाग लिया।

इस काल में भारतीय रियासतों की जनता के प्रजातांत्रिक आंदोलन का भी विकास हुआ। इन रियासतों की जनता ने राज्य के एकाधिकार के उन्मूलन, प्रतिनिधि संस्थाओं, नागरिक अधिकार आदि की मांग की। इन रियासतों के

आदोलनो पर मूलत वहा के व्यापारियो का कब्जा था। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने इन आदोलनो का समथन किया और उन्हे मदद की।

इस दौर म भारत की विभिन राष्ट्रिक इकाइयो म भी राजनीतिक चेतना का उद्भव और विकास हुआ। उन्होने भाषा के आधार पर प्रातो के पुनगठन की माग की। आध्र, उडीसा, कर्नाटक आदि प्रदेशो के लोगो म नए जीवन का सचार हो चुका था और वे भाषा के आधार पर स्पष्ट राजनीतिक और प्रशासनिक इकाइयो के रूप म एकान्वित होना चाहते थे।

स्वतन्त्र किसान आदोलन का उदय, समाजवादी शक्तियो का विकास, नव जागत राष्ट्रजातियो के आदोलन और ऐसी अन्य बातें अभी भी राष्ट्रीय आदोलन म सशक्त, निर्णायक स्थिति नही प्राप्त कर सकी थी। राष्ट्रीय आदोलन पर अब भी गाधीवादी जीवन दशन और गाधी के नेतृत्व का बोलबाला था। अभी भी वह मूलत पूजीपतियो और अन्य उच्चवर्गीय लोगो के हितो की ही रक्षा कर रहा था।

फिर भी नए आदोलनो का इडियन नेशनल काग्रेस पर असर पडने लगा था। इसके फलस्वरूप इसने मौलिक अधिकारो का कायक्रम बनाया जिसमे नागरिक अधिकारो की सुरक्षा प्रदान की गई और मजदूरो और किसानो के हितो की पूर्ति का आश्वासन दिया गया। इडियन नेशनल काग्रेस ने जो देश की सबसे महत्वपूण संस्था थी और जिसके हाथो म राष्ट्रीय आदोलन का नेतृत्व था, जागत राष्ट्रजातियो की सास्कृतिक और अन्यान्य आकाक्षाओ को मान्यता दी। यह सास्कृतिक स्वायत्तता और भाषाधार प्रातो के निर्माण के पक्ष म थी। उसने यह भी माना कि भाषा के आधार पर सगठित प्रातो के लोगो को अगर वे चाहे भारतीय सघ से अलग होने का भी हक होगा।

लेकिन राष्ट्रीय आदोलन म भाग लेने वाले विभिन्न सामाजिक वर्गों म परस्पर इस बात की होड लगी रही कि इस आदोलन का नेतृत्व किसके हाथो म हो। मजदूर, किसान मध्य वग के वामपथी लोग जैसे जैसे राजनीतिक तौर पर जागरूक और सचेत एव सगठनात्मक तौर पर सशक्त हुए वैसे-वैसे उन्होने काग्रेस पर अपना प्रभाव डालना शुरू किया, जो अब तक पूजीपति वग के नियत्रण म थी। जागृत राष्ट्रजातियो भी अधिकाधिक ताकत से यह माग कर रही थी कि उनके स्वतत्र और पूण विकास के रास्ते म जो अवरोध है उन्हे समाप्त किया जाए।

परिप्रेक्ष्य

बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना के साथ नई सामाजिक शक्तियो ने राष्ट्रीय आदोलन म प्रवेश तो किया और उन्होने नेतृत्व पर हर तरह के दबाव भी डाले लेकिन इससे यह आदोलन दुबल नही हुआ। वस्तुत इसके बलत राष्ट्रीय आदोलन म और अधिक गतिशीलता आई। आन्दोलन के चरण म भारत के राष्ट्रीय आदोलन का नेतृत्व मूलत पूजीवादी वग के हाथ म रहा या नए सामाजिक वर्गों ...

म चला जाएगा और इस तरह इन वर्गों के स्वार्थों और हितो और अल्पमध्यका और राष्ट्रिक इकाइयो की सास्कृतिक और अन्य य आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकगा, यह बहुत कुछ भारत और विदेश म होन वाली घटनाओ पर निभर करेगा और निभर करेगा इस बात पर कि इन वर्गों और दलो का सामाजिक सतुलन कैसा है, उनका भाव बोध और उनकी सगठनात्मक शक्ति कैसी है।

इस प्रसग मे हम युद्ध के दिनो म प्रकाशित इस पुस्तक के प्रथम सस्करण म दिए गए पूर्वानुमान को उद्धत करना चाहगे

> भारत के पूजीपति वग न द्वितीय विश्वयुद्ध के काल म अपनी शक्ति मे काफी वद्धि कर ली ह। इनका नतृत्व एस अनुभवी और कुशल राजनीतिज्ञा क हाथ म है जिनम अतीव राजनीतिक और रणनीतिक योग्यता है। इनक विपरीत भारत क नवजाग्रत निम्न तबको के लाग सास्कृतिक तौर पर पिछडे हुए ह। उनम सगठनात्मक शक्ति और राजनीतिक चतना का आपेक्षिक अभाव है। उनका नेतृत्व जिन लोगो क हाथ म है व राजनीतिक दष्टि से उतने महान और अनुभवी नही ह। इस वजह स इस बात की बहुत अधिक सभावना है कि ठीक इसक बाद वाल चरण म भारतीय राष्ट्रवादी आदोलन पर पूजीपति वग का दबदबा रहगा और यह उसी वग का हित साधन करेगा।
>
> भारतीय इतिहास और राष्ट्रीय आदोलन के विकास की यह दिशा मोटा मोटी तौर पर अकित की जा सकती है।
>
> इस विकास का एक प्रमुख लक्षण यह होगा कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस बदली हुई परिस्थिति म और अधिक व्यापक पैमान पर रियासता और प्रतितोल की नीति का अनुकरण करगा जिसम निहित स्वार्थों क अधिकाधिक लोग उसका समथन करे और उनम अधिक स अधिक प्रतियागिता बढे जिसका उसे फायदा मिल सक। इसके चलत इन वर्गों म लडाई और अधिक तज हागी और सप्रदायवादी एव अतर्प्रांतीय शत्रुता बढगी।
>
> इस विकास का एक अन्य लक्षण यह होगा कि निहित स्वार्थों क नेता आबादी क निम्न तबको के जन आदोलनो का विरोध करेंग या ब्रिटिश साम्राज्यवाद एव अपने देशी विदेशी प्रतियोगियो से रियासता क लिए इन आदोलनो का उपयोग करग, या फिर उनको विकृत करन का भी प्रयास करेग।
>
> सविधानवाद घनघोर साम्प्रदायिकता, बढी हुइ अतप्रातीय होड बढत हुए जन आदोलनो का विरोध या उनका रूप भग, भारतीय इतिहास क अगल चरण के प्रमुख तथ्य होग।

ग्रथ सूची

सामान्य

अधिकारी, जी० पाकिस्तान एड यूनिटी (1944)
आगा खा, इडिया इन टाजिशन (1918)
अहमद, जेड० ए०, दि अग्रेरियन प्राब्लम इन इडिया (1936)
अय्यर, सर पी० एस० एस०, इडियन कास्टिटयूशन प्राब्लम्म (1928)
अल्टेकर ए० एस० हिस्ट्री आफ विलज कम्युनिटीज इन इडिया (1926)
अम्बेदकर बी० आर० 1 थाटस आन पाकिस्तान (1941)
2 कास्टम इन इडिया (1917)
3 अनाहिलेशन आफ कास्ट (1936)
एड्रूज एड मुखर्जी दा राइज एड ग्रोथ आफ द काग्रेस (1938)
ऐस्टी, वेरा दि इकनामिकल डेवलपमट आफ इडिया (1937)
आयर, सर जी० लाइफ आफ लाड किचनर (1920)
अशरफ क० एम० (सपा०), पाकिस्तान (1940)
आयगर एस० क०, एशियट इडिया एड द साउथ इडियन हिस्ट्री एड कल्चर (1941)
बडन पावेल, लड सिस्टम्म आफ ब्रिटिश इडिया (1882)
बनर्जी, डी० एन० अर्ली लड रेवन्यू सिस्टम इन बेंगाल एड बिहार (1936)
बनर्जी सर सुरेद्रनाथ स्पीचेज एड राइटिंग्स
बरकतुल्ला मुहम्मद दि खिलाफत (1922)
बाकर सर अर्नेस्ट, 1 नशनल करेक्टर (1927)
2 आइडिआज एड आइडियल्म आफ द ब्रिटिश एम्पायर (1941)
3 रिफ्लक्शन्स आन गवनमट (1942)
बार्न्स एच० ई०, 1 सोसायटी इन ट्राजिशन (1940)
2 सोशिआलजी एड पोलिटिकल थियरी (1925

वार्लेस, लेनाड, 1 एम्पायर आग डेमाक्रेसी (1939)
2 सोवियट लाइट आन द कालनीज (1944)
वास, मारगरिटा 1 दि इडियन प्रेस (1940)
2 इडिया टुडे एड टुमारो (1937)
वसु, मेजर वी० डी० 1 द रुइन आफ इडियन ट्रेड एड इडस्ट्रीज (1935)
2 द राइज आफ क्रिश्चियन पावर इन इडिया (1931)
3 इडिया अडर द ब्रिटिश क्राउन (1933)
व्यूकप, जोन, ब्रिटिश इम्पीरियलिज्म इन इडिया (1935)
वेन ए० डब्ल्यू०, अ हिस्ट्री आफ माडन फिलासफी (1933)
वेसेंट, एनी हाउ इडिया राट फार फ्रीडम (1915)
ववन, एडविन, इडियन नेशनलिज्म (1913)
वाल्टस, विलियम कसिडरेशस आन इडियन अफेयस (1772)
वास सुभाप चद्र, दि इडियन स्ट्रगल (1934)
ब्रेल्सफोड, एच० एन०, सब्जक्ट इडिया (1943)
व्रिफाल्ट, रावट द डिक्लाइन एड द फाल आफ द ब्रिटिश एम्पायर (1938)
बृजनारायण, इडिया इन द क्राइसिस (1935)
ब्रुक्स, ऐडम्स द ला आफ सिविलाइजेशन एड डिके
ब्राइस, जेम्स माडन डेमाक्रेसीज (1921)
ववन, जे० लाड मिंटो
वक, एम० ए०, 1 राइज एड ग्रोथ आफ इडियन लिबरलिज्म (1938)
2 राइज एड ग्रोथ आफ इडियन मिलिटेंट नेशनलिज्म (1940)
3 राइज एड ग्रोथ आफ इडियन नेशनलिज्म (1939)
व्युकैनन डी० एच०, द डेवलपमट आफ कपिटलिस्ट इटरप्राइज इन इडिया (1934)
वर्जेस, जेम्स द क्रोनालजी आफ माडन इडिया (1913)
कैलवटन वी० एफ०, दि अवेकनिंग आफ अमेरिका (1939)
कार, इ० एच०, (चेयरमन, स्टीट ग्रुप) नशनलिज्म (1939)
काडवेल, सी०, स्टडीज इन अ डाइग कल्चर (1938)
चौधरी, एन० सी०, डिफेंस आफ इडिया (1935)
चितामणि, सी० वाई०, इडियन पालिटिक्स सिंस द म्युटिनी (1937)
चिरोल, वी०, 1 इडियन अनरेस्ट (1910)
2 इडिया (1926)
चुदगर, पी० एल०, इडियन प्रिंसेज अडर ब्रिटिश प्रोटक्शन (1929)
कांग्रेस प्रेसिडेंशियल एड्रेसज (1935)
काटन, सर हनरी, न्यू इडिया आर इडिया इन ट्राजिशन (1904)

कूपलड, रेजिनाल्ड, द कांस्टिटयूशनल प्राब्लम इन इंडिया (1944)
कनिंगम, डब्ल्यू०, ग्रोथ आफ इगलिस कामस एड इडस्ट्राज इन माडन टाइम्स (1882)
डार्लिंग, एम० एल० 1 द पंजाब पेजेंट इन प्रास्परिटी एंड डेब्ट (1925)
2 रस्टिक्स लोकिटर (1930)
दास, सी० आर० 1 स्पीचेज
2 इंडिया फार इंडियंस (1921)
दास, आर० के०, द लेबर मूवमेंट इन इंडिया (1923)
दत्त, डी०, लडलार्डिज्म इन इंडिया, (1931)
डिग्बी, डब्ल्यू०, प्रास्परस ब्रिटिश इंडिया (1902)
डाव एम०, एन आउटलाइन आफ यूरोपियन हिस्ट्री, (1925)
डोना, डब्ल्यू० आर, द हिस्टी एंड ला आफ सेडीशन
दत्त, आर० सी०, इकनामिक हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया अंडर ब्रिटिश रूल (1901)
दत्त, आर० पी०, इंडिया टु डे (1940)
दत्त, सुकुमार, द प्राब्लम आफ इंडिया नशनलिटी (1926)
एडिब, हैलिड, इनसाइड इंडिया (1937)
एडवड स एड मेरिवेल, लाइफ आफ सर हनरी लारेंस (1872)
एगेल्स, एफ०, पेजट वार इन जमनी
एजेकेल, आइ० ए०, स्वराज आर सरडर (1931)
फेदरस्टन, एच० एल० अ सेंचुरी आफ नेशनलिज्म (1939)
फिशर, लुई, अ वीक विद गाधी (1943)
फाक्स, रेल्फ, कलोनियल पालिसी आफ ब्रिटिश इपीरियलिज्म (1933)
गाडगिल, डी० आर०, दि इडस्ट्रियल इवोल्युशन आफ इंडिया इन रीसेंट टाइम्स (1933)
गाधी, देवदास, (सपा०) इंडिया अनरिकसाइल्ड (1943)
गाधी, एम० के० 1 आटोबाआग्रफी (1940)
2 स्पीचेज एड राईटिंग्स
3 सत्याग्रह (1935)
गरेट, जी० टी०, ऐन इंडियन कामट्री (1930)
घोष ए० के०, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया (1930)
घोष, अरविंद, बाल गगाधर तिलक (1919)
घोष, एन० एन०, क्रिस्टोदास पाल (1887)
घुर्ये, जी० एस०, कास्ट एड रस इन इंडिया (1932)
गिलक्राइस्ट, आर० एन०, इंडियन नेशनलिटी (1930)
गाखले, जी० के०, स्पीचेज (1920)

3 वावे प्लैन, अ क्रिटिसिज्म (1945)
मेहता, ए० एड पटवधन, ए०, द कम्युनल ट्रैगल इन इडिया (1942)
मेहता, जे० एम०, अ स्टडी आफ रूरल इकानमी आफ गुजरात
मेनन, लक्ष्मी एन०, द पोजीशन आफ वीमन (1944)
मिल, जेम्स, हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इडिया (1848)
मिशेल केट, इडस्टिअलाइजेशन आफ द वेम्टन पैसीफिक (1942)
मित्रा एन० एन० (सपा०), इडियन ऐनुअल रजिस्टम
मुहम्मद नामान, मुस्लिम इडिया (1942)
मौटेग्यु इ० एस० ऐन इडियन डायरी (1930)
मुखर्जी राधा कुमुद, फडामटल यूनिटी आफ इडिया (1926)
मोरलड, डब्ल्यू० एच०, अग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इडिया (1929)
मार्लि,जान, रिकलेक्शस, जिल्द II (1918)
मारिसन, थियोडार दि इकनामिक ट्राजिशन इन इडिया (1914)
मुखर्जी, राधा कमल लड प्राब्लम्स इन इडिया (1933)
मुखर्जी, डी० पी०, माडन इडियन कल्चर (1942)
मुलर, मैक्स, बिओग्रैफिकल एसज (1884)
मुस्तफा, खा, ऐन अपालजी फार द न्यू लाइट (1891)
नौरोजी, दादाभाई 1 स्पीचेज एड राइटिंग्स (1910)
2 पावर्टी एड अन ब्रिटिश रूल इन इडिया (1876)
नैश वी, द ग्रेट फेमिन (1900)
नटराजन, एम० एस०, फेमिन (1944)
नटराजन, एस०, सोशल प्राब्लम्स (1942)
नजीर, यार जग (सपा०), द पाकिस्तान ईसू (1943)
नेहरू, जवाहरलाल, ऐन आटोबाओग्रफी (1936)
नेहरू, मोतीलाल, (अध्यक्ष),नहरू कमेटी रिपोट (1928)
नेहरू रामेश्वरी द हरिजन मूवमट (1940)
नेहरू श्यामकुमार, (सपा०) अवर काज
नेहरू, एस० एस०, कास्ट एड क्रेडिट इन अ रूरल एरिया (1942)
नरुल्ला, सयद एड नायक, जे० पी०, हिस्ट्री आफ एजुकेशन इन इडिया (1943)
ओक्शाट, एम०, द सोशल एड पोलिटिकल डाक्ट्रिस आफ कटेम्परेरी यूरोप (1939)
ओ' मली (सपा०,) माडन इडिया एड द वेस्ट (1941)
पालबी० सी० 1 द न्यू स्पिरिट (1907)
2 मेमरिज आफ माइ लाइफ एड टाइम्स (1932)
पलेवर एम० ए० ट्रेड आफ इडिया (1943)

पराजपे, एम० आर० अ मोस बुक आफ माडन इडियन एजुकेशन (1938)
पराजपे, आर० पी० द कक्स आफ दि इडियन प्राब्लम (1931)
परूलेकर, आर० वी०, लिटरेसी इन इडिया (1940)
पजावी', द कानफेडरेसी आफ इडिया
पर्सेल एड हाल्सवथ रिपोट आन लेबर कडिशस इन इडिया (1928)
पर्डी, एम० जी०, द साउथ अफ्रिकन इडियन प्राब्लम (1943)
राजेद्र प्रसाद, 1 पाकिस्तान (1940)
2 इडिया डिवाइडेड (1946)
रामचद्र राव, पी० आर०, डिफे आफ इडियन इडस्टीज (1935)
रानाडे एम० जी० एसेज आन इडियन इकनामिक्स (1898)
रगायर, सी० एस०, इडिया इन द कुसिब्ल (1928)
रगा, एन० जी० 1 किसान स्पीक्स (1937)
2 द माडन इडियन पजट (1936)
3 पेजेंटम एड काग्रेस (1938)
4 किसान हडबुक (1938)
5 हिस्ट्री आफ किसान मूवमट (1939)
राय, पी० सी० लाइफ एड टाइम्म आफ सी० आर० दास (1937)
रिचो ज० ए० सलेक्शस फ्राम दि एजुकेशनल रेकाड स, खड I और II (1923)
रिजली, सर एच० एच०, दी पीप्ल आफ इडिया (1915)
राकर आर०, नशनलिज्म एड कल्चर (1937)
रोनाल्डशे, लाड, लाइफ आफ लाड कजन जिल्द II(1928)
राय एम० एन०, 1 इडिया इन ट्राजिशन (1922)
2 हिस्टरिकल रोल आफ इस्लाम (1938)
3 मेटरियलिज्म (1940)
राजा राममोहन राय, इगलिश वक्स (1906)
रशब्रुक, विलियम्स, ह्वाट अबाउट इडिया ?
सतानम, के० द राड आफ डिस्ट्रेस (1943)
सार्जेंट, जे०, प्रोग्रस आफ एजुकेशन इन इडिया (1940)
शिफ, लेनाड, द प्रजट कडिशन आफ इडिया (1939)
सील ब्रजेंद्र नाथ, राजा राममोहन राय
सीली, जे० आर०, एक्सपैंसन आफ इग्लड (1883)
सेनाट, एम० कास्ट इन इडिया (1930)
सहजानद स्वामी, दि अदर साइड आफ द शोल्ड (1938)
शाह, क० टी०, ह्वाइ पाकिस्तान ? ह्वाइ नाट ? (1940)
शलवकर क० एस० प्राब्लम आफ इडिया (1940)

शिवा राव, दि इडस्ट्रियल वकर इन इडिया (1939)
सीतारमया पी० द हिस्टी आफ दि इडियन नशनल काग्रेस (1935)
स्मिथ, डब्ल्यू० सी०, माडन इस्लाम इन इडिया (1943)
स्मिथ, डब्ल्यू० राय, नशनलिज्म एड रिफाम इन इडिया (1938)
सोनी, एच० आर०, इडियन ट्रासपोट (1935)
स्प्रट, फिलिप, गाधीज्म (1939)
स्टालिन, जाजफ मार्क्सिज्म एड द नशनल एड कलानियल क्वेश्चन
स्ट्रैची सर जान, इडिया, इटस एडमिनिस्ट्रेशन एड प्राग्रेस (1903)
सनयात सन सान मिनचुआइ (1929)
टैगोर, रवीद्रनाथ, नशनलिज्म (1917)
टगार, सोमद्रनाथ 1 गाधीज्म एड द लेबर पेजेट पाब्लम (1940)
2 बुजुआ डमाक्रेटिक रिवोल्यूशन एड इडिया (1939)
टानी, आर० एच०, रेलिजन एड द राइज आफ कपिटलिज्म (1929)
टपल सर आर०, मेन एड इवटम आफ माइ टाइम इन इडिया (1882)
टामस एफ० डब्ल्यू०, हिस्टी एड प्रास्पेक्टस आफ ब्रिटिश एजुकेशन इन इडिया (1891)
टामसन, इ० एड गैरट जी०, राइज एड फुलफिलमट आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया (1935)
टामसन, इ० रिकन्स्ट्रक्शन आफ इन्डिया (1930)
टैवेलियन, सी० ई०, दि एजुकेशन आफ द पीपल आफ इडिया (1838)
वर्गा ई० द ग्रेट क्राइसिस (1934)
विजयाराघवाचारी, सर टी० लड एड दटम प्राब्लम्स (1944)
विश्वश्वरया, सर एम० प्लड इकानमी फार इडिया (1934)
विवेकानद स्वामी, फ्राम कालम्बो टु अलमोरा सवेंटीन लेक्चस (1897)
वाडिया पी० ए० एड जाशी जी० एन०, वेल्थ आफ इडिया (1925)
वाडिया, पी० ए० एड मर्चेट, क० टी० 1 अवर इकनामिक प्राब्लम (1943)
2 माडन टाइम्स (1882)
वालचद हीराचद, ह्वाइ इडियन शिपिंग डज नाट ग्रो (1940)
वाल्टर एच० ए०, दि अहमदिया मूवमट (1918)
वेब, ब्रिटिश, माइ अप्रटिसशिप (1938)
वडरवन, विलियम, एलन आक्टवियन ह्यूम (1913)
वीजवाड, ए०, द कावमन्ट आफ पावर (1938)
ह्वाइटहड बिशप, इडियन प्राब्लम्स (1924)
विल्सन एस० सी० माडन मूवमट अमग मुस्लिम्स (1916)
विंटरनिटज ज०, नशनलिटीज इन यूराप (1945)

विंटिगम, टी०, म्युटिनी (1936)
यागिनक, आइ० के०, पेजेंटस रिवोल्टस (1939)
जकारिआस, एच० सी० ई० रिसर्जेंट इंडिया (1933)
जिमन ए० ई०, नशनलिटी एंड गवनमट (1919)

सरकारी प्रकाशन

इंपीरियल गजेटियस आफ इंडिया जिल्द I IV
इंडियन स्टेटिस्टिकल अब्सट्रेक्ट (वार्षिक)
माटग्यु चम्सफाड रिपाट (1918)
रिपोट आफ दि इंडियन इंडस्ट्रियल कमीशन 1916-18
रिपाट आफ द सडलर कमीशन 1917 19
रिपाट आफ द रायल कमीशन आन द पब्लिक सर्विस (इसलिंग्टन कमीशन) (1917)
रिपाट आफ द रौलट (सेडीशन) कमेटी (1918)
रिपाट आफ द रायल कमीशन आन द सुपिरियर सिविल सर्विसेज इन इंडिया (ली कमीशन) (1924)
रिपोट आफ द वाव रायटस इनक्वायरी कमटी (1925)
रिपोट आफ द इंडियन इकनामिक इनक्वायरी कमेटी (1925)
रिपोट आफ द रायल कमीशन आन एग्रीकल्चर (1928)
रिपाट आफ द बटलर कमटी (1929)
रिपाट आफ द हार्टोग कमीशन (1929)
रिपाट आफ दि इंडियन स्टैच्युटरी कमीशन (साइमन कमीशन) (1930)
रिपाट आफ द फ्रेंचाइज कमेटी (1931)
रिपोट आफ द रायल कमीशन आन लेबर (1931)
रिपाट आफ दि सेंट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमटी (19 1)
रिपाट आफ द ज्वायट कमटी (1914)
रिपाट आफ द फुडग्रेंस पालिसी कमटी (ग्रगरी कमटी) (1943)
रिपोट आफ द लैंड रेवेन्यू कमीशन (फ्लाउडस कमीशन)
रिपाट आफ द फैमिन कमीशन (फाइनल रिपाट) (1945)
द मारल एंड मटरियल प्राग्रेस इन इंडिया (एनुअल)